View metadata, citation and similar papers at core.ac.uk

brought to you by CORE

provided by Etheses - A Saurashtra University Library Service

Saurashtra University

Re – Accredited Grade 'B' by NAAC
(CGPA 2.93)

Niranjan, Ashvin G., 2008, "*श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण' और 'रामचरित मानस' का चरित्रगत तुलनात्मक अध्ययन*", thesis PhD, Saurashtra University

http://etheses.saurashtrauniversity.edu/id/eprint/692

Copyright and moral rights for this thesis are retained by the author

A copy can be downloaded for personal non-commercial research or study, without prior permission or charge.

This thesis cannot be reproduced or quoted extensively from without first obtaining permission in writing from the Author.

The content must not be changed in any way or sold commercially in any format or medium without the formal permission of the Author

When referring to this work, full bibliographic details including the author, title, awarding institution and date of the thesis must be given.

Saurashtra University Theses Service
http://etheses.saurashtrauniversity.edu
repository@sauuni.ernet.in

© The Author

‘श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ का चरित्रगत तुलनात्मक अध्ययन ।

[सौराष्ट्र विश्वविद्यालय की पीएच. डी. (हिन्दी) की उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध]

❖ प्रस्तुतकर्ता ❖

प्रा. अश्विन जी. निरंजन

श्री देवमणी आर्ट्स व कोमर्स कॉलेज,

सताधार रोड,

विसावदर-362130

❖ शोध-निर्देशक ❖

डॉ. शैलेश के. मेहता

रीडर,

हिन्दी भवन,

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,

राजकोट – 360 005

वर्ष-2008

प्रमाणपत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **प्रा. निरंजन अश्विन जी.** ने सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट की पीएच. डी. पदवी हेतु मेरे निर्देशन एवं निरीक्षण में **" 'श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण' और 'रामचरित मानस' का चरित्रगत तुलनात्मक अध्ययन।"** शीर्षक पर शोध-प्रबंध तैयार किया है। इस शोध-प्रबंध में इन्होंने उक्त विषय का यथाशक्ति अध्ययन, अनुशीलन एवं शोध-परक विश्लेषण तथा विवेचन कर वैज्ञानिक ढंग से मौलिक निरूपण किया है।

साथ ही, यह शोध-प्रबंध अथवा इसका कोई अंश, अब तक न तो प्रकाशित हुआ है और न ही इसका कहीं कोई उपयोग हुआ है।

राजकोट
दिनांक :

डॉ. शैलेश के. मेहता

रीडर,

हिन्दी भवन,

सौराष्ट्र विश्वविद्यालय,

राजकोट – 360 005

❖ अनुक्रमणिका ❖

अध्याय एवं शीर्षक	पृ.क्रमांक
प्राक्कथन	I - X
प्रथम अध्याय महर्षि वाल्मीकि एवं श्री तुलसीदास : जीवनवृत्त एवं साहित्य	१-३७
द्वितीय अध्याय महर्षि वाल्मीकि एवं श्री तुलसीदास की युगीन परिस्थितियाँ	३८-७७
तृतीय अध्याय 'श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण' और 'रामचरितमानस' का संक्षिप्त कथानक	७८-१०८
चतुर्थ अध्याय संस्कृत तथा हिन्दी के राम-कथा पर आधारित महाकाव्यों में प्रयुक्त चरित्रांकन-प्रणाली।	१०९-१३८
पंचम अध्याय 'श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण' और 'रामचरितमानस' के चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन	१३९-३५४
षष्ठ अध्याय 'श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण' और 'रामचरित मानस' के चरित्रों के माध्यम से ध्वनित संदेश	३५५-३९२
उपसंहार	३९३-४०१
परीशिष्ट १. आधारभूत-ग्रन्थ २. सहायक-ग्रन्थ ३. पत्र-पत्रिकाएँ ४. कोश	४०२-४०८

प्राक्कथन

भूमिका :-

रामकाव्य भारतीय चिन्तन का मेरुदण्ड है, जिसके माध्यम से हम अपनी युगीन समस्याओं का समाधान खोजते हैं। भारतीय संस्कृति का मूल्यबोध राम काव्य के पात्रों और उनके कार्य कलापों में व्यक्त होता रहा है । मानव सभ्यता के विकास में रामकथा का जो योगदान रहा है उतना शायद किसी का भी नहीं रहा । कवि अपनी काव्य रचनाओं में युगीन समाज की आशा-निराशा, सुख, दुःख, रीति-रिवाज तथा मान्यताएँ आदि अपने पात्रों के जरिए प्रकट करते हैं । 'रामायण' के प्रत्येक पात्र एक सामान्य मनुष्य की भाँति सुख, दुख, आकांक्षा प्रेम, धिक्कार आदि भावों के साथ अपने कार्य उद्देश्य की ओर प्रवृत दिखाई देते हैं । 'रामायण' के रचनाकाल से लेकर आजतक एक लम्बाकाल व्यतीत हो जाने के पश्चात् भी उनमें चित्रित पात्रों के मनोभाव आधुनिक युगीन मानव भावों के समान दिखाई देता है, यही इस ग्रन्थ की महानता है । भारतवर्ष में रामकाव्य की धारा अनादिकाल से चली आ रही है । बौद्ध, जैन तथा वैदिक साहित्य में राम कथा का रूप प्राप्त होता है, परंतु रामायण ने भारतीय प्रज्ञा को जितने व्यापक रूप से प्रभावित किया है इतना अन्य रामकाव्यों ने नहीं किया जिसका प्रमाण 'रामायण' महाकाव्य को आधार बनाकर लिखी गई अन्य भाषा की रामकथाएँ है। पाँचसौं वर्ष पहले तुलसीदास ने 'रामायण' के उन चरित्रों में अपने युगीन समस्याओं के साथ चरित्रों में सुख, दुःख, मिलन-विरह, रोना-तड़पना, धर्म-अधर्म, प्रेम, करुणा आदि भावों को भरकर रामकथा को 'रामचरित मानस' के माध्यम से संसार रूपी सागर सरिता में प्रवाहित किया । तुलसीदास ने अपने महाकाव्य 'रामचरित मानस' में दार्शनिक, सांस्कृतिक धार्मिक, सामाजिक तथा राजनैतिक अर्न्तविरोधो में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया है । निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों के प्रत्येक चरित्र अपने अलग अलग रूप से प्रकट होते हुए अपने युग को प्रभावित करते हैं । कहने का तात्पर्य यह है कि इन दोनों

महाकाव्यों के चरित्रों में बहुत सी साम्यता-असाम्यता है जो स्पष्ट रूप से दोनों में उभरकर सामने आती है । महर्षि वाल्मीकि एवं गोस्वामी तुलसीदास न केवल साहित्यकार है, परंतु अपने युग के चिंतक एवं समाज सुधारक भी है । दोनों महाकवियों ने रामायण और 'रामचरित मानस' में चरित्रों की सहायता से तथा समाज के प्रत्येक पक्षों पर सूक्ष्म दृष्टि डालते हुए उनके शुभाशुभ दोनों पक्षों को अभिव्यक्त किया है । अपने पात्रों का युगीन चित्रण करते हुए उन दोनों महाकवियों के महाकाव्यों का कथानक एक होते हुए भी चरित्र चित्रण में साम्यता-असाम्यता दिखाई देती है । जैसे 'रामायण' के राम पूर्ण मानव के रूप में चित्रित हुए है, वहाँ मानसकार ने उनको ब्रह्म रूप में चित्रित किया है । महर्षि वाल्मीकि ने सीता का पुत्रीवत् पालन करते हुए उनको उसी भावों के साथ चित्रित किया है । जबकि मानसकार ने उनको आराध्य अम्बा के रूप में चित्रित किया हे । 'रामायण' में कैकेयी का यथार्थ चित्रण करते हुए वाल्मीकि ने राम वनवास तथा दशरथ के मृत्यु की जिम्मेदारिणी कैकेयी को ठहराया है, परंतु मानसकार ने देवकार्य सम्पन्नता के लिए राम वनवास को अनिवार्य बताते हुए कैकेयी पर लगी कालिख को पोतने का प्रयास किया है । अतः पात्रों में ऐसे अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तनों को जानने की मेरे मन की जिज्ञासा इस शोध विषय के चयन की प्रेरणा का आदि स्त्रोत रहा है ।

रामानन्द सम्प्रदाय से दीक्षित तथा परिवार में पहले से ही रामभक्तिमय वातावरण में पालन पोषण होने से मेरा 'रामायण" के प्रति पहले से ही लगाव रहा है। रामकथा का बाल्यकाल से ही शौक़ होने के कारण कई जगह मैं पू. मोरारि बापू की कथा सुनने के लिए तथा संवादों को सूनने के लिए संतों, महंतों के पास आश्रम में ज़ाया करता था। अतः हृदय के किसी एक कोने में स्थित रामकथा के प्रति मेरा अगाध लगाव ही मुझे 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के पात्रों का नजदिकता से अभ्यास करवाने के लिए प्रवृत कर रहा था । मेरे जन्मजात संस्कार 'रामायण' और 'मानस' जैसे महान ग्रन्थों को छोड़कर अन्य विषय पर संशोधन करने की प्रेरणा नहीं दे रहे थे। अतः सात आठ वर्ष से मन में एक साध लिये बैठा था कि ऐसे कोई मार्गदर्शक मिले जो इस विषय पर संशोधन

कार्य करवाने के लिये तैयार हों ।

दो ढाई वर्ष पहले एकेडेमिक स्टाफ कॉलेज, सौराष्ट्र यूनिवर्सिटी में मैं रिफ्रेशर कोर्ष करने के लिये गया था । कोर्ष लगभग मध्य में पहुँचा हुआ था कि रिफ्रेशर में आये प्राध्यापकों के बीच रामकथा के विषय पर चर्चा छीड़ गयी जिसमें मैंने भी बड़ी स्फूर्ति से हिस्सा लिया और रामायण के कई प्रसंगों की विस्तृत चर्चा की । उस समय रिफ्रेशर में मेरे साथ सौराष्ट्र ज्ञानपीढ कॉलेज, बरवाला के हिन्दी के प्राध्यापक डॉ. शैलेषभाई मेहता भी थे, जिन्होंने मेरे पास आकर मेरी पीठ थपथपाते हुए कहा कि रामायण पर इतना लगाव हैं तो इस विषय पर संशोधन कार्य क्यों नहीं करते? मेहता साहब ने अपने निर्देशन मे कार्य करने के लिए मुझे प्रोत्साहित किया । तब जाकर सात-आठ वर्ष की मनोकामना पूर्ण होने के आसार दिखाई दिये । मन में एक खुशी की लहर दौड़ गई । तत्पश्चात डॉ. गिरीशभाई त्रिवेदी, डॉ. पाण्डेय साहब, डॉ. एस. पी. शर्माजी तथा डॉ. एच. टी. ठक्करजी आदि विद्वान गुरुजनों से विचार विमर्श करके मैंने संशोधन कार्य का विषय चयन किया जो इस प्रकार था 'श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण' और 'रामचरित मानस' का चरित्रगत तुलनात्मक अध्ययन' । इस प्रकार कई वर्ष के पश्चात संशोधन कार्य के लिये मन-भावन विषय और आदर्श मित्र तुल्य मार्गदर्शक मिलने पर मेरा काम ओर सरल हो गया और मैं पूरी लगन से संशोधन कार्य में जुट गया ।

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में चित्रित पात्रों को केन्द्र में रखकर अनेक विद्वानों ने शोध प्रबन्ध प्रस्तुत किये हैं । इसी प्रकार पत्र पत्रिकाएँ तथा आलोचनात्मक ग्रन्थों आदि में भी इसी विषय संबंधित छोटे-बड़े लेख प्रस्तुत हुए हैं । परंतु जहाँ तक मुझे ज्ञात है वहाँ तक 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के पात्रों को केन्द्र में रखकर विस्तृत शोध कार्य नहीं हुआ है । विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन, लखनऊ से प्रकाशित विद्या मिश्र का 'वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन' प्रबन्ध में लेखिका ने 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के प्रमुख चरित्रों का विवचेन किया है परंतु दोनों महाकाव्यों का मूल्यांकन करना उनका उद्देश्य होने से पात्रों के तुलनात्मक

अध्ययन पर विस्तृत कलम नहीं चलायी । इसी प्रकार ज्ञान प्रकाशन कानपुर से प्रकाशित वाल्मीकि तथा तुलसीदास के नारीपात्र में डॉ. संतोष मोटवानी ने दोनों महाकाव्यों की नारियों का नजदिकता से विवेचन किया है परंतु अपने शोधकार्य के शीर्षक के अनुकूल दोनों महाकाव्यों के नारी पात्रों की समीक्षा हुई है जबकि पुरुष पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं है ।

'रामायण' और 'मानस' के पात्रों में पुरुष पात्रों की अपेक्षा स्त्रीपात्रों पर अधिकतः शोधकार्य हुआ है। जिसमें वाल्मीकि तथा तुलसीदास के नारी पात्र डॉ. सन्तोष मोटवानी, मानस की महिलाएँ, डॉ. रामानन्द शर्मा, रामायण में नारी, डॉ. अर्चना विश्नोई, तुलसी-साहित्य में नारी, डॉ. शारदा त्यागी तथा रामकथा और उसके प्रमुख नारीपात्र आदि अनेक शोधकार्य हो चुके हैं, किन्तु जहाँ तक मुझे ज्ञात है 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के सभी पात्रों के तुलनात्मक अध्ययन के रूप में विस्तृत रूप से अभी तक कोई शोध कार्य नहीं किया गया है । अतः 'श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण' और 'रामचरित मानस' का चरित्रगत तुलनात्मक अध्ययन विषय पर इस दिशा में किया गया यह शोध प्रबंध कार्य मेरा एक विनम्र प्रयास है ।

अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत शोध-प्रबंध को छः अध्यायो में विभक्त किया गया है -

प्रथम अध्याय : महर्षि वाल्मीकि एवं श्री तुलसीदास : जीवन वृत्त एवं साहित्य

प्रथम अध्याय में महषि वाल्मीकि और तुलसीदास का जीवनवृत तथा उनके साहित्य का परिचय दिया गया है । भारतीय संस्कृति के प्रणेता इन कवियों ने अपने जीवन को किसी ग्रन्थ में कभी भी चित्रित नहीं किया । परिणामतः उनका जन्म मृत्यु, जीवन, देशारटन, साहित्य आदि को लेकर किसी निश्चित तथ्य पर नहीं पहुँच सकते। महर्षि वाल्मीकि के जीवन का संक्षिप्त परिचय वाल्मीकि रामायण, अध्यात्य रामायण, स्कन्दपुराण तथा दन्तकथाओं से प्राप्त होता है, परंतु उन कथाओं में भी समानता न होने से सत्य तक पहुँचना कठिन हो जाता है । फिर भी, यहाँ अनेक ग्रन्थों तथा दन्तकथाओं

के प्रसंगों का जिक्र करते हुए महर्षि वाल्मीकि का जीवन तथा उनके साहित्य का परिचय दिया गया है । महर्षि वाल्मीकि की भाँति गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने जीवन से सम्बन्धी लिखे एक-दो दोहों को छोड़कर अधिक कुछ नहीं लिखा है । अतः गोस्वामीजी का जन्म, बाल्यकाल, विवाह, गृहस्थ-जीवन तथा उनका देशारटन आदि बातें अन्तसाक्ष्य और बर्हिसाक्ष्य के आधार पर प्रकट करने का प्रयास किया गया है । तुलसीदास के साहित्य के सम्बन्ध में भी विद्वानों में मतभेद रहा है। कई विद्वानों ने तुलसी रचित कृतियों की संख्या पचास से उपर बतायी है और उनकी सूची भी दी है, परंतु उन में से बारह कृतियों को ही विद्वानों ने प्रामाणित माना है। अतः हमने इस अध्याय में तुलसीदास रचित साहित्य के रूप में उन्हीं बारह कृतियों का ही परिचय दिया है।

द्वितीय अध्याय : महर्षिवाल्मीकि एवं तुलसीदास की युगीन परिस्थितियाँ :-

'रामायण' और रामचरित मानस' अपने-अपने युग की प्रतिनिधि रचनाएँ हैं अर्थात् ये दोनों महाकाव्य तत्कालीन समाज के सच्चे प्रतिनिधि होने के साथ-साथ समाज की शब्दमूर्ति भी हैं । इस अध्याय में वाल्मीकि तथा तुलसीदास की युगीन परिस्थितियों को बड़ी सूक्ष्मता से संशोधित कर प्रकट किया गया है । वाल्मीकि एवं तुलसीदास की युगीन परिस्थितियों को सूक्ष्मता से समझने के लिए मैंने इस अध्याय को अनेक मुद्दो में विभाजित किया है । जैसे, राजनैतिक परिस्थिति (जिस में राजा, राज्य अमात्यमंडल, युद्ध और सेना आदि) सामाजिक परिस्थिति (जिसमें वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था, कुटुम्ब व्यवस्था, शिक्षा, आभुषण, खानपान, उत्सव, नारी आदि), आर्थिक परिस्थिति तथा धार्मिक परिस्थिति। अतः इस अध्याय में उपर्युक्त चारों परिस्थितियों को 'रामायण' और 'मानस' के आधार पर प्रकट करने का प्रयास किया गया है ।

तृतीय अध्याय : 'श्रीमद वाल्मीकीय 'रामायण' और 'रामचरित मानस' का संक्षिप्त कथानक :-

तृतीय अध्याय में दोनों महाकाव्य 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के कथानक को संक्षिप्त रूप में दिया गया है । 'रामायण' को आधार बनाकर तुलसीदास ने उसमें आंशिक परिवर्तन करते हुए 'रामचरित मानस' की रचना की है। वाल्मीकि ने जहाँ 'रामायण' में अपने युग के राजा राम का यर्थाथ चित्रण किया है, वहाँ तुलसीदास ने भक्ति भाव से प्रेरित होकर राम कों विष्णुरूप में चित्रित करते हुए 'मानस' की रचना की है। अतःदोनों महाकाव्यों के कथानक के सूक्ष्म अंतरों की ओर इशारा करते हुए 'रामायण' और 'रामचरित मानस' का संक्षिप्त कथानक इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

चतुर्थ अध्याय : संस्कृत तथा हिन्दी के रामकथा पर आधारित महाकाव्यों में प्रयुक्त चरित्रांकन-प्रणाली :-

कवि अपने समाज की आवश्यकतानुसार कथानक को गढ़ते हुए उनके पात्रों का अपने युग के अनुकुल चित्रण करते हैं । संस्कृत महाकाव्यों में पात्रों का कवियों ने जहाँ यर्थाथ चित्रण किया है, वहाँ हिन्दी में यथार्थ के साथ आदर्श को जोड़ते हुए पात्रों को चित्रित किया जाता रहा है । चरित्र चित्रण में पात्रों का शृंगार वर्णन, मनोवैज्ञानिक अर्न्तद्वन्द्व, पात्रों के उनके विविध पहलु तथा अतिप्राकृतिक तत्वों का निषेध आदि दृष्टि से संस्कृत तथा हिन्दी के कवियों की शैली भिन्न-भिन्न रही है। अतः इस अध्याय में संस्कृत तथा हिन्दी के महाकाव्यों में कवियों द्वारा किये गये चरित्रों के चित्रण की प्रणालियों को प्रस्तुत किया है ।

पंचम अध्याय : श्रीमदवाल्मीकी रामायण' और ' रामचरित मानस के चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन :-

प्रबंध के शीर्षक के अनुसार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के चरित्रों का इस अध्याय में तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है । अध्ययन की सुविधा के लिये इस प्रकरण को मुख्य चरित्र (जिसमें प्रमुख पुरुष चरित्र और प्रमुख स्त्रीचरित्र) गौण चरित्र

(जिस में गौण-पुरुष चरित्र और गौण स्त्रीचरित्र) तथा अतिगौण चरित्र (जिसमें गौण पुरुष चरित्र और गौण स्त्रीचरित्र) तथा अतिगौण चरित्र (जिसमें अतिगौण पुरुष चरित्र ओर अतिगौण स्त्रीचरित्र) तीन विभागों में विभक्त किया गया है । मुख्य पुरुष चरित्रों में राम लक्ष्मण, भरत, दशरथ, हनुमान, रावण और स्त्री चरित्रों में सीता, कौशल्या तथा कैकेयी को लिया गया है । गौण पुरुष चरित्रों में सुग्रीव, वाली, विभिषण मेघनाद, अंगद आदि तथा गौण स्त्रीचरित्रों में सुमित्रा, मंथरा, मन्दोदरी आदि को लिया गया है। अनावश्यक विस्तार से बचने हेतु अतिगौण चरित्रों में हमने उन्हीं चरित्रों को लिया है, जिनका 'रामायण' ओर 'रामचरित मानस' दोनों में वर्णन हुआ है । इसका कारण यह है कि 'रामायण' के बहुत-से ऐसे चरित्र हैं, जो विभिन्न कथाओं के जरिए प्रकट होते हैं परंतु 'मानस' में इनका या तो उल्लेख मात्र है अथवा नहीं है, अर्थात् ऐसे चरित्रों को छोड़ दिया है । अतिगौण पात्रों के चरित्र चित्रण में 'रामायण' और 'मानस' के बालकाण्ड से लेकर युद्धकाण्ड़ / लंकाकाण्ड तक जितने भी चरित्र विद्यमान हैं, उनका क्रमशः पुरुष-चरित्र और स्त्री-चरित्र के रूप में तुलनात्मक अध्ययन यहाँ प्रस्तुत किया गया है ।

षष्ठ अध्यय : श्रीमद वाल्मीकीय रामायण' और 'रामचरित मानस' के चरित्रों के माध्यम से ध्वनित संदेश :-

प्रस्तुत अध्याय में दोनों महाकाव्यों के चरित्रों के माध्यम से जो संदेश प्राप्त होता है उनको प्रस्तुत किया गया है । दोनों महाकाव्यों के प्रत्येक चरित्र कोई न कोई आदर्श उपस्थित करते हैं, जैसे महाराज दशरथ अपनी सत्य प्रतिज्ञा एवं पुत्र प्रेम, राम पितृभक्ति, भरत भ्रातृत्व का, लक्ष्मण सेवा एवं त्याग का, निषादराज गुह तथा सुग्रीव मित्रता का, हनुमान सेवक का, सीता पतिपरायण पत्नी तथा कौशल्या और सुमित्रा मातृत्व का आदर्श स्थापित करते हैं । अतः राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक परिस्थतियों को सुदृढ करने के लिए 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के चरित्रों से जो संदेश प्राप्त होता है, उसी संदेश को इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

अन्ततोगत्वा कहा जा सकता है कि महर्षि वाल्मीकि ने अपने समकालीन राजा राम के चरित्र को काव्यबद्ध करते हुए चरित्रों का यर्थाथ चित्रण किया है, जबकि आज से पाँचसों वर्ष पूर्व गोस्वामी तुलसीदास ने अपने आराध्य श्री राम पर भक्तिभाव से प्रेरित होकर काव्य रचना की है । अतः दोनों महाकवियों के चरित्र-चित्रण में अंतर होना स्वाभविक है । इस प्रबंध में 'रामायण' और 'रामचरित मानस' की द्रष्टि से चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन करते हुए चरित्रों के विविध पहलुओं को दिखलाने का विनम्र प्रयास किया गया है । अंततः यह कहना उचित होगा कि चरित्र चाहे मुख्य हो, गौण हो या अति गौण; शोधार्थी ने यथासम्भव वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखते हुए तटस्थतापूर्वक उसका तुलनात्मक अध्ययन किया है । इससे प्रत्येक चरित्र की दोनों महाकाव्यों में व्यापक भूमिका तो स्पष्ट होती ही है साथ ही एक-एक चरित्र की दोनों महाकाव्यों से निःसृत समानता-असमानता भी प्रकाश में आती है ।

शोध-प्रबंध के अंत में शोध कार्य संबंधित उपयोगी सामग्री की सूची दी गई है। इसमें पहले वाल्मीकि रचित 'रामायण' तथा तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस' का विवरण है । तत्पश्चात् प्रस्तुत प्रबंध के लिए सहायक संदर्भ ग्रन्थों की सूची दी गई है। पत्र-पत्रिकाएँ तथा विभिन्न कोश भी इसी क्रम में दिये गये हैं ।

'रामायण' और 'रामचरित मानस' के चरित्रों को दोनों महाकवियों ने भिन्न रूप से चित्रित किया है । 'रामायण' के सभी चरित्रों को वाल्मीकि ने मानव सहज गुणों-अवगुणोंसे भर दिया है। वे चरित्र हर्ष, शोक, राग, अनुराग, ईर्ष्या आदि के साथ प्रकट होते हैं । वाल्मीकि ने इन्हीं चरित्रों को इस प्रकार से चित्रित किया है कि हम इन्हीं चरित्रों में आधुनिक युगीन व्यक्ति के समान शारीरिक मानसिक उत्थान पतन में हर्षित या तड़पते हुए देखते हैं । हमारे मनोभाव इन्हीं चरित्रों के मनोभावों के समान दिखाई देता है । जैसे राम वनवास की पहली ही रात कैकेयी पर संदेह करते हुए लक्ष्मण से कहते हैं कि हम दोनों का इस प्रकार अध्योध्या छोड़कर निकल जाना उचित नहीं है। क्योंकि कैकयी महाराज दशरथ और माता कौशल्या को हानि पहुँचा सकती है, अतः तुम

सुबह अयोध्या लौट जाओ । सीता भी स्पष्ट वक्ता तथा निडरता से राम को वनगमन से पहले कहती है कि मेरे पिता ने आपको वीर समझकर जामाता के रूप में स्वीकार किया था यह सोचकर नहीं कि आप शरीर से पुरुष और कार्यकलाप से स्त्रा हो। जबकि तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में राम आदि चरित्रों में अलौकिक तत्व को भर दिया है। वाल्मीकि के राम जहाँ अपने आपको दशरथ का पुत्र दिखाते हैं वहाँ तुलसीदास ने इनको केवल ब्रह्म रूप में ही चित्रित किया है । सीता के चरित्र में भी तुलसीदास ने जगन्जननी जगदम्बा का रूप भर दिया है । 'रामायण' की कौशल्या को राम-वनवास का दुःख है, जिसके परिणाम स्वरूप वे राम के आगे महाराज दशरथ के व्यवहार की भी समीक्षा करती है । जबकि 'मानस' की कौशल्या पतिपरायण के रूप में प्रकट होती है ।

निष्कर्ष में दोनों महाकवियों ने अपने युगानुरूप चरित्रों का चरित्र-चित्रण किया है। 'रामायण' के चरित्रों की तुलना में 'मानस' के चरित्रों से हमारी पहचान अधिक रही है। परिणामतः 'रामायण' के उन्हीं चरित्रों से हम अनभिज्ञ रहे हैं, जो मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत होकर सुख में हर्षित और दुःख में व्याकुल होते हुए अपने उत्थान के लिए निरंतर संघर्षशील रहते हैं । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने इन्हीं चरित्रों में यर्थाथ के साथ आदर्श को जोड़कर अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न बना दिया है और आज ईश्वरीय गुणों से भरे हुए इन्हीं पात्र हमारे दिलो दिमाग पर बैठे हुए है । अतः प्रबंध में 'रामायण' और 'मानस' के चरित्रों की समानता असमानता को ध्यान में रखते हुए उनका तुलनात्मक अध्ययन करना मेरा मुख्य उद्देश्य रहा है ।

प्रस्तुत शोध प्रबंध की जो विशेषता है वे इस प्रकार है –

- ❖ महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास के जीवन, साहित्य एवं युग संबंधित विशेष जानकारी देने का नम्र प्रयास है ।
- ❖ 'रामायण' और 'मानस' के चरित्रों को परंपरित ढंग से चित्रित न करके विशिष्ट ढंग से तुलनात्मक परिचय देने का प्रयत्न किया गया है ।
- ❖ दोनों महाकाव्यों के चरित्रों का चित्रण करते हुए उनका विस्तृत तुलनात्मक अध्ययन

प्रस्तुत किया गया है, जिससे 'रामायण' के चरित्र और 'रामचरित मानस' के चरित्र अपनी अपनी विशेषताओं के साथ उभरते हैं ।

मेरे प्रबंध सर्जन के पीछे कई लोगों का हाथ है, उन व्यक्तियों के ऋण चुकाने का यह सुनहरा अवसर है । अतः मैं सबसे पहले अपने मार्गदर्शक डॉ.शैलेशभाई मेहता का आभार व्यक्त करता हूँ जिन्होंने रुबरु या टेलिफोन के जरिए मेरा उचित मार्गदर्शन करते हुए मुझे शोधकार्य की पूर्णता के इस मुकाम पर खड़ा कर दिया । इसी प्रकार मैं डॉ. गिरीशभाई त्रिवेदी (निवृत प्राध्यापक, हिन्दी भवन सौराष्ट्र विद्यालय, राजकोट) के प्रति आभार प्रकट करता हूँ कि जिनके मार्गदर्शन से मेरा शोधकार्य और अधिक सरल हो गया । अंत में मैं डॉ. राजेन्द्र पाण्डेयजी (प्रिन्सीपाल, बहाउद्दीन कॉलेज, जूनागढ) को प्रणाम करके आभार प्रकट करता हूँ कि जिनकी कृपाभरी दृष्टि से मैं यह मुश्किल कार्य सम्पन्न कर सका हूँ । इसी प्रकार प्रिन्सीपाल एन.बी.उपाध्याय (देवमणी कॉलेज, विसावदर), डॉ. शर्माजी, डॉ. एच. टी. ठक्करजी, प्रा. बी. एफ. किकाणी, डॉ. बी. के. कलासवा, डॉ. कुंजबिहारी वार्ष्णेयजी आदि के प्रति भी अपनी श्रद्धा प्रकट करता हूँ। अतः इस प्रबंध कार्य को पूरा करने में मुझे जिनकी भी सहायता प्राप्त हुई है, उन सब के प्रति मैं अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

अंत में मैं अपने माता-पिता तथा परिवार के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ, जिनके वात्सल्यपूर्ण आशिर्वाद तथा शुभेच्छाओं से मैं इस प्रबंध को पूरा कर सका हूँ । साथ ही, प्रस्तुत शोध-प्रबंध का संपूर्ण टंकण-कार्य जिनके शुभ हाथों से संपन्न हुआ, ऐसे श्री प्रणवभाई त्रिवेदी (राजकोट) का शोधार्थी आजीवन ऋणी रहेगा। जिन ग्रंथालयों से शोधार्थी को वरदान स्वरूप पुस्तकें उपलब्ध हुई हैं, उनके ग्रंथापालों के प्रति कृतज्ञता-भाव प्रकट कर शोधार्थी प्रसन्नता का अनुभव करता है ।

दिनांक :- विनीत,

स्थल :- विसावदर

निरंजन अश्विन जी.

अध्याय – १

महर्षि वाल्मीकि एवं श्री तुलसीदास : जीवनवृत्त एवं साहित्य

- प्रस्तावना
- वाल्मीकि जीवन परिचय
- तुलसीदास जीवन परिचय
- वाल्मीकि रचित साहित्य
- तुलसीदास रचित साहित्य
- निष्कर्ष
- संदर्भ सूची

1.1 प्रस्तावना :-

भारतीय साहित्य में जिसको 'आदिकाव्य' कहकर पहचाना जाता है वह वाल्मीकि कृत 'रामायण' संस्कृत साहित्य की श्रेष्ठत्तम उपलब्धि है । इसी प्रकार रामकथा को आधार बनाकर लिखा गया तुलसीकृत 'रामचरित मानस' हिन्दी साहित्य में अनन्य है । दोनों महाकाव्य केवल भारतीय साहित्य में ही नहीं वरन् विश्व साहित्य में अद्वितीय है । दोनों महाकवियों ने अपने महाकाव्यों के उदार चरित्रों द्वारा ग्राहस्थ्य जीवन का आदर्श राजधर्म, आदर्श, पातिव्रत धर्म, आदर्श भ्रातृप्रेम आदि का जो रूप संसार के समक्ष रखा है, वह शायद ही कहीं मिलेगा। साहित्य के सभी रसों का आस्वादन कराने वाले ये दोनों महाकाव्य काव्य कला की दृष्टि से भी उच्चकोटि के हैं । संस्कृत साहित्य में से यदि 'रामायण' को निकाल दिया जाये तो संस्कृत साहित्य पंगु हो जायेगा । बिल्कुल वैसे ही हिन्दी भाषा साहित्य की निधि भरने वाले 'रामचरित मानस' को हिन्दी साहित्य में से निकाल दिया जायें तो हिन्दी में भी शून्यावकाश हो जाने का डर है । कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों महाकाव्य संस्कृत और हिन्दी साहित्य में मेरुदण्ड की भांति बिराजमान हैं । रामायण के प्रभाव में आकर प्राचीन तथा आधुनिक विभिन्न भाषा के कवियों ने जिसमें कालिदास, क्षेमेन्द्र, वामन भट्ट, मोहन स्वामी, धनंजय, तुलसीदास, मैथिलीशरण गुप्त, केशवदास, नर्मद, मनुभाई पंचोली, नानाभाई भट्ट आदि ने साहित्य रचना की है । वैसे भी 'रामचरित मानस' का प्रभाव भी हिन्दी साहित्य पर कुछ कम नहीं है। चारसौं वर्षों के लम्बे काल से हिन्दी साहित्य 'रामचरित मानस' की छाया में ही विकास करता रहा है । इस प्रकार महाकवि महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने संसार को 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के माध्यम से अमृतबिन्दु चखाने का प्रयत्न किया है, जिससे संसार सदैव इन दोनों महाकवियों का ऋणी रहेगा। ऐसे महामानव, महाकवि के जीवन चरित्र को जानने की जिज्ञासा रोकने पर भी रोक नहीं सकते, परंतु हमारे महाकवियों के जीवन को पूर्णतः जानना कठिन है, क्योंकि भारतीय संस्कृति के प्रणेता कवि कभी भी अपने जीवन को ग्रन्थ में चित्रित करने की ईच्छा नहीं रखते थे । फिर भी

अन्तः साक्ष्य, बहिर्साक्ष्य एवं दन्तकथाओं के आधार पर वाल्मीकि और तुलसीदास के जीवन को देखने का सादर प्रयास करेंगे।

1.2 वाल्मीकि जीवन परिचय :-

समुद्र इव गाम्भीर्य धैर्येण हिमवानिव ।
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः ।
कालाग्नि सदृशः क्रोधे क्षमयों पृथ्वीसमः ।।

अर्थात् महासागर की तरह गंभीर, हिमालय की भांति धैर्यवान, शक्ति में साक्षात् विष्णु, हिमांशु जैसे प्रिय दर्शन, क्रोध में कालाग्नि और पृथ्वीसमान क्षमाशील ऐसे श्रीराम के चरित्र को रामायण में प्रकट करने वाले प्राचीन एवं अर्वाचीन कवियों के सिरमौर कवि वाल्मीकि महामानव के रूप में प्रकट हुए हैं ।

महर्षि वाल्मीकि को कुछ लोग निम्न जाति का बतलाते हैं, पर वाल्मीकि रामायण[1] तथा 'अध्यात्म रामायण'[2] में इन्होंने स्वयं को प्रचेता का पुत्र कहा है । 'मनुस्मृति' में 'प्रचेतस वशिष्टं च भृगु नारदमेव च'[3] प्रचेता को वशिष्ठ, नारद, पुलत्स्य कवि आदि का भाई कहा है । 'स्कन्द पुराण' में जन्मान्तर का व्याध बतलाया है ।[4] इससे सिद्ध होता है कि जन्मान्तर में ये व्याध थे । व्याध जन्म के पहले स्तम्भ नामके श्रीवत्स गोत्रीय ब्राह्मण थे । व्याध जन्म में शंग ऋषि के सत्संग से रामनाम के जप द्वारा दूसरे जन्म में अग्निशर्मा हुए । वहाँ भी व्याधों के संग से कुछ दिन प्राकतन संस्कारवश व्याधि कर्म में रत रहे । फिर सप्तर्षियों के सत्संग से 'मरा-मरा' जपकर बाँबी पड़ने से वाल्मीकि के नाम से ख्यात हुए और रामायण की रचना की ।

तपस्वी बनने से पहले वाल्मीकि दस्यु चोर डाकू थे । 'स्कन्द पुराण'[5] में वाल्मीकि दस्यु थे, ऐसी चार कथाएँ मिलती हैं -

१. वैष्णव खण्ड़ में एक व्याध की कथा है जिसमें रामनाम का जप करने से व्याध दूसरे जन्म में बाल्मीकि बन जाते हैं ।
२. अवंतीखंड में अग्निशर्मा नाम के डाकू की कथा आती है, जो अंत में वाल्मीकि बनता

है।

३. नागरखण्ड़ में लोहजंघ नामका ब्राह्मण अपनी माता के परिपालन के लिए डाकू बनता है और बाद में तपस्वी वाल्मीकि बनते हैं ।

४. प्रभास खण्ड़ में ऐसी ही कथा है, जो शमीमुख नाम के ब्राह्मण के पुत्र वैशाख के नाम पर आयी है ।

इन चारों कथाओं में एक बात समान है कि पूर्वाश्रम के डाकू का हृदय परिवर्तन ऋषियों के उपदेश से होता है और बाद में वह तपस्या का मार्ग लेता है । अति पतित अवस्था से अति उँची अवस्था प्राप्त करने का तपोमय पराक्रम वाल्मीकि की विशेषता है।

'अध्यात्म रामायण'[6] में वाल्मीकि की जीवन कथा मिलती है और यही कथा ख्याति प्राप्त है । राम, लक्ष्मण और सीता वन में चित्रकूट पहुँचे, वहाँ उनकी भेंट महर्षि वाल्मीकि से हुई । अपना पूर्व वृतांत राम के आगे रखते हुए वाल्मीकि ने कहा कि -

अहं पुरा किरातेषु किरातै सह वर्धितः
जन्म मात्र द्विजत्वं में शुद्राचार रतः सदा ।।[7]

अर्थात् वाल्मीकि ने राम को कहा कि पहले मैं किरात (भीलों) लोगों के साथ रहता और घूमता था। किरातों के साथ ही बड़ा हुआ और शुद्र जैसा व्यवहार करता था। जिससे मेरा ब्राह्मणत्व नाम मात्र का रह गया था । स्वयं को अधम प्रकार का ब्राह्मण (द्रिभधम) बताते हुए कहते हैं कि शुद्र जाति की एक स्त्री के सहवास से मेरे घर कई पुत्र जन्में । चोर के संग में मैं भी चोर बना । धनुषबाण धारण करके मैं भटकता रहता था । एक दिन मैंने रास्ते पर सात ऋषियों को जाते हुए देखा । इनको लूटने के इरादे से वन में मैंने उसे रोका । इन ऋषियों ने मुझे कहा कि परिवार के जिन लोगों के लिए तू यह पाप कर्म करता है, उनको जाकर पूछो कि मेरे इस पाप कर्म में आप हिस्सेदार हैं या नहीं ? जब तक तू पुछकर वापिस नहीं आयेगा तबतक हम यहीं बैठेंगे। ऋषियों की बात सुनकर मैं घर गया और परिवार के सभी सदस्यों को यह प्रश्न पूछा, परंतु सब ने एक ही जवाब दिया कि जो पाप कर्म तू करता है, उसे भुगतना भी तुझे ही

है। हम तो केवल उसके फल के ही (घन आदि के) भागीदार हैं । (पापं तवैव तत्सर्ववयं तु फल भागिन) ऐसा उत्तर मिलने से लूटेरे को वैराग उत्पन्न हुआ और उसने ऋषियों की शरण ली । उस समय ऋषियों ने कहा कि तू एकाग्र चित 'मरा' शब्द का जप करना शुरु कर दे । (एकाग्रमन सात्रैव मरेति जप सर्वदा) लुटेरे ने उसी प्रकार जप शुरू कर दिया । वाल्मीकि कहते हैं कि लम्बें समय तक सर्व प्रकार के संग छोड़कर मैं तप करता रहा, जिससे मुझ पर वल्मीक हो गया । (सर्व संग विहीनस्य वल्मीको भून्मोपरि) कई वर्षो के पश्चात् वह सप्तर्षि फिर उसी स्थल पर आये और मुझ पर बना हुआ वल्मीक देखा और अन्दर से निकलती हुई आवाज को सुनकर मुझे पहचान गये और मुझे कहा 'वल्मीक' में से बाहर आईए और मैं बाहर निकला । तब उन ऋषियों ने कहा कि हे मुनिवर ! आप इस समय वल्मीक में से बाहर आये हैं, इसीलिए आज से आप वाल्मीकि के नाम से जाने जाओगे । कथा यह कहती है कि वाल्मीकि मूलतः ब्राह्मण थे, परंतु पतीत थे ।

वाल्मीकि के लिए 'प्राचेतस' संज्ञा का प्रयोग होता है । प्राचेतस याने प्रचेता का वंशज। 'वाल्मीकि रामायण' में वाल्मीकि स्वयं राम को कहते हैं कि हे रघुनंदन ! मैं प्रचेतस का दशवाँ पुत्र हूँ ।[8] (प्रचेत सोऽहं दशमः पुत्रों राघवनन्दनः) इस प्रकार वाल्मीकि स्वयं को प्रचेता के रूप में प्रकट करते हैं । 'प्रचेता' शब्द ऋषि वरूण के लिए भी प्रयुक्त होता है । वरुण के पुत्र भृगु और भृगु के पुत्र च्यवन थे । तैतरीय उपनिषद में ऋषि वरुण का पुत्र भृगु तप के द्वारा ब्रह्म की शोध करता है । क्रमशः अन्नब्रह्म, प्राण-बह्म, मनोब्रह्म, विज्ञान ब्रह्म और आनन्द ब्रह्म जैसे सोपानों के साथ ब्रह्म को समझाने का प्रयास करता है । प्रत्येक सोपान पर वह पिता के पास आकर ब्रह्म की परिभाषा सुनाता है और बार-बार पिता वरुण पुत्र भृगु को एक ही उत्तर देते हैं कि तप के द्वारा ब्रह्म को जानने की जिज्ञासा रखो। एक ही ब्रह्म है । (तपसा ब्रह्म विजिज्ञास्व तपो ब्रह्मेति) भृगु का पुत्र च्यवन और च्यवन के बाद कई पीढ़ी के पश्चात् इसी वंश में वाल्मीकि हुए होंगे, यह सम्भव है । च्यवन ऋषि की तपस्या के दौरान भी शरीर पर वल्मीक बन गया था,

ऐसी कथा है। इसी अर्थ में च्यवन को भी वाल्मीकि कह सकते हैं ।

बौध्ध प्रणित अश्वघोष मूल अयोध्या का था, ई.स. के पहले सैके में हुए अश्वघोष ने लिखा है कि-

वाल्मीकि रादौ च ससर्ज पद्यं ।

ज ग्रन्थ यन्न च्यवनों महर्षि ।।[७]

अर्थात् जिस काव्य की रचना करने में महर्षि च्यवन समर्थ नहीं थे । उसका सर्जन वाल्मीकि ने किया ।

एक ओर दन्त कथा के मुताबिक राम राजसभा भर कर बैठे हुए थे । (उसी सभा में ब्रह्माजी, ऋषिमुनि वाल्मीकि आदि सन्त थे ।) धार्मिक वार्तालाप चल रहा था और उस वार्तालाप से सब खुश थे । उस समय श्री रामने वाल्मीकि को कहा कि हे मुनिवर ! आप महाज्ञानी है, महान तपस्वी है, करुणा के सागर हैं, आपके मुँह से निकलें हुए श्लोकों से आपने महान ग्रन्थ 'रामायण' की रचना की है । आपके शब्द को सत्य करने के लिए स्वयं परमात्मा को पृथ्वी पर अवतरित होना पड़ा । अतः आपके इस महाज्ञान का रहस्य क्या है ? आप अपने पूर्व की कथा कहने का प्रयत्न करें । उस समय अपनी पूर्व कथा कहते हुए वाल्मीकि ने कहा कि पंपा सरोवर के तटपर कोई शंख नामक द्विज रहता था । उनको गुरु सेवा करने से सिध्धि प्राप्त हुई थी। वह एक बार गोदावरी नदी की ओर चला जहाँ केवल जंगल था, जंगल में उसे एक शिकारी मिला। ब्राह्मण के कुण्डलों को देखकर शिकारी का मन बिगड़ा और उसने ब्राह्मण के कुण्डल, वस्त्र आदि लूट लिए । अपना सर्वस्व लूट जाने से ब्राह्मण बहुत दुःखी हुआ । गर्मी के दिन थे और दुःखी ब्राह्मण नंगे पाँव रेत में चलने लगा । असह्य गर्मी और धूप से जलते हुए पैरों को बचाने के लिए पहनी हुई धोती को पैरों से दबाते हुए वह चलने का प्रयास करने लगा, पर जब चला नहीं गया तो वहीं धूप में ही बैठ गया । दूर बैठकर यह सबकुछ देखता हुआ शिकारी उस ब्राह्मण के पास गया और दयाभाव से ब्राह्मण को जूते वापिस कर दिये । उस समय ब्राह्मण ने शिकारी को कहा कि तेरे पूर्वजन्मों के कर्मों से ही तुझे ऐसी

सद्बुद्धि आयी है । ब्राह्मण के वाक्य को सुनकर शिकारी को लगा कि यह कोई सामान्य ब्राह्मण नहीं है। तुरंत उनके पैरों में पड़कर प्रार्थना करने लगा कि आप ही मुझे बताओ कि मेरा पूर्व जन्म क्या था ? मैं कौन हूँ ? ब्राह्मण ने व्याध के भाल की ओर देखा और कहा कि तू पूर्वजन्म में शाकल नगरी में रहता था और वेदांती था । पूर्व में तेरा नाम स्तंभ और गोत्र श्रीवत्स था । तुझे एक गणिका अधिक प्रिय थी, तू पापी था, परंतु तेरी पत्नी पतिव्रता साध्वी थी । तेरी और उस वेश्या की वह सेवा करती थी । आप दोनों को सोने के लिए सेज देती थी और खुद जमीन पर सोती थी । तू अभक्ष खाता था । जिससे तुझे भगंदर का रोग हुआ । परिणामतः धन समाप्त हो गया और वेश्या तुझे छोड़कर चली गई । पश्चाताप की अग्नि में तू जलने लगा । क्षमा हेतु अपनी पत्नी को तू कहने लगा कि हे साध्वी ! मैं मूर्ख, व्यसनी, चांडाल, वेश्यागामी और पापी हूँ । मैं साध्वी स्त्री का अपमान करने वाला नरपशु शठ हूँ । मैं अपनी भूल समझ चूका हूँ । मुझे क्षमा करो। तेरी इस दशा को देखकर तेरी पत्नी ईश्वर को प्रार्थना करने लगी और पति सुख के लिए उसने कई मनौतियाँ रखीं । तेरी पत्नी के पुण्यबल से तेरे घर देवल मुनि आये और तेरी आज्ञा से तेरी पत्नी ने देवल मुनि का आदर सत्कार किया । मुनि के चरणों को धोकर, धोये हुए चरणों का जल तेरे उपर डाला । परिणामतः थोड़े समय में ही तुझे सन्निपात हुआ । तुझे बचाने के लिए तेरे मित्रों ने तेरे मुँह में माँस का टुकड़ा रखा । तूने अपना मुख ऐसा दबाया कि दाताँ से माँस के टुकडे को तोड दिया, परिणामतः मुख ऐसा दब गया कि फिर खुलने की सम्भावना नहीं रही और तेरा अकाल ही निधन हुआ । तेरे मरने के पश्चात् अपने आभूषणों को बेचकर तेरी पत्नी ने सुखड़ की लकडियों से तेरा अंतिम संस्कार किया और स्वयं भी वैकुंठ चली । तेरे कुकर्म से तुझे व्याध की योनि में जन्म लेना पड़ा । मरते वक्त तेरे मुँह में माँस का टुकडा होने से तू माँसाहारी हुआ । व्याध होने पर तेरे पापों का प्रायश्चित् हुआ है और आनेवाले जन्म में तू ब्राह्मण होगा । कुणु नामक तपस्वी तप करते होंगे उस समय उनके नेत्र में से श्रमजन्य विर्यबिन्दु आँसू के रूप में गिरेगा और उनको सर्पिणी भक्षण करेगी जिससे वह

गर्भवती बनेगी और तेरा जन्म होगा । तू अनाथ होने से तेरा छोटी आयु में ही व्याध के यहाँ लालन पालन होगा । समय के साथ तेरे जीवन में एक नया मोड़ आयेगा जिसमें तेरी भेंट सप्तर्षि से होगी और तू उनको भी लूटने का प्रयत्न करेगा । ऋषि की ओर से तुझे ज्ञानोपदेश होगा । तेरे अंदर पड़े हुए मूल संस्कार जाग उठेंगे । 'राम' नाम का मंत्र मिलेगा और उसी मंत्र के सहारे 'रामायण' की रचना करेगा जिससे तेरी कीर्ति बढेगी।[10]

उपर्युक्त दन्तकथाओं की भाँति एक ओर कथा भी महर्षि वाल्मीकि के जीवन से जुड़ी हुई है जिसमें वाल्मीकि कोई 'वाली' या 'वालियों' नामक लूटारा था । 'स्कन्द-पुराण' के मुताबिक वाल्मीकि अग्निशर्मा नामक ब्राह्मण था । एक बार सप्तर्षियों को लूटने के लिए गया तो सप्तर्षि ने उससे पूछा कि हे लूटेरा, तु जो यह पाप करता है इस पाप के और कौन-कौन भागीदार हैं ? क्या तेरा परिवार ईस पाप के परिणाम को भुगतने के लिए तैयार है ? उस समय लूटेरा अपने परिवार से पूछने के लिए घर जाता है। जहाँ पूछने पर जवाब मिला कि अपनी करनी खुद को ही भुगतनी पड़ेगी । उसी समय ऋषियों ने भगवद नाम लेने की शिक्षा दी । ऋषियों को संदेह था कि 'राम' का नाम लेने के लिए कहेंगे तो सम्भवतः लूटेरे को अच्छा नहीं लगेगा । इसीलिए इनको 'मरा-मरा' कहने के लिए कहा गया । ऋषियों को विश्वास था कि 'मरा' में से लूटेरा 'राम' कर देगा। अन्त में 'मरा-मरा' स्मरण करता हुआ वह लूटेरा 'मरा' का उल्टा 'रामराम' कहने लगा । वर्षों तक एक ही आसन पर आरूढ़ होकर 'राम-राम' जपता रहा, जिससे उसका पूरा शरीर धूल से ढँक गया । वर्षो के पश्चात् सप्तर्षि वहाँ से फिर निकले तब वल्मीक में से 'राम' शब्द सुनाई दिया। सप्तर्षि ने आश्चर्य से कहा कि अरे ! यह तो वह लूटेरा है, जो वर्षो पहले हमारे कहने पर तपस्या करने बैठा था । महर्षि ने आवाज दी, हे महर्षि ! अब आप लूटेरे नहीं है, बाहर आईए ! वल्मीक में से जिसने दूसरा जन्म प्राप्त किया है, ऐसे महर्षि वाल्मीकि बाहर आईए । कई स्थलों पर सप्तर्षि के स्थान पर नारदजी ने उपदेश दिया था ऐसी दन्त कथा है ।[11]

'आनन्द रामायण' में वाल्मीकि के तीन जन्मों का उल्लेख है । वे पहले जन्म में

ब्राह्मण, दूसरे जन्म में शिकारी और तीसरे जन्म में महर्षि वाल्मीकि के रूप में ख्यात हुए। तीसरे जन्म में नारदजी जैसे संतो की कृपा से ईश्वर साधना करके वाल्मीकि बने।

'तत्व संग्रह' रामायण में वाल्मीकि को एक शिकारी के रूप में चित्रित किया गया है। एक बार उन्होंने कठोर तपस्या की। तपस्या से दिन-प्रतिदिन उनकी ख्याति बढ़ने लगी। उनकी बढ़ती हुई कीर्ति को देखकर इन्द्रको संदेह हुआ कि सम्भवतः इन्द्रासन के लिए ही इन्होंने तप शरू किया है । जब इन्द्र को पता चला कि इस तपस्या के फलस्वरूप एक महान महाकाव्य की रचना होने वाली है, तब उसे शांति हुई ।

वाल्मीकि के जीवन को चित्रित करनेवाले उपर्युक्त ग्रन्थों, लोककथाओं और दंत कथाओं के आधार पर निम्न बातें फलित होती हैं -

- वाल्मीकि, समय के अनुसार राम के समकालीन थे ।
- प्रारंभ में वाल्मीकि सामान्य मनुष्य, शिकारी या लूटेरे थे, तप से महर्षि पद को प्राप्त हुए।
- तपस्या से वल्मीक हुआ, वाल्मीक में से वाल्मीकि का बाहर आना, उन्हें वाल्मीकि कहलाने के लिए कारणभूत हुआ ।
- वाल्मीकि प्रचेता के दशवें पुत्र थे और उन्होंने लव-कुश को 'रामायण' पढ़ायी।
- त्यक्ता सीता को आश्रम में पुत्री बनाकर रखा, उनका और उनके पुत्रों का परिपालन किया ।
- वाल्मीकि अग्निशर्मा नामक ब्राह्मण थे ।
- 'अध्यात्म रामायण' के मुताबिक वह किरातों के संग रहते थे, उनका विवाह शुद्र कन्या के साथ हुआ था और कई संतानो के पिता हुए थे ।

अतः वाल्मीकि जीवन संदर्भित कई कथाएँ मिलती हैं, परंतु निष्कर्ष में यह कह सकते हैं कि वाल्मीकि का जीवन वृतांत अमावस्या से पूर्णिमा तक की जीवन यात्रा है, जो हमारे जैसे मनुष्यों के लिए विशेष प्रेरणादायी है । अति पतीत अवस्था में से अति ऊँची अवस्था प्राप्त करने का तपोमय पराक्रम वाल्मीकि-जीवन की विशेषता है । इसी विशेषता के फलस्वरूप जगत को महाकवि की प्राप्ति हुई । जीवन केवल शुभ या अशुभ

से बना हुआ नहीं है, यह तो शुभाशुभ का सम्मिश्रण है। महाकवि वह है जो शुभ और अशुभ को साथ में परखते हैं और प्राप्त करते हैं । वाल्मीकि को समझने के लिए इतना ही जान लेना महत्वपूर्ण है कि जीवन को चहूँ ओर देखकर उसमें से निकलकर जीवन का रहस्य प्राप्त कर सके, वही सच्चा महाकवि हो सकता है ।

1.3 तुलसीदास जीवन परिचय :-

1.3.1 प्रस्तावना :-

मिल्टन का कहना है कि, ''यश स्पृहा उदात लोगों की अन्तिम दुर्बलता है।'' इससे स्पष्ट है कि बड़े से बड़ा सांसारिक पुरुष भी अपनी प्रतिष्ठा का भूखा होता है । महत्वाकांक्षा में कीर्ति और सम्मान का विशेष स्थान है । चाहे वह सामान्य व्यक्ति हो या उदात्त चरित्र व्यक्ति । अपने यश की इच्छा को दबा नहीं सकता । जबकि इससे विपरित 'रामायण' के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास ने अपनी कीर्ति पिपासा का शमन करके अपने साहित्य में खुद की प्रसंशा हो जाये ऐसा कोई परिचय नहीं दिया । इनके जीवन से संबंधित बातों को जानने के लिए विविध धारणाओं का आश्रय लेना पड़ता है। परिणामतः सत्य तक पहुँचना अति कठिन हो जाता है । तुलसीदास के जीवन सम्बन्धी घटनाओं को जानने में कुछ ऐसी ही कठिनाइयों को झेलना पड़ता है । तुलसीदास कौन से शुभ मुहूर्त में अवतरित हुए, किस भाग्यशाली जननी की गोद को उज्जवल किया, कौन से भू-भाग को अपनी जन्म-भूमि बनाया, कौन-कौन सी ऐसी घटनाएँ है जो जीवन में घटित होकर कृतार्थ हो गयी आदि कई प्रश्न पूर्णतः उत्तर दिये बिना प्रश्न ही रह जाते हैं । अपने कार्यों द्वारा अधिक से अधिक लोगों का मंगल कैसे हो सकता है ? इस बात की चिंता रखनेवाले लोकनायक तुलसी ने अपना सीधा परिचय न देकर संसार पर छोड़ दिया कि संसार भले ही छानबीन करके ढूँढ ले । तुलसी का सामान्यतः ईशारा इसी ओर रहा है कि अपना सर्वश्रेष्ठ परिचय राम है और राम को पहचानने का प्रयत्न करना चाहिए जिस रामनाम से तुलसी, तुलसीदास हुए ।

तुलसीदास की कृतियों, समकालीन रचनाओं तथा जनश्रुतियों में जीवन सम्बन्धी

जो संकेत मिलता है, उसी के आधार पर उनके जीवन की रूपरेखा निश्चित करनी पड़ती है । कवि की कृतियों में प्राप्त संकेतों को अन्तःसाक्ष्य तथा अन्य साधनों को बहिर्साक्ष्य कहते हैं । तुलसीदास के जीवन को हम दोनों द्रष्टियों से देखने का सादर प्रयास करेंगे ।

1.3.2 अन्तः साक्ष्य :-

'विनय पत्रिका' और 'कवितावली' की उक्तियों से स्पष्ट होता है कि तुलसीदास का जन्म सोरों के निकट रामपुर के ब्राह्मण परिवार में हुआ था । माता का नाम हुलसी और पिता का नाम आत्माराम था रामपुर के प्रमाण के लिए डॉ. रामदत्त भारद्वाज ने 'विनय पत्रिका' की इस पंक्ति को उद्धृत किया है -

यह भरत खण्ड, समीप सुरसरि, थल भलौ, संगति भली ।[12]

रामपुर सुरसरि की समीप है, वहाँ से सुकरखेत (सोरों) भी समीप है । रामनरेश त्रिपाठी ने तुलसी साहित्य में वर्णित अनेक प्रथाओं तथा प्रयुक्त शब्दों के आधार पर उनका जन्म स्थान सोरों के समीप रामपुर ही प्रामाणित किया है ।[13] 'दो सौ बावन वैष्णव की वार्ता' भी इसका समर्थन करती है ।

गोस्वामीजी ने अपनी रचनाओं में जीवन सम्बन्धी घटनाओं का उल्लेख नहीं किया जिससे जन्म का निश्चित समय देना कठिन है । फिर भी रचनाओं के रचनाकाल से तुलसीदास के संभवित जन्म काल को बता सकते हैं । तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' का समय देते हुए लिखा है कि -

संवत सोलह सै इकतीसा, करउ कथा हरि पद धरि सीसा ।
नौमी भौगवार मधुमासा, अवधपुरी यह चरित प्रकासा ।।[14]

इससे स्पष्ट है कि 'रामचरित मानस' की रचना संवत् 1631 में हुई होगी । 'मानस' में तुलसीदास का चिन्तन काव्यशास्त्र, व्यावहारिकता आदि की गंभीरता दिखाई देती है जिससे यह फलित होता है कि यह इनकी प्रौढ़ावस्था की रचना होनी चाहिए। इससे पहले की रचना 'रामाज्ञाप्रश्न' (रचनाकाल संवत् 1621) में ऐसी गंभीरता नहीं है।

'कवितावली' में तुलसीदास ने मीन की शनीचरी और रुद्रबीसी का वर्णन किया है। रुद्रबीसी का समय मिश्रबन्धुओं ने 1665 से 1685 तक को माना है । इसी प्रकार मीन की शनीचरी सुधाकर द्विवेदी के अनुसार चैत्र शुक्ला द्वितीया संवत 1669 से जयेष्ठ 1671 तक रही, किन्तु गोस्वामीजी के अनुसार मीन की शनीचरी रुद्रबीसी में आयी थी। अतः डॉ. रामदत्त भारद्वाज दोनों की समाप्ति सं. 1642 में मानते हैं । इन तिथियों से तुलसी का संवत 1600 से पूर्व तथा संवत 1675 के बाद तक विद्यमान होना प्रामाणित होता है ।

तुलसीदास का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था –

दियौ सुकुल जनम सरीर सुन्दर हेतु मो फल चारि कौ ।[15]

जिससे स्पष्ट हैं कि तुलसीदास उत्तम कुल में उत्पन्न हुए थे । डॉ. रामदत्त भारद्वाज 'सुकुल' शब्द के आधार पर उन्हें शुक्ल गोत्रीय सनाढ़य ब्राह्मण मानते हैं।[16] तुलसी के जन्म पर अपनी निर्धनता के कारण परिवार भी आनंद मनाने के बदले दुःखी हुआ था। संभवतः यही सोचकर कि अब तक भूखे रहकर भी दिनों को काट देते थे । पर इनको क्या खिलायेंगे । पुत्रोत्पति के बाद आनंद, बधाई के लिए उनके पास धन नहीं है । परिवार की दरिद्रता और बाल्यवस्था में ही माता-पिता का स्नेह खो बैठना तुलसी के लिए असह्य था । गोस्वामीजी यह बात 'विनयपत्रिका' और कवितावली में लिखते हुए कहते हैं कि -

मातु पिता जग जाई तज्यौ विधि हू न लिखी कछु भाल भलाई ।
नीच निरादर भाजन, कादेर कूकर-टुकन लागि ललाई ।[17]

x x x

जननि जनक तज्यो जनम करम बिनु विधि हू सृज्यो अवडेरे ।
फिरेउ ललात बिनु नाम उदर लगि, दुखहु दुखित मोहे हेरे ।।[18]

इन पक्तियों से एक बात स्पष्ट होती है कि तुलसीदास का उनके माँ-बाप ने त्याग किया होगा । जनश्रुति भी इस बात की पुष्टि करती है कि तुलसीदास का जन्म

अभुक्तमूल नक्षत्र में हुआ था, जो कुलघातक होता है । परिणामतः उन्होंने तुलसी का त्याग किया होगा । किन्तु यहाँ यह प्रश्न उठता है कि क्या कोई माँ-बाप अपने पुत्र की ग्रहदशा को ध्यान में रखकर स्वीकार या छोड़ सकता है ? कोई माँ-बाप पथ्थर दिल नहीं होते । अतः यहाँ यही बात स्वीकार्य है कि तुलसी के जन्म के साथ माता का और थोड़े समय के पश्चात् पिता का देहांत हुआ होगा । बात जो भी हो माँ-बाप के बिछुडने से घर-घर भटक कर भीक्षा माँगने के सिवा तुलसी के पास और कोई चारा नहीं था । अपनी भूख मिटाने के लिए जिसके भी घर से रोटी का टूकड़ा मिलता था, तुलसी को खाना पड़ता था ।

खाए टुक सब के विदित बात दुनी सो ।
तनु जन्यौ कुटिल कीट ज्यो, तज्यौ मात पिताहू ।।[19]

बचपन की निःसहाय अवस्था देखकर गुरुश्री बाबा नरहरिदास ने तुलसी को अपनी शरण में रखा और रामभक्ति का उपदेश दिया । तुलसीदास कहते हैं कि -

बंदौ गुरुपद कंज, कृपा सिन्धु नररुप हरि ।[20]

गुरु के भक्तिपरक उपदेश से तुलसी का मन रामभक्ति की ओर अग्रसर हुआ। निष्कपट भाव से रामभक्ति और बाल्यकाल से हनुमानजी की भक्ति प्रिय होने से शांतिमय जीवन की अनुभूति होने लगी । अपना बाल्यकाल गुरु के समीप रामकथा सुनने में व्यतीत होने लगा और हृदय में रामभक्ति का बीज अंकुरित होकर बढने लगा । अपनी बाल्यवस्था गुरु के साथ सुकरखेत में व्यतीत होने लगी ।

मैं पुनि निज गुर सन सनी कथा सो सुकरखेत ।[21]

तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' के 'बालकाण्ड' में लिखा है कि गुरु बार-बार राम कथा सुनाते थे और मैं अपनी बुध्धि के अनुसार उसे समझने का प्रयास करता था -

तदपि कहि गुरु बारहि बारा ।
समुझि परी कछु मति अनुसारा ।[22]

इससे स्पष्ट है कि बाल्यकाल में ही तुलसी ने रामभक्ति और रामकथा का ज्ञान गुरु से प्राप्त कर लिया था । गुरु के यहाँ शिक्षा-दीक्षा समाप्त करके तुलसीदास कहाँ

गये उसका कोई ठोस प्रमाण नहीं मिलता । फकीर बाबा की भांति घूमते रहे या तीर्थ स्थलों पर चले गये आदि प्रश्नों के समाधान के लिए कोई अन्तः साक्ष्य नहीं है ।

तुलसीदासने गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया था। विनय पत्रिका की निम्न पंक्तियों को पढ़ने से ऐसा लगता है कि तुलसीदास यौवनावस्थामें विषय वासना में लीन रहे होंगे-

लरिकाई बीती अचेत चित, चंचलता चोंगुने चाय ।

जोबन जुर-जुवती कुपथ्य करि, भयौ त्रिदोष भरिमदन बाया ।[23]

तुलसीदास ने अपने यौवन काल में हीं ज्ञान का चरमोत्कर्ष प्राप्त कर लिया था और वे सदैव प्रायः सभी तीर्थ स्थानों चित्रकूट, वृन्दावन, मथुरा जगन्नाथपुरी, द्वारिका, रामेश्वर, बदरिकाश्रम आदि में घूमते रहे, परंतु स्थायी रूप से काशी, प्रयाग और अयोध्या में ही रहे । इस भ्रमण का व्यापक प्रभाव गोसाई की विचार परंपरा और भाषा पर व्यक्त रूप से दिखाई पड़ता है । भ्रमण में व्यावहारिक ज्ञान का सुन्दर संचय होता है। इन्होंने अपनी रचनाओं में इसका अच्छा स्वरूप उपस्थित किया है । तीर्थाटन से उन्हें मुख्यतः तीन लाभ मिलें, एक तो तरह तरह के लोगों के सम्पर्क से तथा प्रदेशों के दर्शन से उनका व्यवहारिक ज्ञान अधिक बढ़ गया । दूसरा उनका अनेक भाषाओं का ज्ञान बढ़ा । तीसरा सन्तों, महात्मा तथा विद्वानों की संगति का लाभ हुआ । अतएव उनका काव्य भी बड़ा समृध्ध हो सका है । तुलसीदास के जीवन चरित्र में जिन स्थानों को महत्वपूर्ण स्थान मिला है और जिनकी पुष्टि अंतः साक्ष्यों से की जा सकती है, उनका उल्लेख करें तो संवत 1631 में तुलसीदास अपने उपास्य राम की जन्मभूमि अयोध्या में बिराजमान थे । वहीं रामनवमी के अवसर पर राम के चरणों में सिर झुकाकर ‘रामचरित मानस’ की रचना का प्रारंभ किया । इससे यह स्पष्ट होता है कि तुलसीदास अयोध्या में भी रहते थे । काशी से तुलसीदास का सम्बन्ध अधिक रहा है । काशी में वे गंगाजी के किनारे बाबा विश्वनाथ की शरण में रहते थे -

देवसरि सेवौं बामदेव गाउँ रावरे ही ।[24]

तुलसीदास ने पावन नगरी काशी में ही ‘विनयपत्रिका’ और कवितावली की रचना की । तुलसीदास काशी में कब आये ? इस प्रश्न की ओर न जाते हुए केवल इतना ही

कह दे कि संवत् 1631 में अयोध्या जाकर इन्होंने 'रामचरित मानस' का आरंभ किया और उसे 2 वर्ष 7 महीने में समाप्त किया ।[25] उसके अंतिम चार काण्डों की समाप्ति काशी में हुई । इतना अनुमान तो अवश्य ही किया जा सकता है कि वे काशी में संवत 1631 और 1643 के बीच किसी समय आये और तत्पश्चात् स्थायी रूप से रहे । काशी आने पर तुलसीदास को लोगों ने अलग-अलग नज़र से देखा । कोई उसे धोखे-बाज, तो कोई उसे सच्चा रामभक्त कहने लगें । विविध प्रकार से काशी के लोगों ने प्रवाद फैलाये, परंतु तुलसीदास विचलित नहीं हुए । लोग इस महात्मा को परेशान करने हेतु विविध प्रकार के संघर्ष उत्पन्न करने लगे । शैवों और वैष्णवों के बीच चलते संघर्ष के बीच तुलसीदास रामभक्ति लेकर आये । शैवों ने वैष्णव समझकर इनका तिरस्कार किया और रामभक्ति का उदार रूप देखकर तुलसीदास को ढोंगी कहा । इनकी भक्ति से काशी के पाखण्डी पड़ित ईर्ष्या करने लगे । फलतः इन्हें कभी-कभी मस्जिद में भी आश्रय ग्रहण करना पड़ा -

माँगी के खइबौ, मसीत कौ सोइबो ।
लेबे को एक न दैबे को दोऊ ।।[26]

कहने का तात्पर्य यह है कि तुलसीदास जैसे महात्मा को भी संसार ने इतना कष्ट दिया । पंडितों के द्वारा अधिक पीड़ित होने पर तुलसीदास ने कवितावली में शिवजी से भी कष्ट से बचाने के लिए प्रार्थना की है । इतना कुछ होने पर भी तुलसीदास ने काशी नहीं छोड़ा। वे निर्भिकता से शैवपंथियों का सामना करते हुए रामभक्ति के आश्रय पर काशी में ही रहे । राम पर अपना विश्वास प्रकट करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि -

कौन की त्रास करै तुलसी भो पै राखि है रामु,
तो मारिहै कौरे।

कालान्तर में काशी के भ्रान्त लोगों ने अपनी भूल समझ ली। अपनी करनी पर पश्चाताप कर लोग तुलसीदास के चरणों में झुके। जिन काशीवालों ने पहले अपमान किया था वे ही सम्मान की द्रष्टि से देखने लगे, अतः तुलसीदास का सम्मान दिन

प्रतिदिन बढ़ने लगा। [27] अन्त में बढ़ता सम्मान तुलसीदास को खलने लगा और समझने लगे कि सम्मान में पड़ने से मेरी भक्ति में कमी हुई है। परिणामतः विविध दुःखों से घिर गया हूँ। सच तो यह है कि वे सच्चे सन्त थे, न चाहने पर भी उनका सम्मान बढ़ता रहा।

तुलसीदास को अपने जीवन के अन्तिम दिनों में पर्याप्त प्रतिष्ठा प्राप्त हो गई थी। विरोधों का शमन हो गया था । वृध्धावस्था में तुलसीदास के शरीर में प्रबल पीड़ा उठी थी। पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए उन्होंने शीव से भी प्रार्थना की थी । तुलसीदास को बाहु की पीड़ा भी हुई थी और इसी पीड़ा से मुक्ति पाने के लिए गोसाईजीने 'हनुमान बाहुक' की रचना की थी । यह पीड़ा उनके समस्त शरीर में फैल गई थी -

पाँव पीर, पेट पीर, बाहु पीर, मुँह पीर,
जरजर सफल सरीर पीर भई है । [28]

साथ ही समस्त शरीर में बालतोड़ हो गये जिनसे रक्त और पीब बहता था, परन्तु इन दोनों पीड़ाओं से तुलसीदास को मुक्ति मिल गई, उन्होंने लिखा है कि -

करुणानिधान हनुमान महाबलवान,
हेरि हँसि हाँकि फूँकि फौजे ते उडाई है ।
खायों हुतो तुलसी कुरोग राढ़ राकसिन,
केसरी किसोर रखे वीर बरिआई है ।[29]

वृध्धावस्था के कारण तुलसीदास का शरीर जर्जरित हो गया था । अतएव अधिक जीवित रहना उचित न समझ, राम का ध्यान और जप करते हुए पूरे सन्तोष के साथ अपना शरीर त्याग दिया-

रामनाम जस बरनि कै, भयउ चहत अब मौन ।
तुलसी के मुख दीजिए, अबरी तुलसी सौन ।।[30]

1.3.3. बहिर्साक्ष्य :-

गोस्वामी तुलसीदास के काव्य पर से उनके जीवन सम्बन्धी कई बातें स्पष्ट हो

जाती हैं । इसके सिवा कई ग्रन्थों तथा स्थलों से भी ऐसी सामग्री मिलती है, जो तुलसीदास के जीवन पर प्रकाश डालती हो । कठिनाई यह है कि इस सामग्री का तथ्य तुलसीदास की स्वकथित उक्तियों से बिल्कुल भिन्न है जिससे सत्य तक पहुँचना कठिन हो जाता है, फिर भी इसे देखने का प्रयास करेंगे ।

1.3.3.1 भक्तमाल की टीका :-

'भक्तमाल की टीका' प्रियादास ने सं 1669 में लिखी है । तुलसीदास के जीवन से सम्बन्धीत अलौकिक बातों के साथ यह कहा गया है कि तुलसी विवाहित थे, वे सुखपूर्वक अपनी नवविवाहिता वधू के साथ रहते थे । एक बार उनकी स्त्री अपने भाई के साथ मायके चली गयी, पीछे-पीछे तुलसीदास भी वहाँ जा पहुँचे । उनकी पत्नी ने उन्हें बहुत धिक्कारा और कवि शिरोमणि को यह बात लग गई । एक क्षण भी वे वहाँ न रुके और विरक्त होकर तुरंत काशी चले गये । इस घटना का तुलसीदासने अपनी रचनाओं में संकेत मात्र भी नहीं दिया है, परन्तु लोकप्रसिद्ध ऐसी इस कथा का सभी ने स्वीकार किया है । 'प्रियदास की टीका' के चमत्कारों को आधार मानकर कई विद्वानों ने तुलसी जीवन चरित लिखा है ।[31]

1.3.3.2. दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता :-

'दो सौ बावन वैष्णवों की वार्ता' में तुलसीदास को नन्ददास का भाई बताया है। विद्वानों ने इसकी भाषाको देखते हुए इसे गोकुलनाथ की कृति होने में संदेह प्रकट किया है।[32]

1.3.3.3. मूल गोसाई चरित :-

'मूल गोसाई चरित' में तुलसीदास की जन्मतिथि सं 1554 श्रावण शुक्ल पक्ष की सप्तमी बताई गयी है -

पंद्रह सो चौवन विषै कालिंदी के तीर,
सावन सुक्ला सप्तमी तुलसी धरेउ सरीर ।[33]

यह तिथि गणना से ठीक नहीं उतरती । इस प्रकार से मूल गोसाई चरित्र में

निधन तिथि इस प्रकार दी गई है -

संवत सौरह सौ असी, असी गंग के तीर,

सावन स्यामा तीज सनि, तुलसी तजेउ सरीर ।[34]

उपर्युक्त तिथि गणना से ठीक उतरती है और इसी तिथि को टोडर के वंशज अबतक गोस्वामीजी के नाम पर सीधा देते है।[35] अतः यह मत सर्व स्वीकृत है। बाल्यवस्था में तुलसी का नाम रामबोला था और माता का नाम हुलसी था । यमुना के तट पर स्थित राजापुर ग्राम में उनका जन्म हुआ था । इन बातों का अन्तः साक्ष्य से भी समर्थन होता हैं । 'मूल गोसाई चरित' का जो रूप हमारे सामने उपस्थित है, उसमें से कुछ बातें तो संदिग्ध और प्रमाण युक्त नहीं है और कुछ बातें अन्तः साक्ष्य के समीप है।

1.3.3.4. तुलसी चरित :-

संवत् 1969 में 'मर्यादा' पत्रिका में बाबू इन्द्रदेव नारायण ने विशाल ग्रन्थ की सूचना देते हुए प्रारंभिक अंश का प्रकाशन किया था, परन्तु मर्यादा में छपे उसके अंश का सभीने एक साथ विरोध कर दिया । इसमें दिया गया विवरण अन्तःसाक्ष्य और जनश्रुति के अनुकूल नहीं हैं । अतः इसकी चर्चा करना व्यर्थ है ।

1.3.3.5. घट रामायण :-

हाथरसवाले तुलसी साहिब के 'घट रामायण' की कुछ सामग्री महत्वपूर्ण है । 'घटरामायण' में उन्होंने कहा कि पूर्व जन्म में मैं तुलसीदास था । उस जन्मान्तर की एक अपूर्व जीवनी भी दी है ।[36] उस जन्म में राजापुर में भाद्र शुक्ला 11 संवत 1589 मंगलवार को एक ब्राह्मण के घर जन्मा था । काशी में ही 'रामचरित मानस' की रचना की । काशी में ही श्रावण शुवला सप्तमी को इनका देहावसान हो गया । इनमें दी गई तिथियों में जन्म तिथि को छोड़कर सभी अशुध्ध है । तुलसीदास के जीवन की दृष्टि से यह ग्रन्थ खरा नहीं उतरता ।

1.3.3.6 तुलसीदास स्तव :-

महाराष्ट्र के कवि मोरो पंत रचित 'तुलसीदास स्तव' में तुलसीदास को वाल्मीकि

का अवतार माना है । उनके विषय में विविध चमत्कारों का भी उल्लेख किया गया है ।

1.3.3.7 पंचायत नामा :-

तुलसी लिखित सामग्री से तुलसी के जीवनवृत में विशेषतः योगदान देनेवाला संवत् 1669 में लिखा हुआ 'पंचायत नामा' है । 'पंचायत नामा' की प्रथम छह पंक्तियाँ तुलसी पर लिखी हुई है । पहले यह 'पंचायत नामा' टोडर के उत्तराधिकारी के पास था। टोडर की मृत्यु के उपलक्ष्य में तुलसीदास के चार दोहे प्रचलित है । जिसमें एक प्रकार की प्रामाणिकता मिल जाती है ।

निष्कर्ष के रूप में अन्तः और बाह्य साक्ष्य के आधार पर तुलसीदास का जन्म स्थान राजापुर, रामपुर (सोरों) अयोध्या एवं काशी लिये जाते हैं । इसके अतिरिक्त कोई चित्रकूट के निकट, हाजीपुर को इनका जन्म स्थान बताते हैं । श्री विल्सन और गार्सा द तासी के अनुसार रामचरित मानस 31 वर्ष की अवस्था में लिखा गया । अतः इनका जन्म 1600 में हुआ । सोरों की सामग्री के अनुसार तुलसी ने 36 वर्ष की अवस्था में संवत् 1604 में गृहत्याग किया । अतः उनका जन्म 1568 वि.सं. होना चाहिए । इन तिथियों में से 1589 को ही उनकी जन्म तिथि मानने वाले अधिक हैं । तुलसीदास का जन्म, वंश, काल, गुरु, गार्हस्थ्य आदि को लेकर विद्वानों में विचार भेद रहा है । फिर भी तुलसीदास की भक्ति एवं विद्वता पर किसी को संदेह नहीं है । वे भारत के लोकनायक के रूप में अवतरित हुए और अपने गौरवान्वित कार्यों से भारतीय भक्त कवियों के इतिहास में अपने लोकनायकत्व को सुवर्णाक्षरों से लिख गये ।

1.4 वाल्मीकि रचित साहित्य :-

आदि कवि वाल्मीकि रचित साहित्य में हम जिसका गौरवपूर्वक नाम ले सकें, ऐसा महाकाव्य 'रामायण' है। वेद जिस परम तत्व का वर्णन करते हैं; वहीं श्रीमन्ननारायण तत्व 'रामायण' में श्री राम के रूप में निरूपित है । आदि कवि वाल्मीकि का महाकाव्य 'रामायण' पृथ्वी का प्रथम महाकाव्य है । वह देश के लिए गौरव की बात तो है ही, परंतु देश की अमूल्य निधि भी है । इसलिए महाकवि भास, आचार्य शंकर,

रामानुज, राजाभोज आदि परवर्ती विद्वानों से लेकर हिन्दी साहित्य के प्राण समान गोस्वामी तुलसीदास तक सभी ने वाल्मीकि की वंदना की है। वाल्मीकि रचित 'रामायण' के आधार पर दण्ड़ी आदि ने काव्य की परिभाषा दी है । अतः रामायण महाकाव्य सर्वाधिक लोकप्रिय, अजर अमर, दिव्य तथा कल्याणकारी है ।

'रामायण' के अनुसार वाल्मीकि तमसा के तट पर सूर्य को अर्ध्य चढ़ा रहे थे, उस समय आकाश में से वीणावादन करते हुए नारद प्रकट होते हैं। वाल्मीकि ने चरण स्पर्श करके उनका अभिवादन किया और कहा कि हे महर्षि ! मैं जगत के राक्षसी दुःखों को देखकर व्याकुल हो गया हूँ । मेरा चित्त अस्थिर है । मन में नवसर्जन की अभिलाषा हो रही है । मैं आपके मुँह से दीन, वत्सल, सौम्यशील, पुरुषोत्तम पुरुष की गाथा सुनना चाहता हूँ, जिससे इस दुःखी संसार को ज्ञान दे सकूँ।[36] इस समय नारद ने संगीतमय सुरों द्वारा महामानव, महाराजा राम की कथा सुनाई । सुनकर वाल्मीकि मंत्रमुग्ध हुए और इस आदर्श कथा को एक ग्रन्थ के रूप में प्रकट करने की प्रेरणा प्राप्त की। तदन्तर उदार द्रष्टि वाले उन यशस्वी महर्षि ने भगवान श्रीरामचन्द्रजी के चरित्र को लेकर चौबीस हजार श्लोकों से युक्त 'रामायण' महाकाव्य की रचना की। इसमें श्री राम के उदार चरित्रों का प्रतिपादन करनेवाले मनोहर पदों का प्रयोग किया गया है । इस काव्य में तत्पुरुष आदि समासों, दीर्ध-गुण आदि संधियों और प्रकृति प्रत्यय के सम्बन्ध का यथायोग्य निर्वाह हुआ है । इसी रचना में समता (पतत्-प्रकर्ष आदि दोषों का अभाव) है, पदों में माधुर्य है और अर्थ में प्रसाद गुण की अधिकता है ।[38] रधुवंश कुल शिरोमणी अयोध्या नरेश दशरथ के पुत्र मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के जीवन पर लिखा हुआ 'रामायण' महाकाव्य सात काण्डों में विभक्त है । प्रत्येक काण्ड में शीर्षकोचित्त कथा का निर्वाह किया गया है । 'रामायण' में श्री राम के जन्म से लेकर ब्रह्मधाम जाने तक की कथा को लिया गया है । महर्षि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य 'रामायण' में काण्डों के जो शीर्षक दिये हैं, वो इस प्रकार है 1. बालकाण्ड, 2. अयोध्याकाण्ड़, 3. अरण्यकाण्ड, 4. किष्किन्धा काण्ड 5. सुन्दरकाण्ड 6. युध्धकाण्ड 7. उत्तरकाण्ड । इन सातों काण्डों के

कथानक को आगे के अध्याय में विस्तार से देखने का प्रयत्न करेंगे ।

1.5 तुलसी द्वारा रचित साहित्य :-

सन्त काव्य परम्परा के सर्व प्रमुख अमर गायक कवि गोस्वामी तुलसीदास की जन्मतिथि, जन्म स्थान आदि के बारे में तो विद्वानों में मत भेद रहा है । साथ ही उनके द्वारा रचित रचनाओं पर भी विवाद होते रहे हैं । तुलसीदास विरचित समस्त रचनाओं की कुल संख्या 40 बताई गई । माताप्रसाद गुप्त ने उसकी सूची भी दी है ।[39] इसी प्रकार शिवसिंह सेंगर, शिवनन्दन सहाय, ग्रियर्सन, मिश्रबन्धु, डॉ. रामकुमार वर्मा आदि विद्वानों ने विभिन्न स्त्रोतों के आधार पर तुलसी साहित्य की जो सूची दी है, वह इस प्रकार है 1. अंकावली 2. आरती 3. उपदेश दोहा 4. कवि धर्मा धर्म निरुपण 5. कवित्त रामायण 6. कडखा रामायण 7. कवितावली 8. गीता भाष्य 9. गीतावली 10. कृष्ण चरित्र 11. कुण्डलिया रामायण 12. कृष्ण गीतावली 13. छप्पय रामायण 14. छन्दावली रामायण 15. जानकी मंगल 16. तुलसी सतसई 17. झुलना रामायण 18. तुलसीदास की बानी 19. दोहावली 20.ध्रुव प्रश्नावली 21. धर्मराय की गीता 22. पार्वतीमंगल 23. पदावली रामायण 24. बाहु सवाँग 25. बरवै रामायण 26. बृहस्पति काण्ड 27.बजरंग बाण 28. बजरंग साठीका 29. बारहमासी 30. भगवद्गीता भाष्य 31. भरत मिलाप 32. मंगल रामायण 33. इस कल्लोल 34. रसभूषण 35. रामलला नहछू 36. रामचरित मानस 37. रामाज्ञा प्रश्न 38. रामशलाका 39. रामसतसई 40. राम मुक्तावली 41. राम कलामणि कोष मंजूषा 42. रामकला 43. रोला रामायण 44. विजय दोहावली 45. विनय पत्रिका 46. वैराग्य सन्दीपनी 47. संकट मोचन 48. सन्त भक्त उपदेश 49. साखी तुलसीदासजी की 50. हनुमान बाहुक 51. सूरज पुराण 52. हनुमान चालीसा 53. हनुमान पंचक 54. हनुमान स्त्रोत 55. ज्ञान का प्रकरण 56. ज्ञान दीपिका।

उपर्युक्त ग्रन्थों पर विद्वानों ने विचार किया । इनमें से कई कृतियों की प्रामाणिक प्रतियाँ प्राप्त नहीं है । कई कृतियाँ तुलसीदास की विचारधारा और उनकी शैली से

विपरित होने से भी तुलसीदास की रचना के रूप में खरी नहीं उतरती । अतः विद्वानों की दृष्टि में प्रामाणिक कृति के रूप में इन्हीं कृतियों को लिया जा सकता है - 1. रामचरित मानस 2. कवितावली 3. विनय पत्रिका 4. गीतावली 5. दोहावली 6. रामाज्ञा प्रश्न 7. वैराग्य संदीपनी 8. पार्वती मंगल 9. रामलला नहछू 10. जानकी मंगल 11 कृष्ण गीतावली तथा 12. बरवै रामायण। इन बारह रचनाओं को तुलसी की प्रामाणिक रचनाएँ कहा जा सकता है । अब हम इन बारह कृतियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करने का प्रयास करेंगे ।

1.5.1. रामचरित मानस :-

'रामचरित मानस' को तुलसीदास की काव्य रचनाओं में सुमेरु का स्थान प्राप्त है। 'मानस' का रचनाकाल देते हुए स्वयं तुलसीदास ने लिखा है कि -

संवत सोरह सौ इकतीसा । करउँ कथा हरि पद धरि सीसा ।

नौमि भौमवार मधुमासा । अवधपुरी यह चरित प्रकासा ।।[40]

इसके अनुसार 'रामचरित मानस' की रचना का आरम्भ चैत्र शुक्ला नवमी मंगलवार संवत् 1631 में हुआ । डॉ. माताप्रसाद गुप्तने आपत्ति उठाते हुए अपने मंतव्य में कहा है कि सूर्योदय के समय जो तिथि होती है वहीं मान्य होनी चाहिए। गणना से ज्ञात होता है कि संवत् 1631 चैत्र शुक्ला नवमी सूर्योदय के समय बुधवार था ।[41] परंतु महात्मा अंजनीनन्दशरण ने इस बात का खण्ड़न करते हुए कहा कि नवमी उस दिन भी थी और दूसरे दिन भी, पर दूसरे दिन हनुमानजी का दिन नहीं मिलता था, नवमी तो जरुर मिलती और अपने इष्टों का जन्मदिन मंगलवार होने से वह दिन उन्हें अतिप्रिय होना चाहिए अतएव ग्रन्थ रचना के लिए मंगलवार के मध्याहन काल में नवमी पाकर ग्रन्थ रचा ।[42] 'रामचरित मानस' में अयोध्या नरेश दशरथ पुत्र श्रीराम की कथा को सात काण्डों में विभक्त कर प्रस्तुत किया गया है । राम इस काव्य के नायक है । उनके दो व्यक्तित्व है उनका प्रथम व्यक्तित्व ब्रह्म का है और दूसरा ब्रह्म के अवतार सूर्यवंशोद्भव पुरुषोत्तम दशरथ पुत्र का। 'मानस' में मानव, पशु-पक्षी, देवता, राक्षस और नाग इत्यादि

सभी प्रकार के पात्र है, जो किसी न किसी रूप में नायक राम में केन्द्रित है । 'मानस' की भाषा शुध्ध, परिष्कृत, परिमार्जित साहित्यिक अवधी है । 'मानस' में कविने भावों की सफल अभिव्यक्ति एवं प्रभाव को गहरा करने के लिए अनेक मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग भी किया है । कविने अर्थ की अभिव्यक्ति के लिए, भावों के सौन्दर्य की अभिवृध्धि के लिए एवं सूक्ष्मानुभूतियों को मूर्त्त रूप प्रदान कर बोध गम्य बनाने के लिए सहज और स्वाभाविक रूप से अलंकारों का प्रयोग किया है । भाषा पर असाधारण अधिकार होने से अनुप्रास का पर्याप्त प्रयोग हुआ है । 'रामचरित मानस' में अधिकतः मात्रिक छन्द जिसमें चौपाई, दोहा, सोरठा, हरिगीतिका आदि तथा वर्णवृत में अनुष्टुप, इन्द्रवज्जा, तोटक, वसन्ततिलका आदि छंदों का प्रयोग हुआ है । 'मानस' के कथानक का विस्तार से परिचय आगे के अध्याय में दिया जायेगा ।

1.5.2. कवितावली :-

'कवितावली' की रचना के संदर्भ में भी कवियों में मतभेद है। डॉ. माताप्रसाद गुप्त इसका रचना काल संवत् 1661-80 मानते हैं।[43] डॉ. उदयभानुसिंह ने इसका रचना काल संवत 1631 से 1680 के मध्य निर्धारित किया है।[44] अतः कवितावली का रचना काल कौन सा है यह स्पष्ट नहीं है । 'कवितावली ' फूटकर रचनाओं का संग्रह ग्रन्थ है। इसमें कवि के प्रारंभिक जीवन से लेकर मृत्युपर्यन्त तक रचित छन्दों को संग्रहीत किया गया हैं । 'कवितावली' व्रजभाषा में लिखी तुलसीदास की श्रेष्ठ कृतियों में से हैं । 'कवितावली' के काव्यरूप की ओर दृष्टि करें तो क्रमबध्धता और काण्ड़ों की योजना को देखते हुए इसे कोई प्रबन्ध काव्य कहने की भूल कर सकता है, परंतु यह प्रबन्ध काव्य न होकर एक मुक्तक काव्य है । 'कवितावली' के अरण्यकाण्ड़ और किष्किन्धा काण्ड़ में केवल एक-एक छन्द है । उत्तरकाण्ड़ का सम्बन्ध राम कथा से थोड़ा सा भी नहीं है, जो दौ सो सताईस छन्दों का है । प्रत्येक छन्द अपनी अलग-अलग स्वतंत्रता रखता है । 'कवितावली' में किसी एक विशेष व्यक्ति के चरित्र को उभारा नहीं गया । वैसे ही, एक रस को मुख्य न मानते हुए सभी रसों के साथ काव्य

रचा गया । अतः काव्य रूप की द्रष्टि से इसे मुक्तकाव्य में ही गिना जायेगा । कथा भाग में 'रामचरित मानस' की कथा थोड़े बहुत रूप में वर्णित की गई है । बाल काण्ड़ में राम के बाल रूप और उनकी सहज बाल लीला की झांकी प्रस्तुत की गई है -

कबहूँ ससि माँगत आरि करै, कबहूँ प्रतिबिंब निहारी डरै ।
कबहूँ करताल बजाइकै नाचत, मातु सबै मन मोद भरै ।
कबहूँ रिसिआई कहै हठि कै युनि लेते सोई जेहि लागि अरै ।
अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मान मन्दिर में बिहरैं ।।[45]

राम आदि चारों बालक चन्द्रमा के लिए हठ करते हैं । करताल को बजाते हुए नाचते हैं आदि बाल सहज क्रियाओं को चित्रित किया गया है । सात सवैयों में बाल क्रीड़ाओं का वर्णन समाप्त करके कविने धनुषयज्ञ, लक्ष्मण-परशुराम संवाद और वर-वधू राम सीता की सुंदर झाँकी प्रस्तुत करते हुए बालकाण्ड़ को समाप्त किया है ।

राम वनगमन से अयोध्या काण्ड का प्रारंभ होता है । बीच में केवट प्रसंग, सीता के प्रेम को देख वन पथ के गाँवों के व्यक्तियों की भावनाओं को उभारा गया है।

अरण्य और किष्किन्धा काण्ड़ में एक छन्द है । अरण्य काण्ड़ में मारीच का वध और किष्किन्धा काण्ड़ मेंं हनुमानजी का लंका गमन का वर्णन है । सुन्दर काण्ड के भीतर लंका दहन की कथा है ।

त्रिजटा-सीता संवाद से लंकाकाण्ड़ का प्रारंभ होता है । उसके पश्चात् सेतुबंध तथा युध्ध का वर्णन है । हनुमानजी ने लंका में दिखाये शौर्य पर कविने विशेषतः कलम चलाई है । अंत में राम का सिंहासन पर आरूढ़ होने का वर्णन करके तुलसीदास ने लंकाकाण्ड़ को पूरा किया है ।

'कवितावली' का उत्तरकाण्ड रामकथा से बिल्कूल भिन्न है । इसमें राम की भक्तिवत्सलता, शरणागत-वत्सलता, दयालुता आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है । अंत में राम के जीवन से सबंधित कई घटनाओं को तुलसीदास ने छोड़ दिया है।

भाव-व्यंजना एवं रस की द्रष्टि से 'कवितावली उत्कृष्ट कोटि की रचना है । व्रजभाषा में लिखी गई 'कवितावली' अवधी भाषा के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सकी है।

अर्थालंकार, शब्दालंकार, मुहावरे, लोकोक्तियाँ आदि के प्रयोग से 'कवितावली' का भावपक्ष के साथ-साथ कलापक्ष भी निखर उठा है ।

1.5.3. विनय पत्रिका :-

तुलसीदास रचित 'विनय पत्रिका' विनय की साक्षात् प्रतिमा के रूप में विख्यात है। भक्त कवि तुलसीदास द्वारा अपने आराध्य श्रीराम को कलियुग की करतुतों के विरूध्ध शिकायती पत्रों को प्रस्तुत कर उसे स्वीकृत करवाना विनय पत्रिका का मूल कथ्य है। 'विनय पत्रिका' फूटकर रचनाओं का संग्रहीत रूप होने से रचनाकाल को लेकर एक मत नहीं है । सभी विद्वानों के मतों को ध्यान में रखकर यह कह सकते हैं कि इसके सम्पादन का कार्य अधिक से अधिक संवत् 1679 तक पूर्ण हो गया होगा । विनय पत्रिका की पूर्व सीमा सवंत 1621 है और उनकी उतर सीमा संवत 1680 तक मानी जायेगी । माता प्रसाद गुप्त ने इसका रचनाकाल संवत् 1658 ठहराया है जो अधिकतः स्वीकार्य है ।[46]

'विनय पत्रिका' कवि की प्रेमाभवित का अमर काव्य है । ईश्वर-प्राप्ति के लिए शास्त्रों ने जप, तप, दान उपवास आदि बताया, फिर भी कार्य सिध्ध नहीं हो सकता। अतः 'विनयपत्रिका' में तुलसीदास के विचार से भक्ति ही सर्वश्रेष्ठ है । भक्ति का मार्ग राजमार्ग जैसा है, कहने में सरल लगता है, पर करने में कठिन लगता है ।

बहुमत मुनि बहुपंथ पुराननि, जहाँ तहाँ झगरों सो ।
गुरु कह्यो राम भजन नीको मोंहि लगत राज डगरों सो ।।[47]

तुलसीदास का मन भक्ति अनुग्रह के लिये भूखा होने से कई पदों में भक्ति से विभोर मन फूट पड़ा है। 'विनय पत्रिका' में शान्त रस के साथ-साथ अंगीरस में ओर रस भी बहे हैं। भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है। प्रारंभिक पंक्तियों में संस्कृत भाषा का प्रयोग किया गया है। 'विनय पत्रिका' में लोकोक्ति और मुहावरों के प्रयोग से भाषा की अभिव्यंजना शक्ति में वृध्धि हुई है। 'विनय पत्रिका' में अनुप्रास अलंकार की सर्वाधिकता रही है। 'विनय पत्रिका' मुक्तक गीति काव्य होने से कवि ने विविध रागों में पूरे काव्य को

बाँधा है। इसमें कुल तेईस रागों को कवि ने छेड़ा है। संक्षेप में 'रामचरित मानस' और विनय पत्रिका' की रचना के कारण तुलसीदास महाकवि के रूप में स्थापित हुए हैं। अतः यह सत्य है कि 'विनय पत्रिका', 'रामचरित मानस' से कम महत्वपूर्ण कृति नहीं है।

1.5.4. गीतावली :-

इसको 'राम गीतावली' या 'पदावली रामायण' भी कहते हैं। इसमें कुल 330 पद हैं।

'रामचरित मानस की भांति इसको भी कवि ने काण्ड़ों में विभाजित किया है। 'बालकाण्ड' के प्रारंभ में राम के जन्मदिन पर दशरथ के दरबार-महल में और अयोध्यानगरी में जो उत्साह-उमंग आदि हैं उसका सुंदर वर्णन मिलता है तत्पश्चात् नामकरण, माता का पुत्र के प्रति स्नेह, बाललीला और विश्वामित्र का राम, लक्ष्मण को अपने साथ ले जाना, अहल्या उद्धार, जनकपुर में सीता स्वयंवर में जाना, धनुषभंग, अयोध्या से बारात लेकर दशरथ का जाना, बारात लौटने पर कौशल्या द्वारा अपने पुत्रों की आरती करना आदि प्रसंगो को बालकाण्ड़ में लिया है। अयोध्या काण्ड़ में राज्याभिषेक की तैयारी, कैकेयी का वर माँगना, सीता राम के साथ वन जाने का आग्रह करती हैं, इत्यादि बातों का समावेश किया गया है। राम, लक्ष्मण और सीता तीनों को वन में जाते देख राजा दशरथ और अयोध्या का जनसमूह विह्वल हो उठता है । वनगमन के पश्चात् कौशल्या का पुत्र विरह और भरत का अयोध्या की सेना के साथ चित्रकूट प्रस्थान । मार्ग में भरत-निषाद मिलन का सुंदर दृश्य। राम-भरत मिलन और उसके पश्चात् भरत को समझाकर अयोध्या लौटाना। अरण्य काण्ड़ में राम के वन विहार में मारीच का वध करना, रावण के द्वारा सीता का हरण और जटायु की मृत्यु, शबरी के आश्रम में जाकर उसको परमगति को प्राप्त करवाना । किष्किन्धा काण्ड़ में सीता के गहनों को देखकर राम का दुःखी होना और सीता खोज का आदेश सुग्रीव को देना ये केवल दो ही प्रसंग लिये गये हैं । सुन्दरकाण्ड में सीता की खोज करने गये हनुमानजी लंका में अशोक वाटिका में सीता को देखते हैं। राम की दी हुई मुद्रिका देकर अपना

परिचय देते हैं । रावण से मिलने पर हनुमानजी ने राम के यश को गाया और सीताजी की आज्ञा लेकर लंका से लौटे । रावण के द्वारा त्याग देने पर विभिषण राम की शरण मे आते हैं । लंकाकाण्ड़ में अंगद दूत बनकर जाता है परंतु अभिमानी रावण उस संधि को ठुकरा देता है, परिणामत; भयानक युध्ध होता है और युध्ध में राम के हाथों से रावण-वध होता है । रावण वध के पश्चात् राम के अपूर्वरूप का चित्रण किया गया है । वनवास की अवधि पूरी होने से श्री राम का अयोध्या में बड़ी धूम से राज्याभिषेक होता है। उत्तर काण्ड़ में रस सौन्दर्य, वसन्त विहार, सीता बनवास, लव कुश जन्म आदि को अधिक संक्षेप में प्रकट कर दिया गया है।

'गीतावली' के रचनाकाल का कोई निश्चित समय प्राप्त नहीं है। परंतु माता प्रसाद गुप्त ने इसका रचना काल संवत् 1658 माना है।[48] 'गीतावली' पर वाल्मीकि रामायण का प्रभाव स्वीकार करते हुए डॉ. रामकुमार वर्मा 'गीतावली' की रचना जय संवत के आसपास लगभग 1643 मानते हैं।[49] 'गीतावली' की भाषा साहित्यिक व्रजभाषा है। संस्कृत के तत्सम् शब्दों की भी अधिकता दिखाई देती है। आवश्यकतानुसार मुहावरों और कहावतों का भी कवि ने प्रयोग किया है। 'गीतावली' गीतिकाव्य होने के कारण कविने आसावरी, केदार, सोरठा, धनाश्री, मल्हार, रामकली आदि रागों का भी प्रयोग किया है। प्रतीप, सन्देह, उल्लेख, असंगति आदि अलंकारों के प्रयोग से गीतावली उत्कृष्ट रचना बन पाई है।

1.5.5. दोहावली :-

'दोहावली' तुलसीदास की व्रज भाषा रचित कृतियों में से एक है । दोहावली के रचनाकाल के सम्बन्ध में यही कहना समीचीन होगा कि इसमें संवत् 1614 से संवत् 1680 तक की रचनाएँ है, फलतः यही उसका मान्य रचनाकाल है ।[50] 'दोहावली' नाम से ही स्पष्ट है कि यह दोहों का संग्रह है । प्रत्येक दोहा अपने आपमें स्वतंत्र है । इसमें दो दोहे 'वैराग्य सान्दीपनी' के, 35 दोहे 'रामाज्ञा प्रश्न' के तथा 85 दोहे 'रामचरित् मानस' के हैं। शेष 451 दोहे स्वतंत्र रूप से लिखे गये हैं । 'दोहावली' में तुलसीदास

के विविध रूपों के दर्शन होते हैं, जिसमें राम के अनन्य भक्त, विशिष्ट नीतिकार उपदेशक आदि मुख्य हैं। 'दोहावली' में श्रीराम के विविध रूपों का चित्रण किया गया है, साथ ही राजनीति, समाज-नीति एवं ज्योतिष के कई सिध्धांतों का दर्शन करवाया है। 'दोहावली' के दोहे का चिन्तन करके कोई भी अपने जीवन को आदर्श बना सकता है।

'दोंहावली' भक्ति और शान्त रस में लिखा गया एक उत्कृष्ट मुक्तक काव्य है । रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टांत अप्रस्तुत प्रशंसा एवं अन्योक्ति अलंकारों का प्रयोग अधिक मिलता है, जिससे तुलसीदास भाव प्रकाशन या विषय निरुपण को स्पष्ट और मनोज्ञ बना सके हैं। 'दोहावली' का प्रत्येक दोहा ह्रदय को छूने की क्षमता रखता है। 'दोहावली' हिन्दी साहित्य के मुक्तक काव्य की अमूल्य निधि है ।

1.5.6 रामाज्ञा प्रश्न :-

व्रजभाषा में रचित 'रामाज्ञा प्रश्न' तुलसी की बड़ी छह कृतियों में से एक है। इसमें कुल सात सर्ग हैं। डॉ. माता प्रसाद गुप्त ने इसका रचना काल संवत् 1621 निश्चित किया है। [51] परंतु डॉ. उदयभानुसिंहने माताप्रसाद गुप्त की बात का खण्ड़न करते हुए इसका रचना काल सं. 1627-28 माना है, जो अधिक उपयुक्त है।[52] इस ग्रन्थ की रचना के पीछे एक कथा-प्रसिध्ध है कि गढवार वंश के नरेश का पुत्र आखेट के लिए गया और कई दिनों तक वापिस नहीं लौटा। परिणामतः राज ज्योतिष श्री गंगारामजी को नरेश ने अपने पुत्र की वापसी को लेकर पूछा। उसी समय गंगारामजी ने तुलसीदास के पास जाकर यह बात रखी । गंगारामजी के लिए तुलसीदास ने इसी ग्रन्थ को लिखा और इसी के आधार पर गंगारामजी ने नरेश के राजकुमार के सुकुशल गृहआगमन का सगुन विचारा था । इसके फलस्वरूप गंगारामजी को बहुत बड़ा पुरस्कार प्राप्त हुआ था । पूरे ग्रन्थ में 343 दोहे हैं । प्रथम तीन सर्गो में बालकाण्ड़ से लेकर किष्किन्धा काण्ड़ तक की कथा वर्णित है । चर्तुथ सर्ग में पुनः बालकाण्ड़ की कथा कही गई है । पंचम सर्ग में सुन्दर काण्ड तथा लंकाकाण्ड़ की कथा है। छठ्ठे सर्ग में इन्द्र की सहायता से बन्दरों और भालुओं को जीवित कराकर उनको सम्मानित किया। उसके

पश्चात् अयोध्या पहुँचकर राम राजा बने और न्यायोचित कार्यो किये जिसकी कथा वर्णित है । सप्तमसर्ग में सप्ताह के प्रत्येक दिन के अनुसार अथवा ग्रहों के अनुसार शकुन विचारने की बात है । ज्योतिष सम्बन्धित बातें शायद हिन्दी साहित्य में पहली बार प्रस्तुत हुई होंगी। इसे तुलसीदास की देन माना जा सकता है ।

1.5.7. वैराग्य संदीपनी :-

'वैराग्य संदीपनी' के रचनाकाल के सम्बन्ध में भाषा, शैली के आधार पर अनुमान लगाया गया है । डॉ. श्यामसुन्दरदास इसे संवत् 1640 से पूर्व की रचना मानते हैं।[53] डॉ. उदयभानुसिंह संवत 1626-27 मानते हैं।[54] रचना काल के सम्बन्ध में विद्वानों में एक मत नहीं है । इसमें प्रयुक्त दोहा, चौपाई, सोरठे आदि मिलकर कुल 62 छन्द होते हैं। इसकी भाषा अवधी-मिश्रित ब्रज है । एक विशेष कथा होने से इसको मुक्तक ही कहेंगे। वैराग्य की प्रधानता होने से शान्त रस की प्रमुखता है। द्रष्टांत, उपमा तथा विभावना आदि अलंकारों का प्रयोग कवि ने किया है । उद्देश्य की दृष्टि से यह कृति महत्वपूर्ण मानी जायेगी।

1.5.8. पार्वती मंगल :-

'पार्वतीमंगल' पूर्वी अवधी में लिखा हुआ सुंदर प्रबंध काव्य है । इसमें कुल 90 छन्द है । इस खण्ड़काव्य के तीसरें छन्द में इसकी रचना का काल कवि ने दिया है -

जय संवत फागुन सुदि, पाँचै गुरु दिनु ।
अस्विनि बिरचेऊँ मंगल सनि छिनु छिनु ।।[55]

अर्थात् 'पार्वतीमंगल' की रचना फाल्गुन शुक्ला पंचमी गुरुवार को अश्विनी नक्षत्र में हुई । 'पावर्तीमंगल' में शिव पार्वती विवाह का प्रसंग वर्णित है । हिमालय की पुत्री पार्वती विवाह योग्य होने पर नारदजी ने उसे शिव को पति के रूप में पाने के लिए कहा। घोर तपस्या के बाद भी शिव का मन मोहग्रस्त नहीं हुआ । अंततः देवों के द्वारा कामदेव को शिव के पास भेजा गया । क्रोधित होकर शिव अपना तीसरा नेत्र खोलकर कामदेव का दहन कर देते हैं। रति के विलाप से शिव वरदान देते हैं । लोगों के द्वारा

पार्वती को समझाया गया कि वह तप करना छोड़ दे, परंतु पार्वती का मनोबल बढ़ता गया और उसने भूखे रहकर शिव तपस्या प्रारंभ की । पार्वती की तपस्या को देख शिव उसकी परीक्षा लेने के लिए ब्रह्मचारी का रूप लेकर आते हैं और विविध प्रकार के पार्वती का मन डिगाने का प्रयत्न करते हैं, परंतु पार्वती अपनी बात पर अडिग रहती है । अंत में शिव अपने मूल रूप में प्रकट हुए और पार्वती को वर देकर चले गये । शिवजी ने सप्तर्षियों को हिमालय के यहाँ लग्न लेने के लिए भेजें । शिव के विवाह में देवगण, भूतों और प्रेतों की मंडली जाती है । आकाश में से पुष्पवृष्टि होती है। विनोद के साथ बारात नगर में पहुँचती है। पूरे नगर में खलबली मच जाती है कि दूल्हा पागल है, जो अपना विचित्र वेश बनाकर आया है और साथ आये बाराती भूत प्रेत हैं । यह सब देख कर पार्वतीकी माँ मैना दुःखी हुई और अपनी पुत्री को बार-बार गले लगाती हुई नारदजी को कोसने लगती है । हिमालय के समझाने पर मैना शांत होती है । अंत में शिवजी ने कामदेव को भी लज्जित होना पड़े ऐसा रूप धारण किया और विवाह सम्पन्न हो गया । 'पार्वती मंगल' के अंत में कवि ने कथा-फल के लिए एक दोहे को लिख काव्य का समापन किया -

मृगनयनि बिधु-बदनी रचेउ मनि मंजु मंगल हरि सो ।
उर धरहु जुवती जन विलोकि तिलोक, सोभा सार सो ।
कल्याण काज उछाह व्याह सनेह सहित जोगाई है ।
तुलसी उमा-संकर प्रसाद प्रमोद मन प्रिय पाइहै ।। [56]

'पार्वती मंगल' मंगलकाव्य या विवाह के काव्य के रूप में लिखा गया है। विद्वानों का मानना है कि इस काव्य के कथानक का आधार कालिदास कृत कुमारसंभव रहा है। विवाह काव्य होने से शृंगार रस की प्रधानता रही है । साथ में बारात के वर्णन में हास्य और भयानक रस की भी व्यंजना हुई है । अतिशयोक्ति, अर्थान्तरन्यास, उदाहरण आदि अलंकारो तथा अरुण और हरिगीतिका छन्द का प्रयोग हुआ है । निष्कर्ष के रुपमें कहा जा सकता हैं कि तुलसीदास रचित पार्वती मंगल लघुखण्ड़ काव्य अवधी भाषा का श्रेष्ठ काव्य है।

1.5.9 रामलला नहछू :-

तुलसीदास की कई कृतियों की भांति इसका रचनाकाल भी संदिग्ध है। माताप्रसाद गुप्त इसका रचनाकाल संवत् 1616 बताते है ।[57] सोहर छन्द और ग्रामीण अवधी में लिखी तुलसीदास की यह छोटी सी रचना है । 'रामलला नहछू' यज्ञोपवित के प्रसंग का है । तुलसीदास ने इस प्रसंग का वर्णन करते हुए लिखा है कि -

कोटिन्ह बाजन बाजहि दसरथ के गृह हो,
देवलोक सब देखहि आनंद अति हिय हो ।
नगर सोहावन लागत बरनि न भातै हो,
कौसल्या की हरष न हृदन समातै हो ।[58]

इससे स्पष्ट होता है कि यह नहछू राम के विवाह का नहीं है, क्योंकि विवाह में माताएँ मिथिला नहीं गई थी । जबकि प्रसंग के अनुसार दशरथ के घर का वर्णन है । अतः राम के यज्ञोपवित के समय का यह प्रसंग माना जाता है । काव्य के वर्ण्य विषय में कविने मंगलाचरण से काव्य का प्रारंभ किया है । नहछू के प्रसंग से चहुँ ओर फैले हुए उल्लासपूर्ण वातावरण का चित्रण किया है । उपस्थित सुन्दरियों के द्वारा मंगलगान होता है । इसी बीच गंगा के पानी से स्नान करवाया जाता है । इसी अवसर पर विविध वर्ग की स्त्रियों के आने का संकेत दिया है । सभी वर्ग की स्त्रियों के बीच नाईन का आनंद समा नहीं रहा है । मन ही मन प्रफुल्लित हो रही है । इसकी ओर संकेत करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि -

अति बड़ भाग नइनियाँ धुए नख हाथ सों हो ।
नैनन्ह करति गुमान तौ श्री रघुनाथ सों हो ।
जो पगु नाउनि धोवइ राम धोवावइ हो ।
सो पग धूरि सिध्धि मुनि दरस न पावई हो ।।[59]

अंत में कवि ने फलश्रुति कहकर काव्य को समाप्त किया है । काव्य रूप की द्रष्टि से 'रामलला नहछू' लघु खण्ड़ काव्य है । इसमें कविने शिष्ट गीत का उदाहरण

प्रस्तुत किया है ।

1.5.10 जानकी मंगल :-

तुलसीदास कृत पूर्व अवधी भाषा के छोटे खण्ड़ काव्य के रूप में इसकी गणना की जाती है । इसका रचना काल संवत् 1627 है । इसमें कुल 120 छन्द हैं। सीताराम के विवाह का गान, सोहर मंगल छन्द तथा हरिगीतिका छन्द के माध्यम से गाया गया है । काव्य के प्रारंभ में जनक का प्रण, स्वयंवर की रचना एवं विश्वामित्र का अयोध्या में दशरथ के पास आने का कवि ने उल्लेख किया है । वशिष्ट के कहने पर दशरथ अपने दोनों पुत्रों राम और लक्ष्मण को विश्वामित्र को सौंप देते हैं । विश्वामित्र ने दोनों भाइयों को शिक्षा दी । राम और लक्ष्मण ने ऋषि मूनियों के यज्ञ की राक्षसों से रक्षा की । बाद में दोनों भाईयों को लेकर विश्वामित्र जनकपुर जाते हैं । दोनों भाईयों को देखकर जनकपुर-वासी प्रसन्न हुए। रामने धनुषभंग किया और सीता ने वरमाला पहनाई । राम के साथ भरत, लक्ष्मण और शत्रुध्न के भी विवाह हुए । मार्ग में परशुराम से भेंट होती है । अंत में अयोध्या आकर आनंद पूर्वक इस विवाह के प्रसंग को मनाया जाता है । अंत में मंगलगान करनेवालों के लिए फल बताया गया -

उपवीत ब्याह उछाह जे सियराम मंगल गाव ही ।
तुलसी सकल कल्याण ते नर नारि अनुदिनु पावही ।।[60]

'जानकी मंगल' कथा का आधार 'मानस' 'वाल्मीकि रामायण' और एकाध-प्रसंग 'अध्यात्म रामायण' से मिलता है । 'जानकी मंगल' में अनुप्रास, रूपक, उपमा और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का प्रयोग किया गया है । सबसे अधिक उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग किया गया है । काव्योत्कर्ष की द्रष्टि से 'जानकी मंगल' कवि की प्रौढ रचना है ।

1.5.11. कृष्ण गीतावली :-

'कृष्ण गीतावली' नाम से ही स्पष्ट है कि इसमें कृष्ण की लीलाओं का गान होंगा। विभिन्न रागों से कुल 61 पदों में कवि ने कृष्ण गीतावली की रचना की है । इसके रचनाकाल के सम्बन्ध में कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता । शैली और प्रसंगों के

आधार पर विद्वानों ने अपने मत प्रकट किये हैं । इन सभी मतों में गुप्तजी का मत है कि 'कृष्ण गीतावली' की रचना सवंत 1658 अधिक स्वीकार्य है ।[61] कृष्णगीतावली' में वालक कृष्ण से लेकर गोपी-उध्धव संवाद तक की मुख्य घटनाओं का संक्षिप्त वर्णन कविने किया है । कन्हैया की माखन चोरी की कला, गोपियों की शिकायतें, इन्द्रका कोप, गोवर्धन उठाना मथुरागमन आदि प्रसंगों को कवि ने अपनी रचना में लिया है । गोचारण और मुरलीवादन सम्बन्धी पद अल्पमात्रा में हैं । 'कृष्ण गीतावली' में तुलसीदास ने वात्सल्य और शृंगार इन्हीं दो रसों की व्यंजना की है । 'कृष्णगीतावली' की भाषा व्रजभाषा है । रूपक, अनुप्रास और उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों के प्रयोग से काव्य की शोभा और अधिक बढ़ गई है । विलावल, ललित आसावरी, केदारागौरी, मल्हार, धनाश्री, सोरठा आदि रागों का प्रयोग हुआ है । यह एक आदर्श मुक्तक गीतिकाव्य है । भाव और भाषा की द्रष्टि से कवि की यह प्रौढ़ रचना है।

1.5.12 बरवै रामायण :-

'बरवै रामायण' छोटी रचना है । इस में कुल मिलाकर 69 बरवै छन्द हैं। 'मानस' की भांति कवि ने 'बरवै रामायण को भी सात काण्ड़ों में विभाजित किया है। इसका रचनाकाल कविने अपनी रचना में नहीं दिया जिससे रचनाकाल के सम्बन्ध में अनुमान लगाना पड़ता है । माता प्रसाद गुप्त ने इसका रचनाकाल संवत् 1661-80 के मध्य माना है ।[62] बरवै रामायण के छन्दों को कवि ने अलग-अलग समय पर लिखा हुआ है जिससे बरवै छन्दों का संग्रह ही माना जायेगा । 'बरवै रामायण' में बीच में दी हुई कथा और क्रम की शिथिलता दिखाई देती है । यह न तो प्रबन्ध काव्य है और न पुरा मुक्तक काव्य है । 'बरवै रामायण' की भाषा अवधी है। प्रतीप, उन्मोलित, उपमा, स्वभावोक्ति, व्याजस्तुति आदि अलंकारों की भरमार है। संक्षेप में 'बरवै रामायण' के भाव पक्ष के आगे कलापक्ष पूर्ण रूप से निखरा हुआ है।

1.6 निष्कर्ष :-

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं वाल्मीकि और तुलसी दोनों का जन्म ब्राह्मण

कुल में हुआ था। वाल्मीकि ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के उपरांत व्याध-कर्म में रत रहे । जबकि ब्राह्मण कुल में जन्म लेने के पश्चात् माता-पिता की छाया गँवाने वाले तुलीदास अपनी जीवन नौका को सालों तक सम्भालने में व्यस्त रहे। वाल्मीकि राम के समकालीन रहे हैं और अपने युग के आदर्श राजा का जीवन चरित्र 'रामायण' के नाम से लिखा जिससे राम जैसे आदर्श राजा लोगों के हृदय में स्थान प्राप्त कर सकें । तुलसीदास ने 'रामायण' को अपने महाकाव्य 'रामचरित मानस' का आधार बनाया । एक सच्चे भक्त के रूप में राम का भक्ति पूर्वक यशोगान किया, जिससे घर-घर में आदर्श राम की मूर्ति प्रस्थापित हुई । अंततः दोनों ब्राह्मण महाकवियों ने राम को अपने-अपने महाकाव्यों के नायक के रूप में चुना । सप्तर्षि से उपदेश प्राप्त करके तपस्या से महर्षि वाल्मीकि बने। नारद से राम चरित्र सुना और ब्रह्मा की प्रेरणा का पालन करते हुए 'रामायण' की रचना की। तुलसीदास बाल्यावस्था से ही गुरु नरहरि से रामकथा सुनते थे, परंतु पत्नी के प्रेम में इतने तो डूब गये थे कि अपने इष्ट राम को भी भूल गये । पत्नी के उपदेश भरे वाक्य से और अंतःकरण की प्रेरणा से संसार से मुक्त होकर चित्रकुट चले गये, जहाँ उन्होंने 'रामचरित मानस' की रचना की । वाल्मीकि राम के समकालीन होने से इन्होंने राम का आदर्श राजा के रूप में चित्रण किया है, जबकि तुलसीदास ने भक्त के रूप मे राम का दासत्व स्वीकार करते हुए राम का ईश्वर के रूप में चित्रण किया है । वाल्मीकि ने अपने साहित्य में 'रामायण' महाकाव्य की रचना की है जबकि तुलसीदास ने मानस' के अलावा और भी कई ग्रन्थों की रचना की है । इनमें से 12 ग्रन्थ ग्राह्य है । 'रामायण' की भाषा संस्कृत है, तो मानस की भाषा अवधी है । वाल्मीकि ने 'रामायण' में राम के पूरे जीवन को प्रकट किया है जबकि तुलसीदासने रावण विजय के पश्चात् अयोध्या में राम के राज्याभिषेक तक की कथा का निर्वाह किया है ।

संदर्भ सूची

1. वा.रा.उत्तरकाण्ड षण्णवतितम : सर्ग 19
2. अध्यात्म रामायण -7/7/31
3. मनुस्मृति- 1/35
4. स्कन्दपुराण' वैशाख महात्म्य ।
5. स्कन्दपुराण
6. अध्यात्म रामायण-अयोध्या काण्ड सर्ग-6 श्लोक-42-88
7. अध्यात्म रामायण-अयोध्याकाण्ड़ सर्ग-6 श्लोक-65
8. वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड चतुर्नवतितमः सर्ग-19
9. बुध्धचरित- अश्वघोष
10. धर्मलोक-गुजरात समाचार-बचुभाई वड़गामा-दिनांक 20 जनवरी-2005
11. वाल्मीकि रामायण-सुन्दरकाण्ड-गौतम पटेल तथा संपादक मंडल
12. विनय पत्रिका -135
13. तुलसीसाहित्य और साधना - डॉ. इन्द्रपाल- पृ.5
14. रामचरित मानस-बालकाण्ड 33/2,3
15. विनय पत्रिका-135
16. गोस्वामी तुलसीदास -रामदत्त भारद्वाज- पृ.280
17. कवितावली - 7-57
18. विनय पत्रिका-227
19. विनय पत्रिका-225
20. रामचरित मानस -बालकाण्ड़-5
21. रामचरित मानस -बालकाण्ड 30क
22. रामचरित मानस -बालकाण्ड 30ख/1

23. विनय पत्रिका - तुलसीदास - 83/2

24. कवितावली-165

25. हिन्दी साहित्य का इतिहास-आचार्य रामचन्द्र शुकल-प्रथम संस्कारण पृ.107

26. कवितावली - 7-106

27. कवितावली - 60-72 दोहावली -109

28. हनुमान बाहुक-38

29. हनुमान बाहुक-35

30. तुलसी सतसई- तुलसीदास

31. तुलसीदास और उनका युग – डॉ.राजपति दीक्षित – पृष्ठ-11

32. हिन्दी साहित्य का इतिहास-रामचन्द्र शुक्ल पृ.480

33. मूल गोसाई चरित - बेनी माधवदास

34. मूल गोसाई चरित - बेनी माधवदास

35. 'रामचरित मानस' सम्पादक विजयानंद त्रिपाठी, भूमिका पृ.11 (11)

36.घटरामायण तुलसी साहित्य और साधना-डॉ.दन्द्रपालसिंह पृष्ठ-14 से उद्घृत

37. वाल्मीकि रामायण- बालकाण्ड़ 1,2,3,4,5

38. वाल्मीकि रामायण- बालकाण्ड़ -द्विवतीय सर्ग-42-43

39. हिन्दी साहित्य कोश-माता प्रसाद गुप्त

40. रामचरित मानस-बालकाण्ड़- 33/2-3

41. तुलसीदास- एस.टी. माता प्रसाद गुप्त - पृ.232

42. मानस पीयूष- महात्मा अंजनीनन्द शरण- पृ.485

43. तुलसीदास- डॉ.माता प्रसाद गुप्त -पृ.266

44. तुलसी काव्य मीमांसा- डॉ. उदयभानुसिंह -पृ.136

45. कवितावली -बालकाण्ड़ - 4

46. तुलसीदास-माता प्रसाद गुप्त - पृ.243

47. विनय पत्रिका-तुलसीदास-173

48. तुलसीदास-डॉ.माता प्रसाद गुप्त -पृ.241

49. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास तृतीय संस्करण- डॉ. रामकुमार वर्मा-

पृ.389

50. तुलसीदास और उनका युग- डॉ. राजपति दीक्षित- पृ.57

51. तुलसीदास- डॉ. माताप्रसाद गुप्त -पृ.229

52. तुलसी काव्य-मीमांसा- डॉ. उदयभानुसिंह - पृ.85

53. गोस्वामी तुलसीदास- डॉ. श्यामसुन्दर दास -पृ.79

54. तुलसी काव्य मीमांसा- डॉ. उदयभानुसिंह - पृ.82

55. पार्वती मंगल-5

56. पार्वती मंगल-16

57. तुलसीदास- डॉ.माताप्रसाद गुप्त -पृ.266

58. रामलला नहछू-2

59. रामलला नहछू-13-14

60. जानकी मंगल-24

61. तुलसीदास- डॉ. माताप्रसाद गुप्त -पृ.245

62. तुलसीदास- डॉ. माताप्रसाद गुप्त -पृ.266

अध्याय – २

महर्षि वाल्मीकि एवं श्री तुलसीदास की युगीन परिस्थितियाँ

- प्रस्तावना
- राजनीतिक परिस्थिति
- सामाजिक परिस्थिति
- आर्थिक परिस्थिति
- धार्मिक परिस्थिति
- निष्कर्ष
- संदर्भ सूची

2.0 प्रस्तावना :-

कवि अपने समय का प्रतिनिधि होता है । जिस प्रकार बेतार के तार का ग्राहक यंत्र (Receiver) आकाश मण्डल में विचरती हुई तरंगों को पकड़कर उनको भाषित शब्द का आकार देता है, उसी प्रकार कवि या लेखक अपने समाज के वायु मण्डल में घूमते विचारों को पकड़कर मुखरित कर देता है । कवि वह बात कहता है जिसको सब लोग अनुभव करते हैं । कवि के न चाहने पर भी वह समाज का चित्रण किये बिना नहीं रह सकता, क्योंकि वह भी समाज का ही एक अंग होता है । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों ही ग्रंथ एक सामाजिक आदर्श है । तत्कालीन समाज का सच्चा प्रतिबिम्ब होने के साथ-साथ समाज की शब्दमूर्ति है । इन्हीं में से तत्कालीन समाज के आदर्शों सत्यों, रुढियों, मान्यताएँ आदि को अलग कर सकते हैं । इन में से ही समाज व्यवस्था, अर्थव्यवस्था, शिक्षण, संयुक्त परिवार की व्यवस्था, धर्म आदि का विचार कर सकते हैं । वाल्मीकि ने रामायण में अपने राजा राम का आदर्श चित्र प्रस्तुत किया है । इसी प्रकार भक्ति के अथाह सागर में डूबे हुए तुलसीदास ने 'स्वान्तःसुखाय' रामभक्ति के उद्‌गार 'रामचरितमानस' में व्यक्त किये हैं । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' अपने अपने युग की प्रतिनिधि रचनाएँ है । अब हम इन दोनों महाकाव्यों के आधार पर वाल्मीकि और तुलसीदास की युगीन परिस्थितियों को देखने का विनम्र प्रयास करेंगे ।

2.1 राजनीतिक परिस्थिति :-

2.1.1 राज्य :-

रामायण कालीन भारत में एक से अधिक राज्य थे । रामायण में जिसका उल्लेख मिलता है, इनमें अंगदेश, काशी, मगध, मिथिला, सिंधु, कैकय, कोशल सौवरि आदि प्रमुख हैं। उस समय एकचक्री शासन नहीं था, परंतु पडोशी राज्यों पर अयोध्या नरेश का प्रभाव विशेष था। इसीलिए विश्वामित्र राजा दशरथ को पूछते हैं कि ''अपि ते सनंताः सर्व सामन्तरिपवो जिताः।''[1] अर्थात् आपके राज्य की सीमा के निकट रहने वाले शत्रु राजा आपके समक्ष नतमस्तक तो है, आपने उन पर विजय तो प्राप्त की है। इसी

प्रकार अयोध्या के प्रभाव को दिखाते हुए राम 'किष्किन्धा काण्ड' में वाली को कहते हैं कि -

इक्ष्वाकूणामियं भूमि सशैलवन कानना ।
मृग पक्षि मनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ।।[2]

अर्थात् पर्वत, वन और काननों से युक्त यह सारी पृथ्वी इक्ष्वाकु वंश के राजाओं की है। अतः वे यहाँ के पशु-पक्षी और मनुष्यों पर दया करने और उन्हें दण्ड़ देने के भी अधिकारी हैं। दशरथ और राम जैसे सहिष्णु राजा सभी राज्यों के ऊपर अपना अधिकार रखते थे।

तुलसीदास के युग में मुगल साम्राज्य के प्रारंभ में दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था। छोटे-छोटे राज्यों में पूरा देश विभक्त था। यहाँ तक कि प्रत्येक शहर या किल्ले का स्वामित्व बड़े सरदारों के हाथों में था।[3] प्रारंभिक इन परिस्थितियों को छोड़कर देखें तो देश के अधिकांश हिस्से पर मुगल साम्राज्य स्थापित हो चुका था। पानीपत के बाद बाबर ने राणा सांगा को पराजित किया, लेकिन राजपूत राजा समय-समय पर मुगलों के साथ संघर्ष करते रहें। अकबर ने युद्ध और उदारता से शत्रुओं की ताक़त को खत्म कर दिया था। पठानों ने भी मुगलों के साथ संघर्ष किया था और हुमायू को हिन्दुस्तान से बाहर खदेड़ दिया था। अकबर ने पानीपत के द्वितीय युद्ध की जीत से विजय अभियान शुरु किया और मुगल साम्राज्य का विस्तार कंदहार (कंधार) से अहमदनगर तक और गुजरात से बंगाल तक किया । कितने ही हिन्दू राजाओं ने उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया था। साम्राज्य-लिप्सा की भावना इतनी तीव्र थी कि जनता की भूमि को हस्तगत कर लेना साधारण कार्य था । इसीलिए तुलसीदास को कहना पड़ा कि ''भूमिचारे भूप भए''[4] मुगल साम्राज्य का स्वर्णयुग अकबर का काल है । अकबर ही मुगल साम्राज्य का संस्थापक एवं संघटनकर्ता कहलाने का अधिकारी है । हिन्दुस्तान को अपने आधिपत्य में लाने के लिए उन्हें बीस वर्ष तक संघर्ष करना पड़ा था । अकबर के शासन काल को छोड़कर पूरा देश छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था । विदेशी शक्ति का बारम्बार आक्रमण होता रहता था। मारकाट, गृहकलह और युद्ध की अधिकता थी।

अकबर का युग शांत और सुव्यवस्थित था।

इस प्रकार राज्य की सीमाओं की द्रष्टि से वाल्मीकि युग शांत था । जबकि तुलसीदास के युग में शासनसीमा की लोलुपता, अराजकता, मारकाट आदि की मात्रा अधिक थी । वाल्मीकि युग में एकचक्री शासन न होने पर भी अयोध्या नरेशों का प्रभाव सभी राजाओं के उपर रहता था, जबकि तुलसीदास के युग में प्रत्येक राजा अपने आप में स्वतंत्र था । इतना ही नहीं, छोटे-छोटे किल्लों पर कब्जा कर अपने आपको स्वतंत्र राजा के रूप में सिद्ध करता था । वाल्मीकि युगीन देश में सुख और समृद्धि थी परंतु तुलसीयुग में यही समृद्धि लगभग नष्ट हो गयी थी । रामायण काल में कभी अकाल नहीं पड़ा था लोग सुखी थे । जबकि तुलसी के युग में बार-बार अकाल पड़े थे, लोग भूख से मरते थे।

2.1.2 राजा :-

रामायण कालीन राज्य पूर्णतः प्रजासत्ताक था । प्रजा के मत के बिना राजा भी कोई कार्य नहीं कर सकता था । राजा का ज्येष्ठ पुत्र युवराज पद के लिए चुना जाता था, परंतु इसके चुनने में राजा स्वतंत्र नहीं था । उसे जनपद के सामने अपनी बात को रखना पड़ता था । अतः जनसमूह और मंत्रियों आदि का निर्णय आखरी निणर्य समझा जाता था । इसीलिए राम को युवराज पद देने से पहले राजा दशरथ ने जनसमुदाय को सम्बोधित कर कहा कि -

यद्यप्येषा मम प्रीतिर्हित मन्दद विचिन्त्यताम् ।
अन्या मध्यस्थ चिन्ता तु विमर्दाभ्यधिकोदया ।।[5]

अर्थात् यद्यपि रामके राज्यभिषेक का विचार मेरे लिए प्रसन्नता का विषय है, तथापि यदि इसके अतिरिक्त भी कोई सबके लिए हितकर बात हो तो आप लोग उसे सोचें । क्योंकि मध्यस्थ पुरुषों का विचार एक पक्षीय पुरुष की अपेक्षा विलक्षण होता है । इस प्रकार की उक्तियों को सुनकर उस काल की संस्कारी प्रजा ने राजा की बात का अनुमोदन करते हुए कहा कि -

राममिन्दी वर श्यामं सर्वशत्रुनिर्हणम् ।

पश्यामो यौवराज्यस्थं तव राजोत्तमात्मजम् ।।[6]

अर्थात् जो नीलकमल के समान श्याम क्रान्ति से सुशोभित तथा समस्त शत्रुओं का संहार करने में समर्थ है, ऐसे ज्येष्ठ पुत्र श्रीराम को हम युवराज पद पर बिराजमान देखना चाहते हैं। अतः रामायणकालीन युग में आम जनपद की राय ली जाती थी । जनपद की ओर से उनका स्वीकार होने के बाद ही राजा अपने कार्य का प्रारंभ करता था, राजा को जनपद के आगे झुकना पड़ता था । राजा से इस बात की अपेक्षा रखी जाती थी कि वह अपने सुखों की अपेक्षा लोगों के सुखों पर अधिक ध्यान दे । राजा का ज्येष्ठ पुत्र होने पर वह प्रजा पर अत्याचार करता है, तो राजा उनको युवराज पद तो नहीं देता ऊपर से उन्हें देश निकाला दे देता था। इसीलिए राजा सगर ने अपने ज्येष्ठ पुत्र अंशुमन को देश निकाला दे दिया था ।[7] रामायण कालीन युग पूर्ण प्रजासत्ताक था जिसकी पुष्टि भरत के इस प्रसंग से होती है कि ननिहाल गये हुए भरत के अयोध्या लौटने पर उसे पत्ता चला कि राजा दशरथ ने राम को वन दिया है। वन देने के पश्चात् दशरथ की मृत्यु हुई है। तब भरत रोने लगा और कैकयी को पूछता है -

कच्चिन्न ब्राह्मणधनं हृतं रामेण कस्यचित ।

कच्चिनाढ्यों दरिद्रों वा तेनापापों विहिंसित : ।

कच्चियन्न परदारान् वा राजपुत्रोडभिमन्यते ।

कस्मात् स दण्डकोरण्ये भ्राता रामो विलासितः ।[8]

अर्थात् मां ! श्रीराम ने किसी कारण वश ब्राह्मण का धन तो नहीं हर लिया था ? किसी निष्पाप धनी या दरिद्र की हत्या तो नहीं की । श्रीराम का मन किसी परायी स्त्री की ओर तो नहीं चला गया ? किस अपराध के कारण भैया को वन जाने के लिए निर्वासित कर दिया है ? अगर ऐसा नहीं है तो राम को वनवास क्यों दिया गया । भरत के इन्हीं वाक्यों से यह बात फलीत होती है कि निष्कंलक व्यक्ति ही राज्य का अधिकारी बन सकता है । बिना दोष किसी को दण्ड़ देने का अधिकार राजा को भी नहीं था।

भरत की ओर से पूछे इन प्रश्नों से रामायण काल पूर्णतः प्रजासत्ताक होने की साक्षी देता है । रामायण कालीन राजा कल्याणकारी, गुणी और शुभचिंतक होता था । इसी बात की पुष्टि भरत को राजनीति का उपदेश देते हुए रामने की है ।[9] इसी कारण वाल्मीकि के युग में राजा को देवता समान माना जाता था।

तुलसीदास के युग में राजा के उत्तराधिकारी के सम्बन्ध में कोई ठोस नियम नहीं था। परिणामतः राजा की मृत्यु के बाद राजगद्दी के लिए झगड़े होते थे। मुगल बादशाहों को ईश्वर की ज्योति समझा जाता था। बादशाहों के नाम पर खुतबा पढ़ा जाता था और उसके ही नाम की मुद्राएँ चला करती थीं। राजाओं का क्षत्रियत्व छीन गया और आत्माभिमान चला गया था। फलतः विलासिता और उसके विविध उपकरण प्राप्त करना अपना कर्तव्य समझ रहे थे। नाच-गान का बाजार गरम रहता था। दरबारी कवियों द्वारा अपनी प्रशंसा सुन अथवा किसी काल्पनिक नायिका का वर्णन सुन कर वे आनंदित होते थे। प्राचीन हिन्दू राजाओं की प्रजावत्सलता उनके आचार विचार, धर्म निष्ठा आदि ओझल हो गये थे । अपनी कुचालों से शासकों ने नीति, विश्वास, मर्यादा, प्रेम आदि को जैसे अपने शब्द कोश से ही निकाल दिया था तथा उनमें स्वार्थ एवं भौतिक सुखों की लिप्सा अनुदिन वृद्धि पा रही थी प्रजा के प्रति उनकी कठोरता और अनुदारता का वर्णन करते हुए तुलसी कहते हैं -

काल कराल, नृपाल कृपालन,
राज समाज बडोई छली है ।[10]

मुसलमान शासकों द्वारा हिन्दूधर्म के देवस्थानों का विध्वंस तथा धर्मग्रन्थों का अपमान होता था ।[11] बलपूर्वक हिन्दू बहू-बेटियों को छीन लेते थे । राजा की अनैतिकता का परिणाम प्रजा को भुगतना पड़ता था ।[12] राजाओं का व्यवहार कृपा रहित था, तभी तो राज, समाज या अधिकारियों द्वारा छल करना और प्रजा को सताना सुगम हो गया था। राजाओं की इस अनैतिकता को ध्यान में रखते हुए तुलसीदास ने आदर्श राजा के लक्षण देते हुए कहा है कि -

बरसत हरषत लोग सब करषत लखै न कोई ।

तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होई ।।[13]

तुलसीदास के समकालीन समाज के समक्ष जिन सम्राटों का उदाहरण था, वे थे अकबर और जहाँगीर । दोनों ही विलासी थे । अकबर की विलासिता का प्रमाण मीनाबाजार था जिसमें पाँच हजार स्त्रियों का जमघट था । जहाँगीर के हरम में भी बहुत सी परियाँ थी । उनकी संख्या तीन सौ तक पहुँच गयी थी ।[14] इन सब में नूरजहाँ का नूर अवर्णातीत है । जहाँगीर उसके हाथों का खिलौना था । अपना राजकाज जहाँगीरने नूरजहाँ को सौंप दिया था और पाँच वर्ष तक उसने हीं शासन सम्भाला था । जहाँगीर घोर विलासी था और उसके भय से प्रजा काँपती थी । जंगली जानवरों से आदमियों को लड़ाकर उनके टुकड़े करवाना उसको प्रिय था । प्रचलित हिन्दू धर्म और उनके अवतार वाद को वह व्यर्थ मानता था । इस प्रकार प्रजा के प्रति शासन की उदासीनता से प्रजा का पतन तो होता ही है, शासक का व्यक्तिगत प्रभाव भी उस पर पड़े बिना नहीं रहता । भक्त कवि तुलसीदास ने अत्यंत निर्भिकता से तत्कालीन शासकों की दुर्नीति, निरंकुश शासन पद्धति आदि का वर्णन किया है ।

इस प्रकार वाल्मीकि युग में राजा अपना स्वतंत्र निर्णय नहीं ले सकता था । अपनी ईच्छाओं को वह जनपद के आगे रखता था । इससे विपरित तुलसीदास युगीन राजा अपनी ईच्छानुसार व्यवहार करता था । राज्य को चलाने के लिए प्रजा का विश्वास प्राप्त करना, वह आवश्यक नहीं समझता था । रामायणकालीन युग में राजा अपने ज्येष्ठ पुत्र को युवराज पद देता था, जबकि तुलसीयुगीन राजाओं के यहाँ ऐसा कोई ठोस नियम नहीं दिखाई देता । इस काल में राज्य के लिए भाई-भाई में भी झगड़े होते थे । रामायण कालीन प्रजा पूर्णत स्वतंत्र थी । वह जब चाहे राजा के पास अपने प्रश्नों का उत्तर माँग सकती थी । तुलसी युगीन प्रजा स्वतंत्र नहीं थी । राजा के निर्णयों की समीक्षा करने का किसी को अधिकार नहीं था । वाल्मीकि युगीन राजा इस बात में सावधानी रखते थे कि राजकोष भरने के लिए प्रजा पर इतना कर न लादा जाये जिसको चूकाने में प्रजा को कठिनाइयों को झेलना पड़े । अतः इन राजाओं की नीति, मर्यादा, प्रेम, धर्म, निष्ठा आदि गुणों से वे देवता बन गये हैं । जब कि तुलसी के युग के

शासकों ने प्रजा को निचोडने का ही काम किया है । वे अपनी विलासिता, धर्मभ्रष्टता, प्रजा के प्रति अपनी अनुदारता आदि से दुष्ट शासक के रूप में प्रकट हुए हैं ।

2.1.3 अमात्यमण्डल और अष्टऋषिमंडल :-

रामायण काल में मंत्रीमंडल और अष्टऋषियों का मंडल रहता था । राजा उन्हीं को मंत्री नियुक्त करते थे, जो विद्वान होने के साथ-साथ विनयशील, सज्जन, कार्यकुशल, महात्मा, शस्त्रविद्या के ज्ञाता, सुदृढ़, पराक्रमी, यशस्वी, राजकार्यो में सावधान, राजा की आज्ञा के अनुसार कार्य करनेवाला तेजस्वी आदि गुणों से युक्त हो।[15] मंत्रियों में राजसभा में निश्चित की गई मंत्रणा को गोपनीय रखने की पूर्ण शक्ति थी मंत्रसंवरणे शक्ता ।[16] राजा के सच्चे सलाहकार के रूप में अष्टऋषिमंडल रहता था । यदि ऋषिमंडल नैतिक मूल्यों को तोड कर कोई आज्ञा राजा को दे तो उनका अस्वीकार किया जाता था । राम के वन जाने पर वशिष्ट ने राम को अयोध्या लौटने की आज्ञा दी, परंतु पितृ आज्ञा का उल्लंधन करके अयोध्या आने का आदेश राम ने अस्वीकार कर दिया ।[17] इस प्रकार शाश्वत नीतिमूल्यों के आधार पर ही रामराज्य चलता था ।

तुलसीदास ने अपने युगीन मंत्री आदि के विषय में अपने विचारों को प्रकट करते हुए कहा है कि राजा के लिए योग्य धीमान, निर्भय एवं विश्वास पात्र मंत्रियों का होना अतिव आवश्यक है। गुणी मंत्रियों के हाथ में राज्य सौंप कर राजा निश्चिन्त हो जाता है।[18] इसके विपरित यदि मंत्रिगण चापलूस और डरपोक हो तो राज्य नष्ट हो जाता है।[19] यदि वे उत्तम मंत्रणा न देकर कुमंत्रणा देते हैं तो इनका परिणाम विनाशक होता है।[20] दोहावली में एक रुपक के माध्यम से तुलसीदास ने मंत्री और अधिकारियों का वर्णन किया है -

रसना मंत्री दसन जन तोष पोष निज काज ।
प्रभु कर सेन पदादिका, बालक राज समाज ।।[21]

अर्थात रसना मंत्री है, जिसका काम प्रजा को संतुष्ट करना है, दाँत अधिकारीगण है, जिनका नाम प्रजा का पोषण करना है, हाथ पैर पदाति आदि सेना है जिनका काम

रक्षण करना है, समाज बालक है जिसको संतुष्ट रखना, पोषण करना और रक्षण करना राजा का धर्म है । तुलसीदास युगीन शासन तंत्र में दिवानेआला, खानेसामान, शाही बखशी, मुख्य काजी, मुख्य सरदार, मोहतसिब, मीर आतिश, दरोगा-ए-डाक-चौकी आदि मंत्री या अधिकारी गण थे । इनमें राजकोश दिवाने आला के अधीन था। शाही हरम का प्रबन्ध खानेसामान के पास था । सेना का वेतन व हिसाब-किताब का कार्यालय शाही बख्शी के अधिकार में था । कानूनी विभाग मुख्य काजी सम्भालता था । धार्मिक दान दक्षिणा की जिम्मेदारी सम्भालनेवाले को मुख्य सरदार कहते थे । प्रजा के चरित्र और व्यवहार की देख रेख रखने वाला मोहतसिब था । तोपखाने का अधिकारी मीर आतिश के नाम से जाना जाता था । दरोगा ए डाक चौकी सूचना और डाक विभाग का कार्य सम्भालता था । अकबर ने अपने काल में हिन्दुओं को शासन प्रबन्ध में स्थान दिया था । उन्हें उच्च्व पदों पर भी नियुक्त किया था । उन्होंने सेनाध्यक्ष राजा भगवानदास और मानसिंह को तथा उनके अर्थसचिव टोडरमल को नियुक्त किया था । इनकी सहायता से ही कई मुसलमानी प्रान्तों को अकबर ने अपने अधीन किया था । संक्षेप में मंत्री और अधिकारी गण नीतियुक्त, व्यवहार कुशल, सद्‌गुणी तथा तटस्थता आदि गुणों से युक्त होगा तो ही राजा अपने शासन का विकास कर सकेगा और समाज को सुव्यवस्थित शासन देगा ।

रामायणयुगीन मंत्रीगण अपने नीतियुक्त व्यवहारों से राजा और प्रजा के सुखों के लिए प्रयत्नशील रहते थे । सांसारिक भोगों को छुए बिना महात्मा की भांति अपना जीवन व्यतीत करते हुए देश के उत्थान में ही उनका ध्यान रहता था । वह कठिन परिस्थितियों में भी अपने धर्म को छोडते नहीं थे । तुलसीयुगीन थोड़े-से मंत्री और अधिकारियों को छोड़कर देखा जाये तो सब कोई विलासी हो गये थे। विलासमय जीवन जीने के लिए आवश्यक उपकरणों की पूर्ति के लिए आम प्रजा को लूँट भी लेते थे। नीति, धर्म, सहृदयता, साधुता जैसे शब्द अपने शब्दकोश में से लगभग निकाल ही दिये थे । देश का उत्थान या पतन हो उससे उसे कोई लेना देना नहीं था । रामायण युग में राजा के न होने पर शासन का कार्यभार पुरोहित सम्भालते थे । जबकि तुलसीदास के

युग में वही पुरोहित एक सामान्य ब्राह्मण बनकर रह गया था ।

2.1.4 युद्ध और सेना :-

वाल्मीकि युगीन समय में अपनी सीमा विस्तार के हेतु आर्यो और अनार्यो के बीच निरंतर युद्ध होते थे । शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए बड़े सैन्य को रखा जाता था। सेना को चार भागों में विभाजित किया जाता था 1. पदाति (पैदल) 2. घुड़ सवार 3. रथी और 4. गजारोह। नगर की चहुँ और खाइयाँ बनायी जाती थीं जिससे शत्रु को आक्रमण करने में मुश्किलें हो ।[22] खाइयों पर लकडी के पुल रखे गये थे ।[23] शत्रु सेना के आने पर पुलों को यंत्रो के द्वारा डूबा दिया जाता था । चार प्रकार के अभेद्य दुर्ग रखे जाते थे । प्रत्येक दुर्ग पर महाभयानक योद्धाओं को रखा जाता था । उन योद्धाओं के पास खतरनाक शस्त्र अस्त्र भी रहते थे । युद्ध में सैनिक मद्यपान भी करता था । युद्ध में मिली संपत्ति का सैनिको में बँटवारा होता था । अपने समूह से बिछुडकर जो असहाय हो गया हो और जिसके आगे पीछे कोई न हो अथवा युद्ध से हार कर भागा जा रहा है, ऐसे पुरुषों का वध नहीं किया जाता था । युद्ध में किसी स्त्री का भी वध नहीं होता था। अधिकतर युद्ध स्त्री या सार्वभौम सत्ता के लिए होते थे । कभी-कभी पडोशी राजा को दण्ड देने हेतु भी युद्ध किया जाता था । गुप्तचरों और दुतों का वघ नहीं होता था।[24] सैनिकों को वेतन और भत्ता दिया जाता था । बलवान योद्धा और सेनापतियों की नियुक्ती की जाती थी और उनको संतुष्ट रखने का सदैव प्रयत्न किया जाता था। शाम, दाम और भेद की नीति असफल होने पर ही युद्ध किया जाता था। शत्रु पर विजय प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े सैन्यों को रखा जाता था। खर की सेना में चौदह हजार योद्धा थे।[25] युद्ध में तलवार, भाले, धनुष, गदा, वज्र, फरसे आदि का प्रयोग होता था। ब्रह्मास्त्र, शतध्नी या अन्य दैवशस्त्रों का उल्लेख भी मिलता है। लंकापति रावण ने भी विशाल सेना रखी थी। लंका के दुर्ग और सुरक्षा को देखकर हनुमान भी चकित रह गये थे। राम ने जब लंका पर आक्रमण किया तब उनके पास भी भालू और वानरों की विशाल सेना थी। संक्षेप में उस काल में राजा अपने राज्य की सुरक्षा के लिए सदैव

चौकन्ना रहता था। शांति के प्रत्येक मार्ग बन्द होने के बाद आवश्यकतानुसार युद्ध होते थे।

तुलसीदास युगीन समय में अधिकत्तर युद्ध अपने शासन विस्तार के लिए हुए हैं । देश के अधिकांश हिस्से में मुगलसत्ता का अमल रहा है । राजपूत राजाओं ने समय समय पर मुगल सत्ता से युद्ध किया था । अकबर के समय तक राजपुतों का संघर्ष चलता रहा, लेकिन अकबरने युद्ध और उदारता से राजपुतों की ताकत खत्म कर दी । पठानों ने भी कुछ समय तक मुगलों से संघर्ष किया और शेरशाहने मुगल सम्राट हुमायूँ को एक बार हिन्दुस्तान से बाहर खदेड़ दिया था । लेकिन हुमायूँ ने फिर से लाहौर, पंजाब, दिल्ली और आगरा पर अपनी सत्ता कायम कर ली । उसके बाद अकबर ने पानीपत के युद्ध के बाद द्वितीय युद्ध की जीत से विजय अभियान शुरु किया और मुगल साम्राज्य का विस्तार किया । अकबर के बाद जहाँगीर-नूरजहाँ के शासन का काल है । अकबर के समय में ही जहाँगीर ने विद्रोह किया था । युद्ध के पश्चात् मुस्लिम शासक हिन्दू जनता पर अत्याचार करते थे । जिससे हिन्दू जनता मुस्लिम शासकों से प्रसन्न नहीं थी।

तुलसीदास युगीन युद्धों की सेना में पाँच मुख्य अंग थे 1. घुडसवार 2. हाथी 3. पैदल 4. तोपची और 5. जलसेना। सैनिकों को समय पर वेतन नहीं मिलता था, जिससे वह प्रजा को परेशान करके धन ले लेते थे । वर्षाकाल में युद्ध नहीं होता था । राजा अपने निवासस्थान पर सैनिकों से काम करवाता था । सैनिकों के द्वारा स्त्रियों का अपमान और उनकी इज्जत को लूँटी जाती थी । इस युग में रात को भी युद्ध होते थे और दुतों का वध भी कर दिया जाता था ।

इस प्रकार, वाल्मीकि युग शांत और समृद्ध था । शासन विस्तार हेतु थोड़े-बहुत युद्ध होते थे । तुलसीदास युगीन युद्धों का मुख्य कारण शासक की साम्राज्य लिप्सा रहा है। अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए आंतरिक और बाह्य अनेक प्रकार के युद्ध हुए । विदेशी आक्रमणकारियों ने भी बार-बार आक्रमण किये । रामायण कालीन युद्ध नियमों में आबद्ध होकर होते थे। असहाय, अनाथ सैनिकों को वध किये बिना छोड़ दिया जाता

था। शांति के सभी द्वार बन्द होने पर अंत में युद्ध होता था । युद्ध में दुतों और स्त्रियों का वध वर्जित माना जाता था । तुलसीदास युगीन युद्धों में कोई नियम नहीं रह गया था। युद्ध रात में होता रहता था और असहाय, घायल सैनिक, दुतों और स्त्रियों का वध कर दिया जाता था । सैनिकों के द्वारा स्त्रियों के शील को भी लूँटा जाता था । युद्ध में तोपों का प्रयोग प्रारंभ हो चूका था । वाल्मीकि युगीन समय में सैनिकों को नियमीत वेतन और अच्छा कार्य करने पर पुरस्कार दिया जाता था, जिससे संतुष्ठ सेना निर्दोष प्रजा को परेशान नहीं करती थी। जबकि तुलसीदास के युग में वेतन समय पर नहीं मिलने से असंतुष्ट सैनिक अपनी ताकत के बल पर लोगों को लूँटते रहते थे ।

2.2 सामाजिक परिस्थिति :-

साहित्य समाज की अनुभूतियों, आशाओं, आकांक्षाओं, घात-प्रतिघातों एवं वेदनाओं की मूल्य परक मार्मिक अभिव्यक्ति होता है । साहित्यकार अपने युग से भिन्न नहीं रह सकता । उनके साहित्य मे अपना समाज एवं प्रवर्तमान विविध विचार धाराएँ देशकाल के अनुरूप प्रकाशित होती है । वाल्मीकि एवं तुलसीदास के महाकाव्यों के चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन करने से पहले यह आवश्यक है कि हम उन दोनों महाकवियों की युगीन सामाजिक परिस्थिति को देखने का विनम्र प्रयास करे ।

2.2.1. वर्णव्यवस्था :-

रामायण कालीन समाज वर्णव्यवस्था पर अवलम्बित था । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र चार वर्ण थे । चारों वर्णो के लोग अपने-अपने कार्यो में रत रहते थे । किसी को भी अपने कर्म का असंतोष नहीं था ।

ब्राह्मण : क्षत्रिया, वैश्वाः शुद्रा लोभविवर्जिता : ।
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टा : स्वैरेव कर्मभिः ।[26]

ब्राह्मण अपने कर्म में रत रहते थे । इन्द्रियों को वश में रखकर दान, स्वाध्याय, यज्ञ, व्रत, नियम का पालन, अनुष्ठान आदि करते थे । रामायण काल में कोई ऐसा ब्राह्मण नहीं मिलता जो असत्यवादी या नास्तिक हो ।[27] वैश्यों क्षत्रियों की आज्ञा का

पालन करते थे । जबकि शूद्र अपने कर्तव्य का पालन करते हुए उपर्युक्त तीनों वर्णो की सेवा करता था ।[28] राज्य के कोई भी उत्सव में चारों वर्णो के लोगों को आमंत्रित किया जाता था । अश्वमेघ यज्ञ के समय दशरथ ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र को आमंत्रित किया था ।[29] सभी वर्णो के लोगों के लिए रहने की अलग अलग व्यवस्था की जाती थी । ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के ही उपनयन संस्कार होते थे । इसीलिए उनको द्विज भी कहा जाता था । चारों वर्णो के लोग प्रसन्न, धर्मात्मा, सत्यवादी और अपने-अपने धन से संतुष्ट रहनेवाले थे ।

तुलसीदास युगीन समाज अनेक विसंगतियों, अभावों और राजसत्ता एवं धर्मसत्ता के अत्याचारों से पीड़ित था । मुस्लिम शासक अपनी सत्तालिप्सा और कामलिप्सा की पूर्ति हिन्दू जाति से करवाते थे । समाज में चारों और घोर व्यभिचार फैला हुआ था। मुसलमानों के अत्याचारों में जैसे-जैसे वृद्धि हुई, हिन्दू समाज संकीर्ण होता गया। उसके जाँति पाँति के बन्धन ओर भी कड़े होते गये और अपने तथाकथित महानता की रक्षा के लिए विभिन्न कर्मकाण्डों में उलझने लगी । ब्राह्मणों को छोड़कर अन्य सभी जातियाँ शूद्र मानी जाने लगीं । इस तरह समाज हिन्दू मुस्लिम दो मुख्य धर्मो के साथ ही कई जातियों-उपजातियों में बँट गया । वर्णाश्रम को लेकर तुलसीदास ने लिखा है कि -

बरन धर्म नहिं आश्रम चारि । श्रुति विरोध रत सब नर नारी ।[30]

तुलसीदासने कई जगह पर वर्णाश्रम के ह्रास पर प्रकाश डाला है ।[31]

2.2.1.1. ब्राह्मण :-

रामायण युगीन समाज में ब्राह्मणों का वर्चस्व था । यज्ञादि कार्य ब्राह्मणों से संपन्न होता था । उस युग के सभी ब्राह्मण सत्यवादी और विविध शास्त्रों का ज्ञान रखनेवाले विद्वान ब्राह्मण थे । तीनों वर्गो के लोग ब्राह्मणों का आदर करते थे । राज-दरबारों में भी ब्राह्मण के लिए विशेष स्थान था । ब्राह्मणों को पीड़ित करनेवाले को कठोर से कठोर दण्ड़ दिया जाता था । राजा दरबार में आने पर राजा समेत अपने स्थान से उठकर ब्राह्मण का आदर सत्कार करते थे । प्रत्येक राजा अपने मंत्री मंडल में ब्राह्मणों को

रखता था । दशरथ राजा के मंत्रीमंडल में सुयज्ञ, जाबालि, काश्यप, गौतम, दीर्धायु, मार्कण्डेय और विप्रवर कात्यापन थे । वशिष्ठ और वामदेव ये दोनों महर्षि दशरथ राजा के पुरोहित थे ।[32] ब्राह्मण विद्या अध्ययन और पौरोहित्य कर्म द्वारा अपनी आजिविका को चलाते थे । राज्य पर संकट के समय में राजपूरोहित का कार्य बढ़ जाता था। दशरथ की मृत्यु के पश्चात वशिष्ठ ने मंझधार में फॅसी दशरथ परिवार रूपी नौका को सम्भाल लिया था। उत्सव के प्रारंभ से पहले राजा ब्राह्मणों की पूजा करता था । राजा ब्राह्मणों को देवता का दरज्जा देता था । अश्वमेध यज्ञ पूर्व दशरथराजा सुयज्ञ, वामदेव, जाबालि, काश्यप, वशिष्ठ तथा श्रेष्ठबाह्मणों की पूजा करते हैं।[33] फिर उनकी आज्ञा के अनुसार यज्ञोत्सव परिपूर्ण होता था । संक्षेप में वाल्मीकि युग में ब्राह्मण को सर्व श्रेष्ठ स्थान दिया जाता था । तीनों वर्णों के लोगों पर ब्राह्मणों का पूरा अधिकार रहता था । कोई भी शुभा-शुभ कार्य ब्राह्मणों के बिना पूरा नहीं होता था ।

तुलसीदास के युग में भी ब्राह्मण का सन्मानीय स्थान था । उत्तम गुणों वाले ब्राह्मणों को देवता तुल्य माना जाता था । गुणहीन ब्राह्मण निंदनीय था -

सोचिअ विप्र जो वेद विहीना ।
तजि निज धरमु विषय लयलीना ।।[34]

इस युग में नीतिभ्रष्ट ब्राह्मण भी थे, जो अन्धविश्वासों को दृढ़ कराते थे । जिससे उनको धन और यश दोनों प्राप्त हो सकें । जब मंदिरों के सामने नृत्यांगनाओं का अर्धनग्न नृत्य होता था, तब ब्राह्मण उन्हें धर्म का एक भाग दिखाकर नृत्यों को मनभेर देखते थे । वेद, उपनिषद उनके लिए ज्ञानमार्ग न रहकर मात्र आजिविका का साधन था। ''द्विज-श्रुति बेचक''।[35] तुलसी के युग में अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए ब्राह्मणों की हत्या भी होती थी। ''कोडि लागि लोभ बस करहिं विप्र गुरु घात।''[36] ब्रह्म ज्ञान की बातें करनेवालें अन्य वर्ण के लोगों ने ब्राह्मणों के पास से यह अधिकार भी छीनना चाहा कि ब्राह्मण ही ब्रह्म ज्ञान दे सकता है । उन्होंने यह कहकर विवाद किया कि जो ब्रह्मज्ञान जानता है वह ब्राह्मण है । ऐसा कहकर वह ब्राह्मणो के साथ शत्रु-सा व्यवहार करते थे ।[37] उस युग में अधिकतर लोग ब्राह्मणों के विरोधी थे । ब्राह्मण का

चिन्ह जनेऊ मात्र रह गया था । -

द्विज चिन्ह जनेउ उधार तपी ।[38]

तुलसीदास ने ब्राह्मणों की बड़ी प्रशंसा की है। उनके महात्म्य का बार-बार उल्लेख किया है । वे ब्राह्मण का आदर्श ऊँचा समझते थे, परोपकार ही उनका लक्ष्य मानते थे ।

2.2.1.2. क्षत्रिय :-

वाल्मीकि युग में ब्राह्मणों के पश्चात् किसी का स्थान है, तो वह है क्षत्रिय । ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र की रक्षा करते-करते अपने प्राणों को दाँव पर लगा देने वाले क्षत्रिय समाज का इस युग में महत्वपूर्ण स्थान है, क्षत्रिय की विशेष पहचान थी उसकी अपनी शौर्यगाथा । उनके लिए अपने अपमान को सहना असम्भव था । अपने जीवन पर लगे कलंक को धोने के लिए अपने प्राणों को भी न्यौछावर कर देते थे । रावण द्वारा सीता हरण रामके जीवन का सबसे बड़ा कलंक था, जिसको मिटाने के लिए राम बन्दरों और भालुओं की सहायता से लंका पर आक्रमण करते हैं और रावण को उनके ही घर में जाकर मृत्यु दण्ड दिया और कहा कि -

गतोडस्म्यन्तममर्वस्य घर्षणा सम्प्रमार्जिता ।

अवमानश्च शत्रुश्च युगपन्निहतौ मया ।।[39]

अर्थात अब मेरे अमर्षका अन्त हो गया । मुझ पर जो कलंक लगा था, उसका मैंने मार्जन कर दिया । शत्रुजनित अपमान और शत्रु दोनों को एक साथ ही नष्ट कर डाला । उस काल के क्षत्रिय अस्त्र-शस्त्रों के ज्ञाता थे और युद्ध होने पर मृत्युपर्यंत लड़ते रहते थे ।[40] राज्य के निर्वाह के लिए प्रजा से कर लिया जाता था और उसी करवसूली की जिम्मेदारी क्षत्रियों पर थी । करवसूली में प्रजा दुःखी न हो इसका उसे सदैव ध्यान रहता था । अपनी सेना के साथ पूरे देश में विचरण करते हुए भी देश और प्रजा की सुरक्षा का ध्यान उनका मुख्य उद्देश्य रहता था । उसकाल में क्षत्रियों के लिए मृगया करने का अधिकार था।[41] लोकाचार से भ्रष्ट होकर लोकविरुद्ध आचरण करनेवालें

को क्षत्रिय की ओर से दण्ड़ दिया जाता था । इसीलिए वालीवध के पश्चात् राम कहते हैं कि पाप करनेवालों को क्षमा नहीं किया जाता, क्योंकि मैं उत्तम कुल में उत्पन्न क्षत्रिय हूँ।[42] युद्ध करते करते मृत्यु का वरण करना क्षत्रिय के लिए दुर्लभ बताया जाता था । इसीलिए रावण की मृत्यु पर विलाप करते हुए विभिषण को राम कहते है कि ''क्षत्रियों निहतः संख्ये न सोच्य इति निश्चयः।''[43] अर्थात् क्षत्रियवृति से रहनेवाला वीर पुरुष यदि युद्ध में मारा गया हो तो वह शोक के योग्य नहीं हैं, यही शास्त्र का सिद्धांत है । रामायण कालीन क्षत्रिय सभी-कर्मो का सफलतापूर्वक निर्वाह करते थे । अपने वैयक्तिक सुख और जीवनादि को बलिदान देनेवाले क्षत्रिय समाज में से ही राजा चूना जाता था ।

तुलसीदास के युग में मुगलशासन स्थापित होने से क्षत्रियों की बची खूची ताकात भी नष्ट हो गई थी । क्षत्रियों ने समय-समय पर उन विदेशी आक्रान्ताओं का डटकर मुकाबला किया था पर वह नहीं के बराबर था । इस युग के अधिकतर क्षत्रिय राजा धर्मरक्षक, शूरवीर और उच्चचारित्रिक गुणोवाले थे । अपने प्राणों का बलिदान देकर वह शरणागत की रक्षा करता था ।[44] अपने धर्म से विपरित चलनेवाले क्षत्रिय भी इसी युग में थे, जो शाम, दाम और भेद की नीति में अक्सर दण्ड को लेकर लोगों को दण्डित किया करते थे। इसी स्थिति को तुलसीदास ने कवितावली में कई स्थलों पर प्रकट किया है।[45] क्षत्रिय अपने पद या सत्ता का दुरुपयोग करके आम लोगों को परेशान करते थे। विलासमयी जीवन को जीनेवाला इस युग का क्षत्रिय, ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र इन तीनों की सेवा करने का अपना धर्म भूल गया था।

2.2.1.3. वैश्य :-

रामायण कालीन वैश्यों को वेद का अध्ययन करना तथा उपनयन संस्कार करने का अधिकार प्राप्त था । कृषि, पशुपालन, वाणिज्य आदि कार्य खूबी के साथ करते थे । जिससे समाज की आर्थिक स्थिति अच्छी थी । खेत जोतने के लिए समर्थ पशुओं की अधिकता थी । उस समय खेती के लिए वर्षा के जल पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था, परंतु नदियों के जल से ही सिंचाई हो जाती थी । वैश्यों पर आये अनिष्टों का निवारण

कराके ईष्ट की प्राप्ति राजा के द्वारा कराई जाती थी । वैश्यों के भरण पोषण की जिम्मेदारी राजा की रहती थी ।[46] कृषि, गोपालन तथा व्यापार का व्यवसाय वैश्यों के लिए मुख्य माना जाता था । कृषि और व्यापार से रामायणकालीन देश सुखी और उन्नतिशील था ।[47] वैश्यों पर राजा की कृपा दृष्टि सदैव बनी रहती थी ।

तुलसीदास ने क्षत्रिय की भांति वैश्य को भी लोकोपकारवाली दृष्टि से देखा है । उस युग में वैश्यों के उच्च और मध्यम दो वर्ग थे । उच्चवर्ग के वैश्यों के पास अधिकांश संपति थी और विलासमय जीवन जीते थे जबकि दूसरे वर्ग के लिए तुलसीदास ने लिखा है कि प्रजा का कोई वर्ग ऐसा नहीं था जो दारिद्रय दानव का ग्रास न बना हो । पेट की आग को शांत करने के लिए लोग ऊचे-नीचे तथा धर्म, अधर्म का भी सहारा लेते थे । राज्य की आर्थिक स्थिति का सुधार व्यापार और कृषि से होता है । कृषि के लिए सिंचाई का अधिकतः आधार वर्षाकाल पर रखना पड़ता था । इस युग में बार-बार अकाल होने से कृषकों की दशा दिनप्रतिदिन बिगड़ती जा रही थी । लोग भूख से मर रहे थे । शासक वर्ग के द्वारा नये-नये कर लादे जाते थे । अधिकारी व कर्मचारी गण पूर्ण विलासी बन गये थे । अपनी इच्छाओं की तृप्ति के लिए आम लोगों को वह लूँट भी लेते थे । अतः वैश्यों के लिए खुल के व्यापार करना भी मुश्किल हो गया था । इस युग की दयनीय आर्थिक दशा का तुलसीदास ने कवितावली में कई जगह वर्णन किया है।[48] अतः तुलसीदास के युग में वैश्यों की दशा सम्मानीय नहीं थी।

2.2.1.4. शूद्र :-

रामायण कालीन चार वणों में से चौथा वर्ण शूद्र का है । बाह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णों की सेवा करने की जिम्मेदारी शूद्रों की थी । उसे अपने विवाह अपनी ही जाति में करना पड़ता था। शूद्र शिल्प द्वारा धनोपार्जन करते थे । रामायण काल में शूद्रों को अस्पृश्य नहीं माना जाता था । वनगमन के समय निषादराज गुह को राम अपनी गोल गोल भुजाओं से आलिंगन करते दिखाई देते हैं ।[49] इसी प्रकार शबरी के मिलने में भी राम के विशाल हृदय का दर्शन होता है, जब वह शबरी को तपोधने

कहकर सम्बोधित करते है ।[50] शूद्र के प्रति सहानुभूति रखनेवाले इस युग में वर्णव्यवस्था का संकुचित रूप भी दिखाई देता है । जैसे शूद्र योनि में उत्पन्न शम्बूक स्वर्गलोक में जाने के लिए तप करता था । शूद्र को सदेह स्वर्ग में जाने का कोई अधिकार नहीं है, ऐसा कहकर रामने अपनी तलवार से तपस्वी शम्बूक का वध कर दिया था ।

तुलसीदास वर्णाश्रम धर्म के पूर्ण प्रतिष्ठापक थे । 'रामचरित मानस' में चित्रित निषाद, शबरी, भील आदि पात्रों के चित्रण से यह स्पष्ट होता है कि तुलसीदास के हृदय में निम्नवर्गों के प्रति उदारता थी । इस युग में शूद्रों को यज्ञोपवित धारण करने का अधिकार नहीं दिया गया था ।[51] इतना ही नहीं, शूद्र जाति का कोई भी व्यक्ति वेद भी नहीं पढ सकता था । कोई शूद्र पढ़लिखकर ज्ञानोपदेश करता है तो ब्राह्मणों के द्वारा उनका विरोध होता था । तेली, कुम्हार, चाण्ड़ाल, भील, कोल और कलवार आदि नीचे वर्ण के माने जाते थे।[52] शूद्रों के लिए जप, तप और व्रत करना अधर्म माना जाता था।[53] साथ ही यह भी सच है कि उस युग में शूद्र विविध धर्म की दीक्षा लेकर ब्राह्मणों से अपनी सेवा करवाते थे और अपना प्रभाव दिखाने के लिए ब्राह्मणों को फटकारते थे।[54] वाल्मीकि के युग में कर्म के आधार पर होने वाला जाति निर्धारण तुलसी के युग तक आते-आते जन्म के आधार पर होने लगा । परिणाम यह निकला कि निम्न वर्ग की दशा दयनीय बन गयी।

इस प्रकार रामायण कालीन समाज में चार वर्ण थे और चारों वर्ण के लोग अपने-अपने कर्मो से खुश थे । चारों वर्ण के लोग साथ मिलकर उत्सव मनाते थे । पूरा समाज वर्णव्यवस्था पर आधारित था । तुलसीदास के युग में वर्णाश्रम व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई थी । सभी लोग अपने धर्म को भूल चूके थे । पूरे समाज में भारी मात्रा में व्यभिचार फैला हुआ था । वाल्मीकि युग में जहाँ कर्म से जाति का निर्धारण होता था वहाँ तुलसीदास के युग में जन्म से जाति निश्चित होने लगी थी । परिणामतः पूरा देश जाति-उपजाति में बँट गया था।

वाल्मीकि युग में ब्राह्मण तीनों वर्णो में श्रेष्ठ माना जाता था। राजा और प्रजा में ब्राह्मणों का आदर होता था । ब्राह्मण को देवता से भी ऊँचा दरज्जा दिया जाता था ।

जबकि तुलसीदास के युग में बाह्मण सामान्य व्यक्ति के रूप में रह गया था । देवता का दरज्जा प्राप्त करनेवाले ब्राह्मण को लोग स्वार्थ से मार भी देते थे । वाल्मीकि युग में वेदों का अभ्यासी, तीनों वर्णो का पूज्य ब्राह्मण तुलसीदास के युग में जनेऊ धारण करनेवाला नाम मात्र का ब्राह्मण बनकर रह गया था । रामायण कालीन ब्राह्मण राज्य पर घिरे संकट के बादलों को हटाने की क्षमता रखता था वही तुलसीदास के युग में विद्या को बेचकर अपने जीवन का गुज़ारा करनेवाला ब्राह्मण बन गया था । रामायण युगीन ब्राह्मण जिसके मुँह से वेदवाणी सरिता की भांति निरंतर निःसृत होती रहती थी और भूल होने पर जो राजा को भी दण्ड देने का सामर्थ्य रखता था, उनको तुलसीदास के युग में निम्नवर्ग के लोग ब्रह्मज्ञान सुनाने लगे । इतना हीं नहीं, उनको आँखें दिखाकर धमकाने भी लगे थे।

रामायण युग के क्षत्रिय राज्य और प्रजा की रक्षा करने में ही खुद को धन्य समझते थे । क्षत्रिय धर्म पर चलते हुए पतित व्यक्तियों को दण्ड देना अपना कर्तव्य समझते थे । अपने कर्मो से वे संतुष्ट थे । तुलसीदास युग में क्षत्रिय धर्म से भटक गये थे । प्रजा पर अत्याचार करना और विलासी जीवन जीना अपना मुख्य ध्येय था । वाल्मीकि युगीन क्षत्रिय कठोरता दिखाये बिना प्रजा से कर वसूली करते थे वहाँ तुलसीयुग में क्षत्रिय कर वसुली में प्रजा पर अत्याचार करते थे । वाल्मीकि युग में ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र का आदर प्राप्त करनेवाले क्षत्रियों तुलसीदास के युग में अपना प्रभाव पूर्णतः खो बैठे थे ।

वाल्मीकि युगीन वैश्य सुखी और सम्पन्न था । उसे शासक वर्ग का सम्पूर्ण सहकार प्राप्त था । तुलसीदास के युग में वैश्य दरिद्रता से घिरा हुआ था । शासक वर्ग के अनुचित व्यवहार के कारण व्यापार या कृषि में वह विकास नहीं कर सका था । रामायण कालीन वैश्य अपने कर्म से खुश था, परंतु तुलसीदास के युग में वही वैश्य अपनी विर्धनता से तंग आकर ऊँचा-नीचा कर्म करने लगा था । इस प्रकार रामायण के काल में वैश्यों में सुख, समृद्धि, सत्यवादिता, सहृदयता आदि दिखाई देता है, तो तुलसीदास के युग में वैश्यों में दुःख दरिद्रता, ऊँचे नीचे कर्म करना, अधर्मता आदि से

गिरा हुआ दिखाई देता है ।

रामायण युगीन समाज में शम्बुक की घटना को छोड़कर शूद्रों की स्थिति अच्छी थी । बाह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णो की सेवा करने वाला शूद्र वर्ग अपने कर्मों से खुश था । कर्म के आधार पर जाति का निर्धारण होता था । तुलसीदास के युग में वर्णाश्रम व्यवस्था लगभग तूट चूकी थी । जन्म के आधार पर जाति का निर्धारण होने लगा था । वाल्मीकि युगीन समाज में शूद्रों के साथ अस्पृश्यता का व्यवहार नहीं किया जाता था । निषादराज गुह को गले लगाते हुए राम दिखाई देते हैं, जबकि तुलसीदास के युग में वही शूद्रों को अस्पृश्यता भरे व्यवहार से दयनीय स्थिति में रख दिया था।

2.2.2. आश्रम व्यवस्था :-

रामायण काल में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास चार आश्रमों की व्यवस्था थी । ब्रह्मचर्य का परिपालन उपनयन संस्कार से प्रारंभ होता था। तत्पश्चात् ऋषिआश्रमों में रहकर विद्याभ्यास करना तथा ब्रह्मचर्य का पालन करना होता था। आचार्यों के निश्चित् किये गये प्रत्येक नियमों का सादर स्वीकार अभ्यासी को करना पड़ता था। ब्रह्मचर्य की समाप्ति के पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश होता था । गृहस्थाश्रम में यज्ञ दान आदि कर्मो को करते हुए धनोपार्जन करना होता था । उनके पश्चात् वानप्रस्थ और सन्यास में अपने मौक्ष के लिए तप का मार्ग लिया जाता था। चारों आश्रमों के माध्यम से समाज में सुन्दर समाज व्यवस्था बनाने का यत्न रहता था। वाल्मीकि युग में इसी आश्रम व्यवस्था का पूर्णतः परिपालन किया जाता था इसी कारण वाल्मीकि युगीन समाज में सुंदर समाज व्यवस्था का दर्शन हमें होता है ।

समाज की हीनावस्था से तुलसीदास का हृदय पीड़ित था । समाज की सुव्यवस्था के लिए आश्रमधर्म आवश्यक है, परंतु अपने युग में आश्रमव्यवस्था पूर्णतः नष्ट हो गई थी। लोगों में से मर्यादा चली गयी और प्रजा भ्रष्ट हो गई थी । इसी को प्रकट करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि –

आश्रम बरन-धरम विरहित जल लोक वेद मरजाद गई है।

प्रजा पतित पाखंड पाप रत अपने अपने रंग गई है ।[55]

इस युग में ब्रह्मचर्यादि आश्रमों में रहकर अपने जीवन को व्यतीत करना लोगों ने छोड दिया था । अधर्म के भय से भयभीत होकर वर्णाश्रम धर्मों में भगदड़ मच गई थी।[56] वर्णविभाग और आश्रमधर्म सब मिट गये थे ।[57] स्त्री के मरने पर अथवा संपतिनष्ट होने पर लोग संन्यासी हो जाते थे ।[58] लोग स्वार्थी और प्रपंची हो गये थे और आश्रमधर्म को छोड़कर अपनी ईच्छा से जिन्दगी जीते थे।

इस प्रकार रामायण कालीन समाज में चारों आश्रम व्यवस्था और वर्णव्यवस्था का लोग अनिवार्य रूप से पालन करते थे । जिससे इस युग में सुंदर समाज व्यवस्था दिखाई देती है । लोग बह्मचर्य, व्रत, उपासना, दान यज्ञ आदि कर्म करते हुए जीवन जीते थे । तुलसीदास के युग में आश्रम व्यवस्था और वर्णव्यवस्था लगभग नष्ट हो चूकी थी । समाज तितर-बितर हो गया था । विविध सत्कर्मो से जीवन जीनेवाला रामायण युगीन समाज तुलसीदास के युग में धर्म-अधर्म, सत् असत्, ऊँचा या नीचा कर्म करता हुआ जीवन यापन कर रहा था । संक्षेप में वाल्मीकि युग की आश्रम व्यवस्था तुलसीदास के युग में पूर्णतः नष्ट हो गई थी ।

2.2.3. कुटुम्ब व्यवस्था :-

एक सुंदर कुटुम्ब का उदाहरण हमें रामायण कालीन समाज में मिलता है । उस युग में संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली थी और उसी संयुक्त कुटुम्ब में समाज के प्रति अपना कर्तव्य और उनका पालन कैसे करे सिखाया जाता था । परिवार पिता के आधिन रहता था। संतान मा-बाप की आज्ञा का पालन करते थे । माता-पिता का अपनी संतानों पर पूरा अधिकार रहता था । ज्येष्ठ पुत्र को ही उत्तराधिकारी के रूप में पसंद किया जाता था।[59] भाइयों के बीच में सुलेहभरा वातावरण था । बड़े भाई को पिता तथा भाभी को माँ की दृष्टि से देखा जाता था । छोटा भाई बडे भाई और भाभी के चरणों को छूते थे। मर्यादा की सीमा को देखते हुए देवर अपनी भाभी के मुख को निरखकर नहीं देखता था।[60] विवाह के विषय में संतानों को स्वतंत्रता नहीं थी । माँ-बाप के चुने हुए युवक-

युवति से विवाह करना पड़ता था । पुत्री के विवाह के लिए स्वयंवर रखे जाते थे, जिसमें धनुषभंग जैसी शर्तो को रखा जाता था। विमाता को माता का दरज्जा दिया जाता था । बहिन की रक्षा अपने प्राणों का बलिदान देकर भी की जाती थी । शूर्पणखा के लिए खर और दुषण ने अपने प्राणों की बली चढ़ायी थी । परिवार का कोई सदस्य अपराध करता है तो उनको दण्ड़ दिया जाता था। राम को वन और भरत को राजगद्दी माँगकर परिवार को तोडने वाली अपराधीनी कैकेयी का दशरथ ने त्याग कर दिया था।[61] सास-ससुर को माँ-बाप का दरज्जा दिया जाता था । भाई के आगे साम्राज्य तुच्छ माना जाता था। राम के वन जाने से भरत ने साम्राज्य का त्याग कर दिया था। भाई पर आये संकट को अपने प्राणन्यौछावर करके टालने का प्रयत्न किया जाता था । इस प्रकार श्रद्धा, प्रेम, विश्वास, त्याग, सेवा जैसे गुणों से भरी हुई रामायण कालीन परिवार व्यवस्था अद्वितीय थी। भारतीय संस्कृति का दर्शन हमें रामायण कालीन कुटुम्ब व्यवस्था में होता है।

तुलसीदास ने आदर्श चरित्रों के बल पर आदर्श संयुक्त कुटुम्ब प्रणाली का चित्रण किया है । घर के मुखियाँ के रूप में पिता को माना जाता था । पिता की आज्ञा को सभी पुत्र शिरोधार्य करते थे । तुलसीदास ने भरत के जरिए बंधुत्व भावना को प्रकट किया है, वह भाई के प्रेम पर साम्राज्य के राजत्व को ठुकरा देते हैं, यदि स्वीकार भी करते हैं तो मात्र एक सेवक के रूप में। लक्ष्मण अपनी पत्नी और माता को त्याग कर भ्रातृप्रेम में वनवासी बन जाते हैं । घर के मुखिया के रूप में तुलसीदास ने दशरथ को पुत्रप्रेमी पिता तथा सत्य की खातिर अपनी प्रियवस्तु की बलि चढानेवाले सत्यवादी के रूप में चित्रित किया है । इसके साथ ही इसी युग में साम्राज्य की प्राप्ति के लिए भाई-भाई की हत्या कर देता है।[62] विदेशी विधर्मी आक्रांताओं से कई स्त्रियाँ विधर्मी हो चली थी।[62] ऐसी स्त्रियों के सामने तुलसीदासने सीता के रूप में आदर्श नारी की कल्पना की है। उसी नारीत्व की खोज़ में हम आज भी भटक रहे हैं । अनेक पत्नी में रत रहनेवाले पुरुष के लिए भी तुलसीदास ने राम चरित्र के द्वारा एक पत्नी व्रतधारी का आदर्श स्थापित किया है।[63] उस युग में कुलवती और सती स्त्री को घर से निकाल देते थे और

अपनी ईच्छानुसार पुरुष दासी तक को अपने घर में बिठा देते थे । पुत्र अपने माता-पिता को तब तक घर में रखता था, जबतक उनका विवाह नहीं हो जाता था । घर में पत्नी के आजाने पर माता-पिता और अन्य कुटुम्बी शत्रु हो जाते थे और अपनी ससुराल प्यारी हो जाती थी। इस प्रकार 'मानस' में दशरथ परिवार का चित्रण करते हुए तुलसीदास ने लोगों के सामने एक नया पारिवारिक आदर्श रखने प्रयत्न किया है ।

सुदृढ़ समाज व्यवस्था के लिए ज़रुरी है कि उस समाज का परिवार मजबूत हो । रामायण कालीन समाज में आदर्श परिवार का दर्शन होता है । पिता की आज्ञा शिरोधार्य वनगमन करते हुए राम में और भ्रातृप्रेम के लिए अयोध्या के साम्राज्य को ठुकरादेनेवाले भरत में ह्रदय की जिस विशालता का दर्शन होता है, संभवतः तुलसीदास के युग में नहीं था । पिता की आज्ञा का उल्लंघन कर अपने ही भाई की हत्या करना इस युग में सामान्य था । वाल्मीकि युगीन परिवारों में पतिव्रता स्त्रियों का उदाहरण मिल जाता है जबकि तुलसीदास के युग में अधिकतः स्त्रियाँ स्वच्छंद हो गयी थी और स्वच्छंद वृत्ति धारण करनेवाली स्त्री परिवार को सुदृढ़ नहीं कर सकती । अतः इस युग में कुटुम्ब-व्यवस्था नष्ट हो चूकी थी। रामायण युगीन राम ने एक पत्नीव्रत कुटुम्ब के लिए सुंदर आदर्श स्थापित किया था। वही आदर्श तुलसीदास के युग में पूर्णतः नष्ट होता हुआ दिखाई देता है । रामायण कालीन कुटुम्ब व्यवस्था की बराबरी में तुलसीयुगीन कुटुम्ब व्यवस्था की गरिमा तेज़हीन दिखाई देती है।

2.2.4. शिक्षा :-

उच्चत्तम कुटुम्ब व्यवस्था की नींव में शिक्षण है । रामायण कालीन उत्तम कुटुम्ब व्यवस्था उस काल की शिक्षा पर निर्भर है । रामायण काल में प्राथमिक शिक्षा घर पर प्राप्त होती थी और उच्चशिक्षा के लिए तपोवन जाना पड़ता था । व्यक्ति को जिस शिक्षा की आवश्यकता है वह उसे तपोवन से प्राप्त होती थी । तपोवन अमीर या गरीब सबके लिए था । राजा या ब्राह्मण दोनों के पुत्र एक साथ बैठकर विद्याभ्यास करते थे। इन्द्रियों की शक्ति फैलने से रोकने के लिए ब्रह्मचर्य अनिवार्य था । आश्रम के विद्यार्थी अपना

काम स्वयं करते थे । शास्त्रों को कंठस्थ करने की प्रथा थी । पाठ को ऊँची आवाज से बोलकर नित्य स्वाध्याय करना पड़ता था । राम और लक्ष्मण दोनों विद्याभ्यास के लिए विश्वामित्र के आश्रम में गये थे और विश्वामित्र के सभी यज्ञों की सुरक्षा की थी । रामायण युग में स्त्रियों को भी नीतिभावना का विकास हो, ऐसी शिक्षा दी जाती थी । शास्त्रीय ज्ञान की अपेक्षा कोमार्यता, प्रेम, माधुर्य, भक्ति आदि की शिक्षा दी जाती थी, जिससे स्त्रीत्व का विकास हो सकें उस काल में नारी शिक्षा के प्रमुख संस्थान गृह एवं परिवार ही थे स्त्रियों के लिए अलग शैक्षणिक संस्थाएँ लगभग कहीं नहीं थी।[64] तपोवन में गुरु के द्वारा अपने शिष्य के प्रति उदार व्यवहार रहता था । विश्वामित्र सुबह राम को जगाते हैं उस समय का दृश्य कितना रम्य है।

कौशल्या सुप्रभा राम पूर्ण संध्या प्रवर्तते।

उतिष्ठ नरशार्दूल कर्तव्यं दैवमाहिकम।।[65]

अर्थात् तुम्हारे जैसे पुत्र को पाकर महारानी कौशल्या सुपुत्र जननी कहीं जाती है। यह देखो प्रातः काल की संध्या का समय हो रहा है, उठो और प्रतिदिन किये जाने वाले देव सम्बन्धी कार्य को पूर्ण करो। कहने का तात्पर्य यह है कि सुबह के रम्य प्रहर में गुरु के प्रेम भरे सम्बोधन से शिष्य के जीवन में कितना उत्साह और गुरु के प्रति आत्मीय भावना को जगाता होगा। इस प्रकार रामकालीन संस्कृति अद्वितीय थी। इसका मूल कारण तत्कालीन शिक्षण पद्धति थी । इससे व्यक्ति में शिस्तता नियमितता, गुरुजनों के प्रति आदर और नैतिक जीवन के विषय में अभिलाषा उत्पन्न होती थी ।

'रामचरित मानस' के भीतर शिक्षा का ज्योतिर्मय आदर्श प्रस्फुटित हुआ है । तुलसीयुगीन शिक्षा गुरुकुल शिक्षा प्रणाली थी । विद्यार्थी गुरुकुल में रहकर विद्याध्ययन करता था । शिक्षा देने का अधिकार केवल ब्राह्मणों के हाथ में नहीं था । किसी भी वर्ण का व्यक्ति शिक्षा देते हुए अपने आपको ब्राह्मण बताता था -

बादहि सूद्र द्रिजन्ह सन हम तुम्हते कछु घाटि ।[66]

इस प्रकार लोभवश गुरु की हत्या भी की जाती थी ।

कौडी लागि लोभबस करहिं विप्र गुरुघात ।[67]

गुरु और शिष्य का सन्मानीय संबंध लगभग समाप्त हो गया था । शिष्य न तो गुरु के उपदेश को ठीक से सुनता है और न गुरु उस शिष्य की ज्ञान दृष्टि को परखने का प्रयास करते हैं।[68] ऐसी स्थिति में तुलसीदास ने 'मानस' में गुरुकुल शिक्षा प्रणाली के माध्यम से यह संदेश दिया है कि शिक्षा का आत्यन्तिक लक्ष्य आध्यात्मिक कल्याण है। शिक्षार्थी संध्या वन्दन सत्संग आदि में तो अधिक रुचि रखे, परंतु ऐसा शस्त्र कौशल भी रखे जिससे विकट से विकट असुरों की सेना को हँसते हँसते छिन्न-भिन्न कर सकें और राष्ट्र पर आई हुई विपत्तियों को विवेक से दूर कर सकें।

इस प्रकार रामायण काल में शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार सभी वर्णों को था। विद्वत ब्राह्मणों की ओर से शिक्षा दी जाती थी । शिष्य और गुरु के बीच में आदरणीय सम्बन्ध था । इसके विपरीत तुलसीदास के युग में सभी वर्णों के लोगों ने शिक्षा देना शरु कर दिया था । गुरु शिष्य की मर्यादा लुप्त हो चुकी थी । वाल्मीकि युगीन विद्यार्थी गुरु की आज्ञा को धारण करके अपने प्राणों को न्यौछावर कर देता था । वहाँ तुलसीदास के युग में शिष्य स्वार्थ वश गुरु की हत्या भी करने लगा था ।

2.2.5. आभूषण :-

रामायण काल में लोग मुकुट पहनते थे । अयोध्या में कोई व्यक्ति मुकुट, कुण्ड़ल और पुष्पहार शून्य नहीं था।[69 क] हर कोई न्हा-धोकर चंदन का लेप कर आभूषणों को धारण करता था । बाजूबन्द निष्क (स्वर्णपदक या मोहर) तथा हाथ का आभूषण (कड़ा) आदि धारण करने का रिवाज था।[69ख] राज्याभिषेक के समय पर रामने रत्न जड़ित मुकुट पहना था । रावण का धनुष भी मुक्तामणियों से विभुषित था । इस प्रकार वाली भी इन्द्र की दी हुई सोने की माला को सदैव पहनता था । स्त्रियों के आभूषणों में मुकुट, बाजूबन्द, कुण्ड़ल, मालाएँ, चूडामणि, कांची (मेखला या कंदहार) गले का रत्नजड़ित हार आदि थे । फूलों को भी आभूषणों की भांति धारण किया जाता था । पिता के घर से विवाह में मिले हुए सभी गहनों को सीता ने वन में पहन रखा था ।

तुलसीदास के युग में स्त्री और पुरुष दोनों में आभूषण पहनने का रिवाज था।

सौभाग्यशालिनी स्त्री विविध प्रकार के आभूषण पहनती थी । जैसे मुकुट, गलेका हार कर्णफूल, नुपुर, मेखला, चूडामणि आदि । इस युग में विधवाएँ भी साज शृंगार करती थीं और विविध आभूषणों को धारण करती थीं । 'विधवन्ह के सिंगार नवीना'।[70] कई स्त्रियों ने शृंगार में आभूषणों को छोड़ दिया था केवल सिर के बाल को आभूषण समझती थी।[71] उस युग में पुरुष मुकुट, बाजुबंध, मुद्रिका, कुण्ड़ल आदि आभूषणों के साथ दिव्य वस्त्र पहनते थे । घर से बिदा होते हुए अतिथियों को आभूषण पहनाकर बिदा किया जाता था।[72] क्षत्रिय धनुष, बाण, तरकस आदि को भी धारण करता था । मुकुट महल, खम्भे, सड़के आदि को रत्नों और मणियों से सजाया जाता था । स्त्रियाँ कपड़ों में सोने के बिन्दु या तारे लगाती थी ।[73]

इस प्रकार रामायण और तुलसीदास युगीन समाज में आभूषणों को धारण करने का रिवाज था । वाल्मीकि युगीन समाज आभूषण, पहनावे आदि शृंगारिक प्रसाधनों की दृष्टि से तुलसीदास युगीन समाज से समृद्ध दिखाई देता है।

2.2.6. खान-पान :-

रामायण कालीन समाज में शाकाहार और माँसाहार (निरामिष और आमिष) दोनों प्रचार में थे । 'रामायण' में सुरा, मदिरा और मद्य जैसे शब्द प्रयोग शराब के लिए प्रयुक्त हुए हैं। जिससे यह फलीत होता है कि मदिरापान भी इस समय होता होगा । वन जाते हुए राम आदि के लिए निषाद राज गुह ने विविध प्रकार के भोजन की व्यवस्था की थी।[74] जिसमें भक्ष्य (अन्न आदि), भोज्य (खीर आदि), पेय (पानरस आदि) तथा लेहय (चटनी आदि) आदि समाविष्ट है । भरत के स्वागत में भी निषाद राज ने उत्तम भोजन की व्यवस्था की थी। वाल्मीकि युग में अन्न दान का भी विशेष महत्त्व था। सीता ने गंगा की पूजा करते वक्त अन्नदान दिया था।[75] रावण ने भी विविध अन्नदान से सीता को प्रसन्न करने प्रयत्न किया था।

तुलसीदास के युग में लोग भक्ष्य और अभक्ष्य खाना खाते थे।[76] धर्म के ठेकेदारों ने मद्यपान, माँसभक्षण आदि को छद्मवेश में आवृत्त कर लोगों को पथभ्रष्ट करने का

साधन बना लिया था । साधु वेश में कंदमूल और फल फूलों का भोजन होता था।[77]

इस प्रकार दोनों युग में भक्ष्य और अभक्ष्य भोजन तथा मदिरापान होता था। वैसे तुलसीदास के युग में अभक्ष्य भोजन मदिरापान की अधिकता दिखाई देती है ।

2.2.7 उत्सव :-

वाल्मीकि युगीन समाज में विविध प्रसंगों को उत्सव के रूप में मनाया जाता था । पुत्र जन्म पर बड़ा उत्सव होता था । राम आदि चारों भाइयों के जन्म पर एक बहुत बड़ा उत्सव मनाया गया था । राम आदि भाइयों के जन्म पर अयोध्या की गलियाँ और सडके लोगों से भरी हुई थीं, बहुत से नट अपनी कला दिखा रहे थे । गाना बज रहा था । दशरथ ने ब्राह्मणों को धन और गायों का दान दिया था ।[78] विवाह के उत्सव में वर-कन्या दोनों के घर उत्सव मनाया जाता था । इसी उत्सव में पूरा नगर शहनाइयों से गुँज उठता था । राज्याभिषेक का उत्सव भी बड़ी धाम-धूम से मनाया जाता था, जिस में पड़ोशी राज्यों के राजाओं को आमंत्रित किया जाता था । राम के राज्याभिषेक के उत्सव से पहले दशरथ ने अयोध्या के सभी दरवाजों को सजाने की तथा ब्राह्मणों के लिए उत्तम भोजन की व्यवस्था की थी । सुंगधीत धूप से अयोध्या के लोगों को आकर्षित करने की आज्ञा दी थी । राजा दशरथ की यह इच्छा थी कि इस उत्सव में नगर को सजाकर ब्राह्मणों को दान दिया जाये, संगीत निपुण नर-पुरुष सुन्दर वेश भुषा में नृत्य करें और योद्धा स्वच्छ वस्त्र धारण कर उत्सव को मनाये ।[79] राज्य से बाहर गये हुए राजाकी वापसी पर बहुत बड़ा स्वागत होता था । अश्वमेध यज्ञ आदि अनुष्ठानों पर भी उत्सव मनाये जाते थे। पुत्र प्राप्ति के लिए दशरथ के द्वारा किये गये यज्ञ को बड़े उत्सव के रूप में मनाया गया था।[80]

तुलसीदास युगीन समाज में भी विविध प्रकार के उत्सव मनाये जाते थे । विजय यात्रा से लोटने पर राजा की ओर से उत्सव का आयोजन किया जाता था । इसके सिवा विवाह, पुत्र जन्म, नहछू आदि प्रसंगों में बड़ी धामधूम होती थी । होली दशहरा, शिवरात्री आदि हिन्दुओं के मुख्य त्यौहार माने जाते थे । कुभ के मेले में लाखों लोग

जमा होते थे। जगन्नाथ के मंदिर में भी प्रतिवर्ष बहुत बड़ा मेला लगता था, जिसमें लाखों लोग इक्ठ्ठे होते थे।

नित नव मंगल कौसल पुरी, हरषित रह हि लोग सब कुरी।[81]

अर्थात् अयोध्यापुरी में नित नये उत्सव होते थे, जिससे लोग आनंद में रहे। इसके सिवा इस्लाम धर्म के त्यौहारों में ईद-उल जुहा, शब ए-बएत, ईद-उल फितर, मुहमि आदि मुसलमानों के मुख्य त्यौहार थे।

महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास युगीन समाज उत्सव प्रिय था । दोनों युगों में विविध त्यौहार तथा प्रसंगों में उत्सव होता था । लोगों का उत्साह बनाये रखने के लिए, तथा सुख, शांति, आनंद के लिए जरुरी है कि राज्यों में विविध उत्सवों को रखा जायें और यही बात हमें इन दोनों युगों में दिखाई देती है ।

2.2.8. नारी :-

वाल्मीकि युगीन समाज में स्त्री का सम्मानीय स्थान था । पुरुष को सुन्दर स्त्री प्राप्त करने के लिए वीरता को दिखाना पड़ता था । जैसे राम ने धनुष तोड़कर अपनी वीरता का परिचय करवाया था । कुमारिका का दर्शन शुकन माना जाता था । बहु के रुप में स्त्री को पति, सास, ससुर आदि का प्रगाढ़ प्रेम प्राप्त होता था । स्त्रियाँ अवध्य थी, परंतु कामी और क्रुर स्त्री का न चाहने पर भी वध किया जाता था या उनको दण्ड़ दिया जाता था । राम ने ताड़का वध विवश होकर किया था । इस प्रकार कामी शूर्पणखा के नाक कान काटकर लक्ष्मण ने दंड दिया था। इस युग में स्त्रियों का हरण भी होता था । औरतें डोलियों में (जो रेशमी कपडों से ढंकी सी रहती थी) बैठकर निकलती थी । स्त्री पति के साथ युद्धभूमि में जाकर अपने पति के प्राणों की रक्षा भी करती थी । देवासुर संग्राम में कैकेयी ने दशरथ के प्राणों की रक्षा की थी ।[82] पतिव्रता नारी को आदर्श माना जाता था । विधवाओं की स्थिति सम्मानजनक थी । विधवाओं की जिम्मेदारी भाई या पुत्र उठाता था । कामी पुरुष सुन्दर स्त्रियों का हरण करके उन पर बलात्कार करता था । आम तौर पर रामायण कालीन युग में स्त्रियों की सम्मानीय

स्थिति थी।

तुलसीदास युगीन समाज में धार्मिक संकुचितता से नारी जीवन कुंठित हो गया था । स्त्रियों का हरण होता था । मुसलमान आक्रान्त स्त्रियों का हरण करके अपने हरम में रखते थे । अकबर ने अपने हरम में पाँच हजार सुन्दर स्त्रियों को रखा था । इसी प्रकार जहाँगीर के हरम में भी स्त्रियों की संख्या तीन सौ तक थी । इस युग में विधवाओं के लिए पुनःविवाह स्वीकार्य नहीं था साथ ही साज शृंगार भी वर्जित माना जाता था । विधवाएँ अपने पुत्र पर आश्रित रहकर पूरी जिन्दगी व्यतीत करती थी । पुरुष स्त्रीको तलाक देते थे और दूसरा विवाह कर लेते थे । इस युग में स्वतंत्रता के नाम पर अधिकतः नारी अपने धर्म से भटक गई थी । वह पति पर दबाव रखकर परपुरुष का सेवन करती थी ।[83] इसी समाज में वेश्याएँ भी थी, जो नृत्य करके लोगों का मनोरंजन करती थी। हिन्दु स्त्रियाँ साडी और मुसलमान स्त्रियाँ कुर्ते, पाजामा जाकेट के साथ पहनती थी। मुस्लिम अधिकारियों की काम वासना से बचने के लिए बाल विवाह और परदाप्रथा का रिवाज आया और जिसका कठोरता से प्रारंभ हो गया था।

रामायण युगीन समाज में स्त्री कों आदर से देखा जाता था । उस युग में स्त्री पतिव्रता होकर पति की सेवा सुश्रुषा में अपना जीवन व्यतीत करती थी । तुलसीदास के युग में आदर्श नारी का वह रूप लगभग खो गया था । स्वछंदता से जीवन जीनेवाली स्त्री अपने गौरव को खो चूकी थी । ऐसी स्त्रियों को तुलसीदास ने 'मानस' में ठीक फटकारा है । वाल्मीकि युग में रामने एक पत्नीव्रत पालकर स्त्रीकी गरिमा की रक्षा की है, जबकि तुलसीदास के युग के राजाओं ने अपने हरम में हजारों स्त्रियों को रखकर स्त्री सम्मान को चूर-चूर कर दिया था । पुत्री, पत्नी, माता आदि नारी के मर्यादावादी रूपों से रामायण कालीन समाज प्रभावीत था वहाँ तुलसीयुगीन समाज में लोगों ने इन आदर्शमय रूपों को छोड़ दिया था और स्त्री को केवल भोग्या के रूप में देखने लगे थे । परिणामतः परदाप्रथा, बालविवाह जैसे कुरिवाज तुलसी युगीन समाज में आने लगे थे ।

2.3. आर्थिक परिस्थिति :-

रामायण कालीन अर्थनीति में उदारता दिखाई देती है । वर्णाश्रमों के आधार पर ही व्यवसाय निश्चित होने से स्पर्धाओं का अभाव था, जिससे सत्य प्रेम जैसे गुणों का विकास हुआ था । रामायण काल में खेत के लिए उत्तम पशू थे । सिंचाई के लिए नदियों का पानी होने से वर्षा पर निर्भर नहीं रहना पड़ता था ।[84] अतःभरत को राजनीति का उपदेश देते समय राम कहते हैं कि कृषि और व्यापार से ही लोक सुखी और उन्नतिशील रहते हैं ।[85] राज्य पर विपत्ति आने पर राजा प्रजा को आर्थिक मदद भी करता था ।[86] अर्थसिद्धि के लिए राजा का कर्मचारियों के साथ अच्छा व्यवहार रहता था। राजा प्रजा से अधिक कर नहीं लेता था । प्रजा को कष्ट पहुँचाये बिना मंत्रीगण न्यायोचित धन से राजा का खजाना भरते थे । रामायण कालीन लोग स्वपराक्रम से इक्कठा किया हुआ धन समाज हित के कार्यो में निष्ठा पूर्वक दे देते थे । अतः रामायण कालीन युग में आर्थिक स्थिति सर्वोत्तम थी। सभी के पास उत्कृष्ट वस्तुओं का संग्रह था। गाय, बैल, घोड़े, धन, धान्य आदि अधिक मात्रा में था ।[87] रामायण के बालकाण्ड़ में वर्णित अयोध्या के वर्णन से ही उस समय की सुख, समृद्धि का पता चल जाता है ।

तुलसीदास युगीन आर्थिक परिस्थिति दयनीय थी । बार-बार अकाल पड़ने से अन्न के बिना लोग दुःखी थे और मर रहे थे ।[88] राजा का अनीति भरा व्यवहार होने से आर्थिक संपन्नता लगभग नष्ट हो गयी थी । सामन्त की मृत्यु पर उनकी सम्पति को हड़प लिया जाता था , जिससे कई हिन्दुओं का उच्छेद हो गया था । सरदार के मरने से उसकी भूमि राजा की हो जाती थी , जिससे अनेक परिवार अनाथ हो गये थे और भीख माँगने के सिवा और कोई रास्ता उनके पास नहीं रहता था । सरदारों ने मौज मस्ती में जिन्दगी जीना शरु कर दिया था, क्योंकि उसे पता था कि उनके मरने के पश्चात् उनकी सम्पति को हड़प लिया जायेगा । मस्ती भरे जीवन यापन से उनका नैतिक पतन शरु हो गया था और कई परिवारों की आर्थिक उन्नति पर भारी कुठाराघात हुआ। लगान वसुल करनेवाले कर्मचारी किसानों को निचोडने का काम कर रहे थे। किसानों की आवश्यकताओं को अनदेखा कर लगान वसूल कर लिया जाता था। आयात और निर्यात के साधनों का अभाव तो था ही, पर राजा का प्रजा पर आन्तरिक प्रेम न

होने के कारण न जाने कितने ही मनुष्य बेमौत मरते थे । अन्न के बिना कितने ही लोग तड़प तड़पकर मृत्यु के ग्रास बनते थे ।[89] शासकों द्वारा सतत शोषित, दुर्भिक्ष की ज्वाला से परिपीड़ित प्रजा की आर्थिक दशा अधिक बिगड़ गयी थी । इस संदर्भ में पेलेस पार्ट नामक लेखक ने लिखा है कि ''उस समय समाज के भीतर तीन ऐसे वर्गश्रमिक नौकर और दूकानदार थे, जिन्हें न तो कोई स्वैच्छापूर्वक कार्य करने का अवकाश था, न यथेष्ट पारिश्रमिक ही मिलता था। दूकानदारों को अपनी चीजें छीपाकर रखनी पडती थी कि कहीं क्रुर कर्मचारियों की द्रष्टि न पड़ जाय।''[90] स्वार्थ के कारण अधिकारी गण पापपूर्ण कुचालें चलते थे तथा नीति, प्रीति एवं मर्यादा को त्याग कर मन माने अत्याचार करते थे, जिसका परिणाम यह था कि देश में बेकारी बढ़ रही थी ।[91] लोगों को कोई भी व्यवसाय करने का अवसर नहीं था । फलतः दरिद्रता बढ़ रही थी और लोग उदरपूर्ति के लिए बेटे-बेटियों को बेचने के लिए विवश हो रहे थे । इसी स्थिति से दुः,खी होकर तुलसीदास ने राजाओं को चेतावनी दी थी कि -

जासु राज प्रिय प्रजा दुःखारी, सो नृप अवसि नर्क अधिकारी ।[92]

अतएव राजा को अपने धर्म का परिपालन करना चाहिए । राजा ईश्वर का अंश होता है।

इस प्रकार वाल्मीकि युग में आर्थिक स्थिति में विशाल दृष्टि दिखाई देती है। वर्णाश्रमों के आधार पर व्यवसाय निश्चित होने से सभी व्यक्तियों को काम मिलता था और हर कोई सुखी, सम्पन्न और संतुष्ट था । तुलसीदास के युग में वह आर्थिक दृष्टि नहीं दिखाई देती, जिससे लोग अपने व्यवसाय का विकास कर सके। व्यवसाय वर्णव्यवस्था पर न रहकर इच्छानुसार हो गया था । परिणामतः स्पर्धाएँ बढ़ने लगी थी। खेत पर आधारित देश में बार-बार अकाल पड़ने से यह युग आर्थिक दृष्टि से मानों तूट चूका था । वाल्मीकि युग में संकट आने पर राजा आर्थिक मदद करके उसको उबार लेता था और राजा की ओर से खेत आदि व्यवसायों के लिए जरुरी आवश्यकताओं पर ध्यान दिया जाता था, जबकि तुलसीदास के युग में इसीबात की कमी होने से आर्थिक दशा पूर्णतः बिगड़ गयी थी । लोग भूख से मर रहे थे । संक्षेप में वाल्मीकि युग वैभव

सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य आदि से भरा हुआ है, वहाँ तुलसी दास का युग भूख, बेरोजगारी, अकाल, शासकों का अमानुषी व्यवहार आदि से भरा हुआ है।

2.4 धार्मिक परिस्थिति :-

रामायणकालीन समाज में धर्म को श्रेष्ठत्तम स्थान दिया गया है । प्रत्येक व्यक्ति एक दूसरे के साथ धर्म से जुड़ा रहता था । देवों को प्रसन्न करने के लिए उनकी पूजा की जाती थी । पुत्र राम की मंगल कामना के लिए कौशल्या ने अनुष्ठान किया था।[93] वन जाते समय सीता द्वारा चौदह वर्ष मंगलमयपूर्ण हो जाये, इसी उद्देश्य से वह गंगा की पूजा करती है । इतना ही नहीं, वन से वापिस लौटने पर गंगातट के सभी मंदिर और तीर्थो के पूजन का संकल्प भी सीता ने किया था ।[94] लंकाकाण्ड़ में इन्द्रजीत भी युद्ध विजय के लिए कुल देवी निकुंभिला की स्तुति करता है ।[95] रावण के साथ राम अंतिम युद्ध करने जायें उससे पहले अगस्त्य मुनि ने राम को आदित्य हृदय का पठन करवाया ।[96] रामायण कालीन धार्मिक परिस्थिति में स्तुतियों के साथ-साथ यज्ञादि का भी अधिक महत्व था । पुत्र प्राप्ति के लिए राजा दशरथ ने एक बहुत बड़ा अश्वमेश यज्ञ किया था।[97] इसी प्रकार आश्रमों में भी निरंतर यज्ञ आदि कार्य होते रहते थे। विश्वामित्र ने अपने यज्ञों को राक्षसों से बचाने के लिए दशरथ के पास से राम-लक्ष्मण को माँगा था। लोगों को उत्साहित रखने के लिए उत्सव की भांति यज्ञों का आयोजन होता था। लोग प्रातः काल उठकर विधिवत देवताओं की पूजा करते थे, और उन्हें अर्ध्य अर्पित करते थे। इस युग में नदियों की भी विधिवत् पूजा अर्चना की जाती थी, ऐसी मान्यता थी कि नदियों के संगम पर स्नान करने से सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है ।[98] संक्षेप में वाल्मीकि युग धार्मिक भावनाओं से भरा हुआ था । राम को भी उतर काण्ड़ में विष्णु अवतारक के रूप में पूजा गया था।

धार्मिक शक्ति का राजनीतिक शक्ति से कम महत्व नहीं है । तुलसीदास के युग में समाज प्रमुखतः हिन्दू, बौद्ध, जैन और मुस्लिम धर्म में विभाजित था । हिन्दुओं में प्रमुखतः शैव शाक्त और गाणपत्य मत, बौद्धों में मंत्रयान, वज्रपान, सहज यान और

कालचक्रयान आदि नाथ सम्प्रदाय की बारह शाखाएँ मुस्लिम धर्म में शरा, बेशरा, सूफियों में चिश्ती, कादिरी, सुहरा वर्दी नक्शबदी और शत्तारी आदि सम्प्रदाय विद्यमान थे। प्रत्येक सम्प्रदाय में कई उपसम्प्रदायों का बोलबाला था । सभी धर्म, सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय अपने मूल रूप से भ्रष्ट हो गये थे । जिस समय मुसलमान भारत में आये, उस समय सच्चे धर्म भाव का बहुत कुछ ह्रास हो गया था । ज्ञान को प्रधानता देनेवाले हठयोगी सिद्धों एवं तांत्रिकों ने अपनी अद्‌भूत करामातों द्वारा जनता को पथभ्रष्ट कर दिया था। निर्गुण निराकार ब्रह्म का नाम लेकर जनता को भ्रम में डाल कर तथाकथित दंभी सिद्ध अपना स्वार्थ साधन कर रहे थे । ज्ञान के नाम पर पाखंड की प्रतिष्ठा हो रही थी, जो तुलसी दास के लिए असहनीय था। उन्होंने गोरखनाथ के प्रति अपना क्षोभ भी प्रगट किया है।

भक्ति का जो सोता दक्षिण की ओर से उत्तर की ओर आ रहा था, उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण जनता के ह्रदय क्षेत्र में फैंलने के लिए उसे पूरा स्थान मिला । रामानुजाचार्य की सगुण भक्ति की ओर जनता आकर्षित होती चली आ रही थी। गुजरात में मध्वाचार्य के द्वैतवादी सम्प्रदाय में बहुत से लोग जुड़ गये । पूर्वी में जयदेवजी के कृष्णप्रेम संगीत की गुंज में विद्यापति ने अपना सुर मिलाया । उत्तर या मध्य भारत में रामानंदजी ने राम की उपासना पर जोर दिया । वल्लभाचार्यजी ने प्रेममूर्ति कृष्ण को लेकर जनता को भक्तिरस में डूबोया । देश में मुसलमानों के बस जाने से हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए समान विचारधारा का प्रवर्तन किया। वे लोगों को ऐसी बात सुनाते थे कि वेदशास्त्र पढ़ने से क्या होता है, बाहरी पूजा- अर्चना की विधियाँ व्यर्थ है, ईश्वर तो प्रत्येक के घट के भीतर है । अंतर्मुख साधनों से ही वह प्राप्त हो सकता है। हिन्दू-मुसलमान दोनों एक है, दोनों के लिए शुद्ध साधना का मार्ग भी एक है, जाँति-पाँति के भेद व्यर्थ खड़े किये गये हैं इत्यादि । इन जोगियों के पंथ में कुछ मुसलमान भी आये और हिन्दू भी आये ।[100] कबीर ने निराकार ईश्वर के लिए भारतीय वेदांत का पल्ला पकड़ा, इसी प्रकार निराकार ईश्वर की भक्ति के लिए सुफियों का प्रेमतत्व लिया और अपना निगुर्ण धूमधाम से निकाला । वैष्णवों की कृष्ण भक्ति शाखाने

केवल प्रेमलक्षणा भक्ति की, फल यह हुआ कि उसने अश्लील विलासिता की प्रवृत्ति जगायी । रामभक्ति शाखा में भक्ति सवागँपूर्ण रही । इसमें विकृति नहीं मिलती । भक्तिमार्ग एकेश्वरवाद का एक निश्चित स्वरूप लेकर खड़ा होकर सामने आनेवाला निगुर्ण पंथ था । जिसको महाराष्ट्र के नामदेवजी ने चलाया । इस प्रकार पूरे देश में सगुण और निगुर्ण के नाम से भक्ति काव्य की दो धाराएँ विक्रम की पन्द्रहवीं शताब्दी के अंतिम भाग से लेकर सत्रहवीं शताब्दी के अंत तक समानांतर चलती रही । तुलसीदास ने भी विविध सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय, धर्म का ह्रास, वर्णाश्रम, आश्रम व्यवस्था आदि का भंग आदि पर दुःख जताया है। धर्म के दो क्षेत्र होते हैं । विश्वास और आचरण । इन दो पक्षों को लेकर प्रायः प्रत्येक धर्म में अनेक मत एवं सम्प्रदाय बने हैं, और धार्मिक जीवन में एक प्रकार के विघटन की परम्परा रही है । यह विघटन प्रायः संघर्ष का रूप धारण कर लेता है। तुलसीदास के युग में इसी प्रकार की स्थिति उत्पन्न हो गयी थी। तुलसीदास ने दोनों पक्षों के मध्य समन्वय स्थापित करके उनके अन्तः संघर्ष को दूर करने का प्रयास किया है।

इस प्रकार दोनों युगों में प्रबल धार्मिक भावना दिखाई देती है। रामायण युगीन सनातन वैदिक हिन्दू धर्म अपनी पराकाष्टा पर था। लोगों की धर्म पर अधिक श्रद्धा थी। धर्म से विपरित व्यवहार किसी का भी नहीं था। तुलसीदास के युग में वही वैदिक हिन्दू धर्म का ह्रास हो गया था। समाज अनेक छोटे-बड़े धर्म, सम्प्रदाय, उपसम्प्रदाय में बँट गया था। धर्म पर से लोगों की श्रद्धा डगमगा गयी थी। वाल्मीकि के युग में शुद्ध या निर्विकार धर्म का दर्शन होता है, जबकि तुलसीदास के युग में धर्म में विकार आ गया था। धर्म के ठेकेदोरों के द्वारा धर्म की अपनी मनमानी परिभाषा देना शरु हो गयी थी। रामायणकालीन समाज में लोग गणेश, शिव, विष्णु, सूर्य, नदी, वृक्ष आदि की पूजा करते थे। तुलसीदास के युग में वैदिक देवताओं की पूजा करते थे । तुलसीदास के युग में वैदिक देवताओं की पूजा में कमी दिखाई देती है । शिव को सभी सम्प्रदाय के लोग पूजते थे । राम और कृष्ण की पूजा बड़ी धूमधाम से की जाती थी ।

2.5 उपसंहार :-

निष्कर्ष में 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने अपने युगीन विभिन्न परिस्थितियों का चित्रण किया है । 'रामायण' कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थिति को लेकर किसी को असंतोष नहीं था। पूरा समाज सूखी सम्पन्न और उच्च चारित्र्यवाला था । प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने व्यवसाय से संतुष्ट थे । 'मानस' कालीन परिस्थितियाँ 'रामायण' कालीन परिस्थितियों से विपरीत है । राजा से लेकर प्रजा मानवगत मर्यादा को खो बैठे थे । समाज व्यवस्था लगभग तूट सी गयी थी । सामाजिक रिश्तों में दरार सी आ गयी थी । इस प्रकार अपने-अपने युग का प्रतिनिधित्व करने वाले 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास दोनों महाकवियों ने राम कथा के जरिए अपने युगीन परिस्थितियों को राम कथानक में जोड़ते हुए समाज के सामने एक नये आदर्श को रखने का प्रयत्न किया है । अतः अपने युग का प्रतिनिधित्व करनेवाले दोनों महाकाव्य के संक्षिप्त कथानक को हम अगले अध्याय में देखने का प्रयास करेंगे ।

संदर्भ सूची

1. वा.रा., बा.का अष्टदश सर्ग-46
2. वा.रा., किष्किन्धाकाण्ड़, अष्टादश सर्ग-6
3. तुलसीदास और उनका युग; डो. राजपति दीक्षित, पृ.81
4. कवितावली, 7-177
5. वा.रा., अ.का., द्वितीय सर्ग-16
6. वही, श्लोक-53
7. प्राचीन भारत का इतिहास, विद्याधर महाजन, पृ.119
8. वा.रा., अ.का., ट्रिसप्ततितम सर्ग, 44, 45
9. वा.रा., अ.का., पूरासर्ग-100
10. कवितावली, 7/85
11. मानस, 1/183/4, 6
12. मानस, 1/182
13. दोहावली, 508
14. तुलसीदास और उनका युग-डॉ.राजपति देसित पृ.87 से उद्घृत
15. वा.रा., सप्तमसर्ग,' 6, 7, 8
16. वही 19
17. वा.रा., अ.का. एक दशाविकशततमः सर्ग, 4,5,7,11
18. दोहावली, पृ. 525
19. दोहावली, पृ. 524
20. मानस, 3/20/4
21. दोहावली, 525
22. वा.रा., बा.का., पंचम् सर्ग, 13 तथा युद्ध काण्ड़ तृतीय सर्ग, 15

23. वा.रा., यु का, तृतीय सर्ग, 16, 17

24. प्राचीन भारत का इतिहास-विधधर महाराज-पृ.118

25. वा.रा., अ.का., द्राविश सर्ग, 20

26. वा.रा., युध्ध अष्टाविशंत्यधिकशतम, सर्ग, 104

27. वा.रा., बा.का., सप्तमसर्ग, 14

28. वही, 19

29. वा.रा., बा.का., त्रयोदशः सर्ग, 20

30. मानस, 7/97/29/9

31. कवितावली, 7/85

32. वा.रा., बा.का, सप्तक सर्ग, 4,5

33. वा.रा.,बा.का., अष्टम सर्ग 6,7

34. मानस, 2/171/2

35. मानस, 2/97/9

36. मानस, 7/99 क

37. वही, 7/99 ख

38. वही, 7/100 ख 4

39. वा.रा.,यु.का., पच्चदशधिकशतकः, सर्ग, 3

40. वा.रा., बा.का, सप्तक सर्ग, 29

41. वा.रा., कि.का., अष्टादशः सर्ग, 40

42. वही-22

43. वा.रा., यु.का., नवाधिक शततम सर्ग, 18

44. कवितावली, उत्तरकाण्ड़, 5

45. वही, 84

46. बा. रा., अ. का., शततम सर्ग, 48

47. वही, 47

48. कवितावली, 7/66

49. वा.रा, अ.का, एक पच्चास सर्ग 40/41

50. वा.रा., अ.का., चतुसप्तुतितम, 19

51. मानस, 7/98 ख/1

52. वही, 7/99 ख/2

53. वही, 7/99 ख/5

54. वही, 7/99 ख

55. विनय पत्रिका, 139

56. कवितावली, 7/84

57. वही, 7/85

58. मानस, 99 ख /3

59. वा.रा.,बा.का., द्वितीय सर्ग, 10

60. वा.रा., कि.का., सप्तक सर्ग, 22

61. वा.रा., अ.का., दियत्वारिंश, सर्ग-7

62. मानस, 7/98 ख /2

63. मानस, 7/100 /2/3

64. Moreover, it was not an age of educational institutions. It would have been much more difficult to have separate educational institutions for women in those days." Jayal, The status of women in to epics., Pg. No.30's F.N.2

65. वा.रा, बा.का.,त्रयोविंश, सर्ग-2

66. मानस, 7/99 /ख

67. वही, 99 क

68. मानस 7/98/ख/3

69.क. वा.रा, बा.का.,षष्ट सर्ग-10

69.ख. वा.रा, बा.का., षष्ट सर्ग-11

70. मानस, 7/98, ख/3

71. मानस, 7/101 /1

72. मानस, 7/16/3,4/17क

73. मानस, 2/198/2

74. वा.रा, अ.का., एक पच्चास, सर्ग 37, 38, 39

75. वा.रा, अ.का., दिपचास सर्ग 88,89

76. मानस, 7/98 /क

77. मानस, 2/200/2

78. वा.रा, बा.का., अष्टादश : सर्ग 18,19, 20

79. वा.रा, अ.का., तृतीय सर्ग 13,14,15,17,19

80. वा.रा, बा.का., प्रयोदश, सर्ग पूरा

81. मानस, 7/14 ख/4

82. वा.रा, अ.का., एकादश सर्ग, 18, 19

83. मानस, 7/97 ख/2

84. वा.रा, अ.का., शततम सर्ग, 43, 44, 45, 46

85. वही, 47

86. वही, 48

87. वा.रा, अ.का., पृष्ट सर्ग, 7

88. मानस, 7/100 ख/5

89. तुलसीदास और उनका युग – डॉ.राजपति दीक्षित पृ.82 से उद्घृत

90. हिन्दी साहित्य का इतिहास, से. डो. नगेन्द्र, पृ. 113

91. विनय पत्रिका, 139

92. मानस, 2/70/3

93. वा.रा, अ.का., विंश सर्ग, 14

94. वा.रा, अ.का., द्विपयास सर्ग, 89

95. वा.रा, यु.का., शड़शीतितम सर्ग, 13

96. वा.रा, यु.का., पंचाधिक शततम सर्ग, 3,4,5

97. वा.रा, बा.का., त्रयोदश सर्ग, 8

98. वाल्मीकि तथा तुलसीदास के नारी पात्र, डॉ. सन्तोष मोटवानी, पृ.27

99. कवितावली, 7/84

100. हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुकल,पृ.63

<u>अध्याय – ३</u>

‘श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ का संक्षिप्त कथानक।

- प्रस्तावना
- ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ का उद्भव
- ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ का संक्षिप्त कथानक
- बालकाण्ड
- अयोध्याकाण्ड
- अरण्यकाण्ड
- किष्किन्धाकाण्ड
- सुन्दरकाण्ड
- युद्धकाण्ड / लंकाकाण्ड
- उत्तरकाण्ड
- निष्कर्ष
- संदर्भ सूची

3.1 प्रस्तावना :-

भारतीय वाङमय के अनेक रत्न विश्व साहित्य में प्रतिष्ठित हुए हैं । उन्हें विश्व मानवता का विधायक माना जा सकता है । अनेक भाषाओं में उनका अनुवाद, रूपान्तर, विकास और विस्तार किया गया है । धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा समाज की मर्यादाएँ उनके द्वारा प्रस्थापित हुई हैं । श्रेष्ठ साहित्य के प्रतिमान भी उन्हीं से प्राप्त हुए हैं । भारत के वेदत्रय, उपनिषद, गीता, श्रीमद् भागवत, मनुस्मृति, रामायण, महाभारत, मेधदूत, रघुवंश, रामचरित मानस आदि इसी कोटि के ग्रन्थ हैं । इनमें से कुछ में धर्मतत्व प्रबल हैं, कुछ में दर्शन और कुछ में साहित्य एवं कला । इन महाकाव्यों में ऐसे जीवन संदेश निहित हैं, जिनसे पुनः उनका पारायण करने की प्रेरणा मिलती है और जिनके आधार पर अपने वर्तमान को परख कर हम भविष्य का मार्ग निर्धारित करते हैं ।

वाल्मीकि द्वारा 'रामायण' तथा तुलसीदास द्वारा 'रामचरित मानस' की सृष्टि भारतीय ललित साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण घटना है । इन महान ग्रन्थों में वैयक्तिक, पारिवारिक और सामाजिक आदर्शो का अत्यंत भव्य रूप में प्रतिफलन हुआ है । दोनों महाकाव्य एक ऐसे महा मानव की उज्जवल गाथा है, जो एक ओर दलित, पीड़ित वर्ग के प्रति करुणार्द्र है, तो दूसरी ओर अत्याचारी दानवी शक्तियों के उन्मूलन के लिए तत्पर । धर्म, दर्शन, संस्कृति तथा समाज में राम के माध्यम से मर्यादाएँ स्थापित हुई हैं। राम एक ऐसे सांस्कृतिक प्रतीक बन गये हैं, जिनके माध्यम से प्रत्येक युग अपनी समस्याओं का प्रभावी समाधान खोज़ सकता है । अपने देश की लगभग सभी महत्वपूर्ण भाषाओं में असंख्य रामकाव्यों का सृजन हुआ है। इन ग्रन्थों में 'रामायण' की अन्तर्निहित रागिनी नहीं बदली-राम नहीं बदले, केवल रामकथा के वेश और परिवेश बदले हैं। गोस्वामी तुलसीदास ने वाल्मीकि के सशक्त महामानव राम को अनंत शील सौन्दर्यमय बना दिया है । उन्होंने राम को घर-घर पहुँचा दिया है ।

इस प्रकार राम उत्तर से दक्षिण, पूर्व से पश्चिम, देश, विदेश, ब्राह्मण, बौध्ध-धर्मों, शिष्टजन, सामान्य लोक, अतीत और वर्तमान में जीवन मूल्यों के प्रतीक रूप में स्थापित हो गये हैं।

3.2 'रामायण' और 'रामचरित मानस' उद्भव :-

तमसा नदी के तट पर वाल्मीकि आश्रम में तप और स्वाध्याय में रत (तप स्वाध्याय निरत) रहने वाले मुनि श्रीनारदजी का आगमन हुआ । भगवद् गीता ने जिसको उत्तम पुरुष की संज्ञा दी है, ऐसे आत्मवान मनुष्य के बिना महाकाव्य का उद्भव नहीं हो सकता । वाल्मीकि ने सभी गुणों से युक्त पुरुष का परिचय नारदजी को पूछा, तब देवर्षि नारदजी ने सभी गुणों से सम्पन्न पूर्ण पुरुषोत्तम का परिचय देते हुए कहा कि -

इक्ष्वाकुवंश प्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान वशी ।।[1]

अर्थात् इक्ष्वाकु के वंश में उत्पन्न हुए एक ऐसे पुरुष हैं, जो लोगों में राम नाम से विख्यात हैं, वे ही मन को वश में रखनेवाले, महा बलवान, कान्तिमान, धैर्यवान और जितेन्द्रिय है। इस प्रकार राम का परिचय देते हुए नारदजी ने वाल्मीकि को राम के सभी सुलक्षणों को कहते हुए, संक्षेप में रामकथा सुनायी। नादरजी की विदाई के बाद वाल्मीकि तमसा के तट पर जाने लगे। तमसा तट जाते वक्त हृदय में एक ही शब्द का गुंजन होने लगा, इनके रोम-रोम में एक ही ध्वनि गुंजरित थी; और वह शब्द ध्वनि था 'राम'। विचारमग्न वाल्मीकि चले जा रहे थे, तब उन्होंने क्रोच पक्षी का एक युगल देखा, जो प्रणय लीला में लीन था। इतने में कोई निष्ठुर शिकारी ने नर पक्षी पर बाण चलाया, जिससे वह पक्षी खून से लथपथ होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा और पंख फडफडाता हुआ तड़पने लगा। अपने पति की हत्या हुई देख उसकी भार्या कौंची करुणाजनक स्वर में चीत्कार कर उठी। उस नर पक्षी की दुर्दशा तथा भार्या पक्षी की चीत्कार सूनकर महर्षि वाल्मीकि का हृदय रो उठा ओर उनके मुख से उद्गार निकल पड़ा कि –

मा निषाद प्रतिष्ठां त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौंच्चमिथुनादेकमवधीः काम मोहितम् ।।[2]

अर्थात् हे निषाद! तुझे नित्य, निरन्तर कभी भी शान्ति न मिलें, क्योंकि तूने इस कौंच्च के जोड़े में से एक की, जो काम से मोहित हो रहा था, बिना किसी अपराध के

ही हत्या कर डाली । वाल्मीकि के अन्तःकरण में से निकले हुए इस उद्‌गार से रामायण जैसे महाकाव्य का प्रारंभ हो गया । इस घटना से वाल्मीकि को भी आश्चर्य हुआ कि पक्षियों के शोक से व्याकुल होकर मैंने यह क्या कह दिया । फिर पास खड़े हुए शिष्य को वाल्मीकि ने कहा कि देखो शिष्य । मेरे शोकाकुल ह्रदय में से निकले हुए यह छंदोबद्ध और लयबद्ध शब्द श्लोक रूप बन गये हैं और अंत में बह्मा के आदेश से महर्षि वाल्मीकि ने चौबीस हजार श्लोकों में श्रीराम जीवन गाथा गाते हुए 'रामायण' महाकाव्य की रचना की । अतः वाल्मीकि के अन्तःकरण में से निकले हुए शब्द आदिमहाकाव्य 'रामायण' का प्रारंभ बन गया और ऋषि वाल्मीकि ऋषि कवि वाल्मीकि बन गये ।

महर्षि वाल्मीकि कृत 'रामायण' तथा राम के जीवन पर आधारित अन्य ग्रन्थ जिसमें 'अध्यात्म रामायण', 'रघुवंश', 'उत्तर रामचरितम्' आदि का सुक्ष्मतासे अध्ययन करके तुलसीदास ने संवत 1631 में अवधपूरी में 'रामचरित मानस' की रचना की । 'रामचरित मानस' को पूरा करने में उन्हें दो साल, सात महीने और छब्बीस दिन लगे थे।[3] यद्यपि तुलसीदास ने अपने काव्य के आरम्भ में इसके उद्देश्य की सूचना देते हुए लिखा है कि -

स्वान्तः सुखाय तुलसी रधुनाथ गाथा ।
भाषा निबन्धमति मंजुलमातनोति ।।[4]

जिसका तात्पर्य यह है कि तुलसीदास ने रघुनाथ की गाथा भाषा में प्रबन्ध काव्य के रूप में अपने अन्तःकरण के सुख के लिए लिखी है, 'मानस' के उपसंहार में तुलसीदास ने लिखा है कि-

मत्वा तद्रधुनाथनाम निरतं स्वान्त स्तमः शान्तये ।
भाषाबध्धमिद चकार तुलसीदास स्तथा मानसम् ।।[5]

अर्थात् अन्तःकरण के तम को शान्त करने के लिए तुलसीदासने 'रामचरित मानस' की रचना भाषा में की । स्पष्टतया 'मानस' की रचना के दो उद्देश्य बताये गये हैं, अंतःकरण का सुख और अंतःकरण के तम या अज्ञान से निवृत्ति । इस प्रकार तुलसीदास ने अपने काव्य के प्रारंभ में इसके उद्देश्य की सूचना 'स्वान्तः सुखाय' और

अन्त में 'स्वान्त स्तम, शान्तये' के द्वारा दी हैं, तथापि उनका 'स्व' केवल अपने तक सीमित नहीं है । उन्होंने अपने 'स्व' को जगत में विलिन कर दिया है । वे जगत को 'सियाराममय' बनाना चाहते हैं, जिसका साधन है भक्ति । भक्ति भावना के इसी उद्देश्य को चरितार्थ करने के लिए तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' की रचना की है ।

3.3 'रामायण और 'रामचरित मानस' का संक्षिप्त कथानक :-

महर्षि वाल्मीकि कृत 'रामायण सात काण्डों में विभक्त है 1. बालकाण्ड 2. अयोध्याकाण्ड 3.अरण्यकाण्ड 4. किष्किन्धा काण्ड 5.सुन्दर काण्ड 6. युध्ध काण्ड और 7. उत्तर काण्ड । इसी प्रकार गोस्वामी तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस'भी सात काण्डों में विभक्त है, जैसे 1. बालकाण्ड 2. अयोध्या काण्ड 3. अरण्य काण्ड 4. किष्किन्धा काण्ड 5. सुन्दर काण्ड 6. लंकाकाण्ड और 7. उत्तरकाण्ड ।

वाल्मीकि कृत 'रामायण' में कथा-प्रारंभ से पहले कलियुग का वर्णन और मनुष्य के उद्धार का उपाय, नारद-सनत्कुमार संवाद, राजा सुमति और सत्यवती के पूर्वजन्म का इतिहास, फल की प्राप्ति तथा पारायण करने की विधि आदि का वर्णन किया गया है। इस प्रकार तुलसीदास ने भी प्रारंभ में कथा करने की विधि का वर्णन किया है । अब हम इन दोनों महाकाव्यों की संक्षिप्त कथावस्तु, देखने का सादर प्रयास करेंगे ।

3.3.1. बालकाण्ड :-

'रामायण' के बालकाण्ड में कुल मिलाकर सतहत्तर सर्ग हैं। प्रारंभ में नारदजी वाल्मीकि को श्रीराम का चरित्र सुनाते हैं । तदन्तर तमसा के तटपर वाल्मीकि क्रौंचवध से व्यथित होकर पारधी को शाप देते हैं और दुःखी ह्रदय से अपने आश्रम लौटते हैं। उस समय वहाँ बह्माजी का आगमन होता है और राम के चरित्रमय काव्य के निर्माण का आदेश देते हैं। परिणामतः महर्षि वाल्मीकिने चौबीस हजार श्लोकों से युक्त 'रामायण' महाकाव्य का निर्माण किया और उसे लव-कुश को पढ़ाया। सरयू नदी के किनारे कौशल नाम से प्रसिद्ध जनपद बसा हुआ है। वह प्रचुर धन-धन्य से संपन्न सुखी और समृद्धिशाली है । उस जनपद में अयोध्या नामकी एक नगरी है, जिसकी रक्षा राजा

दशरथ करते थे । छठ्ठे और सातवें सर्ग में अयोध्या और वहाँ के लोगों की उत्तम स्थिति तथा राजमन्त्रियों के गुण और नीति का वर्णन है । धर्मात्मा राजा दशरथ पुत्र प्राप्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ करते हैं । यज्ञ के पश्चात छह ऋतु बीत जाने पर बारहवें मास के चैत्र शुक्ल नवमी तिथि को कौशल्या ने राम को जन्म दिया । तदन्तर कैकेयी से सत्य पराक्रमी भरत का जन्म हुआ । इसके बाद रानी सुमित्रा ने लक्ष्मण और शत्रुध्न इन दो पुत्रों को जन्म दिया।[6] चारों पुत्रों के बड़े हो जाने पर विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए राम और लक्ष्मण को अपने साथ ले गये। विश्वामित्र की ओर से राम और लक्ष्मण को विविध विद्या की प्राप्ति होती है । अपनी वीरता का परिचय करवाते हुए राम ने ताडका-वध किया और प्रसन्न विश्वामित्र ने विविध शस्त्रों का उपद्देश देते हुए दिव्यास्त्रों का दान दिया । श्रीराम, लक्ष्मण तथा अन्य ऋषियों सहित विश्वामित्र मिथिला जाने के लिए प्रस्थान करते हैं । मार्ग में विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को ब्रह्मपुत्र कुश के चार पुत्रों, गाधि की उत्पति, गंगाजी की उत्पति, सगर आदि की कथा सुनाते हैं । जनक राजा की ओर से मिथिला में सबका सत्कार होता है । मिथिला में महात्मा शतानंद ने श्रीराम को विश्वामित्र का पूर्वचरित्र सुनाया । राजा जनक ने श्रीराम और लक्ष्मण को शिवधनुष दिखाते हुए उनका परिचय दिया । उस समय धनुष चढ़ा देने तथा उनका भंग होने पर राम के साथ सीता का ब्याह निश्चित होता है । धनुष भंग के समाचार देने तथा दशरथ को बुलाने के लिए जनक ने मन्त्रियों को भेजा । दशरथ राजा के आने पर मिथिला में उनका भारी सत्कार होता है और राजा जनक ने अपने कुल का परिचय देते हुए, श्रीराम और लक्ष्मण के लिए क्रमशः सीता और उर्मिला को देने की प्रतिज्ञा की । विश्वामित्र द्वारा भरत और शत्रुध्न के साथ कुशध्वज की कन्याओं के विवाह का प्रस्ताव रखा गया । राजा दशरथ और जनक विश्वामित्र के इस प्रस्ताव को सहर्ष स्वीकार करते हैं और जनक ने अपनी पुत्रियों को विदा किया । अयोध्या लौटते वकत मार्ग में परशुराम से मिलन हुआ और राम ने परशुराम का वैष्णव धनुष चढ़ाकर उनको अपने ब्रह्म रूप का परिचय दिया । अंत में राजा दशरथ ने अपने पुत्रों और वधुओं के साथ अयोध्या में प्रवेश किया और पूरे नगर में उत्सव मनाया गया।

संत कवि तुलसीदास ने 'मानस' के बालकाण्ड का प्रारंभ मंगलाचरण से किया है। उन्होंने गुरु, ब्राह्मण, वेद, ब्रह्मा, देवता, वाल्मीकि, शिव तथा जीवमात्र की वन्दना की है। तत्पश्चात् याज्ञवल्क्य और भारद्वाज के संवाद है जिसमें प्रयाग के महत्व को दिखाया गया है। बाद में याज्ञवल्क्य से अपने संदेह का समाधान खोजते हुए भारद्वाज मुनि कहते हैं कि ''नाथ एक संसउ बड़ मोर''[7] मेरे मन में एक बड़ा सन्देह है कि एक राम है, जो दशरथ के कुमार है और उनका चरित्र सारा संसार जानता है । उन्होंने स्त्री के विरह में अपार दुःख उठाया और क्रोध आने पर युद्ध में रावण को मार डाला था, क्या ये वही राम है, जिसको शिव भी निरन्तर जपते है ?

प्रभु सोंइ राम कि अपर कोउ जाहि जपत त्रिपुरारि ।
सत्यधाम सर्बग्य तुम्ह कहहु विवेकु विचारि ।।[8]

अर्थात् हे प्रभु ! वही राम हैं या और कोई दूसरे हैं, जिन को शिवजी जपते हैं ? आप सत्य के धाम हैं और सब कुछ जानते हैं, ज्ञान विचार कर कहिए । उस समय याज्ञवल्क्यजी ने मुस्काराकर भारद्वाज को कहा कि -

तात सुनहु सादर मनु लाई ।
कहउँ राम कै कथा सुहाई ।।[9]

अर्थात् हे तात ! तुम आदरपूर्वक मन लगाकर सुनो, मैं श्रीरामजी की सुन्दर कथा कहता हूँ। इस प्रकार 'मानस' की राम कथा का प्रारंभ होता है । कथा प्रारंभ में राम की परीक्षा करने गई सती का शिव त्याग करते हैं । पिता के यहाँ पति का अपमान देख सती अग्नि में समा जाती है और पार्वती के रूप में उनका दूसरा जन्म होता है। बालकाण्ड में तुलसीदासने पार्वती की घोर तपस्या तथा शिव को पति के रूप में प्राप्त करने की कथा विस्तार से दी है। तत्पश्चात भानुप्रताप की कथा के साथ रावण आदि भाइयों के जन्म की तथा उनके ऐश्वर्य की कथा है । राजा दशरथ पुत्रेष्टि के लिए यज्ञ करते हैं और तदन्तर तीनों रानियाँ गर्भवती होती है और पुत्रों को जन्म देती हैं । कुछ काल पश्चात् अपने यज्ञों की रक्षा के लिये विश्वामित्र अयोध्या में आकर राम-लक्ष्मण को माँगते हैं । दोनों भाई विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हुए अनेक दानवों का संहार

करते हैं । राम और लक्ष्मण को लेकर विश्वामित्र मिथिला जाते हैं, रास्ते में राम के चरणस्पर्श से अहल्या उध्धार और मिथिला में जनक की ओर से तीनों के स्वागत का कवि ने सुंदर चित्रण किया है। मिथिला की पुष्पवाटिका में सीताजी को राम का दर्शन होता है । सीता के स्वयंवर में जनक राजा की शर्त के अनुसार राम धनुष तोड़ देते हैं और सीताजी श्रीराम को वरमाला पहना देती है। शिवधनुष टूटने पर क्रोधाग्नि में जलते हुए परशुराम धनुष तोडने वाले को दण्ड देने का निश्चय करते हैं, परंतु राम के ब्रह्मरूप को समझ लेने पर प्रणाम कर विदा होते हैं । जनक ने धनुषभगं का संदेश सुनाने के लिए दूतों को अयोध्या भेजा। समाचार सुनकर दशरथ बारात लेकर मिथिला आते हैं । जनक की ओर से बारातियों का भव्य स्वागत हुआ और चारों भाइयों का विवाह सम्पन्न होता है। चहुँ ओर आनंद ही आनंद है । जनकपुर के विवाह उत्सव का तुलसीदासने बालकाण्ड में सुन्दर वर्णन किया है । चारों भाइयों की बारात अयोध्या लौटती है और पूरी अयोध्या हर्ष से नाच उठती है । अंत में तुलसीदासने श्रीराम चरित सुनने, गाने की महिमा देते हुए सर्ग की समाप्ती की।

इस प्रकार दोनों महाकाव्य के प्रथम सर्ग का प्रारंभ पारायण विधि से किया गया है। 'रामायण' के प्रथमसर्ग के प्रारंभ में नारदजी ने वाल्मीकि को कथा सुनायी, जबकि 'मानस' में भवानी, गरुड और भरद्वाज जिज्ञासु तथा प्रश्नकर्ता है और शिव, काकभुशुण्डि एवं याज्ञवल्क्य समाधानकर्ता है । याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज को शिव का सती त्याग तथा सती का पार्वती बनकर शिव को प्राप्त करने की कथा सुनाते हैं और 'मानस' के प्रथम काण्ड का प्रारंभ होता है । 'रामायण' में धनुष दिखाने हेतु विश्वामित्र, राम और लक्ष्मण को मिथिला ले जाते हैं, वहाँ देखते ही देखते राम से धनुष टूट जाता है । जबकि 'मानस' में जनकराजा की ओर से सीता के स्वयंवर को रखा गया था । स्वयंवर में पधारे हुए अनेक राजा धनुष उठाने में विफल हुए तब जनक सभा में बैठे राजाओं को अप्रिय वचन कहने लगे, उस समय श्रीराम विश्वामित्र की आज्ञा लेकर धनुष उठाते हैं, और धनुष को तोड़ते हैं। 'मानस' में इस प्रसंग का सुन्दर वर्णन किया गया है । 'वाल्मीकीय रामायण' में लक्ष्मण और परशुराम का वाग्वैदग्ध पूर्ण संवाद नहीं है ।

'वाल्मीकीय रामायण' में सीता-राम के पूर्वराग का वर्णन नहीं है । जबकि 'हनुमन्नाटक' और 'प्रसन्न राधव' में राम सीता के पूर्वानुराग का चित्रण है । 'रामचरित मानस' में इन्हीं नाटकों के आधार पर तुलसीदास ने धनुष यज्ञ से पूर्व पुष्पवाटिका प्रसंग की आयोजना की है जो सीताराम के पूर्वराग को बालकाण्ड के अंत में शृंगार एवं लालित्य की पृष्ठभूमि प्रदान करते है ।[10]

3.3.2. अयोध्या काण्ड :-

महर्षि वाल्मीकि रचित 'रामायण' महाकाव्य का अयोध्या काण्ड एक सौ उन्नीस सर्ग में लिखा हुआ है। इस सर्ग के प्रारंभ में दशरथ अपने जयेष्ठ पुत्र राम को युवराज बनाने का प्रस्ताव रखते हैं, सभासदों ने राम की प्रशंसा करते हुए दशरथ के प्रस्ताव को स्वीकार किया । अयोध्या में राम के युवराज पद देने की बात वायुवेग से फैल जाती है और पूरी अयोध्या के लोग हर्षित हो जाते हैं, परंतु मंथरा को राज्याभिषक की बात अच्छी नहीं लगती और उसने श्रीराम का राज्याभिषेक भरत के लिए भयजनक बताकर कैकेयी को उकसाया । कुब्जा के कुचक्र में फँसी कैकेयी कोपभवन चली जाती है । राजा दशरथ कैकेयी के भवन में गये और उसे सान्तवना देने का प्रयत्न किया, परंतु कैकेयी ने राजा को प्रतिबद्ध करके उन्हें पहले के दिये हुए दो वरों का स्मरण दिलाकर अपने दो वचन माँगे । कैकेयी ने अपना पहला वचन भरत का राज्याभिषक और दूसरा वचन राम के लिए चौदह वर्ष का वनवास माँगा -

नव पग्च च वर्षाणि दण्डकारण्यमाश्रितः
चीरा जिनधरो धीरो रामो भवतु तापस : ।
भरता भजता मद्य यौवराज्यम कण्टकम् ।।[11]

अर्थात् घीर स्वभाववाले श्रीराम तपस्वी के वेश में वल्कल तथा मृगचर्म धारण करके चौदह वर्षो तक दण्डकारण्य में जाकर रहें । भरत को आज निष्कण्टक युवराज पद प्राप्त हो जाये। वरों से दुःखी राजा दशरथ कैकेयी को समझाने का विफल प्रयास करते हैं । पिता की दुःखी दशा देखकर राम ने दुःख का कारण पूछा, तो कैकेयी ने कठोरता पूर्वक राम को वन की बात कह दीं । राम ने वन में जाने की बात का स्वीकार

करते हुए माता कौशल्या की आज्ञा माँगी । राम, लक्ष्मण और सीता तीनों वल्कल वस्त्र धारण कर वन जाने के लिए प्रवृत्त हुए । राम के वन चले जाने से दुःखी दशरथ कैकेयी का त्याग करते हैं और विलाप करते हुए पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं । वहाँ राम निषाद राज गुह से भेंट करके चित्रकूट पहुँच गये । वाल्मीकिजी का दर्शन करके श्रीराम की आज्ञा से लक्ष्मण ने पर्णशाला का निर्माण किया तथा वास्तु शान्ति करके राम, लक्ष्मण और सीता कुटीर में प्रवेश करते हैं । सुमन्त ने अयोध्या लौटने पर दशरथ आदि को राम का संदेश सुनाया, उस संदेश को सुनकर दशरथ और कौशल्या मूर्छित हो जाते हैं । अंत में राजा दशरथ मुनिकुमार श्रवण की कथा को याद करते हुए अपने प्राणों को छोड़ देते हैं। राजा दशरथ को दिवंगत हुआ जान रानियाँ करुण विलाप करने लगती है। मंत्रियों ने राजा दशरथ के शब को तेल से भरे कडाह में रखा और वसिष्ठजी की आज्ञा से पाँच दूत भरत और शत्रुघ्न को लेने के लिए कैकय देश गये । ननिहाल से लौटे भरत सीधे अपनी माता कैकेयी के पास जा कर उनको प्रणाम करके सारा वृतान्त सूनते हैं। पिता की मृत्यु और माँ के दुराग्रह के कारण राम के वनगमन की बात सून भरत अत्यंत क्रोधावेश में आकर माँ को कोसने लगते हैं। वशिष्ट ने भरत को राज्य पर अभिषिक्त होने के लिए आदेश दिया तो भरत उसे अनुचित बताता है और उसका अस्वीकार करके श्रीराम को लौटा लाने के लिए वन में चलने की तैयारी के निमित्त सबको आदेश देता है। वन जाते भरत का निषादराज गुह तथा भरद्वाज मुनि द्वारा भव्य स्वागत होता है । चित्रकूट में भरत, शत्रुघ्न आदि श्रीराम के आश्रम में आते हैं और राम उन सबको गले लगाते हैं । भरत के मुँह से पिता की मृत्यु का समाचार सुनकर राम, लक्ष्मण और सीता विलाप करने लगते हैं। भरत ने राम को राज्य ग्रहण करने के लिए आग्रह किया, परंतु रामने इनका अस्वीकार कर दिया और भरत को समझाकर उन्हें अयोध्या जाने का आदेश दिया । भरत राम की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए अयोध्या लौट आते हैं, अयोध्या के नन्दिग्राम में जाकर श्रीराम की चरण पादुकाओं को राज्य पर अभिषिक्त करके राज्य का कार्य करने लगते हैं । श्रीराम, भार्या सीता और भाई लक्ष्मण के साथ अत्रि आश्रम में जाते हैं । अनसुया के दिये हुए वस्त्र और आभुषणों को सीता धारण

करती है । रात्री आश्रम पर बीता कर प्रातः काल अन्यत्र जाने के लिए राम ऋषियों से बिदा लेते हैं।

'मानस' में तुलसीदास ने शिव और राम की स्तुति करते हुए मंगलाचरण से अयोध्या काण्ड का प्रारंभ किया है । राम के राज्याभिषेक की तैयारी होने से देवता व्याकुल होने लगते हैं और सरस्वति के पास जाकर उनसे प्रार्थना करते है कि -

बिपति हमारि विलोकि बडि मातु करिअ सोइ आजु ।
रामु जाहि बन राजु तजि होइ सकल सुरकाजु ।।[12]

अर्थात् देवताओं ने कहा हे माता । हमारी बड़ी बिपति को देख कर आज वह कीजिए जिससे श्रीरामचन्द्रजी राज्य त्याग कर वन को चले जायें और देवताओं का सब कार्य सिद्ध हो । श्रीरामजी के वन जाने से राक्षसों का वध होगा, जिससे सारा जगत सुखी हो जायेगा । ऐसा सोचकर सरस्वती ने अयोध्या आकर मंथरा की बुद्धि को बदल दिया -

नामु मंथरा मंदमति चेरी केकइ केरि ।
अजस पेटारी ताहि करि गई गिरामति फेरि ।[13]

अर्थात् मंथरा नामकी कैकेयी की एक मन्दबुद्धि दासी थी जिसे अपयश की पिटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को फेर कर चली गयी । मति-भ्रष्ट मंथरा ने कैकेयी को उकसाया और अपने दोनों वचनों को राजा के पास से माँगने के लिए प्रवृत्त किया। महाराज दशरथ कोप भवन गई हुई रानी कैकेयी को मनाने का प्रयत्न करते हुए वचन पालन का विश्वास देते हैं। परिस्थिति को परखकर कैकेयी दशरथ से राम वनवास और भरत का राज्याभिषेक जैसे दो वचन माँगती है। दुःखी पिता के वचन-पालन में सहयोग हेतु राम, सीता और लक्ष्मण वल्कल वस्त्र धारण करके वन चले जाते हैं । निषादराज गुह को मिलते हुए भारद्वाज, वाल्मीकि आदि मुनियों का दर्शन करते हुए राम चित्रकूट पहुँचते हैं । अयोध्या में पुत्र विरह में दशरथ प्राण त्याग देते हैं । भरत अयोध्या आकर दशरथजी की अन्त्येष्टि क्रिया करके श्रीराम को लाने के लिए चित्रकूट जाने की तैयारी करते हैं । रास्ते में निषादराज गुह, भरद्वाज आदि की ओर से भरत तथा पूरे समाज का

स्वागत होता है । चित्रकुट में भरत और राम का अलौकिक मिलन होता है । उसी समय चित्रकूट में मिथिला से जनक और सुनयना का भी आगमन होता है। अंत में राम भरत को समझाते हुए और पादुका देकर अयोध्या लौटा देते हैं। अयोध्या आकर भरत ने पादुका की स्थापना की और नन्दिग्राम में तपस्वी के वेश में निवास करना शुरु कर दिया। अंतमें तुलसीदास ने भरतजी के चरित्र श्रवण की महिमा गाते हुए अयोध्या काण्ड का समापन किया ।

अयोध्याकाण्ड के प्रारंभ में वाल्मीकि ने राम के गुणों का वर्णन करते हुए स्पष्ट कह दिया कि राम के जीवन का उद्देश्य राज्याभिषेक कराके शासनारूढ होकर बैठे रहना नहीं था, परंतु रावण जैसे आततायी का नाश करना था। इसीलिए साक्षात् विष्णु ने देवताओं की प्रार्थना पर मनुष्य लोक में राम के रूप में अवतार लिया था -

स हि देवैरूदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिमिः ।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः।। [14]

जबकि तुलसीदास ने इस प्रसंग में थोडा सा परिवर्तन कर इस प्रकार कहा है कि देवताओं को संदेह हो गया कि कहीं राम का राज्याभिषेक न हो जाय। अतः सभी देवता सरस्वती से प्रार्थना करते हैं । देवताओं की प्रार्थना पर सरस्वती ने मंथरा की बुद्धि को फेर दिया । इस प्रकार तुलसीदास ने मंथरा के चरित्र को देवताओं के लिए रामवनगमन का निमित्त मात्र बताते हुए चित्रित किया हैं । 'वाल्मीकीय रामायण' के अनुसार कैकेयी ने केवल दो वर प्राप्त किये थे ।[15] किन्तु अन्य रामकथाओं में 'वरो' की संख्या एवं प्राप्ति के संदर्भ में मतैक्य नहीं। उदाहरण स्वरुप हम महाभारत को ले सकते हैं जहाँ कैकेयी के एक वर का उल्लेख मिलता है।[16] वाल्मीकि की तरह तुलसीदास ने भी कैकेयी के द्वारा दो वर माँगे जाने का उल्लेख किया है।[17] अयोध्याकाण्ड में चित्रकुट पर राम-भरत के मिलन के प्रसंग पर वहाँ जनक राजा के आगमन का मानसकार ने विस्तृत वर्णन किया है जब कि वाल्मीकि रामायण में ऐसा नहीं मिलता। उसमें राम द्वारा भरत जी को दिये गये राजनीतिक बोध है। 'रामायण' में श्रीराम के राजनीति के उपदेश से उस समय की राजनैतिक व्यवस्था और रामराज्य की झांकी भी प्रस्तुत हो जाती है ।

मूल कथा में परिवर्तन करते हुए तुलसीदास ने चित्रकूट में जनक राजा के आगमन से एक बहुत बड़ा सामाजिक आदर्श प्रस्थापित किया है कि पिता को पुत्री के परिवार पर आये संकट के समय धैर्य देते हुए, उनके दुःख को बाँट लेने का प्रयत्न करना चाहिए । इस प्रकार 'मानस' के चित्रकूट प्रसंग में भरत के प्रेम को देखकर देवताओं को भी चिंता होने लगती है कि कहीं भरत का प्रेम जीत न जाये और राम अयोध्या लौट न आये, अगर ऐसा हुआ तो देवताओं की सारी योजनाएँ विफल हो जायेगी । उस समय इन्द्र पुनः सरस्वती को प्रार्थना करते है, परंतु सरस्वतीजी ने भी भरत के प्रेम के आगे अपनी असमर्थता प्रकट कर दी। इस प्रसंग से 'मानस' में भरत के प्रेम का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है ।

3.3.3. अरण्य काण्ड :-

वाल्मीकि कृत 'रामायण के अरण्य काण्ड में राम, लक्ष्मण और सीता दण्डकारण्य नामक वन में प्रवेश करते हुए दर्शनार्थ विविध ऋषियों के आश्रम में जाते हैं। वन में विराध नामक दानव के सीता पर आक्रमण करने पर राम-लक्ष्मण द्वारा उसकी हत्या की जाती है। महर्षि अगस्त्य के कहने पर राम ने पंचवटी में आश्रम बनाने का निश्चय किया। लक्ष्मण द्वारा निर्मित सुन्दर पर्णशाला में राम, सीता और लक्ष्मण निवास करते हैं। शूर्पणखा नामक दानवी पंचवटी आश्रम में आकर राम से अनुरोध करने लगी कि मेरा भार्या के रूप में स्वीकार करों, परंतु रामने अस्वीकार कर दिया तो वह राक्षसी लक्ष्मण से प्रणय याचना करने लगती हैं। दोनों ओर से असफल होकर राक्षसी सीता पर आक्रमण कर देती हैं, परंतु राम के इशारे पर लक्ष्मण उसके नाक और कान को काट देते हैं। परिणामतः खर और दूषण से भयानक युद्ध होता है और उसी युद्ध में राम की विजय होती है। इस घटना से आहट होकर शूर्पणखा अपने भाई रावण के पास जाती है और सीता को उनकी भार्या बनाने के लिए प्रेरित करती है । रावण मारीच की सहायता से सीता का हरण करने के लिए जाता है । मारीच स्वर्णमय मृगरूप धारण करके श्रीराम के आश्रम पर जाता है और सीता उसे देखती है और उस मृग को जीवित या

मृत अवस्था में लाने के लिए श्रीराम को प्रेरित करती है । श्रीराम द्वारा मारीच वध होता है, वध से पहले उसके द्वारा पुकारें गये सीता और लक्ष्मण शब्द सुनने पर सीता ने राम की सहायता के लिए लक्ष्मण को भेजना चाहा, परंतु लक्ष्मण के इन्कार करने पर सीताने कटु वचन सुनाये, जिससे प्रेरित होकर लक्ष्मण श्रीराम की सहायता के लिए जाते हैं । उस समय रावण साधुवेश में सीता के पास आया-

रामस्य त्वन्तरं प्रेप्सुर्दशग्रीवस्तदन्तरे ।
उपतस्थे च वैदेही भिक्षुरुपेण रावणः ।।[18]

अर्थात् राम से बदला लेने का अवसर ढूंढनेवाला दशमुख रावण उस समय भिक्षु रूप से विदेह कुमारी सीता के पास पहुँचा और सीता को आकाश मार्ग से उठाकर ले गया । श्रीराम और लक्ष्मण मार्ग में अनेक प्रकार की आशंका करते हुए आश्रम आते हैं और वहाँ सीता को न पाकर राम व्यथित हो जाते हैं । श्रीराम और लक्ष्मण दोनों सीता की खोज करते हुए दक्षिण दिशा की ओर जाते हैं जहाँ मार्ग में जटायु से भेंट होती है । कबन्ध वध के पश्चात् दिव्यरुपधारी कम्बन्ध राम को सुग्रीव से मित्रता करने के लिए कहता है । श्रीराम और लक्ष्मण पम्पासरोवर के तट पर मतङ्ग वन में शबरी के आश्रम पर जाते हैं। वहाँ रामने शबरी का उध्धार किया और शबरी ने दिव्यधाम की राह ली । तदन्तर दोनों भाई पम्पा सरोवर के तट पर जाते हैं और इस तरह 'रामायण' का अरण्यकाण्ड पूरा होता है ।

तुलसीदास ने शिव-वन्दना करते हुए मंगलाचरण से अरण्यकाण्ड का प्रारंभ किया है । इसके प्रारंभ में इन्द्रपुत्र जयन्त की कथा है -

सुरपति सुत धरि बायस बेषा । सठ चाहत रघुपति बल देखा ।
सीता चरण चोंच हति भागा । मूढ मंदमति कारन कागा ।।[19]

अर्थात् इन्द्र का पुत्र जयन्त रघुनाथ का बल देखने हेतु कौए का रुप लेकर सीताजी के चरणों में चोंच मारता है और राम उसको कठोर दण्ड देते हैं । अरण्यकाण्ड में श्री सीताजी और अनसूया का मिलन होता है । अनसूया सीता को 'पाति व्रत' धर्म समझाती है । राक्षसवध की प्रतिज्ञा करते हुए राम विराध वध करते हैं । राम दण्ड़क

वन में प्रवेश कर पंचवटी आश्रम में निवास करते हैं । पंचवटी आश्रम में शूर्पणखा विवाह का प्रस्ताव रखती है । अंत में लक्ष्मण उसके नाक, कान काट देते हैं । अपमानित शूर्पणखा खर-दूषण को प्रतिशोध लेने हेतु युध्ध के लिए प्रेरित करती है । श्रीराम के हाथों से खर-दूषण का सेना सहित नाश होता है । अपमान की ज्वाला में जलती हुई शूर्पणखा रावण के पास जाती है । मानवीय लीला करने का समय आ गया है, ऐसा जानकर श्रीराम सीता को अग्निदेव को सौंप देते हैं और अग्नि में से मायासीता राम के पास आ जाती है । स्वर्ण मृग धारण करके लौटे हुए मारीच का राम के हाथों वध होता है और रावण द्वारा सीताजी का हरण होता है । सीताहरण करने के बाद मार्ग में रावण का जटायु के साथ भीषण युद्ध होता है । सीता हरण से दुःखी राम विलाप करते हुए सीता की खोज करते हैं । कम्बन्ध का उद्धार करके, शबरी का आतिथ्य स्वीकार करते हुए, राम शबरी को नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं । पत्नी वियोग से दुःखी राम के पास नारद आते हैं और दोनों के बीच संवाद होता हैं । नारद के कहने पर रामने संतो के लक्षण बताये और इस तरह तुलसीदास ने अरण्य काण्ड की समाप्ति की ।

इस प्रकार अरण्य काण्ड में वाल्मीकि ने जयन्त की कथा को नहीं दिया, जबकि तुलसीदास ने इसे विस्तार से दिया है । मानवीय लीलाओं का प्रारंभ हो गया है, ऐसा जान कर राम अपनी पत्नी सीता को अग्निदेव को सौंप देते हैं और मायावी सीता को अपने पास रखते हैं। यह कथा 'मानस' में तुलसीदास ने दी है, परंतु वाल्मीकि ने इस प्रसंग को नहीं लिया । मूल कथा में परिवर्तन करके तुलसीदास ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि रावण-विजय के उपरांत राम ने संदेह-वश सीता की अग्नि परीक्षा नहीं ली थी, परंतु अग्निदेव से मूल सीता को प्राप्त किया था । ऐसा कर तुलसीदास ने नारीगौरव की रक्षा की है। 'वाल्मीकीय रामायण' में रावण द्वारा वर्णित सीता का सौन्दर्य मर्यादा का अतिक्रमण कर गया है [20] जबकि 'मानस' की मर्यादा-केन्द्रित द्रष्टि उससे पर्याप्त भिन्न है। 'रामायण' में रावण आत्मप्रशंसा करता हुआ सीता को लंका की महारानी बनाने का प्रस्ताव रखता है । सीता का कटु उत्तर सुनकर रावण अपना राक्षस रूप प्रकट करता है और आकाश मार्ग से सीता का अपहरण करके लंका की ओर चल

देता है। 'मानस' में इस विशद प्रसंग के लिए अवकाश नहीं हैं। गोस्वामीजी जगतजननी सीता की मर्यादा-रक्षा के प्रति अत्यन्त जागरुक हैं। मानस का रावण सीता के प्रति पूज्य भाव रखता है-

सुनत बचन दससीस रिसाना ।
मन पहूँचरन बंदि सुख माना ।[21]

रावण और जटायु के द्वन्द्व का विवरण 'वाल्मीकीय रामायण' में पर्याप्त विस्तृत है।[22] मानस में उस दिगन्त-व्यापिनी करुणा का विशद अंकन नहीं हुआ । 'रामचरित मानस' के 'अरण्य काण्ड' में शबरी का आतिथ्य स्वीकार कर राम ने शबरी को नवधा - भक्ति का संदेश दिया है । इस प्रकार 'रामायण' में यह कथा-प्रसंग विस्तृत न होकर केवल शबरी का आतिथ्य स्वीकारते हुए राम ने शबरी-उद्धार किया की कथा है। 'मानस' में तुलसीदास ने राम-नारद संवाद के माध्यम से संतो के लक्षण देते हुए भजन कीर्तन की महिमा का गान किया है, जबकि वाल्मीकिजी ने शबरी के आश्रम में से राम और लक्ष्मण प्रकृति की शोभा को देखते हुए सीधे पम्पा सरोवर चले जाते हैं। राम-नारद के संवाद से संतो के लक्षण देते हुए तुलसीदास ने अपने समाज के पाखंडी संतो की ओर इशारा किया है । निष्कर्षतः पत्नी विरह में राम का विलाप जैसा मानस में है, वैसा विलाप वाल्मीकि 'रामायण' में नहीं है । संभवतः तुलसीदास के अंदर स्थित अपनी पत्नी का वियोग राम की विरह वेदना के साथ मिलकर वर्णन में तीव्रता भर देता है।

3.3.4 किष्किन्धा काण्ड :-

पम्पा सरोवर के दर्शन से श्रीराम पम्पा की शोभा तथा वहाँ की उद्दीपन सामग्री का वर्णन करते हैं । राम ओर लक्ष्मण ऋष्यमूक की ओर आ रहे हैं, यह देखकर सुग्रीव तथा अन्य वानर भयभीत होते हैं । हनुमानजी द्वारा सुग्रीव आदि के भय का निवारण होता है । सुग्रीव और राम की मित्रता होने के पश्चात् राम वाली वध करने की प्रतिज्ञा लेते हैं-

उपकार फलं मित्रं विदितं में महाकपे ।

वालिनं तं वधिष्यामितव भार्यापहारिणम् ।।[23]

अर्थात् मित्र उपकार रूपी फल देनेवाला होता है । मैं तुम्हारी पत्नी का अपहरण करनेवाले वाली का वध कर दूँगा । सुग्रीव श्रीराम को सीताजी के आभुषण दिखाता है, जिससे दुःखी होकर राम रोषपूर्ण वचन कहने लगते हैं । दोंनों भाइयों के बीच की वैर भावना को बताते हुए सुग्रीव ने वाली के पराक्रम का वर्णन करता है और अंत में राम की शक्ति पर विश्वास हो जाने पर सुग्रीव किष्किन्धा आकर वाली को ललकारता है । युद्ध में परास्त होकर सुग्रीव मतङ्ग वन में भाग जाता है, वहाँ राम उसे आश्वासन देते हुए गले में पुष्पहार डालकर पुनः युद्ध में भेजते है। वाली और सुग्रीव के युद्ध में राम के बाण से वाली धायल हो जाता है । बाण लगने से वाली श्रीरामचन्द्रजी को फटकारने लगता है परंतु बाली की बात का उत्तर देते हुए राम उसको दण्ड का औचित्य बताते हैं। अंत में अपने अपराध के लिए वाली ने राम की क्षमा माँगी और अंगद की रक्षा के लिए प्रार्थना की । अंत में लक्ष्मण के द्वारा सुग्रीव का राज्याभिषेक होता है । वर्षा-काल व्यतीत होने पर राम चारों दिशाओं में प्रमुख वानर वीरों को सीता-खोज के लिए भेजते हैं । पूर्व आदि तीन दिशाओं में गये हुए वानरों निराश होकर लौट आते हैं। दक्षिण दिशा में गए हुए वानरों सीताजी की खोज करते हुए एक गुफा में प्रवेश करते हैं। गुफा में बैठी हुई तापसी स्वयंप्रभा भूखे वानरों को भोजन करवाती हैं। वहाँ से सभी वानर समुद्र तट पर पहुँचे । लौटने की अवधि बीत जाने पर भी कार्य सिद्ध न होने के कारण अंगद आदि वानर उपवास करके प्राण त्याग देने का निश्चय करते हैं । वानरों के आपसी संवाद से सम्पाति जटायुवध की बात सुनकर दुःखी होता है । सम्पाति पूरी कथा जानने के बाद सीता और रावण का पता बताता है । जाम्बवान हनुमानजी को उनकी उत्पति कथा सुनाकर समुद्रलांधन के लिए प्रेरित करते हैं। समुद्र लांधने के लिए हनुमानजी वेगपूर्ण छलांग मारकर महेन्द्र पर्वत पर चढ़ जाते हैं और इस तरह 'रामायण' महाकाव्य का 'किष्किन्धा काण्ड' समाप्त होता है ।

'रामचरित मानस' में तुलसीदासने किष्किन्धा काण्ड का मंगलाचरण से प्रारंभ किया है । राम और लक्ष्मण से हनुमानजी की भेंट होती है और सुग्रीव के साथ राम की

मित्रता होती है । सुग्रीव के दुःखों का निवारण करते हुए भगवान श्रीराम वाली को मारकर उनका उद्धार करते हैं । वाली-वध से विलाप करती हुई तारा को राम उपदेश देते हैं और अंगद को किष्किन्धा का युवराज बनाते हैं । समय पर सीता खोज का कार्य न होने से राम सुग्रीव पर नाराज होते हैं । अंत में राम की आज्ञा से सुग्रीव ने विभिन्न दिशाओं में सीता-खोज के लिए मुख्य वानरों को भेज दिया । वानरों के समुद्रतट आने पर जाम्बवन्तजी हनुमानजी को अपने बल को याद कराते हुए समुद्र लाँघने के लिए प्रेरित करते हैं। अंत में श्रीराम के गुणों का माहात्म्य बताते हुए तुलसीदास ने किष्किन्धाकाण्ड की समाप्ति की । 'वाल्मीकीय रामायण' में बालि दुन्दुभि दैत्य को मारने तथा उसकी लाश को मतंगवन में फेकने और मतंगमूनि के द्वारा बालि को शाप देने की घटना का पूर्ण विवरण है। जिसका 'मानस' में संकेत मात्र किया गया है । 'रामायण' में बालि राम से यह कहते है कि ''सब लोग तुम्हें कुलीन व्रतधारी, दयाशील कहते हैं, तुम राघव कुल में जन्म लेकर कैसे इस पाप कर्म में प्रवृत हुए ?'' जबकि ''मानस'' में बालि के इन कटु वचनों को स्थान नहीं मिला है। अतः 'मानस' में बालि के हृदय में प्रीति और मुख पर कठोर वचन है।[24] अंत में दोनों महाकाव्यों के किष्किन्धा काण्ड में मनलुभावना वर्षाऋतु और शरत्ऋतु का सुन्दर वर्णन मिलता है ।

3.3.5 सुन्दर काण्ड :-

हनुमानजी के समुद्र लांधन से रामायण के सुन्दर काण्ड का प्रारंभ होता है । समुद्र मार्ग में मैनाक पर्वत हनुमानजी का स्वागत करता है । तत्पश्चात् सुरसा एवं सिंहिका का वध करते हुए हनुमानजी लंका पहुँचते हैं । सुक्ष्म रूप धारण करके हनुमानजी लंका में रावण तथा अन्यान्य राक्षसों के घरों में सीताजी की खोज करते हैं । अशोक वाटिका में अशोक वृक्ष पर हनुमानजी बैठे हुए थे, तब एक मन्दिर के पास दयनीय अवस्था में उन्हें सीताजी का दर्शन होता है-

ततो मलिन संवीता राक्षसीभिः समावृताम ।
उपवास कृशां दीनां निश्वसन्तों पुनः पुनः ।

ददर्श शुफ्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ।। [25]

अर्थात् वह चैत्यप्रासाद (मन्दिर) देखने के अन्नतर उनकी दृष्टि वहाँ एक सुन्दरी स्त्री पर पड़ी, जो मलिन वस्त्र धारण किये राक्षसियों से धिरी हुई बैठी थी । वह उपवास करने के कारण अत्यन्त दुर्बल और दीन दिखाई देती थी जिस प्रकार शुक्ल पक्ष के आरम्भ में चन्द्रमा की कला जैसे निर्मल और कृश दिखाई देती है । उस समय रावण का अशोक वाटिका में आगमन होता है और सीता को विविध प्रलोभन दिखाता है । अंत में रावण सीताजी को दो मास की अवधि देते हुए वहाँ से चला जाता है । रावण की बातों का इनकार करने पर सीता को राक्षसियों ने दुःख देना शरु किया । उस समय शोक संतप्त सीता विलाप करने लगती है । करुण विलाप करती हुई सीताजी अपने प्राणों को त्यागने का निश्चय करती है । उस समय वृक्ष पर बैठे हनुमानजी सीताजी को रामकथा सुनाते हैं । हनुमानजी के प्रगट होने पर सीताजी को संदेह होता है कि कहीं ये रावण तो नहीं है, जो रुप बदलकर आया हो परंतु हनुमानजी राम के गुणों का वर्णन करते हुए सीताजी के संदेह को दूर कर देते हैं । तदन्तर सीताजी ने चूडामणि निकालकर हनुमानजी को दिया। उसे लेकर हनुमानजी उत्तर दिशा की ओर जाने लगे । उत्तर दिशा की ओर जाते वक्त हनुमानजी क्रोध से अशोक वाटिका का विध्वंस कर देते हैं। वानर के द्वारा प्रमदावन के विध्वंस का समाचार सुनकर रावण किंकर नामक राक्षसों को भेजता हैं । परंतु हनुमानजी ने उन राक्षसों का तथा प्रहस्तपुत्र जम्बुमाली, मंत्री के सात पुत्रों, पाँच सेनापति और रावण पुत्र अक्षकुमार आदि का वध कर दिया। अंत में इन्द्रजित और हनुमानजी का युध्ध होता है और इन्द्रजित हनुमानजी को बाँध देता हैं। बन्धन अवस्था में ही इन्द्रजित ने हनुमानजी को रावण के दरबार में उपस्थित किया । रावण की सभा में हनुमानजी ने राम के प्रभाव का वर्णन करके रावण को समझाने का प्रयत्न किया, परंतु रावण हनुमान को मृत्यु दण्ड देता है । मृत्युदण्ड की बात सनुकर विभिषण ने कहा कि -

क्षमस्व रोषं त्यज राक्षसेन्द्र प्रस्तद में वाक्यमिदं श्रृणुध्व

वधं न कुर्वन्ति परावरज्ञा दूतस्य सन्तो वसुधाधिपेन्द्राः ।। [26]

अर्थात राक्षसराज ! क्षमा कीजिए, क्रोध को त्याग दीजिए, प्रसन्न होईए और मेरी यह बात सुनिये । ऊँच नीच का ज्ञान रखने वाले श्रेष्ठ राजा लोग दूत का वध नहीं करते हैं । दूत का वध अनुचित है । उसे दूसरा कोई दण्ड़ देना चाहिए, ऐसा विभिषण का अनुरोध स्वीकार करते हुए रावण हनुमानजी का अंगभंग करने के इरादे उनकी पूँछ जला देने की आज्ञा देता है। फिर जलती हुई पूँछ से हनुमानजी लंकापुरी का दहन करते है। समुद्र लांधकर आये हुए हनुमानजी जाम्बवन के कहने पर लंकायात्रा का पूरा वृत्तांत सुनाते हैं । अंत में हनुमानजी श्रीराम को चूडामणि देते हुए, सीताजी का संदेश सुनाते हैं ।

'रामचरित मानस' में तुलसीदास राम की वन्दना करते हुए सुन्दर काण्ड का प्रारंभ करते है । समुद्र मार्ग में सुरसा और सिंहिका रुपी विध्नों का नाश करते हुए हनुमानजी रात को मच्छर जैसा सूक्ष्म रुप धारण कर के लंका में प्रवेश करते हैं । लंका में राक्षसों के घरों में सीताजी की खोज करते हुए हनुमानजी एक ऐसे महेल को देखते हैं जिसमें श्रीराम के धनुष-बाण के चित्र थे । तुलसी के घने पौधे थे -

रामायुध अंकित गृह सोभा बरनि न जाई ।
नव तुलसिका बृंद तहँ देखि हरष कपिराइ ।।[27]

इस प्रकार किसी सज्जन का घर देखकर हनुमानजी ब्राह्मण के रूप में विभिषण के आगे प्रकट होते है। वे विभिषण से वार्तालाप करते हुए जान लेते हैं कि सीताजी अशोक वाटिका में है और वे सीधे उनके पास चले जाते हैं । उस समय वहाँ रावण का आगमन होता है और वह सीताजी को धमकाने लगता है । सीताजी की दुःखी दशा देखकर हनुमान व्यथीत होते हैं । रावण के जाने के पश्चात् जलकर मरने के लिए सीताजी वृक्ष से अंगार मांगती है, तब हनुमानजी मुद्रिका फेंकते हैं। मुद्रिका देखकर सीता हर्षित होती है और राम कथा कहनेवाले हनुमानजी को प्रकट होने के लिए कहती है । अंत में भूख शान्त करने के लिए हनुमानजी सीताजी की आज्ञा से अशोकवाटिका में जाते हैं और अशोक वाटिका का विध्वंस कर देते हैं । अशोक वाटिका में हनुमानजी अक्षकुमार समेत अनेक राक्षसों का वध कर देते हैं। अंत में मेघनाद आकर हनुमानजी

को नागपाश में बांध कर रावण की सभा में ले जाता है। उस समय रावण की सभा में हनुमानजी की पूँछ को जला देने का निणर्य लिया जाता है। जलती हुए पूँछ से हनुमानजी लंका दहन करते है। लंका दहन के पश्चात् हनुमानजी बिदा लेने सीताजी के पास जाते है और चूडामणि लेकर, समुद्र को लांधते हुए राम के पास लौट आते हैं। श्रीराम वानरों की सेना सहित समुद्रतट पर पहुँचते हैं । हनुमानजी द्वारा लंका में मचाये गये उपद्रव के कारण मंदोदरी अपने पति रावण को सीता लौटा देने की प्रार्थना करती है । विभिषण भी अपने भाई रावण को समझाने का प्रयत्न करता है, परंतु रावण अपने छोटेभाई विभिषण को त्याग देता हैं । विभिषण राम की शरण में जाता है और शरणागतवत्सल राम विभिषण को लंका का राज्य देते हुए उनका राज्यभिषेक करते हैं -

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं ।
मोर दरसु अमोध जग माहीं ।
अस कहि राम तिलक तेहि सारा ।
सुमन बृष्टि नभ भई अपारा ।[28]

अर्थात् हे विभिषण ! तुम कुछ चाहते तो नहीं, परंतु जगत में हमारा दर्शन अमोध है, ऐसा कहकर श्रीरामने उनका राजतिलक कर दिया । आकाश से अपार पुष्पों की वृष्टि हुई । तत्पश्चात् विभिषण के आग्रह पर समुद्र से मार्ग लेने के लिए राम ने उपवास शरु किये, परंतु समुद्र की ओर से प्रत्युत्तर न मिलने पर उन्होंने धनुष पर बाण चढ़ाया । तब ब्राह्मण रूप में समुद्र प्रकट होकर राम से क्षमायाचना करने लगता है। अंत में समुद्र के कहने पर राम ने समुद्र पर सेतु बाँधने का निर्णय लिया । श्रीराम के गुणों की महिमा गाते हुए तुलसीदास ने यहाँ सुन्दर काण्ड की समाप्ति की है ।

इस प्रकार 'रामायण' के मूल कथानक में तुलसीदास ने परिवर्तन करते हुए 'मानस' के सुन्दरकाण्ड का कथानक दिया है । 'रामायण' के सुन्दरकाण्ड में विभिषण के घर हनुमानजी का जाना और विभिषण के द्वारा सीता का पत्ता मिलना प्रसंग नहीं है। परंतु तुलसीदास ने 'मानस' में हनुमान-विभिषण मिलन के प्रसंग को विस्तार से दिया है। 'रामायण' में सीता की खोज करते हुए हनुमानजी खूब परिश्रम के बाद सीता का

पत्ता लगाने में सफल होते हैं, परंतु यहाँ विभिषण से सीता का पत्ता मिल जाने से हनुमानजी सीधे अशोकवाटिका में सीताजी के पास पहुँच जाते हैं । जिससे कथा प्रवाह में गति आ गई है । 'रामायण' में सुन्दर काण्ड की कथा लंका से लौटकर हनुमानजी श्रीराम को सीता का संदेश देते हैं, यहाँ तक की है । जबकि मानसकार तुलसीदास ने राम की सेना का समुद्रतट पर आना, विभिषण को शरण देना तथा समुद्र में सेतु बनाने का निश्चय करना इत्यादि प्रसंगों का समावेश सुन्दरकाण्ड में ही कर दिया है । 'रामायण' में हनुमानजी सीता की खोज कर चूडामणि लेकर वापिस लौट रहे थे, तब क्रोधावेश में अशोकवाटिका का विध्वंश कर देते हैं और राक्षसों का संहार करते हैं। लंकादहन के पश्चात् सीताजी को कोई हानि नहीं पहुँची है, यह देखने फिर वह सीताजी के पास जाते हैं । जबकि 'मानस' में भूख के बहाने हनुमान अशोकवाटिका में जाते हैं और राक्षसों को मारकर लंकादहन कर सीताजी के पास बिदा होने आते हैं । 'रामायण' में हनुमान के सागर-लंघन का दृश्य चित्रात्मक कवि कर्म का श्रेष्ठ उदाहरण है, और उनके लंका प्रवेश एवं दुर्गनिरीक्षण की सावधानी में राजनीतिक कुशलता लक्षित होती है । 'मानस' में हनुमान का विभिषण से परिचय लंका प्रवेश के समय ही हो जाता है जबकि 'रामायण' में विभिषण दूत की अवध्यता की राज-नैतिक मर्यादा के नाते ही हनुमान का पक्ष लेते हैं । इस प्रकार 'मानसकार' ने विभिषण को आदर्श भक्तों की श्रेणी में लाने के प्रयत्न के साथ ही उसे निश्चित रुप से कुल द्रोह और देश द्रोह के कलंक की और अधिक धकेल दिया है ।

3.3.6. युध्धकाण्ड/लंकाकाण्ड :-

वाल्मीकि रचित 'रामायण' में इस काण्ड को युध्ध काण्ड नाम दिया गया है, जबकि तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस' में इस काण्ड को लंका काण्ड कहा गया है। 'रामायण' के एक सौ अठ्ठाईस सर्गोंवाले युध्धकाण्ड के प्रारंभ में लंकायात्रा से लौटे हुए हनुमानजी को श्रीराम हृदय से लगाते हैं । हनुमानजी लंका के दुर्ग, फाटक, सेना विभाग, संक्रम आदि का वर्णन करते हैं । राम सहित सेना समुद्र तट पहुँचती है । लंका

में रावण को समझाने गये हुए विभिषण का रावण त्याग करता है और विभिषण राम की शरण में आता है । विभिषण की सम्मति से राम समुद्र के तट पर उपवास पर बैठते हैं, परंतु तीन दिन तक वह कोई संकेत नहीं देता । तब राम कुपित होकर बाण चढ़ाते हैं। अंत में समुद्र की सलाह से नल और नील के द्वारा सागर पर सौ योजन लम्बें पुल का निमार्ण होता है । उसके द्वारा श्रीराम आदि सहित वानर सेना उसपार पहुँचकर पड़ाव डालती है । श्रीराम की आज्ञा से बन्धन मुक्त हुए शुक रावण के पास जाकर राम के सैन्य शक्ति की प्रबलता बताता है, सुनकर रावण भी अपने बल की डींग मारता है । रावण माया रचित श्रीराम का कटा मस्तक दिखाकर सीता को मोह में डालने का प्रयास करता है, परंतु सरमा रावण का भेद खोल देती है और सीता को सान्तवना देती है । माल्यवान रावण को श्रीराम से संधि करने के लिए समझाते हैं, परंतु रावण उनकी बात को भी ठुकरा देता है । प्रमुख वानरों सहित राम सुबेल शिखर से लंकापुरी का निरीक्षण करते हैं, उस समय अपने से बाहर होकर सुग्रीव रावण पर हमला कर देता है और दोनों योध्धाओं में मल्लयुध्ध होता है । रामदूत बनाकर राम अंगद को रावण के दरबार में भेजते हैं । जहाँ अंगद भारी पराक्रम दिखाता है । दोनों सेनाओं में भयानक युद्ध शुरु होता है । अंगद के द्वारा इन्द्रजित पराजीत होता है, परन्तु मायावी शक्ति से अदृश्य होकर इन्द्रजित ने नागमयबाणों से श्रीराम और लक्ष्मण को बाँध दिया । राम-लक्ष्मण की अचेत अवस्था से वानर सेना शोकमय हो जाती है। इन्द्रजीत् ने शत्रुवध का समाचार अपने पिता को दिया उस समय प्रसन्न होकर रावण अपने पुत्र को अभिनन्दन देता है। रावण की आज्ञा से राक्षसियाँ सीता को पुष्पक विमान द्वारा रणभूमि में ले जाकर श्रीराम और लक्ष्मण का दर्शन करवाती है । दुःखी होकर सीता रोने लगती है । अपनी शक्ति के बल पर राम सचेत हो जाते हैं और लक्ष्मण की मूर्छित अवस्थाको देखकर विलाप करने लगते हैं । उस समय वहाँ गरुडजी आते हैं और दोनों भाइयों को नागपाश से मुक्त करवाते हुए कहते हैं कि -

इमं श्रुत्वा तु वृतान्तं त्व रमाणोड़हमागतः ।
सहसैवाक्योः स्नेहात् सखित्वमनु पालयन ।।[29]

अर्थात मैं देवताओं के मुख से आप लोगों के नागपाश में बंधने का समाचार सुनकर बडी उतावली के साथ यहाँ आया हूँ । हम दोनों में जो स्नेह है, उससे प्रेरित मित्र धर्म का पालन करता हुआ सहसा आ पहुँचा हूँ । श्रीराम के बन्धन मुक्त होने का समाचार पाकर चिन्तित हुए रावण ध्रूमाक्ष को युध्ध के लिए भेजता है और ध्रूमाक्ष का हनुमानजी वध कर देते हैं । तत्पश्चात् बज्रदंष्ट्र, अकम्पन, प्रहस्त आदि योध्धाओं का आक्रमण होता है, किन्तु इन सबका क्रमशः अंगद, हनुमानजी तथा नील ने वध कर दिया। प्रहस्त के मारे जाने से दुःखी रावध युध्ध के लिए स्वयं आता है और सुग्रीव लक्ष्मण, हनुमान, नील आदि से युध्ध करता हुआ श्रीराम के साथ भयानक युध्ध करता है। श्रीराम के हाथों से परास्त होकर रावण लंका में घुस जाता है और अपनी पराजय से दुःखी हुआ रावण सोये हुए कुम्भकर्ण को जगाने की आज्ञा देता है । कुम्भकर्ण को देखकर वानर सेना में भागदौड मच जाती है। कुंभकर्ण भयानक युध्ध करता है और श्रीराम उनका भी वध कर देते हैं । कुंभकर्ण की मृत्यु से दुःखी रावण नरान्तक, देवान्तक त्रिशिरा, अतिकाय आदि वीर योध्धाओं को भेजता है, परंतु अंगद, हनुमानजी, नील, लक्ष्मण आदि के द्वारा उनका वध होता है । तत्पश्चात् इन्द्रजित भयानक युध्ध करता है और ब्रह्मास्त्र से वानर सेना सहित राम और लक्ष्मण को मूर्छित कर देता है । जाम्बवान के आदेश से हनुमानजी हिमालय से दिव्य औषधियों के पर्वत को ले आते हैं और सबको स्वस्थ करते हैं । इन्द्रजित द्वारा मायामयी सीता का वध होता है, जिससे श्रीराम मूर्छित हो जाते हैं, परंतु विभिषण इन्द्रजित की माया का रहस्य बताकर उनके जीवित होने का विश्वास दिलाता है । पराजय को विजय में बदलने के लिए इन्द्रजित अपना अंतिम उपाय निकुम्भिला के मंदिर में जाकर होम करता है, परंतु वानर सेना के वीर योध्धा, विभिषण तथा लक्ष्मण ने वहाँ जाकर होम में विध्न डाला और लक्ष्मण अपने तेजस्वी बाणों से इन्द्रजित का वध कर देते हैं। पुत्र शोक में डूबे रावण ने भयंकर युध्ध किया और शक्ति प्रहार से लक्ष्मण को मूर्छित कर दिया । सुषेण द्वारा हनुमानजी की लायी हुई औषधिके प्रयोग से लक्ष्मण पुनः स्वस्थ हो जाते हैं । राम-रावण के युध्ध से पहले अगस्त्य मुनि श्रीराम को विजय के लिए आदित्यहृदय का पाठ करवाते हैं । श्रीराम

और रावण का घोर युध्ध होता है और राम रावण का वध कर देते हैं -

तस्य हस्ताध्धतस्याशु कार्मुकं तत् ससायकम् ।
निपपात सह प्राणैभ्रंश्यमानस्य जवितात् ।[30]

अर्थात श्रीराम के बाणों की चोट खाकर रावण जीवन से हाथ धो बैठा । उसके प्राण निकलने के साथ ही हाथ से सायक सहित धनुष भी छुटकर गिर पड़ा । तदन्तरविभिषण का राज्याभिषेक होने के पश्चात् श्रीराम की आज्ञा से विभिषण सीताजी को उनके समीप लाते हैं । उनके चरित्र पर संदेह कर श्रीराम उन्हें ग्रहण करने से इनकार करते हैं । अपने सतीत्व की परीक्षा देने के लिए सीता अग्नि परीक्षा देती है, उस समय अग्निदेव सीता को लेकर चिता से प्रकट होते हैं और श्रीराम सीता का सहर्ष स्वीकार करते हैं। वनवास की अवधि समाप्त हो जाने से पुष्पक विमान द्वारा राम, लक्ष्मण, सीता, विभिषण आदि अयोध्या आते हैं और बड़ी धूमधाम से राम का राज्याभिषेक होता है । अंत में राम ने वानरों को बिदाई दी और महर्षि वाल्मीकि ने ग्रन्थ का माहात्म्य देते हुए युध्ध काण्ड की समाप्ति की ।

'मानस' में लंकाकाण्ड का प्रारंभ श्रीराम द्वारा रामेश्वर की स्थापना से होता है । नल और नील के द्वारा तैयार किये गये बन्ध पर से श्रीराम सेना सहित समुद्र पार जाते हैं और वहॉ सुमेरु पर्वत पर निवास करते हैं । पत्नीमंदोदरी के साथ नृत्य देखते हुए रावण के घमंड को तोड़ने के लिए राम उन पर बाण चलाते हैं और उनके छत्र-मुकुद को गिरा देते है -

छत्र मुकुट ताटंक तब हते एक ही बान ।
सबकें देखत महि परे मरमु न कोऊ जान ।।[31]

रामदूत बनकर अंगद रावण की सभा में जाता है और अपने बुध्धि चातुर्य और वीरता का परिचय देता है । रावण के न मानने पर भयानक युद्ध होता है । युद्ध में इन्द्रजित् के शक्ति प्रहार से लक्ष्मण घायल हो जाते हैं और उनको मूर्छा आ जाती है । सुषेण वैद्य के कहने पर संजीवनी लेने के लिए हनुमानजी हिमालय पर्वत जाते हैं, वहाँ कालनेमी और मकरी का हनुमानजी उद्धार करते हैं । संजीवनी लेकर लौटते वक्त

अयोध्या में भरत का बाण लगने से हनुमान मूर्छित हो जाते हैं, मूर्छा हटने पर भरत को सारा वृत्तांत कहते हैं । संजीवनी से लक्ष्मण स्वस्थ होते हैं और इससे दुःखी रावण कुम्भकर्ण को जगाता है । राम के हाथों कुम्भकर्ण का वध होता है । उस समय मेघनाद भयानक युद्ध करता हुआ राम-लक्ष्मण को नागपाश से बाँधकर चला जाता है । नागपाश से मुक्त होने पर लक्ष्मण मेघनाद के यज्ञ में विक्षेप करते हुए उनका वध कर देते है। मेघनाद की मृत्यु से रावध युद्ध करने आता है और महाविनाशक युद्ध होता है । रावण युद्ध भूमि में सुग्रीव हनुमान, अंगद, लक्ष्मण आदि से युद्ध करता हुआ राम के साथ भयानक युद्ध करता है और अंत में राम इकतीस बाणों से उनका वध कर देते है -

खौंचि सरासन श्रवन लगि छाडे सर एकतीस
रघुनायक सायक चले मानहुँ काल फनीस ।। [32]

अर्थात् कानों तक धनुष को खींचकर श्रीरघुनाथजी ने इकतीस बाण छोड़े । श्रीरामचन्द्र के बाण ऐसे चले मानों कालसर्प हो । रावण वध के उपरांत विभिषण ने उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की । विभिषण का राज्याभिषेक होने के पश्चात् सीताजी का राम के पास आगमन होता है । श्रीराम सीताजी की अग्नि परीक्षा लेते हुए उनका स्वीकार करते हैं। पुष्पक विमान पर चढ़कर श्रीराम का सीता सहित अवध के लिए प्रस्थान होता है । अयोध्या में राम का राज्याभिषेक और अंत में श्रीराम चरित्र की महिमा को देते हुए तुलसीदास ने लंकाकाण्ड की समाप्ति की ।

इस प्रकार इस काण्ड को वाल्मीकि ने 'रामायण' में 'युध्धकाण्ड' कहा है , जबकि तुलसीदास ने 'लंकाकाण्ड' नाम दिया है । 'मानस' में तुलसीदास ने मूल कथानक में थोड़ा-बहुत परिवर्तन करते हुए युध्ध का चित्रण किया है । 'रामायण' के युध्ध काण्ड के बहुत से प्रसंग रामचरित मानस के लंकाकाण्ड में नहीं है । जैसे 1.रामायण में मेघनाद ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से राम सहित पूरी वानर सेना को घायल कर देता है तब जाम्बवान के कहने पर हनुमानजी हिमालय से दिव्य औषधियों के पर्वत को लाते हैं, जिसकी गन्ध से हर कोई स्वस्थ हो जाते है । 2.इन्द्रजित द्वारा मायामयी सीता का वध करने की कथा, 3.नागपाश से मूर्छित पड़े राम और लक्ष्मण को दिखाने के लिए राक्षसियाँ रावण

की आज्ञा से पुष्पक विमान में सीता को बिठाकर युध्ध भूमि में लाती है, आदि। इस प्रकार मूलकथा में थोड़े-बहुत परिवर्तन करके तुलसीदास ने 'मानस' के लंका काण्ड की कथा दी है, जैसे, राम के बाण से रावण के मुकुट और छत्र का गिरना, मेघनाद की शक्ति से लक्ष्मण का घायल होना, (रामायण में रावण की शक्ति से लक्ष्मण घायल होते हैं ।) काल नेमि का उद्धार, औषधियों से भरें पर्वत को लेकर आते हुए हनुमानजी को भरत का बाण लगना, हनुमान भरत संवाद, रावण द्वारा विभिषण पर किया गया शक्ति प्रहार, जो राम अपने पर ले लेते है, (रामायण में वह शक्ति प्रहार लक्ष्मण अपने पर ले लेते हैं) आदि परिवर्तनों के साथ दोनों काण्डों में युद्ध का सजीव चित्रण किया गया है ।

3.3.7 उत्तरकाण्ड :-

'रामायण' में श्रीराम के दरबार में महर्षियों का आगमन और धार्मिक सम्वादों से उत्तर काण्ड का प्रारंभ होता है । प्रारंभ में राक्षस वंश का वर्णन, रावण आदि का जन्म और तपस्या तथा विविध पराक्रमों की कथा है । देवता भगवान शंकर की सलाह से राक्षसों के वध के लिए विष्णु की शरण मे जाते हैं और उनसे आश्वासन पाकर लौटते हैं। तदन्तर श्रीराम सभासदों के साथ राजसभा में बैठे हैं, भरतजी के द्वारा श्रीराम राज्य के विलक्षण प्रभाव का वर्णन होता है । अशोक वनिका में श्रीराम और सीता विहार करते हैं, गर्भवती सीता तपोवन देखने की इच्छा प्रकट करती है और राम उसे स्वीकृति देते हैं। पुरवासियों के मुख से सीता के विषय में सुनी हुई अशुभ चर्चा से श्रीराम सीता को वन में छोड़ आने के लिए लक्ष्मण को आदेश देते हैं -

श्व स्तवं प्रभाते सौमित्रे सुमन्नाधिष्ठितं रथम् ।
आरुह्य सीता मारोप्य विषयान्ते समुत्सृज ।।[33]

अर्थात् सुमित्रा कुमार ! कल सबेरे तुम सारथि सुमन्त्र के द्वारा संचालित रथपर आरुढ़ हो सीता को भी उसी पर चढ़ाकर इस राज्य की सीमा के बाहर छोड़ दो । तत्पश्चात् मुनिकुमारों से समाचार मिलने पर वाल्मीकि सीता को अपने आश्रम में लाते हैं और उन्हें आश्वासन देते हैं । श्रीराम के दरबार में च्यवन आदि ऋषियों का शुभागमन

होता है और वे लवणासुर के बल और अत्याचार का वर्णन करके उससे प्राप्त होने वाले भय को दूर करने के लिए श्री रघुनाथजी से प्रार्थना करते हैं । श्रीराम ने शत्रुध्न की रूचि जानकर उन्हें लवणवध के लिए भेजा । मार्ग में शत्रुध्न वाल्मीकि आश्रम में सेना सहित रुकते हैं । उस समय सीता दो पुत्रों को जन्म देती है। लक्ष्मण से प्रस्तावित अश्वमेध यज्ञ होता है और उस यज्ञ में महर्षि वाल्मीकि का आगमन होता है और 'रामायण' गान करने के लिए कुश और लव को आज्ञा देते है। गुरु आज्ञा से लव-कुश द्वारा रामायण-काव्य का गान होता हैं और श्रीराम उसे भरी सभा में सुनते हैं । श्रीराम सीता से उनकी शुध्धता प्रामाणित करने के लिए शपथ लेने के लिए कहते हैं । महर्षि वाल्मीकि द्वारा सीता की शुद्धता का समर्थन होता हैं । सीता शपथ ग्रहण करती हुई रसाताल में प्रवेश करती है-

यथेतत् सत्यमुक्त मं वेधि रामात परं न च ।
तथा में माधवी देवी विवरं दातु मर्हति ।। [34]

अर्थात् भगवान श्रीराम को छोड़कर मैं दूसरे किसी पुरुष को नहीं जानती। मेरी कहीं हुई यह बात यदि सत्य हो तो भगवती पृथ्वीदेवी मुझे अपनी गोद में स्थान दें । सीता के पृथ्वी में समा जाने से राम दुःखी होते हैं और ब्रह्माजी उसे समझाते हैं । सीता के रसातल प्रवेश के बाद श्रीराम की जीवन चर्या, रामराज्य की स्थिति तथा माताओं का परलोक गमन आदि का वर्णन है । अंत में काल ने श्रीरामचन्द्रजी को ब्रह्माजी का संदेश सुनाया और रामने उनका स्वीकार किया । श्रीराम के त्यागे जाने पर लक्ष्मण का सशरीर स्वर्गगमन होता है । विभिषण, हनुमान, जाम्बवान मैन्द्र एवं द्विविद को भूतल पर रहने का आदेश देकर, परमधाम जाने के लिए निकले हुए श्रीराम के साथ समस्त अयोध्यावासियों का प्रस्थान होता है । भाइयों सहित श्रीराम का विष्णुस्वरूप में प्रवेश होता है तथा साथ आये सब लोगों को सन्तानक लोक की प्राप्ति होती है । 'रामायण' की महिमा समझाते हुए महिर्ष वाल्मीकि ने यहाँ उतर काण्ड की समाप्ति की है।

तुलसीदास ने राम के विरह में झुरते हुए भरत के चित्रण से उत्तरकाण्ड का प्रारंभ किया है । प्रारंभ में राम वन से लौट रहे हैं, ऐसा संदेश हनुमान की ओर से

मिलने पर पूरी अयोध्या में आनन्द छा जाता है। राम का राज्याभिषेक होने के बाद श्रीराम वानरों एवं निषाद आदि को बिदाई देते हैं । तदन्तर शिव और पार्वती के संवाद द्वारा गरुड़ का काकभुशुण्डि से कथा सुनने के लिए जाना और काकभुशुण्डि अपने पूर्वजन्म की कथा कलि महिमा का वर्णन करते हैं। इन कथाओं के बाद ज्ञान, भक्ति की महिमा देते हुए तुलसीदास ने गरुडजी के द्वारा पूछे गये सात प्रश्न तथा काकभुशुण्डि के द्वारा दिये गये उनके उत्तर का वर्णन किया है। इसी प्रकार वशिष्ट-राम, हनुमान-राम तथा शिव पार्वती आदि के संवादों के माध्यम से तुलसीदास ने ज्ञान, भक्ति और वैराग्य के महत्व को समझाया है। अंत में भजन और 'रामायण' का माहात्म्य देते हुए, फलस्तुति को बताकर तुलसीदासने 'रामचरित मानस' के उत्तरकाण्ड की समाप्ति की है।

इस प्रकार 'रामायण' का उत्तरकाण्ड और 'मानस' का उत्तर काण्ड कथावस्तु, की दृष्टि से बिल्कुल भिन्न है । 'रामायण' की कथा में सीता का पुनः वनवास, वाल्मीकि आश्रम में उनका रहना, कुश और लव का जन्म, सीता का पृथ्वी में प्रवेश आदि कथा को 'मानस' के उत्तर काण्ड में तुलसीदास ने नहीं दिया । 'मानस' का उत्तर काण्ड एक प्रकार से उत्तरों का काण्ड है । पूरे 'मानस' की प्रश्नावली के उत्तरों के रूप में उत्तरकांड़ को दिया गया है । 'रामायण' में महर्षिवाल्मीकि ने राम और उनके भाइयों के स्वर्गगमन तक की कथा को दिया है , जबकि 'मानस' में तुलसीदासने अयोध्या के राजा के रुप में श्रीराम का राज्याभिषेक करवा के अपने 'रामचरित मानस' की कथा को विराम दे दिया है । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' भारतीय जन जीवन एवं जीवन दर्शन के प्रतिनिधि महाकाव्य है । उनमें प्राचीन एवं मध्ययुग की दूरी तो है, पर देशगत दूरी नहीं है । दोनों ही महाकाव्य चरित काव्य हैं, जिनका लक्ष्य एक ही प्रतीत होता है धर्म की संस्थापना अथवा धर्म का आदर्श रूप प्रस्तुत करना । संक्षेप में दोनों महाकाव्यों के कथानक के आधार पर इतना स्पष्ट कह सकते हैं कि वाल्मीकि के मानवीय गुणों से युक्त राम ईश्वर के रूप में और तुलसीदास के ईश्वरीय गुणों वाले राम मानव के रूप में हमारे सामने प्रकट होते हैं ।

संदर्भ सूची

1. वा.रा.बा.बा प्रथम सर्ग-8
2. वा.रा.बा.बा द्वितीय सर्ग-15
3. तुलसी के काव्यादर्श पृ.189 डॉ. मालती दूबे तथा रामगोपालसिंह
4. रा.मानस 1-7
5. रा. मानस 7/130 ख /1
6. वा.रा.बालकाण्ड अष्टादशः सर्ग 8-9-10-13-14
7. रा. मानस 1/44/4
8. रा. मानस 1/46
9. रा. मानस 1/46 /3
10. हिन्दी रामकाव्य का स्वरूप और विकास बदलते युग के परिप्रेक्ष्य में पृ-86 प्रेमचन्द्र महेश्वरी
11. वा.रा. अयो. काण्ड एकादश : सर्ग-27
12. रा. मानस अयो. काण्ड-11
13. रा. मानस अयो. काण्ड-12
14. वा.रा. अयो. काण्ड प्रथम सर्ग-7
15. वा.रा. अयो. काण्ड नवम सर्ग-17
16. महाभारत 3/261-21
17. रा.मानस अयो. काण्ड-27
18. वा.रा. अरण्यकाण्ड षट्चत्वारिंश : सर्ग-8
19. रा. मानस अरण्यकाण्ड-3, 4
20. वा.रा.अरण्यकाण्ड षेट्चत्वारिंशः सर्ग-19,20
21. रा.मानस अरण्यकाण्ड 27/8

22. वा.रा.अरण्यकाण्ड पच्चास सर्ग-52

23. वा.रा. किष्किन्धाकाण्ड पंचक सर्ग-25

24. रा. मानस किष्किन्धाकाण्ड 9/12

25. वा.रा.सुन्दरकाण्ड पच्चदशः सर्ग 18, 19

26. वा.रा. सुन्दरकाण्ड द्विपचास सर्ग-7/8

27. रा.मानस सुन्दरकाण्ड-5

28. रा.मानस सुन्दरकाण्ड-48/5

29. वा.रा.युध्धकाण्ड पच्चांशः सर्ग-51

30. वा.रा.युध्धकाण्ड़ अष्टाधिक शततम सर्ग-21

31. रा.मानस लंकाकाण्ड- 13-क

32. रा.मानस लंकाकाण्ड-102

33. वा.रा. उत्तरकाण्ड पच्चत्वारिशः सर्ग-16

34. वा.रा. उत्तरकाण्ड सप्तनवतित सर्ग - 16

अध्याय – ४

संस्कृत तथा हिन्दी के रामकथा पर आधारित महाकाव्यों में प्रयुक्त चरित्रांकन प्रणाली।

- प्रस्तावना
- काव्य के भेद
- महाकाव्य के लक्षण
- रामकथा आधारित संस्कृत तथा हिन्दी के प्रमुख महाकाव्य
- संस्कृत तथा हिन्दी के रामकथा पर आधारित महाकाव्यों मे प्रयुक्त चरित्र चित्रण की प्रणाली
- निष्कर्ष
- संदर्भ सूची

4.1 प्रस्तावना :

काव्य कला सभी कलाओं में सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। मानव चिन्तन का उत्तम रूप काव्य में ही निःसृत होता है। काव्य एक रचना है, सृजन है। इसका सम्बन्ध विश्लेषण, तर्क, बुद्धि से उतना नहीं, जितना सृजनात्मक या रचनात्मक प्रतिभा से है। काव्य प्रतिभा-सम्पन्न मानव की शब्दगत सुंदर सृष्टि है। वह साहित्य के समस्त रूपों की अपेक्षा अधिक रोचक है ।

4.2 काव्य के भेद :

प्राचीन आचार्यों ने काव्य के दो मुख्य भेद किये हैं -1. श्रव्य काव्य तथा 2. दृश्यकाव्य । जिसे कानों से सुनकर आनन्द की प्राप्ति की जाती है, ऐसे काव्य को श्रव्य काव्य कहते हैं और जिस काव्य को अभिनीत रूप में देखकर आनन्द की प्राप्ति हो सके ऐसे काव्य दृश्य काव्य की परिपाटी में आयेंगे। श्रव्य तथा दृश्य काव्य के रूप में काव्य के भेद करने के पश्चात् भारतीय आचार्यों ने श्रव्य काव्य के दो भेद किये हैं, 1.प्रबन्ध काव्य तथा 2. निर्बन्ध या मुक्तक काव्य । प्रबन्ध काव्य के भी विद्वानों ने तीन भेद किये हैं, जिसमें 1. महाकाव्य 2. एकार्थ काव्य और 3. खण्ड़काव्य ।

4.3 महाकाव्यों के लक्षण :

काव्य के उपर्युक्त भेदों में अब हम महाकाव्य के तत्वों का संक्षेप मे विवेचन करेंगे। महाकाव्य में जीवन की सम्रग रूप में अभिव्यक्ति की जाती है और प्रायः उसमें जातीय जीवन को उसकी अनेकानेक विशेषताओं के साथ चित्रित किया जाता है । कथा की दीर्धता के साथ महाकाव्य में आकार की विशालता और भावों की बहुलता विद्यमान रहती है ।

भारतीय तथा पाश्चात्य आचार्यों ने महाकाव्य के लक्षणों को लेकर अपने-अपने विचार प्रस्तुत किये हैं । 'अग्नि पुराण' में महाकाव्य के लक्षण देते हुए लिखा गया है कि –

सर्गबद्धो महाकाव्यमारब्धं संस्कृतेन यत् ।।

तादात्म्यमजहत्तत्र तत्समं नातिदुष्यति ।
इतिहास कथोद्भूतमिरतद्वा सदाश्रयम् ।।
मंत्रद्यूत प्रयाणााजि नियतं नातिविस्तरम् ।
शक्कर्याऽतिजगत्याऽतिशक्कर्या त्रिष्टुभा तथा ।।
पुष्पिताग्रादिभिर्वक्त्राभिर्जनैश्चारुभिः समैः ।
मुक्ता तु भिन्नवृत्तान्त नातिसंक्षिप्त सर्गकम् ।।
अतिशक्करिकाष्टभ्यामेकं संकीर्णकैः परः।
मात्रयाऽप्यपर : सर्ग : प्राशसत्येषु च पश्चिम : ।।
कल्पोडतिनिन्दितस्तस्मिन्विशेषानादरः सताम् ।
नगरार्णवशैलर्तु चन्द्रार्काश्रमपादपैः ।।
उद्यानसलिलक्रीडा मधुपानरतोत्सवैः ।
दूती बचन-विन्यासैरसती चरिताद्भुतेः ।।
तपसा मरुताऽप्यन्यैर्विभावैरतिनिर्भरैः ।।
सर्ववृतिप्रवृतं च सर्वभावप्रभावितम् ।।
सर्वरीतिरसैः स्पृष्ट्र पुष्टं गुणविभूषणैः ।
अतएव महाकाव्यं तत्कर्ता च महाकविः ।।
वाग्वैदग्ध्यप्रधानेऽपि रस एवात्र जीवतिम. ।
पृथक् प्रयत्नं निर्वर्त्य वाग्विक्रमणिरसाद्वपुः ।।
चतुवर्गफलं विश्वव्याख्यांतं नायकाख्यया ।
समानवृत्ति निर्व्यूढः कैशिकी वृति कोमलः ।।[1]

अग्निपुराण में लिखे उपर्युक्त विवेचन से महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित होते हैं वे इस प्रकार हैं –

1. महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है ओर यही सर्ग विभिन्न कथाओं के साथ विस्तृत होना चाहिए ।
2. इतिहास प्रसिद्ध अथवा किसी महात्मा, सज्जन पुरुष के वास्तविक जीवन पर

आधारित महाकाव्य का कथानक होना चाहिए ।

3. उसमें शक्करी, अति शक्करी, जगती, अतिजगती, त्रिष्टुप जातिवाले पुष्पिताग्रादि छन्दों का प्रयोग होता है ।

4. महाकाव्य में नगर, वन, पर्वत, चन्द्र, सूर्य, आश्रम, वृक्ष, उपवन जलक्रीड़ा, मधुपान-उत्सव आदि का वर्णन होता है । समस्त रीतियों, वृतियों और रसों का समावेश होता है ।

5. उक्तिवैचित्र्य की प्रधानता होने पर भी उसमें प्राण के रूप में रस ही व्याप्त रहता है ।

6. उस में विश्वविख्यात नाम से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चर्तुवर्ग प्राप्ति दिखायी जाती है ।

9. महाकाव्य का प्रारंभ संस्कृत भाषा से होना चाहिए जिसमें तद्‌भव और तत्सम प्राकृतों का प्रयोग नहीं होना चाहिए ।

अग्निपुराण के ही समान आचार्य दण्ड़ी ने भी काव्यादर्श[2] में महाकाव्य के लक्षण दिये हैं । इसमें अग्निपुराण को छोड़कर महाकाव्य की अन्य विशेषताएँ दण्डी ने दी है जो इस प्रकार है –

1. प्रारंभ में आशीर्वचन, स्तुति या कथावस्तु का संकेत होना आवश्यक है ।
2. महाकाव्यों को विविध लोककथाओं से युक्त होकर लोकरंजक होना चाहिए।
3. महाकाव्य में प्रस्तुत काव्य युगों तक अमर होना चाहिए ।

महाकाव्य की परिभाषा देने वाले प्राचीनतम आचार्यों में भामह भी हैं । उन्होंने महाकाव्य के प्रधान तत्वों को पकड़कर उनके काव्यस्वरूप को प्रकट किया है –

सर्गबद्धो महाकाव्यं महतां च महत्व यत् ।
अग्राम्य शब्दमर्थ च सालंकारं सदाश्रयम् ।।
मंत्रदूत प्रयाणाजिन नायकाभ्युदयञ्च वत् ।
पंचभिः संधि भिर्युक्तः नाति व्याख्येमृद्धियत् ।।[3]

अर्थात् भामह के उपर्युक्त विवेचन से महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित होते हैं वे इस प्रकार हैं –

1. उसमें सर्गबद्धता होनी चाहिए ।
2. आकार बड़ा होना चाहिए ।
3. शब्द-चयन और प्रस्तुत विधान उत्कृष्ट होना चाहिए अर्थात शिष्ट नगर प्रयोग और अलंकृति।
4. महान-चरित्र और विजयी नायक का समावेश
5. जीवन के विविध रूपो, अवस्थाओं और घटनाओं का चित्रण ।
6. नाटक की सभी सन्धियाँ तथा कार्यअवस्थाएँ होनी चाहिए ।
7. व्याख्या की अधिकता नहीं होनी चाहिए ।
8. ऋद्धिमत्ता होनी चाहिए ।

आचार्य विश्वनाथ ने अपने पूर्ववर्ती सभी आचार्यों के मतों का समाहार करके 'साहित्य दर्पण' में महाकाव्य की परिभाषा दी है । महाकाव्य की धारणा का पूर्ण विकास विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' में दिये गये महाकाव्य के लक्षणो में मिलता है जो इस प्रकार है –

सर्गबद्धो महाकाव्यं तत्रैको नायकः सुरः ।।
सद्वंशः क्षत्रियोवापि धीरोदात्तगुणान्वितः ।
एकवंश भवा भूपाः कुलजा बहवोऽपि वा ।।
श्रृंगारवीरशातानामेकोऽगी रस इष्यते ।
अंगानि सर्वेऽपि रसाः सर्वे नाटकसंधय।।
इतिहासोद्रवं वृतं अन्यद्वा सज्जनाश्रयम् ।
चत्वार : तस्य वर्गास्युस्तेष्वकं च फलं भवेत ।।
आदौ नमसिक्रयाशीवां वस्तुनिर्देश एव वा ।
कृचिन्निन्दा खलादीनां सतां च गुण कीर्तनम् ।।

एकवृत्तमयै पद्यैखसानेऽन्यवृत्तकैः ।
नातिस्वल्पा नातिदीर्धाः सर्गा अष्टाधिकाः इह ।।
नानावृत्तमयः क्कापि सर्गः कश्चन दृश्यते ।
सर्गान्त भाविसर्गस्य कथायाःसूचनं भवेत् ।
सन्ध्या सूर्येन्दुरजनी प्रदोषध्वांतवासराः ।
प्रातर्मध्याह्न मृगया शैलतु वनसागराः ।।
संभोग विप्रलम्भौ च मुनिः स्वर्ग पुराध्वराः ।
रणप्रयाणोपायमंत्रपुत्रों दयादयः
वर्णनीया यथायोग्यं सांगोपांगा अमी इह ।।
कवेर्वृतस्य वा नाम्रा नायकस्येतरस्य वा ।
नामास्य सर्गोपादेवकथया सर्वनाम तु।
अस्मिन्नार्षे पुनः सर्गा भवन्त्याख्यानसंज्ञ का ।।
प्राकृतैर्निर्मिते तस्मिन्सगा आश्वाससंज्ञका ः ।
छन्दसा स्कन्धकेनैतित्क्कचिदगलितकैरपि ।।
अपभ्रंशनिबद्वेऽस्मिन्सर्गा कुण्डवकाभिधाः ।
तथापभ्रंशयोग्यानिच्छंदासि विविधान्यापि ।।[4]

विश्वनाथ के उपर्युक्त विवरण से महाकाव्य के जो लक्षण निर्धारित होते हैं वे इस प्रकार हैं ।

1. महाकाव्य में पूर्णजीवन की गाथा होती है । आठ से अधिक सर्गो में विभाजित तथा इतिहास-प्रसिद्ध अथवा किसी महापुरुष की वास्तविक जीवनगाथा आधारित होना चाहिए ।
2. महाकाव्य का नायक देवता, उच्चकुलीन, क्षत्रिय अथवा एक या अनेक वंशों में उत्पन्न राजा तथा जिनका चरित्र धीरोदात्त गुणों से युक्त होना चाहिए ।
3. महाकाव्य में सभी रस आवश्यक है, परंतु शृंगार वीर और शान्त रस तो होना ही चाहिए ।

4. रस प्रवाह के लिए महाकाव्य के एक सर्ग में एक ही छन्द का होना अनिवार्य है । सर्गान्त में छन्द बदलना चाहिए ।

5. महाकाव्य में जीवन के सभी दृश्यों, प्रकृति के विभिन्न रूपों और विविध भावों का वर्णन आवश्यक है ।

6. महाकाव्य का शीर्षक कवि, नायक या कथातत्व के आधार पर होना चाहिए ।

7. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति महाकाव्य का उद्देश्य होना चाहिए।

भारतीय आचार्यों की भांति पाश्चात्य विद्वानों ने भी महाकाव्य के लक्षणों को लेकर अपने विचार प्रस्तुत किये हैं । इन आचार्यो में ल बस्सु, लुकन, हीगेल, शिलर तथा गेटे आदि प्रमुख हैं । महाकाव्यों में वर्णित घटनाओं का समय कितना होना चाहिए तथा घटना अर्वाचीन या प्राचीन होनी चाहिए आदि सम्बन्ध में विद्वानों में गहरा मतभेद है । इस मतभेद के बावजूद भी पाश्चात्य आचार्यों द्वारा प्रतिपादित महाकाव्य की रूपरेखा से कुछ सर्वमान्य तथ्यों को इस प्रकार रखा जा सकता है ।

1. महाकाव्य एक विशाल प्रकथ्थन-प्रधान काव्य है ।

2. इसका नायक युद्ध प्रिय तथा पात्रों मे शोर्यता होनी चाहिए ।

3. महाकाव्य में जातीय भावना का होना जरूरी है ।

4. कुछ आलोचकों के अनुसार महाकाव्य के चरित्रों का सम्पर्क देवताओं से रहना चाहिए, जबकि इस विषय में लुकन का कहना है कि पात्र के कार्य कलाप में देवताओं या दैवी शक्ति का हस्तक्षेप नहीं होना चाहिए ।

5. महाकाव्य का विषय परम्परा से प्रतिष्ठित होना चाहिए ।

6. कथासूत्र नायक से बँधा हुआ होना चाहिए ।

7. महाकाव्य की शैली विशिष्ट और उच्चगुणों से युक्त होनी चाहिए ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है भारतीय और पाश्चात्य आचार्यों द्वारा दिये गये महाकाव्यों के लक्षणों में विशेष अन्तर नहीं है । पाश्चात्य आचार्यो ने महाकाव्य में जातीय भावना पर बल दिया है । दोनों के आदर्शों के अनुकूल महाकाव्य का नायक उदात्त विचारों वाला होता है । उसकी महान विजय यात्राओं और साहसपूर्ण कार्यो में

जातीय भावनाओं, महत्वाकांक्षाओं और आदर्शों का प्रकाशन होता है ।

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा दिये गये महाकाव्य के लक्षणों को एकसूत्रता में आबद्ध कर महाकाव्य के निम्नंकित तत्व बताये जा सकते हैं ।

1. महाकाव्य का कथानक न तो बहुत लम्बा होना चाहिए और न ही अधिक संक्षिप्त। यह सर्गबद्ध होना चाहिए, जिससे नाटक की पांचों संधियों का समावेश हो सके। कथानक ऐतिहासिक और लोकप्रसिद्ध होना चाहिए ।
2. नायक को धीरोदात्त, उच्चकुलोत्पन्न और सर्वगुण सम्पन्न होना चाहिए । कथा में संघर्ष उत्पन्न करने के लिये प्रतिनायक का होना भी जरूरी है। नायक की भांति प्रतिनायक के कुल और गुण का वर्णन होना चाहिए।
3. महाकाव्य में वस्तु, व्यापार और परिस्थिति का वर्णन होना चाहिए ।
4. प्रकृति-चित्रण भी महाकाव्य के लिए आवश्यक है ।
5. महाकाव्य में सभी रसों का वर्णन होना चाहिए ।
6. महाकाव्य में अलौकिक और अप्राकृतिक तत्वों का समावेश आवश्यक है।
7. महाकाव्य के प्रारंभ में आशीर्वचन, मंगलाचरण इष्टदेवता को नमस्कार होना चाहिए ।
8. महाकाव्य में छन्दों का प्रयोग तथा सर्ग के अन्त में प्रत्येक सर्ग में एक ही छन्द का प्रयोग तथा सर्ग के अन्तमें छन्द बदल जाना चाहिए ।
9. महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष अर्थात् चर्तुवर्ग की प्राप्ति उद्देश्य होना चाहिए ।

उपर्युक्त तत्वों को सामने रखकर हम यह कह सकते हैं कि महाकाव्यों में इन सभी विशेषताओं का निर्वाह नहीं किया जाता । कुछ महाकाव्यों में उपर्युक्त एक-दो विशेषताएँ अधिक है और कुछ महाकाव्यों में क्षीण है । इन तत्वों में किसी महाकाव्य में कोई तत्व सर्वोत्कृष्ट रूप में होता है और किसी में कोई तत्व । अतः इस सर्वोत्कृष्ट तत्व के आधार पर महाकाव्यों को चार वर्गो में रख सकते हैं –

1. कथाप्रधान 2. भावप्रधान 3. अलंकृति प्रधान 4. चरित्र प्रधान ।

जिन महाकाव्यों में उपर्युक्त तत्वों में से सबसे अधिक कथानक-विन्यास हो, घटनाओं का रोचक वर्णन हो और कवि का उद्देश्य भी कथा या घटनाओं के जरिए फलित हो कथाप्रधान महाकाव्य है ।

भावप्रधान महाकाव्यों में उत्कृष्ट भाव रहता है । ऐसे महाकाव्यों के चरित्रों से हम प्रभावित नहीं होते परंतु हम भावातिरेक प्राप्त कर सकते हैं ।

महाकाव्य की अन्य विशेषताओं के होते हुए उसमें उत्कृष्ट प्रभाव डालने वाला उसकी शैली को अलंकृति प्रधान महाकाव्य कहा जाता है ।

जिन महाकाव्यों में महाकाव्योचित तत्वों और विशेषताओं का समावेश होते हुए भी सर्वाधिक उत्कृष्ट चरित्र चित्रण किया हो और किसी महान व्यक्ति के चरित्र का मार्मिक विश्लेषण उसमें मिलता हो, वे चरित्र प्रधान महाकाव्य है । रामायण, रघुवंश, रामचरित मानस और साकेत आदि महाकाव्य इसी प्रकार के चरित्र प्रधान महाकाव्य हैं ।

महाकाव्यों में नायक, प्रतिनायक आदि के चरित्र चित्रण की भी आचार्यों ने चर्चा की है । दण्डी ने महाकाव्य में नायक के चरित्रोत्कर्ष के लिये ओर उपाय दिखाते हुए कहा है कि नायक के गुणों का पहले निरुपण करके फिर अत्याचारी प्रतिनायक के कार्यों का निराकरण करना सबसे सहज मार्ग है । महाकाव्य में शत्रु के भी उच्चवंश वीर्यबल, विद्या आदि की महानता का वर्णन करना चाहिए । क्योंकि इससे उसके उपर विजय प्राप्त करनेवाले नायक का उत्कर्ष स्वयं हो जाता है ।

महाकाव्य में नायक के चरित्र में वीरता, महानता, धीरता, नीति कुशलता जैसे गुण होना चाहिए । नायक के इन गुणों की ओर किसी का ध्यान नहीं गया । परंतु संस्कृत विद्वान रूद्रट ने इस ओर संकेत करते हुए कहा है कि महाकाव्य का नायक द्विज कुलोत्पन्न, सर्वगुणसम्पन्न महान, वीर और शक्तिमान, नीतिज्ञ और कुशल राजा होता है । उसमें प्रतिनायक और उसके कुल का भी वर्णन होता है । महाकाव्य के अन्त में नायक की विजय दिखाई जाती है, प्रति नायक की नहीं ।[5]

चरित्र-चित्रण महाकाव्य का अनिवार्य तत्व है। पात्र और कार्यव्यापार अन्योआश्रित होते हैं। चरित्र के चित्रण से ही काव्य प्राणवान् बनता है ।

पाश्चात्य विद्वानों ने चरित्र-चित्रण के लिये केवल नायक पर ही विशेष बल दिया है । उनका मानना है कि नायक इतिहास का सुविख्यात व्यक्ति होना चाहिए । कुछ लोग उसे सम्राट या महापुरुष तक ही सीमित रखते हैं । पर इतना अवश्य है कि वह चाहे जो हो, उसमें उच्च गुणों का समावेश हो । वह प्रतिष्ठित परिवार का व्यक्ति हो । नायक के कार्य ऐसे होने चाहिए जिसकी सभी लोग प्रशंसा कर सकें ।

4.4 रामकथा आधारित संस्कृत तथा हिन्दी के प्रमुख महाकाव्य :

लौकिक संस्कृत साहित्य का सर्वप्रथम महाकाव्य महर्षि वाल्मीकि कृत महाकाव्य 'रामायण' है । व्याध के बाण से बिंधे हुए कौंच के लिए विलाप करनेवाली कौंची का करुण क्रन्दन ऋषि ने सुना तो उसके मुख से अकस्मात् यह श्लोक निकल पड़ा –

मा निषाद । प्रतिष्ठा त्वमगमः शाश्वतीः समाः ।
यत् क्रौंचमिथुनादेकमवधी् : काम मोहितम ।।[6]

अर्थात् हे बहेलिये ! तुमने काम से पीड़ित इस कौंच पक्षी को मारा है अतः तुम सदा के लिए प्रतिष्ठा न प्राप्त करो । यह श्लोक ही 'रामायण' का बीज रूप है। यहीं कारण है कि संस्कृत साहित्य में महर्षि वाल्मीकि कृत 'रामायण' आदिकाव्य माना जाता जाता है और महर्षि वाल्मीकि को आदि कवि समझे जाते हैं ।

इतिहास पुराण आदि के द्वारा जिस राम साहित्य की प्रतिष्ठा हुई है उसका प्रवाह संस्कृत के कतिपय महाकाव्यों और नाटकों में स्यन्दमान हुआ है और कालान्तर में इनके द्वारा राम साहित्य का क्षेत्र व्यापक तथा मनोज्ञतर होकर जगमगाया । कवि कण्ठाभरण कालिदास कृत 'रघुंवश' महाकाव्य प्राचीन राम साहित्य की उत्तम निधि है । समस्त रामचरित का छः सर्गो में वर्णन किया गया है । इसका कथानक वाल्मीकि रामायण पर निर्भर है । इक्ष्वाकु कुल के प्रसिद्ध राजा रघु के नाम पर से इस महाकाव्य का शीर्षक 'रघुवंशम्' रखा गया है । रघुवंश महाकाव्य में एक से अधिक सूर्यवंश के राजा नायक हैं, जो उदात्त एवं चतुर हैं । महाकाव्य में एक से अधिक नायक होने पर भी उनके वर्णन में कवि की कलम कहीं भी शिथिल नहीं बनी हैं । इस महाकाव्य का उद्देश्य अर्थ

और काम को अवरूद्ध ऐसे धर्म-प्राप्ति का है । वैदर्भी रीति में लिखा गया अभिनन्दन कृत 'रामचरित' भी उत्तम महाकाव्य है । ई. पूर्वार्ध में रामचरित की रचना हुई है । इसके 36 सर्गो में राम-लक्ष्मण के प्रसवण पर्वत के वर्षा निवास से कुंभ निकुंभ वध तक की वाल्मीकिय राम कथा का वर्णन मिलता है । वल्लभी के राजा श्रीधर सेन के राजाश्रित कवि भट्टिकृत 'रावणवध' जो भट्टिकाव्य के नाम से भी विश्रुत है एक उत्कृष्ट महाकाव्य है । इसकी रचना कच्छ में छट्ठी अथवा सातवीं शताब्दी में हुई थी । इसमें रामायण के प्रथम छः काण्डो की कथावस्तु का किंचित परिवर्तन करके वर्णन किया गया है । भट्टिकाव्य की विशेषता यह है कि उसमे राम कथा के सिवा संस्कृत व्याकरण और अलंकार शास्त्र के नियमों को उदाहरण के साथ प्रस्तुत किया गया है । भट्टि के इस महाकाव्य को अधिक ख्याति प्राप्त हुई थी क्योंकि शास्त्र और काव्य का समन्वय करने का यह प्रथम प्रयास था । विद्वानों ने सात महाकाव्यों को प्रशिष्ट महाकाव्यों के रूप में स्वीकारा है उन में भट्टि काव्य को भी स्थान प्राप्त हुआ है । कुमारदास रचित जानकीहरण बहुत समय तक आप्राप्य था । सिंहलद्वीप की एक अपेक्षाकृत अर्वाचीन दंतकथा के अनुसार कुमारदास छट्ठी शताब्दी ई. में वहाँ के राजा थे । जानकी हरण की कथावस्तु रामायण के प्रथम छः काण्डों पर निर्भर है । इस रचनाकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके 20 सर्गों में शृंगारात्मक वर्णनों को पर्याप्त स्थान दिया गया है । कश्मीर निवासी क्षेमेन्द्र ने 1037 ई में रामायण मंजरी की रचना की थी जिसकी मौलिकता का पूर्णतः अभाव है। परंतु अपने दूसरे महाकाव्य दशावतारचरितम् में रामावतार वर्णन में रामकथा का एक नवीन रूप प्रस्तुत किया है। इसके सिवा साकल्यमल्ल द्वारा रचित 'उदार राघव' की रचना 14 वीं शताब्दी ई में हुई थी । इसका कथानक भी वाल्मीकि रामायण के आधार पर ही लिखा गया है ।

पन्द्रहवीं शताब्दी के पश्चात् भी कई रचनाओं का उल्लेख मिलता है जिसमें अभिनव बाणभट्ट का रघुनाथ चरित, रघुनाथ उपाध्याय का रामविजय महाकाव्य, चक्रकविकृत जानकी परिणय, बनारस निवासी अद्वौतकृत रामलिंगामृत आदि प्रमुख है।

परंतु इन महाकाव्यों में से अधिकतः अप्रकाशित है ।

संस्कृत की भांति हिन्दी में भी राम कथा आधारित अनेक महाकाव्य प्राप्त होते है। इन सभी महाकाव्यों में सर्व-श्रेष्ठ महाकाव्य अगर कोई है तो वह है गोस्वामी तुलसीदास रचित रामचरित मानस। इसी एक रचना के द्वारा हिन्दी प्रदेश में रामभक्ति की धारा फैल गई और आज तक प्रवाहित होती रही है। खडीबोली में रचित हिन्दी के अनेक कवियो ने रामकथा को आधार बनाकर महाकाव्यों की रचना की है जिसमें रामचरित चिन्तामणि, साकेत, वैदेही--वनवास, साकेत-सन्त, कैकेयी, उर्मिला, रामराज्य, रावण आदि प्रमुख हैं । अतः ये सभी महाकाव्य साहित्यिक मूल्य रखते हैं । रामचरित उपाध्याय का 'रामचरित चिन्तामणि' महाकाव्य सन 1920 ई में प्रकाशित हुआ था । इस महाकाव्य में परम्परित रूढ नैतिक मर्यादा के स्थान पर नवीन आदर्शों की अभिव्यक्ति हुई है । रामकाव्य की परम्परा को गुप्तजी ने 'साकेत' में पुर्नजीवन प्रदान किया है । 'साकेत' में रामचरित मानस की कथा को आधार बनाकर कवि ने ऊर्मिला और लक्ष्मण को प्रधानता दी है । ये दोनों ही इस महाकाव्य के नायक और नायिका हैं । बलदेव प्रसाद मिश्र कृत 'साकेत सन्त' 1946 ई को प्रकाशित हुआ था । इसका प्रारंभ नवविवाहिता भरत और माण्डवी के प्रेमालाप से होता है । भरत मांडवी के गार्हस्थ जीवन की कल्पना जन्य उद्भावना 'साकेत सन्त' में हुई है । 'साकेत सन्त' में कविने भरत और माण्डवी के वाग्विनोद, संगीत, कला प्रेम, तत्वज्ञान चर्चा इत्यादि का विधान कर पति-पत्नी के सम्बन्धों को मात्र दैहिक सम्बन्धों तक सीमित न रखकर जीवन और जगत की व्यापक समस्याओं से सम्बन्ध कर दिया है । चाँदमल अग्रवाल 'चन्द्र' ने 'कैकेयी' महाकाव्य कैकेयी के चरित्र का परम्परागत नारी-विषयक दुर्बलताओं को सुरिक्षत रखते हुए भी उसके उज्जवल पक्ष को रेखांकित करने के लिए रामवनगमन प्रसंग को उदत्त रूप में प्रस्तुत किया है। 'कैकेयी' महाकाव्य में कवि ने राम वनगमन से सम्बन्ध वरदान को कैकेयी के शुद्रस्वार्थ का परिणाम न बताकर उसे राक्षस वध अथवा राष्ट्र संरक्षक विषयक कैकेयी की दूरदर्शिता से सम्पृक्त कर दिया है । बालकृष्ण शर्मा

'नवीन' कृत 'उर्मिला' महाकाव्य में राजा जनक के प्रागंण मे क्रीडारत चारों बहिनों का चित्रण है। नवीनजी ने अपनी द्रष्टि सीता और उर्मिला पर ही विशेष केन्द्रित है । नवीनजी ने 'उर्मिला' महाकाव्य में मानवता, मानवीय-संवेदना तथा राष्ट्र प्रेम की अनिवार्यता को सुरक्षित रखते हुए उर्मिला के प्रेम को अतीन्द्रियता और आध्यात्मिकता का संस्पर्श दिया है । बलदेव प्रसाद मिश्रजी के 'रामराज्य' महाकाव्य में रामराज्य का भव्य आदर्श उपस्थित किया है जिस में समस्त मानवता की कल्याण कामना की गई है। व्यक्ति और राज्य के प्रकट पारस्परिक सहयोग के द्वारा लोकहीत की कामना ही रामराज्य का मूल मंत्र है । हरदयालसिंह कृत 'रावण' (इ.1952) महाकाव्य में लंकापति दशानन के चरित्र को पूर्ण सहानुभूति के साथ अंकित करने का प्रयास किया गया है । यह काव्य सत्रह सर्गों में विभक्त है तथा इसकी कथावस्तु वाल्मीकि रामायण पर आधारित है । रावण के चरित्र को ऊँचा उठाते हुए कवि ने उसे अत्यंत पराक्रमी, उत्साही, त्यागी, शूरवीर के रूप में प्रस्तुत किया है । निष्कर्ष में हिन्दी के अनेक कवियों ने रामकथा को आधार बनाकर महाकाव्य की रचना की है । निबंध के विस्तार हो जाने के भय से उन सभी महाकाव्यों का परिचय देना अनुचित होगा । अतः अब हम संस्कृत और हिन्दी के महाकाव्यों में कवियों की चरित्र-चित्रण की प्रणाली पर प्रकाश डालने का प्रयत्न करेंगे ।

4.5 संस्कृत तथा हिन्दी के रामकथा पर आधारित महाकाव्यों में प्रयुक्त चरित्र चित्रण की प्रणाली :

चरित्र-चित्रण प्रबन्ध काव्य का अनिवार्य तत्व होता है । पात्र और कार्यव्यापार अन्योन्याश्रित होते हैं । इसलिए इन दोनों के सापेक्षित महत्व के सम्बन्ध में बड़ा विवाद है । चरित्र-चित्रण काव्य को प्राणवान बनाता है । संस्कृत वाङमय के कवियों में स्वयशोवृद्धि के लिए ख्यातिप्राप्त कुलीन स्थैर्यवृत्ति पुरुषों के चारित्रिक गुणगान करने की प्रवृति रही है । इनके पात्र असामान्य विशिष्टता से ओतप्रोत दृष्टिगत होते हैं । संस्कृत कवियों द्वारा पात्रों में किसी नियतादर्श को ही प्रतिष्ठित किया जाता हुआ देखा जाता है,

फिर भी व्यक्तिगत चरित्र वाले पात्र देखे ही जाते हैं । राम की गम्भीरता, लक्ष्मण का क्रोध, देवताओं की स्वार्थवृत्ति, क्षण दाचरों का दुराचार आदि बिना चर्चा के पाठक वृन्द को द्रष्टि गत होता है । हिन्दी के आधुनिक रामकाव्य में प्रायः सभी प्रकार के पात्रों को स्थान दिया गया है परंतु आधुनिक चिन्ता धारा अप्राकृत को प्राकृत स्वरूप देने के पक्ष में है । इसलिए उसमें सुर असुर तथा ससम्भावित पात्रों को मानवी स्वरूप दे दिया है । समस्त कवि पात्रो के चरित्र-चित्रण में लोक प्रसिद्ध एवं उसके वैयक्तिक स्वरूप को मानस पटल पर रखकर अपनी विवेक रूपी तूलिका से चारित्रिक संमार्जन कर सह्रदयों के समक्ष उनका आदर्श चरित्र प्रदर्शित करते हैं और यही उनकी सफलता होती है ।

संस्कृत के महाकवियों ने अपने काव्य में राम आदि का अवतार के रूप में चित्रण न करते हुए मानव के रूप में ही चित्रण किया है । महर्षि वाल्मीकि कृत 'रामायण' में राम को देवता के रूप में न रखकर एक मनुष्य के रूप में रखा है । कवि किसी अति प्राकृत, अलौकिक देवता के अनुसंधान की अपेक्षा नरत्व के अनुसंधान के लिए ही विशेष प्रवृत रहे हैं । उनकी दृष्टि में मानवीय सृष्टि देव सृष्टि से भी कहीं अधिक महान है ।[7] कालिदास ने राम को एकाध स्थल पर विष्णु का अवतार बतलाने के अतिरिक्त उनके अवतारत्व के प्रति विशेष रुचि नहीं दिखलायी है –

रामाभिधानौ हरिरित्युवाच ।[8]

इस प्रकार राम के अलौकिक रूप को प्रकट करते हुए कविने 'रावणवध' महाकाव्य में सीता-खोज के प्रसंग पर पधारे स्वयं शिवजी द्वारा राम को 'नारायण स्वरूप' कहे जाने की बात का जिक्र किया है, यथा ...।'

प्रणमन्तं ततो राम मुक्तवानिति शंकरः ।
किं नारायणमात्मानं नाऽभोत्स्यत भवानजम।।[9]

राम का आदर्श चरित्र भारतीय जनता के सामने विकसित होते-होते उनके चरित्र में अलौकिकता की मात्रा बढ़ गई और तुलसीदास तक आते आते भक्ति-विषयक काव्यों में राम पूर्णतः विष्णु के रूप मे प्रकट हो गये । अवतारत्व की कल्पना के कारण

रामकाव्य में अध्यात्म तत्व का अनुप्रवेश हुआ, जिसके परिणाम स्वरूप राम कथा को अत्यंत लोकप्रियता प्राप्त हुई । भक्ति काव्यों में राम को पूर्ण ब्रह्मके रूप में चित्रित किये गये है, इसी कारण इनके कार्यों को भी अलौकिक दिखाये गये हैं । अतः कवि चरित्रों को असाधारण या उनको ब्रह्म के रूप में चित्रित करने के कारण उन पात्रों का गुणगान करने के अतिरिक्त उनके चरित्र में ओर कोई उतार चढ़ाव नहीं कर पाये हैं । आधुनिक कवियों ने राम को असाधारण पुरुष के रूप में चित्रित करते हुए अपनी श्रद्धा भक्ति प्रकट की है –

1. जिसकी भृकुटि इंगित हुए यह नाचता संसार है ।[10]
2. हो गया निर्गुण सगुण साकार है,
   ले लिया अखिलेश ने अवतार है ।[11]
3. राम-नहीं नर, एक चिरन्तर मनन पुंज हिन्दु मन का,
   राम, एक उत्कर्ष कल्पना इक आदर्श आर्थ्थ-जन का । [12]
4. मानव भी श्री राम है अतिमानव भी राम
   उसी रूप में वे सुलभ जिसकी जिससे काम ।[13]

आधुनिक काल विज्ञान का काल होने से अप्राकृत और अस्वाभाविक लगने वाली बातों पर व्यक्ति को विश्वास नहीं रहता । वह प्रत्येक पहलुओं को तार्किकता से परखने के पश्चात् ही स्वीकार करता है । अतः आधुनिक रामकाव्यों के पात्रों के चित्रण में कवियों ने अप्राकृतता को हटा दिया है और पात्रों का स्वाभाविक मानवीय रूप मे चित्रण किया गया है । परिणामतः आधुनिक युगीन कवियों ने पात्रों के चित्रण में मानवीय दुर्बलताओं को ठीक से भरने का प्रयास किया है । 'रामचरित चिन्तामणि' में वन जाते हुए राम में उनकी धर्मपरायणता का दर्शन होता है और साथ-साथ उनमें राज्य से निष्काषित होने का दुःख भी प्रकट होता हुआ दिखाई देता है ।[14] इसी महाकाव्य में देश से निष्काषित करनेवाली माता कैकेयी के प्रति राम अपने आक्रोश को भी निकालते हुए दिखाई देते हैं ।[15] संस्कृत के कवियों ने राम का अलौकिक पुरुष के रूप में चित्रण करते हुए वनजाने के लिए उनको उत्सुक दिखाये हैं । कवि भट्टि रचित 'रावण वध'

महाकाव्य में राम कहते हैं कि वनवास में रखा ही क्या है ? इससे भी कष्टदायी आज्ञा होने पर जो अपने से बड़ों की अवमानना करते हैं ऐसे लोगों का बिजली के समान तत्काल विनष्ठ हो जाना या फिर तिनके के जैसे शनैः शनैः सूख जाना श्रेयस्कर होगा, लेकिन आज्ञा का उल्लंधन करना ठीक नहीं –

विद्युतप्रणाशं स वरं प्रनष्टो यद्रोर्ध्वशोषं तृणवद्विशुष्कः ।

अर्थे दुरापे किमुत्त प्रवासे न शासनेऽवास्थित यो गुरुणाम्।।[16]

आधुनिक महाकाव्यों में राम पिता की आज्ञा का पालन करते हैं परंतु वन जाना उन्हें अभिष्ट नहीं है । कैकेयी द्वारा राम को वन जाने की शीध्रता करने को कहा जाता है तब राम द्वारा दिये जानेवाले उत्तर में उनकी मानव छबि प्रकट होती है ।

चूप रहो, प्रियवादिन ! मैं चला ।

हरि करे अब भी नृप का भला ।

भरत राज करे, सुख से रहे ;

न अरि भी जग में दुःख से रहे ।[17]

संस्कृत के अनेक महाकाव्यकारों ने लक्ष्मण को शेषनाग के अवतार के रूप में चित्रित किया है जो राम की प्रतिच्छाया के रूप में निरन्तर उनके साथ साथ रहते हैं। रामायण रघुवंश, जानकीहरण आदि महाकाव्यों में उनका आज्ञाकारी अनुज का रूप मिलता है । संस्कृत के महाकवियों ने उनको क्षत्रियोचित क्रोधी के रूप में भी चित्रित किया है । परंतु आधुनिक युग के हिन्दी महाकाव्यकारों ने उनको शेषनाग के अवतार के रूप में चित्रित न करते हुए एक आदर्श अनुज तथा क्षत्रिय के रूप में चित्रित किया है । क्षात्रत्व के साथ-साथ लक्ष्मण के हृदय के कोमल पक्ष का भी इन कवियों ने उद्घाटन किया है । प्रेमिका के हृदय का चित्रण करते हुए साकेतकार ने लिखा है कि –

किन्तु कल्पना घटी नहीं, उदित ऊर्मिला हटी नहीं ।[18]

नवीनकृत 'ऊर्मिला' तथा 'साकेत' में पति-पत्नी के हृदय स्पर्शी विनोद एवं ललित क्रिड़ाओं का जो स्वरूप सामने आता है, उनसे लक्ष्मण की रसज्ञता का पूरा परिचय मिलता है । संस्कृत के रामकथा आधारित महाकाव्यों में लक्ष्मण के इस रूप की ओर

कवियों की उदासीनता दिखाई देती है । आधुनिक राम काव्यों के कवियों ने लक्ष्मण के चरित्र का विकास, कैकेयी द्वारा वर प्राप्ति, राम का निर्वासन, चित्रकूट में भरत का सैन्य के साथ आगमन, सीताहरण तथा मेघनाद वध आदि प्रसंगों में विशेषतः हुआ है । रामकाव्य के ये सभी प्रसंग लक्ष्मण की क्रोधाग्नि के साक्षी रहे हैं । 'कैकेयी' महाकाव्य में लक्ष्मण का आक्रोश अमर्यादित है । वे स्त्रैण राजा को कैदकर राम को शासन सूत्र संभालने का परामर्श देते हैं । उनकी द्रष्टि में दशरथ पिता नहीं अपितु विलासी, कामी अन्यायी एवं दण्ड़नीय राजा है –

अयोग्य अविवेकी नृप को, शासन का अधिकार नहीं ।
किसी व्यक्ति-जीवन से वह कर सकता खिलवाड़ नहीं ।।

जुल्मी शासक से छीने -सत्ता, यह अनरीति नहीं ।
कारागृह वया वध कर दे तो वह नीति, अनीति नहीं ।।[19]

शत्रु के घृणास्पद एवं उपहास परम्परा संस्कृत के महाकाव्यों में मिलती है। नायक की ओर से प्रतिनायक की ओर हीन व्यवहार होता रहता था । आधुनिक युग में प्रतिनायक को उपहास्य मानने की यह परम्परा लगभग पीछे छुट गई है । 'साकेत' में लक्ष्मण इन्द्रजित को अपने सम्मुख देखकर वे जिस प्रकार अत्यन्त हर्ष का अनुभव कर उसके बल एवं तेज की प्रशंसा करते हैं, उसमें हमें आधुनिक कवियों की चरित्र-चित्रण की नई आधुनिक प्रणाली का दर्शन होता है । लक्ष्मण मेघनाद के शरीर की कांति वीरत्व तथा पराक्रम की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि जाग उठे सौमित्र सिंह यह कहते कहते,

धन्य इन्द्रजित् ! किंतु संभल बारी अब मेरी । [20]

संस्कृत के महाकाव्यकारों ने भरत को भ्रातृप्रेमी साधुपुरुष के रूप में चित्रित किया है। वाल्मीकि ने भरत को सत्यशील, पराक्रमी, सदा प्रसन्नचित् और निर्मल- बुद्धि कहा है। उनका क्षात्रत्व, दाम्पत्यप्रेम तथा कर्मठता की ओर ध्यान नहीं दिया गया । हिन्दी के कवियों ने भरत के चरित्र में उपर्युक्त गुणों को भरने का प्रयास किया है । जिस प्रकार ऊर्मिला के चरित्र की रेखाओं को अधिक स्पष्ट रूप में उत्कीर्ण करने के लिए कवियों ने

लक्ष्मण के कठोर व्यक्तित्व को आधुनिक भावभूमि पर विनोदी तथा रागसिक्त रूप में प्रस्तुत किया है उसी प्रकार कैकेयी के चरित्र को गौरवपूर्ण बनाने के लिए आधुनिक कवियों ने भरत के चरित्र की अवान्तर रेखाओं को अधिक स्फुटता प्रदान करके उन्हें अधिक कर्तव्यनिष्ठ विद्रोही तथा कर्मठ व्यक्ति के रूप में चित्रित किया है । भरत के वीतराग, निःस्पृह व्यक्तित्व के समानांतर अनेक स्वतंत्र चेता, राज-नीतिज्ञता तथा जागरुक स्वरूप का विकास हिन्दी के महाकाव्यों में किया गया है, जो राष्ट्र ही नहीं मानवमात्र की समस्याओं के समाधान के प्रति न केवल चिंतन के अपितु कर्म के स्तर पर भी संघर्षरत है । 'साकेत' में इन्हीं द्रष्टिकोणों का उद्‌घाटन किया गया है ।

वानरो में हनुमान, सुग्रीव, वाली, अंगद आदि के चरित्र को संस्कृत के महाकाव्यकारों ने देवता के अवतार तथा बन्दरों के रूप में चित्रित किया है । हिन्दी के आधुनिक महाकाव्यकारों ने उनको मानव के रूप में ही स्वीकार किया है । ऋक्ष और वानर किष्किन्धा क्षेत्र में रहनेवाली दो जनजातियाँ थी । किन्तु वे असभ्य थी । 'साकेत' में इन जातियों का ऋक्ष वानर के सकतुल्य कहा गया है —

बहुजन वन में है बने ऋक्ष वानर से
मैं दूँगा अब आर्यत्व उन्हें निज कर से ।[21]

आधुनिक रामकाव्यों में संस्कृत के महाकाव्यों में वर्णित हनुमान के सीता-अन्वेषण द्यैत्यकर्म, लंकादहन आदि प्रसंगों का उल्लेख हुआ है किन्तु वह अधिकांश परम्परा-प्राप्त रूप में हुआ है । अतः आधुनिक हिन्दी कवियों में हनुमान के चरित्र में किसी नवीन पक्ष को प्रकट करने की सम्भावना नगण्य-सी है । हनुमानजी के अतिरिक्त सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान, वाली, नल, नील आदि पात्रों का उल्लेख आधुनिक रामकाव्य में या तो नगण्य है अथवा परम्परित सरणी का अनुसरण मात्र है।

प्रतिनायक रावण के चरित्र-चित्रण में महर्षि वाल्मीकि ने उनको ऋषि विश्रवा का पुत्र कहा है । वाल्मीकि का चरित्र चित्रण अधिक तटस्थ है, जो प्रतिनायक के महत्व को सुरक्षित रखता है । वाल्मीकि के पश्चात् संस्कृत तथा हिन्दी के कवियों द्वारा प्रतिनायक

रावण का चित्रण धीरे-धीरे असंगत होता गया । मध्ययुग में आते -आते वह विकृत तथा कुरुप हो गया । परंतु आधुनिक युग के वैज्ञानिक, मनौवैज्ञानिक, राजनैतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में रावण के चरित्र का जो पुनः मूल्यांकन हुआ है वह वाल्मीकि के चरित्र-चित्रण के निकट है । हिन्दी के महाकाव्यों के चरित्र में से अतिप्राकृत अमानवीय स्वरूप का मानवीकरण होता हुआ दिखाई देता है । आधुनिक कवियों ने रावण के दशमुख, दशानन आदि विशेषणों की काव्यशास्त्रीय व्याख्या की है । 'साकेत' में गुप्तजी ने रावण को दस इन्द्रियों का प्रतीक माना है –

दशमुख से संग्राम, राम की थी वह क्रीडा,
स्थित प्रज्ञ को दशों इन्द्रियों की क्या पीड़ा ?[22]

इसी प्रकार 'रावण' महाकाव्य में रावण को एक साथ दसों दिशाओं में धनुष चलाने की समर्थता को दिखाते हुए कहा है कि –

दसधनू एक हि साथ तानि जब बिसिख चलावत ।
जानि परत जलधार मनहु जलधर बरसावत ।।[23]

आधुनिक हिन्दी कवियों ने प्रतिनायक रावण के चरित्र में अनेक परिवर्तन किये हैं। अधिकांश कवियों ने राम-रावण के युद्ध को आर्य-अनार्य का संघर्ष कहा है, जो सात्विक एवं तामसी विचारधारा का है । रावण के अवगुणों के साथ साथ उनके गुणों को भी कवियों ने प्रकट किया है । वाल्मीकीय रामायण तथा अन्य संस्कृत हिन्दी काव्य ग्रन्थों में विभिषण के चरित्र का पक्ष उभरा अवश्य है किन्तु वह प्रायः प्रतिपक्ष के व्यक्तियों के द्वारा मूल्यांकन के रूप में अधिक है । 'रामायण' में लक्ष्मण के साथ युद्ध से पूर्व मेधनाद विभिषण को कहते हैं कि –

न ज्ञातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते ।
प्रमाणं न च सौन्दं न धर्मो धर्मदूषण ।। [24]

अर्थात् दुर्मते । तुम में न तो कुटुम्बीजनों के प्रति अपनापन का भाव है, न आत्मीयजनों के प्रति स्नेह है और न अपनी जाति का अभिमान ही है । तुम में कर्तव्य

अर्कतव्य की मर्यादा, भातृप्रेम और धर्म कुछ भी नहीं है । तुम राक्षस धर्म को कलंकित करनेवाले हो । हरदयालुसिंह ने विभिषण के चरित्र का अपकर्ष प्रकट करने के लिए रावण महाकाव्य के उतरार्ध को अपनी कल्पनाओं से गढ़ा है । रामचरित उपाध्याय ने विभिषण के चरित्र का मूल्यांकन करते हुए 'रामचरित चन्द्रिका'में कहा है कि –

राक्षसों से मिल गये होते कहीं लक्ष्मण वहाँ –
घोर निन्दा आज उनकी क्या न हम करते यहाँ ?
स्तवन तेरा हो रहा है नित्य जैसे हिन्द में,
क्यों न वे होते प्रशंसित राक्षसों के वृन्द में ?[25]

परम्परागत रामकथा में विभिषण मन्त्रदाता और नये आदर्शमित्र के रूप में प्रकट होते हैं । आधुनिक राम काव्य में विभिषिण के उक्त गुणों का परिचय कुछ कृतियों में मिलता है परंतु विभिषण की भावभूमि एवं उसका वैचाारिक स्तर आधुनिक संदर्भो से जुडकर मध्यकालीन भावबोध की कुछ विशेषता ग्रहण कर लेता है ।

आधुनिक राम काव्य में अनेक नवीन पात्रों की उद्भावना हुई है और अनेक ऐसे पात्र हैं, जिनका संस्कृत के महाकाव्यों में नामोल्लेख मात्र हुआ है । राम को नायक, सीता को नायिका तथा रावण को प्रतिनायक के रूप में चित्रित करते हुए उन कवियों ने बहुत-से ऐसे पात्र हैं जिनकी उपेक्षा करते हुए अपनी कलम को सरका लिया है । संस्कृत के महाकाव्यकारों ने राम का चित्रण करने में लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न के चरित्र को दबा दिया है । चौदह वर्ष तक वन में दर-दर भटकते हुए अपने भाई और भाभी की सेवा करते हुए लक्ष्मण संस्कृत के कवियों की उपेक्षा का पात्र रहा है । उसी प्रकार यदि संस्कृत के रामकाव्य में चित्रकूट का प्रसंग नहीं आता तो सम्भवतः भरत का चरित्र भी इसी प्रकार दब जाता जिस प्रकार शत्रुध्न का चरित्र दबा हुआ है ।

पुरुष पात्रों की भांति ऐसे अनेक स्त्री पात्र भी हैं जिनकी इन कवियों की ओर से उपेक्षा की गई है । इन पात्रों में सुमित्रा, मांडवी, ऊर्मिला, श्रुतिकीर्ति तथा शान्ता आदि हैं । राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने इन पात्रों की चरित्र सृष्टि करके इन पात्रों को

गौरव प्रदान किया है । संस्कृत राम काव्य में कैकेयी को निष्ठुर और स्वार्थी माता के रूप में चित्रित किया गया है । परम्परागत दृष्टि कैकेयी को नारी सुलभ दुर्बलताओं से युक्त, सपत्नी विद्वेष से पीड़ित, महत्वाकांक्षा से उतेजित तथा त्रिया -हठ से अनुप्रेरित नारी के रूप में प्रस्तुत करती है । राम-वनवास की प्रेरक कैकेयी की 'जानकी हरण' में प्रशंसा की गई है कि जिसके द्वारा माँगे गये वरों से अथवा उनके दोषों के कारण ही राक्षसों का नाश हुआ –

यस्या दोषादनि भुवनत्रयस्य रक्षो भय नाशाय हेतुर्बभूव ।[26]

वर्तमानकालीन राम काव्य में कैकेयी का अस्तित्व अधिकाधिक भास्वर होता गया है । उसके व्यक्तित्व की स्वतंत्र प्रतिष्ठा की गई है । उसका अर्न्तद्वन्द इसका साक्षी है कि कर्तव्य और स्वार्थ की दो विरोधी भावनाओं के अंतः संघर्ष में वह कितनी सहज मानवीय है, कितनी भावनामयी ओर कितनी बुद्धिवादी । आधुनिक युग में एक ओर कैकेयी के मूल व्यक्तित्व के मनोवैज्ञानिक क्षेत्र प्रकाशित हुए है तो दूसरी ओर वह निष्क्रिय यांत्रिक चरित्र की अपेक्षा राजनीतिक एवं समाज में विशिष्ट उतरदायित्वपूर्ण स्वर वहन करती हुई अंकित की गई है । सीता के चरित्र चित्रण में भी आधुनिक कवियों ने पातिव्रत धर्म के साथ-साथ लोकसेवा को जोड़ दिया है –

मैं पाप पुण्य पर टुट पड़ूँ बिजली सी ।[27]

गुप्तजी ने प्राचीन काव्यो में उपेक्षित ऊर्मिला के चरित्र को केवल करुणा अर्पित न करते हुए अपने महाकाव्य की नायिका के रूप मे चित्रण किया है । कवि ने ऊर्मिला के सौन्दर्य, कलाप्रेम, स्वाभिमान, क्षात्रत्व, विचारशीलता, अनुराग, त्याग आदि गुणों से निर्मित एक स्वतंत्र व्यक्तित्व प्रदान किया है । वाल्मीकि रामायण आदि काव्यों में ऊर्मिला का इतना ही उल्लेख मिलता है कि ऊर्मिला सीता की यशस्विनी बहिन थी तथा ऊर्मिला का लक्ष्मण से विवाह हुआ था ।[28] विवाह के पश्चात् ऊर्मिका को भी पति के साथ एकान्त सुख भोग का अवसर प्राप्त हुआ था।[29] आधुनिक हिन्दी महाकाव्य में ऊर्मिला के नारीतत्व की जैसी पूर्ण अभिव्यक्ति 'साकेत' में हुई है वैसी, अन्यत्र दुर्लभ है। ऊर्मिला का व्यक्तिहीन व्यक्तित्व गुप्तजी के काव्य में पूर्णता प्राप्त करता है । प्राचीन

महाकाव्यों की रामकथा में मांडवी का चरित्र भी उपेक्षित सा रहा है । उसका धैर्य, द्रढता तथा आदर्श के प्रति निष्ठा की ओर कवियों ने ध्यान न देते हुए उनका उल्लेख मात्र कर दिया है । आधुनिक युगीन हिन्दी महाकाव्यकारों ने मांडवी के चरित्र को भी अनुकूल आकार देने का प्रयत्न किया है । अयोध्या का करुण वातावरण तथा पति के विराग में मांडवी म्लानता की मूर्ति बनकर आती हे । समस्त भोगों का त्याग करती हुई मांडवी निरन्तर सेवामें संलग्न दिखाई देती है । कवियों ने मांड़वी के कठोर कर्तव्य परायण विरागी जीवन को ही अधिकतः उल्लेखित किया है –

तन पर दो खादी के टुकडे चार चूडियाँ प्यारी ।
एक छत्र शासकी यह थी आधी देह दुलारी ।।[30]

मैथिलीशरण गुप्त ने भी मांडवी के तप, त्याग की प्रशंसा करते हुए उसका विरागिनी के रूप में चित्रण किया है –

चार चूडियाँ थी हाथों में, माथे पर सिन्दुरी बिन्द,
पिताम्बर पहने थी सुमुखी, कहाँ असित नभ का वह इंदु ?[31]

हिन्दी के आधुनिक राम काव्य में नारी पात्रों का जो उत्कर्ष दिखाई देता है, वह संस्कृत या पूर्ववर्ती काव्यों में नहीं दिखाई देता । इसका कारण है तत्कालीन नारी भावना । आधुनिक युग में स्त्री के प्रति का दृष्टिकोण बदल गया है अतः इस युगीन राम काव्य में उच्चकोटि के नारी चरित्रों की सृष्टि की गई है । उपेक्षित तथा तिरस्कृत नारी पात्रों के काव्य में स्थान देते हुए उनको सम्मान दिया गया । राम कथा आधारित आधुनिक महाकाव्यों में नारी के पत्नी, मातृ तथा शक्तिरूप की सराहना की गई है । अतः पूर्ण रूप से आदर्श भारतीय नारी के रूप में नारियों को चित्रित किया गया है ।

साहित्य में शृँगार रस को रसराज कहा गया है क्योंकि जीवन में इसी रस की प्रधानता होती है और इसके अन्तर्गत सभी संचारियों की व्यंजना होती है । संस्कृत महाकाव्यकारों ने शृंगार रस के वर्णन में खूब रुचि दिखलायी है । महर्षि वाल्मीकि ने सीता और राम के पारस्परिक स्नेह का विस्तार से वर्णन किया है । सुन्दरकाण्ड में

हनुमानजी को सीता श्री राम के लिए जो संदेश देती है उसमें संभोग शृंगार के एकान्त संदर्भों का स्पष्ट संकेत मिलता है ।[32] संस्कृत महाकवि भट्टि ने भी शृंगार के स्थलो को अपेक्षाकृत पर्याप्त रुचि से स्पर्श किया है । वीर रस के बाद कवि का यही रस प्रगाढ़ द्रष्टिगत होता है । इन्होंने शृंगार के दोनों भेद संयोग शृंगार और वियोग शृंगार को विस्तार से 'रावणवध' महाकाव्य में दिया है । इसका वैदुष्यपूर्ण शृंगारिक स्थल जहाँ राजा दशरथ अपनी तीनों रानियों के साथ उसी प्रकार समागम करते देखे जाते हैं जिस प्रकार विद्वान विद्याओं से अभिरकण करता है —

धर्म्यासु कामार्थयशस्करीषु, मतासु लोकेऽविगतासु काले ।
विद्यासु विद्वानिव सोऽभिरेमे, पत्नीषु राजा तिसृषूतमासु ।।[33]

संयोग शृंगार की भांति वियोग शृंगार का वर्णन करने में संस्कृत कवियों का मन खूब रमा है । सीताहरण से व्यथित राम की वियोग व्यथा का कथन पशुःपंछियों के प्रति इस प्रकार प्रकट होता है —

स्वपोषमपुषद्र युष्मान या पक्षिमृगशावका : ।
अद्युतव चेन्दुना सार्ध तां प्रबूत गता यतः ।।[34]

इसमें शारीरिक एवं मानसिक दौर्बल्य की स्थिति का वर्णन हुआ है, जिससे वियोग की अवस्थिति स्पष्टतया अभिव्यक्त होती है । सीता के बारे में पशु पक्षियों के बच्चों से पूछना उन्माद की भी स्थिति को प्रकट करता है । संस्कृत कवियों की चरित्र-चित्रण में शृंगार की प्रणाली को स्वीकारते हुए हिन्दी के भक्तिकालीन रामकाव्य में तुलसीदास ने पुष्पवाटिका में राम-सीता को पारस्परिक दर्शन से एक दूसरे पर मुग्ध होते हुए दिखलाकर शृंगार रस को बहाया है —

अस कहि फिरि चितए तेहि ओरा । सिय मुख ससि भए नयन चकोरा
भए विलोचन चारु अचंचला मनहुँ सकुचि निमि तजे दिंगचल ।।[35]

आधुनिक हिन्दी महाकाव्य 'साकेत' में भी ऊर्मिला लक्ष्मण पर मुग्ध होती है, इसकी प्रतिकिया स्तम्भ, स्वेद, रोमांच आदि सात्विकों द्वारा प्रकट की गई है —

सुमन स्फूट हाथ में गंध मन पैरों पड़ साथ में गये ।

कुछ मर्मर-पूर्ण मर्म था, श्रम कया था, पड हाय ! धर्म था ।

यह कण्टक-पूर्ण चर्म था, गद सा "गदगद" प्रेम धर्म था ।। [36]

संस्कृत के महाकवियों ने जिस प्रकार संयोग की अपेक्षा वियोग शृंगार को अधिक महत्व दिया है, उसी प्रकार आधुनिक हिन्दी महाकाव्यकारो ने वियोग शृंगार को अधिक महत्व देते हुए नायक और नायिका का चित्रण किया है । आचार्यों ने विरह की दस अर्न्तदशाओं का वर्णन किया है । आधुनिक राम काव्य के वियोग वर्णन में सभी दशाएँ प्राप्त होती है, जिनमें प्रमुखतः

1. मुझे सौ सवा सौ कोसों की दूरी भी कलपाती है,
   मेरी आकुल आँखों को पति मूर्ति नहीं दिखलाती है ।। [37]
2. मैं स्वामि- संगिनिी रह न सकी, तो क्यो इतना भी कह न सकी ।
   है नाथ, साथ दो भ्राता का, बल रहे मुझे उस त्राता का ।। [38]
3. वह उठ अशोक की डाल में वेनी उल्झाने लगी,
   अपने ही को अपने करौं, फाँसी लटकाने लगी ।। [39]

उपर्युक्त उदाहरणों मे वियोग-वर्णन की दशा अभिलाष, चिन्ता तथा मरण आदि उदाहरण प्राप्त होते हैं । वियोग वर्णन की दशाओं के सभी उदाहरण पं. रामचरित उपाध्याय के 'रामचरित चिन्तामणि' महाकाव्य को छोड़कर बाकी के साकेत, ऊर्मिला, 'वैदेही वनवास' आदि महाकाव्यों में से प्राप्त हो जाते हैं ।

आधुनिक युग में चरित्र-चित्रण के लिए कवियों ने अलौकिक और अतिप्राकृत संदर्भों को छोड़ दिया है । चरित्र की सफलता और असफलता के लिए मनोवैज्ञानिक चित्रण करते हुए कवि पात्र के मनोद्वन्द्वों को प्रकट करते हैं । संस्कृत के महाकाव्यकारों ने पात्रों का यर्थाथ चित्रण करते हुए उनके मनोद्वन्दों को चित्रित किया है । वाल्मीकि रचित रामायण में हम राम के चरित्र में अनुताप, पश्चाताप, मनोव्यथा आदि मानवीय संवेदनाओं को देख सकते हैं । संस्कृत के सभी रामकथा पर आधारित महाकाव्य के

चरित्र मानवीय संवेदनाओं से युक्त चित्रित किये गये हैं। मनोविज्ञान मानव सुलभ दुर्बलताओं के प्रति एक सहज सहिष्णुता की दृष्टि अपनाता है । मनोविज्ञान के आलोक में मर्यादाओं एवं वर्जनाओं का प्रतिबद्ध मानसिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होता है । मध्यकालीन कवि तुलसीदास ने प्रेम और वासना की अभिव्यक्ति पर एक अंकुश सा लगा रखा है । जबकि आधुनिक कवियों ने इस प्रकार के अंकुश को अनावश्यक माना है । आधुनिक कवि ने मनोविज्ञान के प्रकाश में पात्रों की भावनाओं को अधिक उन्मुक्त एवं निरावृत रूप से अभिव्यक्ति प्रदान की है, जिससे चरित्रों के अनेक नये कोण उपस्थित हुए है ।

प्राचीन एवं मध्य युग में युद्ध ही क्षात्र-धर्म तथा पौरूष-प्रदर्शन का प्रतीक था । उन कवियों को अपमान के प्रतिशोध के निर्णय को युद्ध के स्तर पर ग्रहण करने में कोई अनौचित्य नहीं दिखाई दिया । इसी बात की पुष्टि वाल्मीकीय रामायण में मिल जाती है कि रावण वध के उपरान्त सीता के चरित्र पर संदेह करते हुए राम कहते हैं–

विदितश्चास्तु भद्रंते योऽयं रणपरिश्रमः ।
सुतीर्णः सुहदां वीर्यान्न त्वदंथै मया कृतः ।।
रक्षता तु मया वृत्तमपवांद च सर्वतः ।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यऽगं च परिमार्जता ।।[40]

अर्थात् तुम्हें मालुम होना चाहिए कि मैंने जो यह युद्ध का परिश्रम उठाया है तथा इन मित्रों के पराक्रम से जो इसमें विजय पायी है यह सब तुम्हें पाने के लिए नहीं किया गया है । सदाचार की रक्षा सर्वत्र फैले हुए अपवाद का निवारण तथा अपने सुविख्यात वंश पर लगे हुए कलंक का परिमार्जन करने के लिए ही यह सब मैंने किया है । आधुनिक युग में युद्ध जीवन विधि का हेतु मात्र नहीं है । आधुनिक युग में युद्ध के औचित्य एवं अनौचित्य के विषय में जैसा व्यापक चिन्तन हुआ है वैसा संस्कृत महाकाव्यों में नहीं दिखाई देता । आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में राम का यह मानना है कि युद्ध मानव की अनिवार्य नियति है । अस्वीकृति के लिए उसमें कोई स्थान नहीं है । जिस समय प्रश्न व्यक्ति का न रहकर समष्टि का हो जाता है, तब उस अन्याय का दमन

करना ही मनुष्य का धर्म बन जाता है । 'कैकेयी' महाकाव्य में भी कैकेयी सीमा-सुरक्षा के लिए सैन्य शक्ति को अनिवार्य समझती है । उसका मानना है कि राष्ट्र की निर्बलताओं के क्षणों में आसुरी शक्तियाँ अपना सर उठाने लगती है । अन्याय सहकर बैठे रहने से शांति कभी प्राप्त नहीं हो सकती क्योंकि भय बिना शांति सम्भव नहीं है –

रही स्थिर शान्ति भी जग में बिना बल के ?
कभी क्या शान्ति के ही गीत गाने से ?
बने कब साधुनय से शीर्ष छल बल के ?
निरामिष हिंस्त्र पशु संगीत से स्वर से ।[41]

आधुनिक रामकाव्य में अछूत चरित्रों का पुनः संस्कार हुआ है । संस्कृत महाकाव्यों के शम्बूक वध, केवट, निषाद शबरी, भिल्ल आदि प्रसंगों का आधुनिक कवियों ने पुनः प्रस्तुतिकरण किया है । आधुनिक दृष्टि से ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व उसके जन्म के कारण नहीं परंतु कर्म के कारण निर्दिष्ट हुआ है । बुद्धि, धर्म, शील, संतोष आदि से ही उसकी द्विजता है । अस्पृश्यता और वर्णाश्रम व्यवस्था-जन्य वैषम्य पर आधुनिक कवियों ने वैज्ञानिक दृष्टि से विचार करके उन्हीं के अनुकूल पात्रों को चित्रित किया है ।

संक्षेप में संस्कृत के महाकाव्यकारों तथा हिन्दी के महाकाव्यकारों की चरित्र-चित्रण की पद्धति कई रूपों में एक समान दिखाई देती है । संस्कृत और हिन्दी के महाकवियों ने वर्णात्मक पद्धति का समान रूप से प्रयोग किया है । इस पद्धति में कवि पात्र के सम्बन्ध में स्वयं कहते हैं जिसमें प्रत्येक कवि चरित्र-चित्रण में कुछ न कुछ वर्णनात्मकता आश्रय लेते हैं । रामायण में महर्षि वाल्मीकि ने श्री राम के चरित्र का वर्णन करते हुए लिखा है कि –

नावज्ञेयश्च भूतानां न च कालवशानुग : ।
एवं श्रेष्ठैर्गुणैर्युक्तः प्रजानां पार्थिवात्मकजः ।।
सम्मतस्त्रिपु लोकेषु वसुधाया : क्षमागुणैः ।
बुद्धयाः बृहस्पतेस्तुल्यो वीर्ये चापि शचीपतेः ।।[42]

अर्थात् किसी भी प्राणी के मन में उनके प्रति अवहेलना का भाव नहीं था । वे काल के वश में होकर उसके पीछे-पीछे चलने वाले नहीं थे (काल ही उनके पीछे चलता था) इस प्रकार उत्तम गुणों से युक्त होने के कारण राजकुमार श्री राम समस्त प्रजाजनों तथा तीनों लोकों के प्राणियों के लिये आदरणीय थे । वे अपने क्षमा सम्बन्धी गुणों के द्वारा पृथ्वी की समानता करते थे । बुद्धि में बृहस्पति और बल पराक्रम में शचि पति इन्द्र के तुल्य थे । आधुनिक हिन्दी महाकाव्यों में भी इसी वर्णात्मक पद्धति का दर्शन होता है। पं. रामचरित उपाध्याय ने अपने महाकाव्य में दशरथ के चारित्रिक गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि –

निम सत्यता के सामने तृण था उन्हें संसार भी
गो पद उन्हें था आत्मबल के निकट पारावार भी ।
धन, धाम, पुत्र कलम्र भी प्रण से न प्यारा था उन्हें,
गौ विषय सेवा से मिला सन्मार्ग न्यारा था उन्हें ।।
पर हाय कामासक्त भी वार्धक्य में नृप हो गये ।
मासनो कुसुम की सेज तज कर रेत पर वे सो गये ।। [43]

वर्णनात्मकता की भांति रामकथा आधारित इन काव्यों के चरित्र-चित्रण में अभिनयात्मक पद्धति भी दिखाई देती है । इस पद्धति में कवि पात्र के विषय में कुछ नहीं कहते । वे पात्र को परिस्थितियो में कार्य करते हुए तथा अन्य पात्रों को उसके सम्बन्ध में कहते सुनते हुए उपस्थिति करते हैं जिससे पाठक स्वयं उस पात्र के सम्बन्ध में अपनी धारणा बना लेते हैं । 'रामायण' में निर्दोष प्राणियों का शिकार करते हुए राम को सीता निरपराध प्राणियों को न मारने तथा अहिंसा धर्म का पालन करने के लिए अनुरोध करती है ।

बुद्धिवैरं बिना हन्तु राक्षसान दण्डकाश्रितान
अपराधं बिना हन्तु लोको वीर न मंस्यते ।[44]

अर्थात् आपको धनुष लेकर किसी तरह बिना बैर के ही दण्डकारण्यवासी राक्षसो के वध का विचार नहीं करना चाहिए । बीरवर बिना अपराध ही किसी को मारना संसार

के लोग अच्छा नहीं समझेंगे । अतः सीता का अहिंसावादी स्वभाव अपने आप प्रकट हो जाता है। 'ऊर्मिला' महाकाव्य में ऊर्मिला के कलाकार रूप को प्रदर्शित करने के लिए उसके द्वारा चित्र-निर्माण विवेचन और कला की व्याख्या का प्रसंग [45] इस अभिनयत्मकता का श्रेष्ठ उदाहरण है । पात्रों के चरित्र-चरित्र के लिए तुलनात्मक पद्धति का प्रयोग भी उन महाकवियों ने किया है । इस प्रकार के चरित्र-चित्रण करते हुए कवि पात्रों के गुण अवगुणों को प्रकट करते हैं । वैषम्य और साम्य का यह उपयोग साकेत महाकाव्य में बड़ी कुशलता से किया गया है ।[46]

निष्कर्ष में आधुनिक युग वैज्ञानिक एवं दार्शनिक उपलब्धियो के नये मूल्यांकन का युग है । फलतः प्राचीन रामकथा के पात्रों की तुलना में आधुनिक रामकथा के पात्रों में वर्तमान कालीन आदर्शों का सहज प्रतिबिम्ब दिखाई देता है । आधुनिक युगीन पात्रों में सामाजिक एवं राजनैतिक आदर्श, मानवतावादी जीवन मूल्यों, पारिवारिक जीवन के आदर्श एवं सामाजिक मूल्यों का विकास हुआ है । वर्तमान कालीन लोकतंत्र, साम्यवाद एवं समाजवाद की अनेक संकल्पनाएँ पात्रो में समाहित है । इन पात्रों में विश्वबंधुत्व की भावना चरमोत्कर्ष पर दिखाई देती है । नारी के प्रति उच्च दृष्टिकोण है । सामाजिक मूल्यों प्राचीन वर्णव्यवस्था के साथ रूढिवादिता के निषेध का स्वर भी प्रकट होता हुआ दिखाई देता है । भक्तिकाव्यों में प्रायः सभी पात्र राम के व्यक्तित्व से पराभूत रहते हैं । आधुनिक रामकाव्य में राम को महापुरुष के रूप में रखकर सभी पात्रों के स्वतंत्र व्यक्तित्व की रक्षा की गई है । अतः संस्कृत तथा हिन्दी के महाकाव्यकारों ने अपने युगानुरूप पात्रों का चरित्र-चित्रण किया है जिससे उन पात्रों पर अपने युग की छबि दृश्यमान होती हुई दिखाई देती है । युगीन आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए इन महाकाव्यकारों ने पात्रों का चित्रण किया हैं जिससे अपने युगानुरूप पात्रों के चित्रण की प्रणाली का होना सहज सम्भाव्य है ।

संदर्भ सुची

1. अग्निपुराण अध्याय 337 श्लोक 24 से 34 तक
2. काव्यादर्श – प्रथम परिच्छेद 14 से 19 तक पृ. 16 से 24
3. भारतीय काव्यशास्त्र- डॉ. विजयपाल सिंह- पृ. 167 से उदधृत
4. साहित्यदर्पण 613 से 624 तक
5. भारतीय काव्य शास्त्र- डॉ. विजयपाल सिंह पृ.168 से उद्धृत
6. वा. रा. बालकाण्ड द्वितीय सर्ग-15
7. वा. रा. बालकाण्ड प्रथम सर्ग : 1 से 5 तक
8. रघुवंश- कालिदास ग्रन्थावली सम्पादक रामप्रताप त्रिपाठी
9. रावणवध भट्टि 21/16
10. रामचरित चिन्तामणि – प्रथम सर्ग- पृ. 19
11. साकेत मैथिलीशरणगुप्त – प्रथम सर्ग – पृ. 18
12. ऊर्मिला नवीन – तृतीय सर्ग- पृ. 295
13. रामराज्य- महाकाव्य- प्रस्तावना
14. रामचरित चिन्तामणिः रामचरित उपाध्याय सातवा सर्ग पृ. 84
15. रामचरित चिन्तामणिः रामचरित उपाध्याय तेरहवाँ सर्ग पृ. 175
16. रावण वधः कवि भट्टि 3/14
17. रामचरित चिन्तामणिः रामचरित उपाध्याय छठ्ठा सर्ग – पृ. 13
18. साकेत – गुप्त चतुर्थसर्ग – पृ. 21,23
19. कैकेयी- चाँदमल अग्रवाल सर्ग – 12 पृ. 124
20. साकेत – गुप्त-सर्ग – 12 पृ. 479
21. साकेत - सर्ग- 8 पृ. 235
22. साकेत – गुप्त सर्ग – 12 पृ.482
23. रावण महाकाव्य - हरदयालसिंह सर्ग- 3-पृ-66
24. वा. रा. युद्धकाण्ड सप्ताशीतितम : सर्ग -12

25. रामचरित चन्द्रिका पृ. 77
26 जानकी हरण - महाकवि कुमारदास 1/42
27. साकेत – गुप्त -अप्टम सर्ग – 12 पृ.232
28. वा. रा. बालकाण्ड़ एकसप्ततितम सर्ग – 220
29. वा. रा. बालकाण्ड़ सप्तसप्ततितम सर्ग – 13,14
30. साकेत संत सर्ग -14 पृ. 190
31. साकेत – गुप्त-सर्ग – 11 पृ.391
32. वा.रा. सुन्दरकाण्ड अष्टात्रिंश सर्ग
33. रावण वध – कवि भट्िट – 1/9
34. रावण वध – कवि भट्िट – 6-26
35. रा. मानस बालकाण्ड 229/2
36. साकेत- गुप्त-सर्ग – 10 पृ.366-67
37. वैदेही वनवास सर्ग – 100 पृ. 154
38. साकेत सर्ग -6 पृ. 162
39. रामचरित चिन्तामणि- रामचरित उपाध्याय सर्ग – 15 पृ. 217
40. वा. रा. युद्धकाण्ड पच्चदशाधिक शततम : सर्ग 15,16
41. कैकेयी- चाँदमल अग्रवाल सर्ग -5 पृ. 41
42. वा. रा. अयोध्याकाण्ड प्रथम सर्ग 31,32
43. रामचरित चिन्तामणि रामचरित उपाध्याय सर्ग 1 पृ. 7
44. वा. रा. अरण्यकाण्ड नवम् सर्ग पूरा
45. ऊर्मिला – नवीन- द्वितीय सर्ग 5-8 पृ. 100
46. साकेत – गुप्तजी – चतुर्थ सर्ग पृ. 95

अध्याय – ५

'श्रीमद् वाल्मीकीय रामायण' और 'रामचरित मानस' के चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन।

- प्रस्तावना
- 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के प्रमुख पुरुष चरित्र
- 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के प्रमुख स्त्री चरित्र
- 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के गौण पुरुष चरित्र
- 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के गौण स्त्री चरित्र
- 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के अतिगौण पुरुष चरित्र
- 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के अतिगौण स्त्री चरित्र
- निष्कर्ष
- संदर्भ सूची

5.1 प्रस्तावना :-

एक ही कथानक पर आधारित दो प्रबन्ध काव्यों की चरित्र सृष्टि में अनेक समानताओं का होना स्वाभाविक है । साथ ही युग और व्यक्ति के अनुसार चरित्र-चित्रण में परिवर्तन होना भी सहज है । 'रामायण' की अपेक्षा तुलसीदास को अपनी कथा को सीमित और एक निश्चित एवं सुविचारित उद्देश्य की परिधि में रचना था, इसीलिए उन्होने अपने पात्रों के चरित्रांकन में परिवर्तन कर दिया है । आलोचकों ने रामकाव्य का अध्ययन करते समय प्रमुख और गौण पात्रों का जो वर्गीकरण किया है; उनमें राम, सीता आदि एक दो प्रमुख पात्रों के अतिरिक्त अन्य पात्रों की प्रमुखता एवं गौणता को लेकर रामकाव्य सम्बन्धी शोध ग्रन्थों में एकमत न होना स्वाभाविक है । प्राचीन काव्य में राम को ही केन्द्रीय वृत्त में रखकर कथा का विस्तार किया गया है । अतः यहाँ हमने प्रमुख पुरुषचरित्रों में राम, लक्ष्मण, भरत, दशरथ, हनुमान तथा रावण और मुख्य स्त्री चरित्रों के रूप में सीता, कौशल्या और कैकेयी को लिया है । राम कथा के गौण पुरुष और स्त्री पात्रों में कुछ पात्र ऐसे हैं जो कथा की केन्द्रीय धारा से परम्परा प्राप्त रूप में जुडे रहकर केवल कथा के इतिवृत मात्र में अपना योग देते हैं उन पात्रों में गौण पुरुष चरित्र सुग्रीव, विभिषण, मेघनाद, वाली, वशिष्ठ, शत्रुघ्न, अंगद तथा जनक इत्यादि तथा गौण स्त्री चरित्रों में सुमित्रा, मंदोदरी, तारा, मंथरा तथा शूर्पणखा आदि । इसके सिवा कई ऐसे पात्र हैं जो प्रसंगानुसार प्रकट होते हैं और कथा प्रवाह पर अपना प्रभाव छोड़कर चलें जाते हैं (जैसे सगर, शरभंगमुनि, कुंभकर्ण, कबन्ध, सुरसा, सिंहिका आदि) ऐसे चरित्रों को अति गौण पुरुषचरित्र एवं अतिगौण स्त्रीचरित्र के रूप में रखा है। अतः अब हम 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के चरित्रों का तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास करेंगे ।

5.2. 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के प्रमुख पुरुष चरित्रः-

5.2.1 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के राम :-

महर्षि वाल्मीकि ने विकासोन्मुख युग की आवश्यकता के अनुरूप अपने राम को मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है । वाल्मीकि के राम आर्य संस्कृति के

संरक्षक, महाबलशाली मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित हैं, क्योंकि वाल्मीकि को वीरत्व का विशाल वातावरण चित्रित करना ही विशेष अभिप्रेत था । 'रामायण' के नायक राम का चरित्र अनेक संभावनाओं, अन्तर्द्वन्दों तथा अर्थ गर्भित प्रसंगों के कारण आधुनिक युग में न केवल अपनी प्रासंगिकता को सुरक्षित रख सका है अपितु नवीन युग की विभिन्न सांस्कृतिक एवं वैचारिक समस्याओं का माध्यम भी बना है । गोस्वामी ने 'वाल्मीकि रामायण' एवं उक्त अन्यान्य ग्रन्थों से प्रभावित होकर अपने युगानुरूप अपने राम को जहाँ एक ओर मर्यादा पुरुषोत्तम का रूप उन्हें शील और शक्ति का अवतार माना; वहीं दूसरी ओर राम का सगुण ब्रह्मरूप, परमात्म स्वरूप भी प्रतिपादित किया । इस प्रकार तुलसी ने अपने राम में जनता को नर से नारायण तक के सर्वांग सम्पूर्ण दर्शन करवाया है । युगीन समाज की विसंगतियों एवं पतानोन्मुख परिस्थितियों का सूक्ष्म निरीक्षण करने में सक्षम तुलसी ने मर्यादा पुरुषोत्तम राम और उनके विविध आदर्शवादी गुणों की प्रतिष्ठा कर विश्रृंखलित समाज को व्यवस्थित करने का स्तुत्य प्रयास किया है।

5.2.1.1 मानव के रूप में राम :-

महर्षि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य 'रामायण' में राम का मानव के रूप में चित्रण किया है। वाल्मीकि ने राम के चरित्र की परिकल्पना एक ऐसे ऐतिहासिक पुरुष के रूप में की है, जो जीवन के चरम आदर्शो का पूंजीभूत स्वरूप है, वे सर्वगुण सम्पन्न, सर्वश्रेष्ठ आदर्श पुरुष हैं। वाल्मीकि ने नादर से ऐसे ही पूर्ण पुरुषोत्तम का परीचय पूछा जो गुणवान, वीर्यवान, धर्मज्ञ, सत्यवक्ता, दृढप्रतिज्ञ, क्रोध को जीतने वाला आदि गुणों से युवत हो।[1] इस प्रश्न को सुनकर नादर ने इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न महाबलवान, धैर्यवान और जितेन्द्रिय पुरुष जो राम के नाम से विख्यात हैं, उनका परिचय दिया ।[2] जिसकी कथा सुनकर महर्षि वाल्मीकि ने अपने महाकाव्य 'रामायण' में महामानव राम का नायक के रूप में चित्रण किया। वाल्मीकि ने राम के चरित्र में मानवोचित दुबर्लताओं की उपेक्षा नहीं की, परंतु घटनाक्रम में उनका स्पष्ट संकेत दे दिया है । यह राम के चरित्र की विकसनशीलता का प्रमाण है जो उन्हें मानवीय संदर्भो के बीच अधिक जोड़ते हैं। 'रामायण' में राम के हृदय में क्षोभ, शोक, शंका तथा भय दिखाई देता हैं । कैकेयी के

कुकर्म का क्षोभ प्रगट करते हुए राम यह आशंका व्यक्त करते हैं कि -

सा हि देवी महाराजं कैकेयी राज्यकारणात् ।
अपि न च्यावयेत् प्राणान दृष्टा भरतमागतम् ।।[3]

अर्थात् कहीं ऐसा न हो कि रानी कैकेयी भरत को आया देख राज्य के लिए महाराज को प्राणों से भी वियुक्त कर दे और सौभाग्य के मद से मोहित हुई कैकेयी कौशल्या और सुमित्रा को कष्ट न पहुँचा दें ।[4] अयोध्याकाण्ड़ में लक्ष्मण के सामने अपना क्षोभ प्रकट करते हुए राम कहते हैं कि हे लक्ष्मण ! पिताजी ने मुझे जिस तरह त्याग दिया है, उस प्रकार अत्यंत अज्ञानी हाने पर भी कौन ऐसा पुरुष होगा जो एक स्त्री के लिए अपने आज्ञाकारी पुत्र का परित्याग कर दे ।[5] यहाँ राम मानव सहज स्वभाव से युक्त होकर अपने मन की बातों को प्रकट कर देते हैं । सीताहरण के पश्चात् राम का सीता के विरह में बिलखना मानवीय भावनाओं को प्रकट करता है ।[6] इसी प्रकार युद्ध काण्ड में इन्द्रजित् ने नागपाश बाण से राम और लक्ष्मण को मूर्छित कर दिया । राम शरीर की दृढ़ता से मूर्छा से जाग गये और खून से लथपथ लक्ष्मण को देखकर सामान्य व्यक्ति की भाँति विलाप करते हुए कहने लगे कि लक्ष्मण के बिना इस जीवन का क्या अर्थ रह जायेगा । मैं विभिषण को राजा न बना सका जिसका मुझे दुःख रहेगा ।[7] ऐसा कहते हुए राम सुग्रीव को भी युद्ध भूमि छोड़कर चले जाते की आज्ञा देते हैं ।[8] इस प्रकार भय, शोक, क्षोभ आदि को प्रकट करते हुए राम मानव के रूप में प्रकट होते हैं । अतः वाल्मीकि ने राम को प्रजा के हित में रत राजा के रूप में प्रस्तुत किया है जो पूर्व मानव हैं, और संसार के भोगों के प्रति उदासीन नहीं है । 'रामायण' में राम का मानवीय रूप में चित्रण करने के साथ उनका ब्रह्म रूप में भी चित्रण हुआ है । 'वाल्मीकीय रामायण' में कुछ स्थानों पर अवतारवाद का उल्लेख अवश्य है, किन्तु वे अंश प्रक्षिप्त माने गये हैं ।[9]

तुलसी के राम प्राकृत जनसाधारण नहीं है, प्रत्युत मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, अवतारी पुरुष हैं । राम के ब्रह्मत्व की प्रतिष्ठा कवि ने 'मानस' में अनेकत्र की है । तुलसी के राम पर ब्रह्म है, जिनकी इच्छा मात्र से मनुष्य के समस्त दुःख समूह विनष्ट हो जाते हैं।

स्वयं जनसाधारण की तरह संकट ग्रस्त होकर भी अविकम्पित एवं अविचल रहते हैं । अतः ''धर्म हेतु अवतरेहु गोसाई।''[10] तथा ''परमात्मा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूषण भूपा।''[11] कहकर भी तुलसी राम के जननायक रूप की प्रतिष्ठा करने के प्रति ही विशेष प्रतिश्रुत है । 'बालकाण्ड' में तुलसीदास ने ब्रह्म रूप राम के प्रागट्य का वर्णन करते हुए लिखा है कि -

भए प्रगट कृपाला दीन दयाला कौशल्या हितकारी ।
हरषित महतारी मुनि मन हारी अद्भूत रूप बिचारी ।।
लोचन अभिरामा तनु घनस्यामा निज आयुध भुज चारी ।
भूषन वनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी ।।[12]

अर्थात् दीनों पर दया करनेवाले, कौशल्याजी के हितकारी कृपालु प्रभु प्रकट हुए। मुनियों के मन को हरनेवाले उनके अद्भूत रूप का विचार करके माता हर्ष से भर गयी। नेत्रों को आनन्द देनेवाला, मेघ समान श्याम शरीर था, चारों भुजाओं में अपने (खास) आयुध (धारण किये हुए) थे, (दिव्य) आभुषण और वनमाला पहने थे; बडे बड़े नेत्र थे, इस प्रकार शोभा के समुद्र तथा खर राक्षस को मारनेवाले भगवान प्रगट हुए । तुलसी के राम विश्वरूप हैं । वे विराट पुरुष हैं जिनके रोम रोम में कोटि कोटि ब्रह्माण्ड ही उनका रूप है । वे विष्णु भी हैं और शिव भी हैं, अपने इसी रूप का दर्शन उन्होंने माता कौशल्या को कराया -

देखरावा मातहि निज अदभूत रूप अखंड ।
रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि बहमंड ।।[13]

उन्हीं ब्रह्म ने ''विप्र धेनु सुर संत हित लिए मनुज अवतार ।।''[14] ब्राह्मण, गौ, देवता और संतों के लिए मनुष्य का अवतार लिया और मानवीय लीलाएँ की । पंचवटी में राम अपनी पत्नी सीता को अग्नि देव को सौंपते हुए कहते है कि -

सुनहु प्रिया व्रत रुचित सुसीला । मैं कछु करबि ललित नरलीला ।[15] अर्थात् हे सुंदर पातिव्रत धर्म का पालन करनेवाली सुशीले । सुनो मैं अब कुछ मनोहर लीला करुँगा । इससे स्पष्ट हैं कि राम का पत्नी वियोग में दुखी होना लक्ष्मण को शक्ति

लगने पर विलाप करना आदि घटनाएँ तुलसी के राम के लिए मनुष्य लीला मात्र है। 'मानस' में राम का मुख्य उद्देश्य तो राक्षसों का संहार करना ही है, जिसके लिए विष्णु ने राम के रूप में अवतार लिया है । तुलसीदास इसी ब्रह्मरूप का ध्यान बार-बार कराते जाते हैं । राम अपने ब्रह्म रूप से ही नारद, शबरी आदि को भक्ति का उपदेश देते हैं तथा[16] अपनी भक्ति करने की प्रेरणा देते हैं। वानर-भालुओं को भी अयोध्यासे विदा करते समय राम अपनी भक्ति का आदेश देते हैं ।[17]

इस प्रकार वाल्मीकि के राम एक आदर्श राजा के रूप में प्रकट हुए हैं और तुलसी के राम विष्णु अवतार राम के रूप में प्रकट हुए हैं । वाल्मीकि के राम में मानवीय संवेदनाओं से वे पूर्णतः मानव बन गये हैं, जबकि तुलसीदास के राम में मानव सहज स्वाभाविक संवेदनाएँ हैं, पर वे मानवीय लीला मात्र बन गयी हैं । अतः वाल्मीकि ने राम का मानव के रूप में चित्रण किया और वे ईश्वर बन गये, जबकि तुलसीदास ने राम का ईश्वर के रूप में चित्रण किया और वे मानव बन गये हैं । गोस्वामीजी के राम ब्रह्म हैं, सर्वशक्ति मान हैं और असाधारण हैं, लेकीन तुलसीदास ने उन्हें ब्रह्म के रूप में स्वीकार करते हुए भी नर रूप में अधिक व्याख्यायित किया है ।[18]

5.2.1.2 आदर्श पुत्र :

'वाल्मीकि रामायण' में राम के माध्यम से अगाध पितृ भक्ति का दर्शन होता है । ''संतति शुद्ध वंश्याच परत्रेह च शर्मणे।''[19] अर्थात् शुद्ध वंश्या संतति इसलोक और परलोक दोनों के लिए कल्याण कारिणी होती है । राम पिता के इशारे मात्र को समझकर अयोध्या का शासन ठुकराकर वन की ओर चल पडते हैं । पिता की आज्ञा का पालन करते हुए राम के मुख पर विकार की लकीर भी नहीं दिखाई देती । अभिषेक में आये अंतराल को राम देवी विधान समझकर लक्ष्मण और कौशल्या को समझाते हैं,[20] और वल्कल वस्त्र एवं मृगचर्म धारण कर सिर पर जटाजूट बाँध के वन जाने के लिए तैयार हो जाते हैं । राम वन जाने से पहले माता कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी सहित साढ़े तीनसो माताओं को प्रणाम करके अनजाने में हुए अपराध की क्षमा माँगते हैं ।[21] चित्रकूट में राम का राज्याभिषेक करवाके अयोध्या आने के लिए भरत आग्रह करता है,

परंतु राम पिता की आज्ञा का दृढता से पालन करते हुए उनको समझाने का प्रयत्न करते हैं और कहते हैं कि -

पुन्नास्त्रो नर काद यस्मात् पितरं त्रायते सुतः

तस्मात् पुत्र इति प्रोक्तः पितृन यः पाति सर्वत्रः।[22]

अर्थात् बेटा पुत नामक नरक से पिता का उध्धार करता है । इसीलिए वह पुत्र कहा गया है । वही पुत्र है, जो पितरों की सब ओर से रक्षा करता है, पिता की आज्ञा का पालन करते हुए मैं वन में आ गया हूँ और तुम्हें अपनी आज्ञा का पालन करते हुए अयोध्या के शासन को सम्भालना चाहिए । इस प्रकार राम ने पुत्र के कर्तव्य को समझाते हुए भरत को अयोध्या वापिस लौटा दिया । वन में राम को अपने वृद्ध पिता की चिंता सताती रहती है । उनको संदेह हैं कि इस समय महाराज दशरथ का कोई रक्षक नहीं है और उसे मेरे वियोग का सामना करना पड़ रहा है, ऐसी दशा में वे बेचारे अपनी रक्षा कैसे कर पायेंगे ।[23] इसे माताओं की भी चिंता हो रही है, माता कौशल्या के दुःख से व्यथीत होकर राम लक्ष्मण को कहते हैं कि कोई भी सौभाग्यवती स्त्री कभी ऐसे पुत्र को जन्म न दे, जेसा मैं हूँ; क्योंकि मैं अपनी माता को अनन्त शोक दे रहा हूँ ।[24] 'रामायण' के युद्ध काण्ड़ में लक्ष्मण की मूर्छावस्था को देखकर राम अति दुःखी होकर विलाप करते हैं, उनको इस बात का दुःख अधिक है कि यदि लक्ष्मण जीवित नहीं रहा तो मैं माताओं को अपना मुहँ कैसे दिखाऊँगा, माताओं का उपालम्भ मैं सह नहीं पाऊँगा अतः वे अपने प्राणों को त्याग देने का निश्चय कर लेते हैं ।[25]

तुलसीदास ने भी 'रामचरित मानस' में आदर्श पुत्र के रूप में राम को दर्शाया है। राम अपने पिता के प्रति तो आज्ञा और आदर की भावना से ओतप्रात थे ही, माताओं के प्रति भी उनके मन में उतना ही सम्मान, आदर और प्रेम था -

प्रातः काल उठि के रघुनाथा ।

मात पिता गुरु नावहि माथा ।।[26]

राम आदर्श पुत्र है, वे विमाता की इच्छा और पिता का आदेश पाकर सहर्ष वन चले जाते हैं । वे कहते हैं कि - मुझे वनवास नहीं दिया है वरन् महाराज ने अपना

वचनपालन किया है । मात्र अयोध्या के बदले अरण्य का राज्य दिया है । अयोध्या छोटी नगरी हैं, वन बड़ा है । अतः पिताजी ने न्यायपूर्वक बड़े भाई को बड़ा राज्य तथा छोटे भाई को छोटा राज्य दिया है ।[27] राम को चौदह वर्ष का वनवास देकर राजा दशरथ को विह्वल तथा शोकग्रस्त करनेवाली स्वार्थ पूर्ति में तत्पर कैकेयी के समक्ष राम विनम्र तथा कोमल वाणी में माता-पिता की आज्ञा का अनुसरण ही पुत्र का कर्तव्य एवं सौभाग्य बताते हैं ।[28] चित्रकुट में भरत के साथ आयी तीनों माताओं में राम सर्वप्रथम कैकेयी को मिलते है[29] और अयोध्या से निष्काशित् करनेवाली माता कैकेयी को लेकर मुझे कोई दुःख नहीं है, कहनेवाले राम में मातृप्रेम की प्रगाढ़ता का दर्शन होता है । आदर्श पुत्र में जिन गुणों की अपेक्षा तुलसीदास ने रखी है वे हैं, 1. माता-पिता गुरु और बड़ों के प्रति आदर की भावना रखना 2. बड़ों की आज्ञा का पालन करना और 3. पिता की कीर्ति में वृद्धि । इन तीनों कसौटियों पर राम का चरित्र खरा ही नहीं उतरता वरन किसी भी समाज के लिए एक आदर्श प्रस्तुत करता है ।[30]

इस प्रकार 'रामायण' और 'मानस' के राम आज्ञाकारी, पिता की कीर्ति में वृद्धि करनेवाले तथा मातृएवं पितृ भक्त के रूप में प्रकट होते हैं । 'रामायण' के राम दशरथ एवं माता कैकेयी से मिले वनवास से अपने मन में उठनेवाले क्षोभ को प्रकट करते हुए काम और मोह पीड़ित पिता दशरथ को कोसते हुए दिखाई देते हैं, वहाँ मानस के राम पिता की आज्ञा को अपना कर्तव्य समझकर उस पर अपना क्षोभ प्रगट किये बिना अपने कर्तव्य को निभाये जाते हैं । डॉ. पाण्डेय के शब्दों में ''राम के पितृ भक्ति भारतीय संस्कृति एवं साहित्य की अमर धरोहर है, वे आदर्श पुत्र हैं ।''[31] संक्षेप में दोनों महाकाव्यों में राम का आदर्शपुत्र के रूप में चित्रण हुआ है ।

5.2.1.3. आदर्श भ्राता :-

राम आदर्श भाई है । राम के द्वारा भातृत्व का जो आदर्श वाल्मीकि और तुलसीदास ने उपस्थित किया है, वह भारतीय साहित्य का ही नहीं अपितु विश्व साहित्य का अद्वितीय उदाहरण है । चित्रकूट में भरत का सेना सहीत आगमन होता देख लक्ष्मण क्रोधावेश में भरत आदि की हत्या करने कि लिए तैयार होते हैं, तब भरत के प्रति

विश्वास और अनुराग प्रकट करते हुए राम कहते हैं कि मैं प्रतिज्ञापूर्वक कहता हूँ कि धर्म, अर्थ, काम और पृथ्वी का राज्य में तुम्हीं लोगों के लिए चाहता हूँ ।[32] चित्रकूट में भरत का आगमन समयोचित् है । कोई भी विपत्ति आ जाय, भाई अपने प्राणों के समान प्रिय भाई की हत्या नहीं कर सकता । भाईयों के प्रेम के आगे पृथ्वी या इन्द्र पद भी मेरे लिए तुच्छ है । यहाँ राम का भरत पर अतूट विश्वास दिखाई देता है । राम को विश्वास हैं कि यदि मैं भरत को अधोध्या का राज्य छोड़ देने के लिए कहूँ तो अवश्य छोड़ देगा,[33] क्योंकि भरत बड़ा भ्रातृभक्त है और वह मुझे प्राणों से भी प्रिय है । 'युद्धकाण्ड' में लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने पर राम में भ्रातृप्रेम का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है । अपने जीवन में लक्ष्मण के महत्व को दिखाते हुए राम कहते हैं कि जिस सीता के लिए रावण के साथ युद्ध किया वह सीता तो मर्त्यलोक में ढूंढने पर मिल सकती है, परंतु लक्ष्मण जैसा युद्ध कुशल भाई नहीं मिल सकता।[34] अतः मैं अपने प्राणों का परित्याग कर दूंगा । इस प्रकार पूरी 'रामायण' में राम का अपने भाईयों के प्रति गहरा अनुराग दिखाई देता है ।

'रामचरित मानस' में भी गोस्वामी तुलसीदास ने आदर्श भ्रातृप्रेम के रूप में राम और भरत तथा राम और लक्ष्मण के प्रेम की प्रतिष्ठा की है । राम अपने राज्याभिषेक के समाचार को सुनकर दुःखी होते हैं क्योंकि अन्य भाई उससे वंचित रह जायेंगे । अतः अपना दुःख प्रकट करते हुए राम कहते हैं कि

बिमल बस यहु अनुचित एकू । बंधु बिहाई बड़े हि अभिषेक ।
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई । हरउ भगत मन कै कुटि कोई ।[35]

अर्थात् इस निर्मल वंश में यही एक अनुचित बात हो रही है कि ओर सब भाईयों को छोड़कर राज्याभिषेक एक बड़े का ही होता है । इसी प्रकार भरत के प्रति राम का गहरा प्रेम चित्रकूट में व्यक्त होता है जब लक्ष्मण ने कहा कि भरत प्रणाम कर रहे है, यह सुनते ही -

उठे राम सुनि प्रेम अधीरा । कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा ।[36]

श्री रघुनाथजी प्रेम में अधीर होकर उठे । कहीं वस्त्र गिरा, कहीं तरकस कहीं

धनुष और कहीं बाण । राम और भरत के मिलन को देखकर सबने अपनी सुध खो दी । इस प्रकार चित्रकूट की सभा में राम भरत के प्रति अपने भावों को प्रकट करते हुए कहते हैं कि -

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई । भयउ न भुअन भरत सम भाई ।।

अर्थात् गुरु की सौगंध और पिताजी के चरणों की दुहाई लेते हुए राम कहते हैं कि मैं सत्य कहता हूँ विश्वभर में भरत के समान कोई भाई हुआ ही नहीं है । राम और भरत में न केवल एक दूसरें के लिए त्याग ही हैं, अपितु अपार विश्वास भी है । प्रकृति के नियमों में परिवर्तन सम्भव है, सर्वमान्य नियम, असत्य एवं शास्वत सत्य अन्यथा हो सकते हैं; किन्तु राम को विश्वास है कि गंभीर स्वभाववाले भरत की प्रकृति को छोटे-मोटे राज्य तथा ब्रह्मा, शिव ओर विष्णु के पद का मद भी परिवर्तित नहीं कर सकता । उनकी प्रशंसा करते हुए राम कहते हैं कि अन्धकार चाहे तरुण (मध्याहन) सूर्य को निगल जाय । आकाश चाहे बादलों में समाकर मिल जाय । गौ के खुर इतने जल में अगस्त्यजी डूब जाये और पृथ्वी चाहे अपनी स्वभाविक क्षमा छोड़ दे । मच्छर की फूँक से चाहे सुमेरु उड़ जाय, परंतु हे भाई ! भरत को राजमद कभी नहीं हो सकता हे लक्ष्मण ! मैं तुम्हारी शपथ और पिताजी की सौगन्ध खाकर कहता हूँ भरत के समान पवित्र और उत्तम भाई संसार में नहीं है ।[37] लक्ष्मण, गुरु और पितादशरथ की सौगन्ध निश्चय ही भाईयों के प्रति राम का अपार प्रेम और विश्वास निदर्शित करता हैं ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में भ्रातृत्व को आदर्श भ्रातृप्रेम के रूप में प्रकट किया हैं । वाल्मीकि ने राम की मानवीय संवेदनाओं को दबाये बिना भ्रातृप्रेम प्रकट किया है । 'रामायण' में राम को अपने राज्याभिषेक में भरत के न होने का इतना दुःख नहीं है, जितना तुलसी के राम को है । राज्याभिषेक की बात राम को बताते हुए दशरथ ने शुभकार्य में विध्न आने का संदेह व्यक्त करते हुए यह कहा कि जब तक भरत इस नगर से बाहर है, तुम्हारा अभिषेक हो जाना चाहिए । इसके प्रत्युत्तर में राम का मौन दशरथ के विचार से सहमत होना दिखाई देता है। इतना हीं नहीं राम

को यह संदेह भी है कि मेरे और लक्ष्मण के अयोध्या न होने से सम्भवतः भरत पिता और माताओं को दुःख पहुँचा सकता है । जबकि 'मानस' में राज्याभिषेक में भरत और शत्रुध्न के न होने से राम को दुःख है। राम को भरत से पूरा विश्वास है कि वह अयोध्या के शासन को कभी भी स्वीकार नहीं करेंगा क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद भी भरत को परिवर्तित नहीं कर सकता । संक्षेप में 'रामायण' के चित्रकूट में राम ने भरत को राजनीति का उपदेश देकर अयोध्या लौटा दिया, जबकि 'मानस' के चित्रकूट में अपने प्रेम रूपी सागर में भरत सबको डूबो देता है, जिसको देखकर देवता भी चकित हो जाते हैं ।

5.2.1.4 आदर्श पति :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में राम एक पत्नीव्रता के रूप में रहते हुए अपने युग को एक नया आदर्श देते हैं । 'रामायण' में पिता दशरथ की जहाँ साढे तीन सौ से अधिक रानियाँ थी, वहाँ राम ने केवल सीता को ही पत्नी के रूप में स्वीकार किया और चाहा है -

तथा स राजर्षिसुतोडभिकामया
समेयिवानुत्तराज कन्यया:।
अतीव राम : शुशुभे मुदान्वितो
विभुः श्रिया विष्णुरिवामरेश्वरः ।[38]

अर्थात् राजकुमारी सीता श्री राम की ही कामना रखती थी और श्री राम भी एक मात्र उन्हीं को चाहते है, जैसे लक्ष्मी के साथ देवेश्वर भगवान विष्णु की शोभा होती है उसी प्रकार उन सीता देवी के साथ राजर्षि दशरथ कुमार श्री राम परम प्रसन्न रहकर बड़ी शोभा पाने लगे । राम को पता है कि सीता वन के कष्टों को सह नहीं पायेंगी, फिर भी सीता बन में आने की हठ करती है, तब राम कष्टदायी वन का वर्णन करते हुए सीता को अयोध्या में हीं रहने का आग्रह करते हैं । रावण द्वारा सीताहरण के पश्चात् राम सीता वियोग में बिलखते है, वनों, नदियों, पर्वतों तथा पहाड़ी झरनों में घुम-घुम कर सीता का पता लगाते हैं, और पत्नी विरह में पागलों सी चेष्टा करते है ।[39] सीता खोज

के पश्चात् हनुमानजी ने जब चूडामणि राम के हाथों में दी तो एक सामान्य मनुष्य की भांति उसे देखकर राम के नेत्रों में से आँसु बहने लगे और हनुमानजी को सीता-संदेश बार-बार सुनाने के लिए कहने लगते हैं।[40] सीता शोक में डूबे राम हनुमानजी को कहते है कि तुमने जहाँ सीता को देखा है मुझे उसी देश में ले चलो ।[41] इन्द्रजित ने जब मायामयी सीता का वध किया तब हनुमानजी के द्वारा राम को सीतावध का समाचार मिलने पर वे शोक से मूर्छित हो जाते हैं और वृक्ष की भांति पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं । इस प्रकार 'रामायण' में एक ओर पति के रूप में राम का कोमल, मधुर, एवं माधुर्य से भरा प्रेमासिक्त रूप दिखाई देता है; वहॉ दूसरी ओर लोकापवाद के भय से कठोर रूप भी दिखाई देता है, जहाँ राम अपने पतित्व से निर्दोष सीता पर संदेह करते हुए उसे अप्रिय बात सुनाते हैं । रावण विजय के उपरांत सीता के सामने प्रकट होने पर राम कहते है कि रावण ने तुम्हारा हरण करके मेरा अपमान किया था, मैंने उनको मारकर अपना प्रतिशोध ले लिया है । अब मेरी तुम्हारे प्रति ममता या आसक्ति नहीं है अतः तुम जहाँ जाना चाहो जा सकती हो ।[42] इस प्रकार अप्रिय वचनों को कहते हुए राम ने सीता का अस्वीकार कर दिया । अंत में ब्रह्मा के द्वारा राम की भगवद्ता का प्रतिपादन और सीता का अग्नि में प्रवेश करके सतीत्व की परीक्षा देने पर राम ने सीता का स्वीकार किया । 'रामायण' के उत्तर काण्ड में भी राम लोकनिन्दा से बचने के लिए अपने भाईयों के सामने सीता त्याग की बात कहते हुए लक्ष्मण को आज्ञा देते हैं कि कल सबेरे सीता को रथ में बिठाकर इस राज्य की सीमा के बाहर छोड दो ।[43] आश्चर्य तो इस बात का होता है कि राम इसी विषय को लेकर सीता के साथ बात तक नहीं करते, अतः वन पहुँच ने के पश्चात् लक्ष्मण के द्वारा सीताको पत्ता चला कि राम ने इनका त्याग किया है। लोकनिंदा के भय से एक बार सतीत्व की परीक्षा लेने पर भी पुनः उसी विषय को लेकर सीता को वन भेजना राम का निष्ठुर पति रूप दिखाई देता है । निष्कर्ष में राम सीता के लिए निन्दा करनेवाले उस जनपद और पुरवासियों को छोड़ सकते थे, परंतु राज्य के महत्व को अधिक दिखाते हुए राम ने उनका त्याग कर दिया ।

पतियों के सभी चरित्रों में गोस्वामीजी ने राम को एक आदर्श पति के रूप में

प्रस्तुत किया है । पत्नी के सुख का सदा ख्याल रखना आदर्श पति का गुण है । ये सभी गुण राम के चरित्र में दृष्टिगोचर होते हैं । सीता के लिए वनयात्रा के दौरान पैदल चलना कितना कष्टदायक होता है, इसका बोध राम को था । अतः वन में चलते-चलते सीताजी को थकी हुई जानकर राम घड़ीभर वृक्ष की छाया में विश्राम करते हैं -

जानी श्रमित सीय मन माहीं । घरिक विलंबु कीन्ह बट छाही ।[44]

मनुष्य लीला प्रारंभ होने से पहले राम सीता को अग्नि में निवास करने के लिए प्रेरित करते हैं । सीता का हरण हाने के पश्चात् पत्नी विरह में व्याकुल होकर तड़पते हुए राम को देखकर मानों ऐसा लगता है कि वे कोई महाविरही और अत्यन्त कामी पुरुष है -

एहि विधि खोजत बिलपत स्वामी । मनहुँ महा बिरही अति कामी ।[45]

लंका से वापिस लौटे हनुमानजी से सीता का समाचार पाकर राम शोकाकुल हो जाते हैं और नेत्रों में से आँसू बहने लगते हैं -

सुनि सीता दुःख प्रभु सुख अपना । भरी आए जल राजिव नयना ।[46]

पत्नी के पोषण के साथ उसकी सुरक्षा का पूर्ण उतरदायित्व पति पर होता है । उसकी रक्षा के लिए पति साक्षात् काल से भी संग्राम में विमुख नहीं होता । सीता की शोध करते हुए राम के मुख से गोस्वामीजी ने कहलवाया कि यदि सीता का पत्ता चल जाये तो वे काल को भी जीतकर निमिष मात्र में उन्हें ला सकते हैं । अंत में रावण विजय के उपरांत सीता मिलन में राम लीला करते हुए कड़े वचन कहते हैं । राम के वचनों को सिर चढ़ाकर सीता अग्नि में प्रवेश करके मूल सीता के रूप में प्रकट होकर राम से मिलती है । गोस्वामीजी ने राम और सीता को आदर्श दम्पति के रूप में प्रतिष्ठित कर परिवार में पति-पत्नी की अनुरक्ति और निष्ठा के साथ उनके पारस्परिक कर्तव्य की स्थापना कर लोक का महान कल्याण किया है ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने राम का आदर्श पति के रूप में चित्रण किया है । 'रामायण' में रावण विजयोपरांत सीता के साथ मानव स्वभाव वाले राम का कठोर व्यवहार दिखाई देता है । वह अप्रिय वाणी कहते हुए सीता को अग्नि

परीक्षा के लिए बाध्य करते हैं । जबकि तुलसीदास के राम उस प्रसंग में नरलीला हेतु कठोर शब्द कहते हैं और अग्निदेव के पास रखी अपनी मूल सीता को प्राप्त करने के लिए सीता को अग्नि परीक्षा के लिए प्रेरित करते हैं । वाल्मीकि ने 'उत्तरकाण्ड' में लोक निन्दा के भय से राम के द्वारा सीता का त्याग चित्रित किया है, परंतु तुलसीदास ने सीता के पुनः वनवास की घटना को छोड़ दिया है, जिससे 'रामायण' की अपेक्षा 'मानस' में राम का चरित्र आदर्श पति के रूप में निखर उठा है ।

5.2.1.5. आदर्श मित्र :-

'रामायण' और 'मानस' में राम का सच्चे मित्र के रूप में चित्रण हुआ है । अयोध्या से लेकर लंका तक की यात्रा में राम तीन मित्र बनाते हैं । प्रथम निषादराज गुह, दूसरे सुग्रीव तथा तीसरे विभिषण । प्रथम निम्नजाति का है, दूसरा वानर जाति का और तीसरा ब्राह्मण जाति का, परंतु राम ने कहीं भी मित्रता में जाति की संकुचितता को आने नहीं दिया । वन में जाते समय निषादराज गुह को भेंटते हुए राम मित्रों की कुशलता पूछते हैं ।[47] इस प्रकार किष्किन्धा काण्ड़ में सुग्रीव के साथ मित्रता होने के बाद मित्रता को निभाते हुए राम सुग्रीव से कहते हैं कि -

उपकार फलं मित्रं विदितं में महाकपे ।
वालिनं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ।।[48]

अर्थात् महाकपे। मुझे मालुम है कि मित्र उपकार रूपी फल देनेवाला होता है । मैं तुम्हारी पत्नी का अपहरण करनेवाले वाली का वध कर दूँगा । इस प्रकार राम ने अपनी मित्रता के फलस्वरूप सुग्रीव के दुःखों को दूर किया । युद्ध काण्ड़ में राम की शरण में आये विभिषण को बन्दी बनाकर उनका वध करने का सूझाव जब सुग्रीव ने दिया तब राम ने मित्रता की बात कहते हुए कहा कि -

मित्रभावेन सम्प्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात् सतामेत दगर्हितम् ।।[49]

अर्थात् जो मित्र भाव से मेरे पास आ गया हो उसे मैं किसी तरह त्याग नहीं सकता सम्भव है उसमें कुछ दोषी भी हो, परंतु दोषी को आश्रय देना भी सत्पुरुषों के

लिए निन्दित नहीं है, अतः विभिषण को मैं अवश्य अपनाऊँगा, कहते हुए राम ने विभिषण को मित्र बनाया और समुद्र का जल मंगवाकर लंका पति बनाते हुए उनका राज्याभिषेक कर दिया ।

'मानस' में भी तुलसीदासने राम को आदर्श मित्र के रूप में प्रकट किया है । वन जाते समय निषादराज गृह को अपने पास बिठाकर स्नेह से कुशल पूछते हुए वे अपनी निस्वार्थ मित्रता का परिचय देते हैं -

सहज सनेह बिबस रघुराई । पूँछी कुसल निकट बैठाई ।[50]

मानसकार ने मनुष्य के सामाजिक जीवन को दृष्टि में रखते हुए मित्रता के प्रशस्त पंथ को दिखाना भी आवश्यक समझा है। फलतः उन्होंने मित्रता की उत्कृष्ट कसौटी भी दिखा दी है-

जे न मित्र दुःख होहिं दुःखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ।
निज दुःख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुःख रजमेरु समाना ।
जिन्ह के असि मति सहज न आई । ते सठ कत हठि करत मिताई ।
कुपथ निवारी सुपंथ चलावा । गुन प्रगटे अवगुनन्हि दुरावा ।[51]

अर्थात् जो लोग मित्र के दुःख से दुःखी नहीं होते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है । अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु के समान जानना चाहिए । जिन्हें स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि प्राप्त नहीं है वे मूर्ख हठ करके क्यों किसीसे मित्रता करते हैं । मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बूरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलावे, गुण प्रकट करें और अवगुणों को छिपाये । मैत्री के ये सिद्धांत दुनिया के किसी भी कोने में, किसी भी व्यक्ति के लिए, किसी भी काल में आदर्श माने जायेंगे । आज विश्वबंधुत्व की जो कल्पना की जा रही है उसके मूल में तुलसीदास के ये सिद्धांत ही हैं । राम की शरण में आये हुए विभिषण को राम मित्र बनाते हुए कहते हैं कि -

जदपि सखा तव इच्छा नाहीं । मोर दरसु अमोध जग माही ।[52]

हे सखा ! यद्यपि तुम्हारी इच्छा नहीं है, पर जगत में मेरा दर्शन अमोध है, वह

निष्फल नहीं जाते- कहते हुए समुद्र का जल मँगवाकर राम ने लंकानरेश के रूप में विभिषण का राज्याभिषेक कर दिया ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने अपने-अपने महाकाव्यों में राम के द्वारा मित्रता का आदर्श रूप प्रकट किया है । अपने प्राणों की चिंता किये बिना अपनी मित्रता निभाने का प्रयत्न करते हुए राम सच्चे मित्र के रूप में प्रकट होते हैं ।

5.2.1.6 मर्यादावादी :-

मर्यादा का निर्वाह करना राम के चरित्र का अनिवार्य अंग है । सुख या दुःख में, राजमहेल या रणभूमि कहीं भी राम अपनी मर्यादा को नहीं तोडते । वे सर्वदा एवं सर्वत्र मर्यादा की सीमा रेखा के भीतर हीं रहते हैं । मयार्दा के दो आधार हैं सामाजिक और वैयक्तिक समाज की संतुलित व्यवस्था की रक्षा सामाजिक मर्यादा है और व्यक्तिगत आचरण में औचित्य का परिपालन व्यक्तिगत मर्यादा है । महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने मर्यादा की प्रतिष्ठा के लिए मर्यादापुरुषोत्तम श्री राम के चरित्र का गान किया है । 'रामायण' में राम राज्याभिषेक का समाचार सुनकर न तो प्रसन्न होते हैं और नहीं वनवास के समय दुःखी होते हैं । पृथ्वी का राज्य छोड़कर वन जाते हुए राम में एक महात्मा की भाँति कोई विकार नहीं दिखाई देता -

न वनं गन्तुकामस्य त्यजतश्च वसुंधराम् ।
सर्व लोकातिगस्येव लश्यते चित्तविक्रिया।।[53]

मिथिला में शिव धनुष तूटने के पश्चात् क्रोधावेश में परशुराम राम को अप्रियवचन कहते हुए युद्ध के लिए ललकारते हैं । उस समय राम अपनी मर्यादा को नहीं तोडते और यह कहकर छोड़ देते हैं कि आप ब्राह्मण होने के नाते मेरे पूज्य हैं तथा विश्वामित्रजी के साथ भी आपका सम्बन्ध है, इन कारणो से यह बाण मैं आप पर नहीं छोड़ता ।[54] राम के पास अथाह शक्ति होने पर भी अपने अमोध बाणों का प्रयोग करने में वे जल्दी नहीं करते । लंका पर चढ़ाई करने से पूर्व समुद्र से मार्ग लेने के लिए राम लगातार तीन दिन तक प्रार्थना करते रहे, परंतु समुद्र की ओर से कोई उत्तर न मिलने पर राम को अपनी शक्ति का परिचय देना पड़ा । मर्यादा पुरुषोत्तम राम के स्वभाव में

अधीरता कहीं भी नहीं दिखाई देती वे हर परिस्थिति में धीर गंभीर एवं विवेकशील हैं ।

'मानस' में राम के चरित्र का महान गुण है - मर्यादा का पालन करना । मर्यादा का पालन करते हुए राम ने सदैव धर्मनीति शिष्टाचार, प्राचीन रीतिनीति तथा परंपराओं का कभी विद्रोह नहीं किया । कैकेयी के द्वारा माँगे गये दो वरों से राम को वनवास मिलने पर पिता और माता कैकेयी को लेकर उनके मन में थोड़ा-सा भी दुःख नहीं है । वचनबद्ध पिता की कठिनाईयों को स्वयं सरल करते हुए राम कहते हैं कि -

सुनु जननी सोई सुतु बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ।
तनय मातु पितु तोषनिहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ।।[55]

अर्थात् वही पुत्र बड़भागी है, जो माता-पिता के वचनों का अनुरागी है, ऐसा पुत्र सारे संसार में दुर्लभ है । माता, पिता, गुरु, भाई पत्नी आदि के प्रति राम का जो व्यवहार रहा है वह व्यक्तिगत मर्यादा का आदर्श रहा है, सुमन्त्र के वन से लौटते समय श्रीराम और सुमन्त के संवाद के बीच में लक्ष्मण कटु वाणी कहते हैं, जिसको अधिक अनुचित बताते हुए राम ने वर्जना की ।[56] पुष्पवाटिका का निरीक्षण करते हुए राम जब सीता को देखते हैं तब उनके सौन्दर्य पर मुग्ध होकर विचलीत हो जाते हैं, पंरतु उसी क्षण अपनी मर्यादा का ध्यान आ जाने से वे लक्ष्मण को कहते हैं कि जिसकी अलौकिक शोभा देखकर मेरा मन क्षुब्ध हो गया है इसका कारण विधाता जाने, किंतु मेरे मंगलदायक अंग फड़क रहे हैं ।[57] चित्रकूट प्रसंग की रचना सम्भवतः मर्यादावाद की प्रतिष्ठा के लिए ही की गई है, समाज के जितने भी सम्बन्ध हो सकते हैं वे सभी वहाँ प्रस्तुत हैं और उनका व्यवहार अत्यंत मर्यादापूर्ण है । चित्रकूट में भरत के हृदय की ग्लानी और माता कैकेयी के पश्चाताप को देखकर राम ने कहा कि -

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई । जाई लोकु परलोकु नसाई ।
दोसु देहिं जननिहि जड़ तेई । जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई ।।[58]

अर्थात् तुम पर कुटिकता का आरोप करने से यह लोक और परलोक दोनों बिगड़ जाता है, माता कैकेयी को वे लोग दोष देते हैं जो गुरु ओर साधुओं की सभा में नहीं गये । मर्यादा के पक्षधर तुलसीदास ने सीता-राम के संयोग-वियोग का वर्णन मर्यादित

रूप में किया है । तुलसी के राम की अनाशक्ति, उनका त्याग उनका संयम और तपस्वी जीवन उनके मर्यादा पुरुषोत्तम होने का प्रमाण है ।

इस प्रकार वाल्मीकि के राम और तुलसीदास के राम मर्यादावादी है । जहाँ 'रामायण' के राम में मानवीय दुर्बलताओं से मर्यादावाद थोड़ा निर्बल हो गया है, वहाँ तुलसीदास का मुख्य उद्देश्य मर्यादावाद न होकर रामभक्ति होने से कहीं-कहीं मर्यादा की रक्षा नहीं हो पायी है । महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास के राम के हाथों वाली वध का प्रसंग मर्यादाहीनता का ऐसा निदर्शन है जिसका कोई उचित समाधान नहीं है । वालीवध के प्रसंग को लेकर दोनों कवियों ने राम के बचाव में प्रयत्न किया है, परंतु छिपकर वाली को मारना राम की मर्यादा के खण्ड़न का बचाव नहीं कर पाये । इस प्रकार प्रेम प्रस्ताव रखनेवाली शूर्पणखा जब विफल होकर सीता पर आधात करती है, तब उनके नाक, कान काटने के लिए राम अपने भाई लक्ष्मण को प्रेरित करते हैं । स्त्री को इस प्रकार का दण्ड देना मर्यादा विहिन माना जायेगा । 'मानस' के मिथिला प्रसंग में धनुष तूटने पर क्रोध से भरे परशुराम को लक्ष्मण अपनी वाणी से निरन्तर उत्तेजित करते जा रहे थे, तब राम ने उसे रोका नहीं परंतु -

भृगुपति बकहिं कुठार उठाएँ । मन मुसकाहिं रामु सिर नाएँ ।[59]

अर्थात् परशुराम कुठार उठाये बक रहे थे और श्री राम सिर झुकाये मन-ही-मन मुस्करा रहे थे । ऐसे ही मिथिला की पुष्पवाटिका में मर्यादापुरुषोत्तम श्रीराम का पुष्प चुनने आयी हुई सीता को बार-बार निरखना उचित प्रतित नहीं होता । इस प्रकार दोनों महाकवियों ने अपने चरित नायक के पक्ष को सबल करने का प्रयास किया है, परंतु कहीं-न-कहीं थोड़े-बहुत रूप में मर्यादा भंग होती रहती है । इसका कारण वाल्मीकि के राम मानवीय रूप में प्रकट हुए हैं, मानवीय दुर्बलताओं से ऐसा होना स्वाभाविक है। जबकि तुलसीदास उसे या तो भगवान की नरलीला का रूप दे दते हैं या उनकी भक्तवत्सलता कहकर गदगद हो जाते हैं। मर्यादा की प्रतिष्ठा उनका मूल लक्ष्य नहीं है।

5.2.1.7 सौन्दर्य, शक्ति और शील :

आचार्य रामचन्द्रशुक्ल ने 'मानस' के आधार पर राम के चरित्र विश्लेषण की एक

वैज्ञानिक कसौटी निर्धारीत की है, वो है सौन्दर्य, शक्ति और शील की । 'वाल्मीकि रामायण' में राम में इन तीनों गुणों की प्रतिष्ठा की जा चूकी है । 'रामायण' में स्थापित इन तीनों गुणों का विकास होते-होते 'रामचरित मानस' में राम के चरित्र में यह गुण निखर उठा है । 'अरण्य काण्ड' में वाल्मीकि के राम वीतराग ऋषि मुनियों को अपने सौन्दर्य से विस्मित कर देते हैं ।[60] बड़ी भुजाओं वाले महाबलशाली, मुख चन्द्रमा से अधिक कान्तिमान और उदारता जैसे गुणों से राम लोगों की दृष्टि और मन को आकर्षित कर लेते थे, ऐसे राम को एक टक देखते हुए राजा दशरथ को तृप्ति नहीं होती थी ।[61] 'रामायण' के राम तपे हुए मनुष्य को शीतल छाया के समान सौन्दर्य की मानस संजीवनी प्रदान कर सकते हैं । तुलसीदास के राम का सौन्दर्य अनिर्वचनीय है , अलौकिक है, अनुपम है । राम का सौन्दर्य इतना अलौकिक है कि उनके शत्रु तक उनके रूप को देखकर चकित हो जाते हैं । खर और दुषण जब राम पर आक्रमण करने के लिए आते हैं तब राम के सौन्दर्य से सेना सहित खर और दुषण मुग्ध हो जाते हैं और कहने लगते हैं कि -

हम भरि जन्म सुनहु सब भाई । देखी नहिं असि सुंदरताई ।
जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरुपा । वध लायक नहिं पुरुष अनुपा ।।[62]

अर्थात् हमने जन्मभर में ऐसी सुन्दरता कहीं देखी नहीं । यद्यपि इन्होंने हमारी बहिन को कुरुप कर दिया तथापि ये अनुपम पुरुष वध करने योग्य नहीं है । जनक वाटिका में सीता की सखियाँ राम के सौन्दर्य को देखकर मूक हो जाती हैं, क्योंकि वह सौन्दर्य वर्णनातीत है । भाषा में वह क्षमता नहीं जान पड़ती, जो राम के उस मोहक रूप सौन्दर्य का वर्णन कर सके । वे कहती हैं कि -

देखन बागु कुअँर दुई आए । वय किसोर सब भांति सुहाए ।[63]
स्याम गौर किमि कहौं बखानी । गिरा अनयन नयन बिनु बानी ।।

अर्थात् दो राजकुमार बाग देखने आये हैं, किशोर अवस्था के हैं और सब प्रकार से सुन्दर हैं । वे साँवले और गोरे हैं, उनके सौन्दर्य का मैं कैसे बखान कर सकूँ । वाणी बिना नेत्र की है, और नेत्रों को वाणी नहीं है । यहाँ सौन्दर्य भावना सतोगुणी

भावना है उसमें पापवृत्ति के लिए स्थान नहीं है, जहाँ विकार है, पाप है वहाँ सौन्दर्य हो ही नहीं सकता -

''यदुच्यते पार्वती पापवृतये न रूपमित्यव्यभिचारि तदवयः''[64]

इस प्रकार तुलसी के राम का सौन्दर्य प्रतिहिंसा से भरे तमीचरों, विषैले, जीवजन्तुओं और अबोध जलचरों तक को प्रभावित कर सकता है ।

महर्षिवाल्मीकि और तुलसी के राम शक्ति के अपूर्व भण्ड़ार है । संसार में शारीरिक, मानसिक बल एवं पौरुष एवं शक्ति की जितनी भी कल्पना की जा सकती है वह राम में दिखाई पड़ती है । 'रामायण' और 'मानस' के राम शक्ति के पुंज हैं । राम की शक्ति का प्रदर्शन उनकी बाल्यवस्था से ही होने लगता है । राम ने ताड़का और सुबाहु का वध करते हुए मारीच को भी एक ही बाण से समुद्र के उस पार फेंक दिया । खर, दुषण रावण जैसे आतताई के सामने राम ने युद्ध करके उनका संहार किया । समुद्र से मार्ग लेने के लिए तीन दिन उपवास करने पर समुद्र ने मार्ग नहीं दिया तब क्रोधावेश में राम कहते हैं कि शान्ति के द्वारा इस लोक में न कीर्ति प्राप्त हो सकती है, न यश का प्रसार और न संग्राम में विजय पायी जा सकती है । अर्थात् समुद्र को दण्ड़ देना आवश्यक है कहते हुए धनुष पर बाण चढाते हुए वे अपनी शक्ति का परिचय देते है ।[65] इस प्रकार 'मानस' में भी निरन्तर विनम्रता प्रकट करने पर भी परशुराम के क्रोध को बढ़ते हुए देख्कर रामका तेजपूर्ण व्यक्तित्व प्रकट हो जाता है और कहते हैं कि -

जौरन हमहि पचारे कोऊ । लरहिं सुखेन कालु किन होऊ ।[66]

इस प्रकार वाल्मीकि और तुलसी दोनों ने एक ही बाण के संधान के शक्ति सौन्दर्य की अनुभूति की है और इसे अमोध माना है । अन्तर यह है कि तुलसी ने राम की शक्ति को कोमल बना दिया है, क्योंकि इस शक्ति की जननी है करुणा । दोनों के राम शस्त्रभृतांवर है, पर शस्त्र संचालन की अदा में फर्क है । राम का बाण मोक्ष देता है, वाल्मीकि के राम का बाण आतताई को दण्डित करता है । वाल्मीकि के राम को अगस्त्य ऋषि शस्त्रास्त्र की पेटिका प्रदान करते हैं, तुलसी के राम तरकश में दो तीर लेकर चलते हैं । वाल्मीकि के राम को इन्द्र का रथ और सारथी अपेक्षित है । तुलसी

के राम को 'धर्मरथ' पर पूर्ण विश्वास है । इस प्रकार दोनों कवियों की शक्ति कल्पना में सादश्य भी है, पर युग-धर्म के प्रभाव से सूक्ष्म अन्तर भी ।

वाल्मीकि के पुरुषोत्तम राम तथा तुलसीदास के भगवान राम शील की पराकाष्टा है । अपने गुरुजनों के प्रति अत्यंत विनम्र है, साथ ही अपने से छोटे एवं विरोधियों के प्रति भी सद्भाव रखनेवाले हैं । राम इतने शीलवंत है कि वनवास देनेवाली कैकेयी के प्रति भी दुर्भावना नहीं है । वे कैकेयी की आज्ञा पालन करने की तत्परता दिखाते हैं । इस प्रकार 'मानस' में भी वे उनके सामने विनम्र भाव से प्रकट होते हैं । इस प्रकार वाल्मीकि के राम विग्रहवान धर्म और तुलसीदास के राम धर्म हेतु अवतरित हैं । तुलसीदास ने राम के शील व्यंजक नयी परिस्थितियों की योजना 'मानस' की कथा में की हैं ; जिनसे क्षमा, उदारता, करुणा, विनय आदि सात्विक वृत्तियाँ उभर कर सामने आयी है ।

5.2.1.8. दृढ प्रतिज्ञ :

वाल्मीकि के राम और तुलसीदास के राम दृढ़पतिज्ञ के रूप में प्रकट होते हैं । पिता की प्रतिज्ञा का पालन करते हुए राम जटा और चीर धारण करके चौदह वर्ष वन में रहने का दृढ़ निश्चय कर लेते हैं । ऋषियों की हड्डियों के ढ़ेर को देखकर श्री राम की आँखों में आँसु आ गये और करुणा से द्रवित होते हुए वे प्रतिज्ञा लेते हैं कि -

निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह ।[67]

अपनी प्रतिज्ञा की दृढ़ता बताते हुए 'रामायण' में राम कहते हैं कि -

अय्यहं जीवितं जहयां त्वां वा सीते स लक्ष्मणाम् ।[68]

न तु प्रतिज्ञा संश्रुत्य ब्राह्मणेभ्यो विशेषतः।।

अर्थात् सीते ! मैं अपने प्राण छोड़ सकता हूँ, तुम्हारा और लक्ष्मण का भी परित्याग कर सकता हूँ, किन्तु अपनी प्रतिज्ञा को विशेषतः ब्राह्मणों के लिये की गयी प्रतिज्ञा को मैं कदापि नहीं तोड़ सकता । उस प्रतिज्ञा के बल पर राम ने रावण जैसे महाआततताई शक्ति का नाश किया । सुग्रीव और विभिषण को क्रमशः किष्किन्धा और

लंका का नरेश बनाने की अपनी प्रतिज्ञा को वे दृढ़ता से पूरी करते हैं । इस प्रकार राम कैसी भी परिस्थिति में अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने में कृतनिश्चयी दिखाई देते हैं । एक पत्नीव्रत का दृढ़ निश्चय राम ने आजीवन रखा, उन्होंने सीता के सिवा किसी अन्य स्त्री से विवाह नहीं किया । प्रत्येक यज्ञ में जब-जब धर्मपत्नी की आवश्यकता होती थी, तब श्री रघुनाथजी सीता की स्वर्णमयी प्रतिमा बनवा लिया करते थे ।[69]

5.2.1.9 आदर्श राजा :

'रामायण' ओर 'रामचरित मानस' में राम का एक आदर्श राजा के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' में राम के द्वारा उत्तम नीति का प्रयोग होने से राज्य में कहीं भी अधर्म नहीं है । राजा के भय से सभी लोग एक-दूसरे की रक्षा करते हैं । राज कर्मचारी भी नीतिमत्ता से प्रजा की रक्षा करते हैं । राम की सभा व्यवहारिक ज्ञान रखनेवाले मंत्रियों, धर्मशास्त्रों का पालन करनेवाले विद्वानों, नीतिज्ञों, राजाओं तथा अन्य सभासदों से भरी रहती थी । राम के राज्य में राजा या राज्य से किसी को भी असंतोष नहीं था । राम के राज्य में चाहे वह मनुष्य हो या अधम से अधम योनि का प्राणी क्यों न हो, उसे न्याय मिलता था । 'उतरकाण्ड़' में राम ने एक कुत्ते को न्याय दिया था।[70] जिससे राम राज्य की न्याय व्यवस्था का प्रमाण मिल जाता है । राम के शासन में सामान्य व्यक्ति को भी अपनी बात कहने का अधिकार प्राप्त था । प्रजा और जनपद की इच्छा के विरुद्ध राम कोई कार्य नहीं करते थे । प्रजा में सीता के चरित्र को लेकर चर्चा होने लगी तो राम ने अपनी पत्नी सीता का त्याग करते हुए उसे वन भेज दिया । राम के राज्य में सामान्य व्यक्ति हो या अपना भाई हो गुनाह करने पर सबको बराबर का दण्ड़ दिया जाता था । 'रामायण' के 'उत्तरकाण्ड' में एकांत में राम और काल की बात चल रहीं थी। शर्त को तोडते हुए लक्ष्मण वहाँ उपस्थित हो जाते हैं तो राम ने उनको भी कड़ा दण्ड़ दिया-

विसर्जये त्वां सौमित्र आ भूद धर्म विपर्ययः ।
त्यागो वधो वा विहितः साधूनां हवभयं समम ।।[71]

अर्थात् सुमित्रानंदन ! मैं तुम्हारा परित्याग करता हूँ , जिससे धर्म का लोप न हो। साधु पुरुषों का त्याग किया जाये अथवा वध दोनों ही समान है, कहते हुए राम ने राजा के रूप में न्यायोचित कार्य करते हुए लक्ष्मण का त्याग कर दिया । राम के राज्य में सब सुखी सम्पन्न थे । चारों वर्ण के प्रति राम की प्रिति रहती थी । गुरुजनों, वृद्धों, तपस्वियों, अतिथियों आदि का सत्कार होता था । राम यज्ञों द्वारा सर्वदा विविध धर्मों का पालन करते हुए हजारों वर्षो तक आदर्श राजा के रूप में अयोध्या का शासन करते रहे।

'रामचरित मानस' में भी तुलसीदास ने राम को एक आदर्श राजा के रूप में चित्रित किया है । राम सात समुद्रों की मेखलावाली पृथ्वी के एक मात्र राजा हैं -

भूमि सप्त सागर मेखला । एक भूप रघुपति कोसला ।।[72]

राम के राज्य में सभी जन सुखी और सम्पन्न तो है ही उन्हें दैहिक, दैविक तथा भौतिक ताप भी नहीं है । वे भरत को ही राजधर्म का उपदेश नहीं देते अपितु स्वयं भी उसका पालन करते हैं । प्रजाजनों से राम को स्पष्ट कहना है कि मुझ से अनीति की बात हो जाये तो मुझे भी रोक देना -

जो अनीति कछु भाषौ भाई । तौ मोहि बरजहु भय बिसराई ।[73]

श्री रामचन्द्रजी के शासन में दण्ड़ देने का अधिकार मात्र सन्यासियों को था। राम के राज्य में कोई एक दूसरे के शत्रु नहीं थे। समय पर बारीश होने से सब सुखी सम्पन्न थे। प्रत्येक व्यक्ति अपने-अपने वर्ण और आश्रम के अनुकूल धर्म में रत रहते थे। राम का जीवन अपने लिए नहीं अपितु दूसरों के कल्याण के लिए है । उनका हृदय सदैव ही लोक कल्याण की भावना से भरा रहता है । राम लोकाराधना तथा लोक कल्याण में रत रहते हैं इसके फलस्वरूप प्रजा राम को प्राणों से भी अधिक प्यार करती है ।

इस प्रकार वाल्मीकि और तुलसीदास ने आदर्श राजा के रूप में राम का चित्रण किया है । 'रामायण' में राजा के रूप में राम जहाँ कठोर दिखाई देते हैं वहाँ 'मानस' में करुणा से द्रवित होकर करुणानिधान के रूप में प्रकट होते हैं । 'रामायण' के 'उत्तरकाण्ड़' के रामराज्य के वर्णन के आधार पर तुलसीदास ने 'मानस' में रामराज्य रूपी प्रासाद खड़ा कर दिया है, जिससे राजा राम का आदर्श राजा के रूप में दर्शन

होता है ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि वाल्मीकि राम के समकालीन होने से उन्होंने पुरुषोत्तम श्री राम का आदर्श राजा के रूप में चित्रण किया है । वे माता-पिता से मिले बन का सहर्ष स्वीकार भी करते हैं और उनकी समीक्षा भी । अपने धनुष की टंकार करते हुए राम राक्षसों का वध करते हैं और सीता विरह में पागलों की भाँति विरही बनकर बिलखते भी हैं । वे छिपकर वाली वध करते हैं और रावण जैसे त्रिलोक विजयी को ललकारते हुए उनका वध भी कर देते हैं । इस प्रकार वाल्मीकि ने मानवीय भावनाओं की उपेक्षा न करते हुए राम का पुरुषोत्तम के रूप में चित्रण किया है । जबकि तुलसीदास के राम ब्रह्मरूपा हैं, जन्म के समय ही उनके बालरूप के स्थान पर विष्णु रूप देखकर माता कौशल्या चकित-सी रह गयी थी पापियों का संहार करने हेतु विष्णुरूप श्रीराम ने अवतार लिया है, कहते हुए तुलसीदास ने अपने ब्रह्मरूप राम का मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रण किया है । वाल्मीकि द्वारा चित्रित मानवीय दुर्बलताओं का अस्वीकार किये बिना तुलसीदास ने भी राम का मानव सहज स्वभाव से युक्त चित्रण किया है, पर वे राम की लीला मात्र है । लोक कल्याण में आस्था रखनेवाले तुलसीदास ने ब्रह्म के पालक रूप का विशेष स्वीकार किया है । तुलसी के राम विष्णु से भी उपर महाविष्णु है, यही करण है कि वे त्रिदेवों सहीत सभी देवों द्वारा पूजीत दिखाए गये हैं । निष्कर्षतः राम ब्रह्मवादियों के ब्रह्म हैं, ईश्वरवादियों के ईश्वर हैं, अवतारवादियों के अवतार हैं, तथा आत्मवादियों एवं जीववादियों के आत्मा एवं जीव हैं। वाल्मीकि रचित 'रामायण' और तुलसीकृत 'रामचरित मानस' में श्री राम की भगवत्ता की समानता होते हुए भी अंतर सिर्फ इतना है कि वाल्मीकि रामायण में श्री राम के साक्षात् परब्रह्म स्वरूप का निरूपण अवश्य हुआ है, किन्तु वे अनेक परिस्थितियों और घटनाओं में पूर्णतः एक लौकिक मनुष्य के रूप में हीं व्यक्त होते हैं । महाकवि की ऐसी प्रस्तुति से इस महाग्रन्थ के सम्यक् अध्ययन न करने वाला जो मात्र कुछ प्रसंगो या घटनाओं के आधार पर श्री राम को देखता है वह इतना निष्कर्ष निकाल लेता हैं कि इसमें श्री राम मात्र एक महामानव के रूप में है या रामकथा एक महामानव की कथा या इतिहास है ।

जबकि इससे भिन्न रामचरित मानस में गोस्वामीजी मानों पग-पग पर पाठक या अध्ययनकर्ता को यह बताते हैं कि श्री राम कौन हैं; वे मात्र महामानव नहीं, साक्षात् परब्रह्म परमात्मा है। [73A]

5.2.2 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के लक्ष्मण ।

महाराज दशरथ और सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण का 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में भ्रातृसेवक के रूप में चित्रण हुआ है । महर्षि वाल्मीकि ने राजकुमार लक्ष्मण का आदर्श भ्रातृसेवक के रूप में चित्रण किया है, वहाँ तुलसीदास ने आदर्श भ्रातृसेवक के साथ शेषावतार के रूप में भी चित्रित किया है । लक्ष्मण के बिना राम का चरित्र अधुरा माना जायेगा । अतः लक्ष्मण को राम का पूरक कहना अनुपयुक्त नहीं होगा ।

5.2.2.1 आदर्श भ्रातृप्रेमी :

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में लक्ष्मण में आदर्श भ्रातृप्रेम दिखाई देता है । लक्ष्मण अपने भाई श्री राम के प्रति सम्पूर्णतः समर्पित होकर उनकी सेवा करते रहते हैं। राम की सेवा अपने जीवन का मुख्य ध्येय मानते हुए लक्ष्मण छाया की भांति राम के साथ रहते हैं । लक्ष्मण के इस कथन से उनके हृदयास्थित भातृत्व का पत्ता चलता है -

न देवलोकाक्रमणं नामरत्वामहं वृणे ।
एश्वर्य चापि लोकानां कामये न त्वंया बिना ।।[74]

अर्थात् मैं आपके बिना स्वर्ग में जाने, अमर होने तथा सम्पूर्ण लोकों का एश्वर्य प्राप्त करने की भी इच्छा नहीं रखता, कहते हुए अपने भाई के लिए स्वर्गादि सुखों को भी वह ठुकरा देते हैं । अयोध्या के वैभव को छोड़ते हुए लक्ष्मण अपने भ्राता राम के साथ चौदह वर्षों तक वन चले जाते है। 'रामचरित मानस' में भी भ्रातृस्नेह से वन जाते हुए लक्ष्मण की सराहना करती हुइ माता सुमित्रा कहती है कि -

पुत्रवती जुबती जग सोई । रधुपति भगतु जासु सुत होई ।[75]

अर्थात् संसार में वही यवुती स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र राम का भक्त हो और वही सौभाग्य सुमित्रा ने प्राप्त किया है । 'रामायण' में भ्राता राम के वनवास से दुःखी

लक्ष्मण कैकेयी में आसक्ति चित्त होकर दीन बने हुए वृद्ध पिता को बन्दी बनाकर उनका वध करने के लिए तैयार हो जाते हैं।[76] लक्ष्मण एक सच्चे सेवक के रूप में वन में राम की सेवा करते हैं, वे शय्या को लेकर भोजन तक की सामग्री को झुटाने का काम करते हैं। राम और सीता के सो जाने पर एक प्रहरी के रूप में जागते हुए लक्ष्मण पहरा देते हैं -

कछुक दूरि सजि बान सरासन । जागन लगे बैठि बीरासन ।[77]

चित्रकूट में सेना समेत भरत को आता हुआ देख लक्ष्मण क्रोध से अप्रिय शब्दों को कहते हुए भरत के वध के लिए उत्सुक हो जाते हैं, परन्तु राम के समझाने पर लज्जित हो जाते हैं -

तथोक्तो धर्मशीलेन भ्रात्रा तस्य हितेरतः
लक्ष्मणः प्रविवेशेव खानि गात्राणि लज्जया ।[78]

अर्थात् धर्मपरायण भाई के ऐसा कहने पर उन्हीं के हित में तत्पर रहनेवाले लक्ष्मण लज्जावश मानों अपने अंगों में ही समा गये । 'मानस' में भी भरत के प्रति जो संदेह था, दूर हो जाने पर लक्ष्मण उनसे मिलते हैं -

भूरि भायँ भेंटे भरत लछिमन करत प्रनाम ।[79]

इसी प्रकार अपने छोटे भाई शत्रुध्न के प्रति भी लक्ष्मण का गहरा प्रेम है, तुलसीदास ने लिखा है कि -

भेंटेउ लखन ललकि लघुभाई ।[80]

लक्ष्मणजी ललकककर (बड़ी उमंग से) छोटे भाई शत्रुध्न से मिलते हैं । सीताहरण के पश्चात् लक्ष्मण अपने भाई राम के साथ वन के कोने-कोने में सीताजी की खोज करते हैं। सीता विरह में तड़पते राम को लक्ष्मण समझाते हैं और सीता के साथ अवश्य मिलन होने का आश्वासन देते हैं । सीता की खोज के लिए जो समय नियत किया था वह बीत जाने पर भी सुग्रीव चूप बैठा रहा तो लक्ष्मण अपने भाई के साथ द्रोह करनेवाले सुग्रीव को दण्ड़ देने के उतालु हो जाते है और किष्किन्धा नरेश सुग्रीव को राम के सम्मुख प्रकट कर देते हैं । अपनी भ्रातृशक्ति का परिचय देते हुए लक्ष्मण ने मेघनाद का

वध करते हुए युद्ध को महत्व के मोड़ पर लाकर खड़ा कर दिया था। आज्ञाकारी अनुज के रूप में लक्ष्मण 'रामायण' में राम की आज्ञा से सीता को वन में छोड आने का दुष्कर कार्य भी कर देते हैं । इतना हीं नहीं, 'उत्तरकाण्ड़' के अंत में राम के द्वारा लक्ष्मण का त्याग होने पर लक्ष्मण उनका सहर्ष स्वीकार करते हुए अपने प्राणों को त्याग देते हैं और एक आदर्श भ्रातृप्रेम को स्थापित करते हैं । इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों महाकाव्यों में लक्ष्मण का आदर्श भ्रातृभक्त के रूप में चित्रण हुआ हैं ।

5.2.2.2 उग्र स्वभाव :

लक्ष्मण का स्वभाव उग्र है, जिससे उन्हें क्षणभर में आवेश आ जाता है । 'रामायण' में राम वनवास का समाचार सुनकर लक्ष्मण क्रोधित हो जाते हैं और राम को कहने लगते हैं कि जब तक वनवास की बात को कोई जानता नहीं है, तब तक आप मेरी सहायता से अयोध्या के शासन को सम्भाल लीजिए । यदि नगर के लोग विरोध करेंगे तो मैं उनको मार डालूँगा । भरत का पक्ष जो भी व्यक्ति लेगा मैं उनका वध कर दूँगा । कैकेयी के कहने पर पिताश्री हमारे शत्रु हो गये हैं । इसलिए उनको कैद कर लेना चाहिए अथवा उनको मार देना चाहिए । इसी प्रकार चित्रकूट में भी भरत को सेना समेत आता देखकर लक्ष्मण क्रोधित हो जाते हैं और भरत का वध करने के लिए प्रवृत्त होते हुए कहते हैं कि -

शराणां धनुषश्चाहमनृणोऽस्मिन् महावने ।
ससैन्यं भरतं हत्वा भविष्यामि न संशयः [81]

अर्थात् इस महान वन में सेना सहित भरत का वध करके मैं धनुष्य और बाण के ऋण से उत्रृण हो जाऊँगा - इसमें संशय नहीं है । लक्ष्मण का इस प्रकार का क्रोध कभी-कभी अपनी छबि को धुधँली भी बना देता है । सीता शोध की अवधि समाप्त हो जाने पर सुग्रीव पर लक्ष्मण का क्रोध इतना बरसता है कि मानों ऐसा लगने लगता है कि कुछ ही क्षणों में वे किष्किन्धा नगरी का विध्वंस कर देंगे ।

'रामचरित मानस' में भी तुलसीदास ने उग्र स्वभाववाले लक्ष्मण का चित्रण किया है । लक्ष्मण के उग्र स्वभाव से कहीं-कहीं मर्यादा का लोप भी दिखाई देता है । कई

प्रसंगों में वे इतने उद्धत दिखाई देते हैं कि उन्हें सामान्य शिष्टाचार का भी ज्ञान नहीं रहता । सीता स्वयंवर में जनक द्वारा 'वीर विहीन मही' की घोषणा करने पर वे क्रोधाविष्ठ हो जाते हैं । यह सर्व सामान्य है कि अपने गुरुजनों की उपस्थिति में चुप रहना ही शालीनता और शिष्टता है, किन्तु लक्ष्मण राम और विश्वामित्र की उपस्थिति में भभक उठते हैं । धनुष तूटने पर क्रोधी परशुराम को शांत करने के बजाय लक्ष्मण आवेश में आकर कहने लगते हैं कि -

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढे । द्विज देवता धरहि के बाढ़े ।[82]

अर्थात् आपको कभी रणधीर बलवान वीर नहीं मिले । हे ब्राह्मण देवता । आप अपने घर में ही बड़े हैं ऐसा कहते हुए परशुरामजी को ओर अधिक भड़काते हैं। चित्रकूट में भरत के आगमन का समाचार पाकर लक्ष्मण का क्रोध सीमा से बाहर चला जाता है और भरत आदि को मारने की सौगन्ध ले लेते हैं -

तैसे ही भरतहि सेन समेता । सानुज निदरि निपानउँ खेता ।
जौ सहाय कर संकरू आई । तौ मारउँ रन राम दोहाई ।[83]

अर्थात् भरत को सेना और छोटे भाई सहित तिरस्कार करके मेदान में पछाडूंगा। यदि शंकरजी भी आकर उनकी सहायता करें तो भी, मुझे रामजी की सौगंध है, मैं उन्हें युद्ध में मार डालूंगा । लक्ष्मण के क्रोध का भयानक रूप देखकर सारा जगत भयभीत हो जाता है । अंत में आकाशवाणी हुई और लक्ष्मण का क्रोध शांत होता है। इसी प्रकार मार्ग देने के लिए समुद्र से प्रार्थना करने की बात लक्ष्मण को पसंद नहीं आती और वे क्रोधीत हो जाते हैं । लक्ष्मण अपने क्रोध को प्रकट करते हुए श्री रघुनाथजी को अपने मन में क्रोध करके समुद्र को सुखा देने के लिए कहते हैं -

सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा ।[84]

इस प्रकार दोनों महाकव्यों में लक्ष्मण का उग्र स्वभाव दिखाया गया है । 'रामायण' में राम वनवास के समाचार से लक्ष्मण क्रोधीत होकर राम को विद्रोह करने के लिए कहते है, जबकि मानस में रामवनवास के समय लक्ष्मण एक सेवक की भांति राम के साथ वन चलें जाते हैं। मिथिला में जनक और परशुराम के साथ लक्ष्मण के उग्ररूप

का विस्तृत वर्णत तुलसीदासने किया है । 'रामायण' के चित्रकूट में भरत को सेना समेत आते देखकर लक्ष्मण क्रोध से भड़क उठते हैं परंतु राम के समझाने से वे शांत हो जाते है। जबकि 'मानस' में लक्ष्मण को शांत करने के लिए आकाशवाणी का सहारा लेना पड़ा है । 'रामायण' में समुद्र के सामने प्रार्थना करने का विभिषण का प्रस्ताव लक्ष्मण स्वीकार कर लेते हैं जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने लक्ष्मण के द्वारा इसी प्रस्ताव का विरोध दिखलाया है । निष्कर्ष में दोनों महाकवियों ने लक्ष्मण की उग्रता को दिखाते हुए क्रोधी के रूप में उनका चित्रण किया है । यह भी स्पष्ट है कि उग्र स्वभाववाले व्यक्तित्व से लक्ष्मण के उच्च चारित्रिक गुण निस्तेज होते हुए दिखाई हैं ।

5.2.2.3. पुरुषार्थ प्रिय :

'रामायण' और 'रामचरित मानस' के लक्ष्मण पुरुषार्थ प्रिय रहे हैं । वे अपने भाई के एकांत अनुचर है तथा बिना कर्तव्य अकर्तव्य उचित अनुचित का विचार किये उनकी आज्ञापालन करने के लिए सदैव तत्पर रहते हैं । चिन्तन-अनुचिन्तन उन्हें प्रिय नहीं है, कर्म ही उनका अभीष्ट है । लक्ष्मण भाग्यवादी नहीं है, वह पुरुषार्थवादी है, पिता के वचनों को वह धर्म नहीं मानता और ऐसे धर्मो का विरोध करते हुए वह राम को कहते हैं कि मैं ऐसे धर्म मानने का पक्षपाती नहीं हूँ । इस प्रकार के धर्म के दिखावे का मैं धोर विरोधी हूँ । वरदान की कल्पना के विषय में पाप का भय उत्पन्न कर आपके साथ'अन्याय किया जा रहा है । सदा पुत्र का अहित करने वाले माता-पिता नामधारी कामाचारी शत्रुओं की इच्छा को आप जैसे धर्मभीरु ही पूर्ण कर सकते हैं । अपने पास शक्ति होने पर भी भाग्य पर भरोसा करके बैठे रहना मूर्खता है । उनका मानना है कि जो कायर हैं, जिसमें पराक्रम का नाम नहीं है वहीं देव का भरोसा करता है । शक्तिशाली वीर पुरुष देव की उपासना नहीं करते । जो अपने पुरुषार्थ के बल पर भाग्य को दबाने में समर्थ है वह पुरुष अपने कर्म में बाधा पड़ने पर भी शिथिल होकर बैठे नहीं रहता ।[85] राम के बनवास का समाचार मिलने पर लक्ष्मण क्रोधित होकर राम के राज्याभिषेक में आयी बाधा को पुरुषार्थ के बल पर बदलने के लिए तैयार हो गये । उन्होंने राम को कहा कि आप अयोध्या के शासन को सम्भाल लीजिए, आपके पास मैं

खड़ा हूँ जिससे कोई विरोध भी नहीं करेगा और राज्याभिषेक में आये देवद्वारा विध्न को आप अपने पुरुषार्थ से हटा दीजिए । यहाँ लक्ष्मण का पुरुषार्थ पर गहरा विश्वास दृष्टिगोचर होता है । कर्मनिष्ठ लक्ष्मण अपने भ्राता राम के साथ अयोध्या के सुख वैभव को छोड़कर वन चलें गये । वन में राम सोते हो या जागते हर समय उनके कार्यपूर्ण करने में व्यस्त रहें । प्रत्यांच्ची सहित धनुष लेकर खंती और पिटारी लिये लक्ष्मण चौदह वर्ष तक राम की सेवा में रत रहे । सीताहरण के पश्चात् विलाप करते हुए राम जब समस्त लोक का नाश करने के लिए तत्पर हुए तब लक्ष्मण राम को समझाते हुए कहते हैं कि किसी एक व्यक्ति के दोषी होने पर समस्त लोक को दण्ड़ देना उचित नहीं है सीता को ढूढ़ंने का प्रयत्न करना चाहिए वह हमें अवश्य मिल जायेगी । अपने कर्मनिष्ठ व्यक्तित्व का परिचय देते हुए लक्ष्मण राम को कहते हैं कि सीता को हम सब एकाग्रचित हो समुद्र में खोंजेंगे, पर्वतो और वनों में ढूढ़ेंगे, नाना प्रकार की भयंकर गुफाओं और भांति भांति के सरोवरों को छान डालेंगे तथा देवताओं और गन्धर्वो के लोगों में भी तलाश करेंगे। जबतक आपकी पत्नी का अपहरण करने वाले दुरात्मा का पत्ता नहीं लगा लेते, तबतक हम अपना प्रयत्न जारी रखेंगे ।[86] यहाँ लक्ष्मण के द्वारा राम को सान्तवना देते हुए यह कहना कि विकट परिस्थिति में भी व्यक्ति को अपना धैर्य नहीं गँवाना चाहिए परंतु दृढ़ता से उनमें से मार्ग निकालने का प्रयत्न करना चाहिए यही सच्ची कर्मवादिता है । लक्ष्मण की पुरुषार्थवादिता तो तब दिखाई देती हैं जब राम रावण के युद्ध में युद्ध करते हुए लक्ष्मण दो दो बार मूर्छित हो जाते है फिर भी अपने बलबूते पर मेधनाद जैसी भयानक आतताई शक्ति का विध्वंस कर देते है। पूरे लंकाकाण्ड में महर्षिवाल्मीकि ने लक्ष्मण का एक कर्मठ योद्धा के रूप में चित्रण किया है । इस प्रकार 'रामायण' में अपने भाई की आज्ञा को शिरोधार्य करते हुए उचित अनुचित की परवाह किये बिना लक्ष्मण एक सच्चे पुरुषार्थी के रूप में उभरे है ।

'रामचरित मानस' में भी तुलसीदास ने लक्ष्मण का एक सच्चे पुरुषार्थवादी के रूप में चित्रण किया है । चित्रकुट में सेनासमेत भरत का आगमन होता देख लक्ष्मण क्रोधावेश में राम से कहने लगते हैं कि जब स्वामी साथ हो और धनुष्य हाथ में हो तो

हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहना बुद्धिमानी नहीं है -

कह लगि सहिअ रहिअ मनुमारे । नाथ साथ धनू हाथ हमारे [87]

समुद्र से मार्ग माँगने के लिए समुद्र से प्राथना करने पर देवी सहायता होने का विभिषण का उपाय लक्ष्मण को पसंद नहीं है -

करिअ दैव जो होई सहाई । मंत्र न यह लछिमन मन भावा ।[88] और इसीबात का विरोध करते हुए लक्ष्मण ने राम को कहा कि-

नाथ दैव कर कवन भरोसा । सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा।
कादर मन कहुँ एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ।।[89]

अर्थात् हे नाथ ! दैव का कौन भरोसा । मन में क्रोध कीजिए और समुद्र के सुखा डालिए । यह दैव तो कायर के मन का एक आधार है, आलसी लोग ही दैव दैव पुकारा करते है । युद्ध भूमि में मेघनाद के द्वारा मूर्छित हो जाने के पश्चात् लक्ष्मण अपने कर्मबल से उनका संहार कर देते हैं । राम का सेवक बनकर अपना कर्म जताने वाले लक्ष्मण को राम की सेवकाई करने पर पूरा भरोसा है, इसीलिए तो वह मेघनाद के साथ अंतिम युद्ध करने के लिए जाने से पहले प्रतिज्ञा करते हुए कहते हैं कि -

जौ ते हि आजु बधें बिनु आवौं । तौ रघपति सेवक न कहावौ ।[90]

इस प्रकार कठोर प्रतिज्ञा करते हुए लक्ष्मण अपने कर्म के बल पर मेघनाद का वध कर देते हैं ।

इस प्रकार दोनों महाकाव्यों में लक्ष्मण के कर्मपक्ष की प्रबलता को रेखांकित किया गया है । वाल्मीकि के लक्ष्मण प्रारब्धवाद को ठोकर मारते हुए राम को दशरथ के प्रति विद्रोह कर देने तक की बात कहते है, जबकि मानस में लक्ष्मण अपने भाई और भाभी की सेवा सुश्रुषा को ही अपना कर्म मान लेते हैं । अभिषेक में आये विध्न को राम देव ईच्छा बताते हैं तो लक्ष्मण उस देव ईच्छा का विरोध कर उनको विपरित कर देने के लिए राम को पिता के साथ विद्राह करके शासन की बागडोर सम्मभालने के लिए कहते हैं जबकि 'मानस' के लक्ष्मण राम राज्याभिषेक के विघ्न को देव ईच्छा मानकर वन चले जाते हैं । 'रामायण' में लक्ष्मण समुद्र से मार्ग लेने के लिए प्रार्थना करने का विभिषण

का प्रस्ताव सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं जब कि 'रामचरित मानस' में लक्ष्मण देवी सहायता का विरोध करते हैं और अपनी शक्ति से समुद्र को सुखा देने के लिए राम को बिनंति करते हैं । इस प्रकार सूक्ष्म परिवर्तनों के साथ लक्ष्मण का पुरुर्षाथवादी के रूप में चित्रण हुआ है ।

5.2.2.4 आदर्श देवर के रूप में :

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में लक्ष्मण आदर्श देवर के रूप में प्रकट होते हैं। लक्ष्मण भाभी सीता को माता तूल्य समझकर निसदिन उनकी सेवा करते हैं । स्वर्णमृग के पीछे गये हुए श्री राम पर संकट आया जानकर सीता लक्ष्मण को रोंगटे खड़े कर देने वाले कठोर वचन कहती है, परंतु लक्ष्मण शांत चित होकर उनको सुन लेते हैं और दोनों हाथ जोड़कर कहते हैं कि मैं आपकी बात का जवाब नहीं दूँगा क्योंकि आप मेरी आराध्य देवी के समान है ।[91] भाभी के चरणों का स्पर्श करके प्रणाम करना लक्ष्मण का नित्य क्रम था, इसकी प्रतिति हमें किकिष्कन्धा काण्ड़ में होती है । आकाशमार्ग से फेंके गये गहनों को लाकर सुग्रीव जब राम को देते हैं तब राम उसी गहनों को दिखाते हुए लक्ष्मण को कहते हैं कि देखो लक्ष्मण यह तुम्हारी भाभी के गहनें हैं, तब लक्ष्मण मर्यादा के आदर्श को स्थापित करते हुए कहते हैं कि-

नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ।
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ।।[92]

अर्थात् मैं इन बाजूबन्दों को नहीं जानता और न इन कुण्डलों को ही समझ पाता हूँ कि किसके है; परंतु प्रतिदिन भाभी के चरणों में प्रणाम करने के कारण मैं इन दोनों नूपुरों को अवश्य पहचानता हूँ । 'रामायण' में सीता की अग्नि परीक्षा और पुनः सीता वनवास से लक्ष्मण अधिक दुःखी थे, परंतु अपने भ्राता श्री राम की आज्ञा से ही निदोर्ष भाभी के साथ होते अन्याय को देखकर चूप रहे ।

'रामचरित मानस' में भी लक्ष्मण के चरित्र को आदर्श देवर के रूप में उभारा गया है । वन जाने की आज्ञा लेने के लिए गये लक्ष्मण को माता सुमित्रा समझाती हुई कहती है कि-

तात तुम्हारि मातु बैदेही । पिता रामु सब भाँति सनेही ।[93]

हे तात ! जानकीजी तुम्हारी माता है और सब प्रकार से स्नेह करने वाले श्री रामचन्द्रजी तुम्हारे पिता है । लंका विजयोपरांत राम सीता को अग्नि परीक्षा देने के लिए कहते हैं, उस समय सीता विरह, विवेक धर्म और नीति से सनी हुई वाणी कहती है, जिसको सुनकर लक्ष्मण के नेत्र भर जाते हैं । सीता के प्रति होते इस अन्याय को देखकर लक्ष्मण कुछ कर नहीं पाते और दोनों हाथ जोड़कर खड़े रह जाते हैं ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में लक्ष्मण का एक आदर्श देवर के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' के पंचवटी में सीता ने लक्ष्मण को रोंगटे खड़े कर देनेवाले कठोर वचन कहे जबकि मानस में तुलसीदास ने संक्षेप में ही कह दिया कि सीता के कटु वचनों से लक्ष्मण राम की सहायता के लिए गये। इसी प्रकार किष्किन्धाकाण्ड़ में सीता के द्वारा फेंके गये गहनों को देखकर राम का विलाप तथा उनको पहचानने के लिए लक्ष्मण को कहने पर लक्ष्मण के प्रत्युत्तर के द्वारा वाल्मीकि ने देवर भाभी की मर्यादा को अभिव्यक्त किया है । जबकि मानस में तुलसीदास ने इसी प्रसंग को संक्षेप में ले लिया है । दोनों महाकाव्यों में लक्ष्मण का एक मर्यादावादी देवर के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में सीता की अग्नि परीक्षा के समय अश्रु बहाते लक्ष्मण को मौन दिखाकर राम और सीता दोनों के प्रति उसका सम्मान अभिव्यक्त करने का दोनों महाकवियों ने स्तुत्य प्रयास किया है।

5.2.2.5 विद्रोही व्यक्तित्व :

महर्षिवाल्मीकि और तुलसीदास का लक्ष्मण चूपचाप अन्याय को सहते रहे अथवा अन्यों के लिए बिना कुछ कहे अपने सुखों का गला घोंट दे ऐसे नहीं है । यह तो अपने प्रति होनेवाले अन्याय आदि के प्रति विद्रोह भी कर सकते हैं । असत्य का विरोध करना, चाहे वह गुरु या पिता ही क्यों न हो उन्होंने विरोध किया है । हाथ में धनुष हो तो हाथ पर हाथ धरकर बैठे रहना लक्ष्मण ने नहीं सिखा । दशरथ राजा की ओर से मिले राम को वनवास से खिन्न लक्ष्मण राम के सामने महाराज दशरथ का विरोध करते हैं और अभिषेक का विरोध करनेवाले को दण्ड़ देने के लिए तैयार हो जाते हैं और कहने लगते

हैं कि श्रीराम आज मेरी ये भूजाएँ, जो चन्दन का लेपलगाने, बाजूबंद पहनने, धन का दान करने और सुहृदों के पालन में संलग्न रहने के योग्य है, आपके राज्याभिषेक में विघ्न डालने वालों को रोकने के लिए अपने अनुरूप पराक्रम प्रकट करेगी।[94] राम के राज्याभिषेक में विरोध करनेवाले प्रत्येक व्यक्ति के साथ लक्ष्मण विद्रोह करने के लिए तैयार हो जाते हैं । इस प्रकार जिस धर्म में सत्यता नहीं है, केवल स्वार्थ या कपट है तो उस धर्म के प्रति होने वाली आसक्ति का भी लक्ष्मण ने विरोध किया है -

जायते तत्र में दुःखं धर्म सङगच्य गर्हित ः।[95]

चित्रकुट में भरत की सेना को देखकर लक्ष्मण क्रोधीत हो जाते हैं और उनके साथ युद्ध के लिए तैयार हो जाते हैं । भरत की सेना को देखकर लक्ष्मण ने कहा कि आज मैं अपने रोके हुए क्रोध और तिरस्कार को शत्रु की सेना पर उसी प्रकार छोड़ूँगा जैसे सूखे घास फूँसके ढेर में आग लगा दी जाय । शत्रुओ के शरीरों के टुकड़े टुकड़े करके मैं चित्रकुट के इस बन को रक्त से सींच दूँगा । किष्किन्धा के ऐश्वर्य में डूबा हुआ सुग्रीव राम कार्य को भूल जाता है। उस समय अपमानीत लक्ष्मण सुग्रीव वध करने का निश्चय कर लेते हैं।

'रामचरित मानस' में भी तुलसीदास ने लक्ष्मण का अन्यायों के प्रति विद्रोहात्मक रूप चित्रित किया है । जनकपुर में जनक राजा की ओर से पृथ्वी को वीरों से शून्य कहने पर तथा धनुष तूटने से परशुराम के क्रोध को देखकर लक्ष्मण से चूप नहीं रहा गया और अपने क्रोध को प्रकट कर देते हैं । 'रामायण' की भांति 'मानस' में भी तुलसीदास ने चित्रकूट में लक्ष्मण का विद्रोही के रूप में चित्रण किया है । भरत की सेना को देखकर लक्ष्मण उनको मारने के लिए सौगन्ध भी ले लेते हैं । समुद्र से मार्ग लेने के लिए प्रार्थना करने पर भी लक्ष्मण से चूप नहीं रहा गया और अपने क्रोध को प्रकट कर देते हैं -

सोषिअ सिंधु करिअ मन रोसा ।[96]

लक्ष्मण राम को क्रोध करके समुद्र को सुखा देने की सलाह देते हैं ।

इस प्रकार वाल्मीकि और तुलसीदास ने लक्ष्मण का विद्रोही व्यक्ति के रूप में

चित्रण किया है । 'रामायण' में लक्ष्मण अपने क्रोध को प्रकट करते हुए विद्रोह करने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं जबकि 'मानस' में चित्रकूट प्रसंग में लक्ष्मण की जिस उग्रता का दर्शन होता है, वह मानस में अन्यत्र नहीं है ।

5.2.2.6. निर्भय, वीर और साहसी :

'रामायण' और 'रामचरित मानस' के लक्ष्मण में निर्भयता, वीरता और साहसिक वृति का दर्शन होता है । अपनी छोटी आयु में ही विश्वामित्र की आज्ञा से राम और लक्ष्मण ताटका का वध करने के लिए उनसे युद्ध करते हैं । युद्ध में लक्ष्मण ताटका के नाक, कान को काटकर अपने वीरत्व को दिखाते हैं। विश्वामित्र के यज्ञ की राम के साथ मिलकर लक्ष्मण छः दिन और छः रात तक जागते रहकर बड़ी निर्भिकता से रक्षा करते हैं।[97] 'मानस' में भी जनक राजा की ओर से 'वीर शून्य पृथ्वी' कहने पर लक्ष्मण क्रोधीत हो जाते हैं । अपनी शक्ति का परिचय देते हुए लक्ष्मण पूरे ब्रह्माड़ को गेंद की भांति उछालने के लिए तैयार हो जाते हैं । परिणामतः राजा जनक को भी कटुवाक्य कहने का अफसोस होता है। क्षत्रियों को बार बार मारनेवाले परशुराम ने जब धनुष तूटने पर दोषी को युद्ध के लिए ललकारा तो लक्ष्मण ने बड़ी निर्भिकता से परशुराम के गर्व का हनन कर दिया । क्रोध से जलते हुए परशुराम को लक्ष्मण कहते हैं कि -

भृगुसुत समुझि जनेउ बिलोकी । जो कछु कहहु सहउँ रिस रोकी ।
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई । हमरें कुल इन्ह पर न सुहाई ।[98]

अर्थात भृगुवंशी समझकर और यज्ञोपवीत देखकर जो कुछ आप कहते हैं, उसे मैं क्रोध को रोककर सह लेता हूँ । देवता, ब्राह्मण भगवान के भक्त और गौ इन पर हमारे कुल में वीरता नहीं दिखाई जाती कहकर लक्ष्मण ने अपनी वीरता का परिचय परशुराम को दिया । 'रामायण' में दशराथ की ओर से मिले राम वनवास से दुःखी लक्ष्मण पूरी निर्भिक्ता से दोषी पिता, माता कैकेयी आदि को फटकारते हैं, यहाँ तक की राम के राज्याभिषेक में विघ्न बनने वालों का वध करने के लिए भी तैयार हो जाते हैं । चित्रकूट में भरत को सेना समेत आते देखकर लक्ष्मण पूरी सेना के साथ अकेले ही युद्ध करने की तत्परता दिखाते हैं । इन्द्रजित के बाण से एक बार मूर्छित होने पर भी पूरे

साहस के साथ लक्ष्मण निकुम्भिका मंदिर में जाकर पुनः मेघनाद को ललकारते हुए उनका वध कर देते हैं। संक्षेप में 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में लक्ष्मण अतुलनीय योद्धा के रूप में प्रकट होते हैं ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने लक्ष्मण को राम के पुरोगामी के रूप चित्रित किया है। महर्षि वाल्मीकि ने श्रेष्ठ भाई, आज्ञाकारी, वीर, निर्भय और पुरुषार्थ प्रिय के रूप में लक्ष्मण के चरित्र का चित्रण किया है, जबकि तुलसीदास ने लक्ष्मण को शेषावतार कहते हुए शेषनाग के अवतार के रूप में सर्वगुण सम्पन्न लक्ष्मण को चित्रित किया है । भ्रातृप्रेमी और कर्मठ योद्धा लक्ष्मण को रामकथाकारों ने शेषावतार माना है - ''शेषस्तु लक्ष्मणोराजन् राममेवान्व पद्यत।'' तुलसीदास और वाल्मीकि के लक्ष्मण भ्रातृत्व के लिए हिन्दी साहित्य में अनुठे उदाहरण के रूप में हमारे सामने प्रकट होते हैं ।

5.2.2.7 पुत्र के रूप में :

'रामायण' ओर 'मानस' में लक्ष्मण को आज्ञाकारी परंतु अन्याय के प्रति विरोध जताने वाले पुत्र के रूप में चित्रित किया गया है । विमाता कौशल्या के प्रति लक्ष्मण को आदर है जबकि विमाता कैकेयी के द्वारा मिले रामवनवास से लक्ष्मण उन पर फिटकार बरसाते हुए दिखाई देते हैं । वह महाराज दशरथ को भी बंदी बना लेना चाहते हैं । उनका मानना है कि पिता वृद्ध हो गये हैं और एक स्त्री की आसक्ति में अपने पुत्र को वन दे रहे हैं; अतः पिता की आज्ञा का वह विरोध करते हैं। लक्ष्मण अपनी माता के प्रति आज्ञाकारी है; वन में जाने के लिए माता से विदा माँगते हुए लक्ष्मण डर के मारे संकुचाते हैं और मन ही मन सोचते हैं कि हे विधाता ! माता साथ जाने को कहेंगी या नहीं -

मागत विदा सभय सकुचाही । जाइ संग विधि कहिहि कि नाहीं ।[100]

माता सुमित्रा भी अपने पुत्र लक्ष्मण को श्री राम का परम अनुरागी जानकर उनको वन के लिए विदा करती है -

सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने ।[101]

इस प्रकार 'रामायण' और 'मानस' में लक्ष्मण श्रीराम और सीताजी की सेवा करके माताओं के मन को जीतकर श्रेष्ठ आज्ञाकारी पुत्र के रूप में प्रकट हुए हैं ।

निष्कर्ष में वाल्मीकि तथा तुलसी के लक्ष्मण राम के साथ अभिन्न होकर ही नहीं रहते अपितु वे राम के व्यक्तित्व के पूरक भी है । कर्तृत्वान, बुद्धिमान और असामान्य पुरुष हीं लक्ष्मण के चरित्र को पहचान पायेगा । लक्ष्मण जैसा असामान्य, अलौकिक और अपूर्व चरित्र जगत के इतिहास के कोई भी साहित्य में दिखाई नहीं देगा । खुद में तीक्ष्ण बुद्धि होने पर भी अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व राम में मिला देने से लक्ष्मण की महत्ता ओर बढ़ गयी है ।

5.2.3. 'रामायण' और 'रामचरित मानस'के भरत ।

महाराज दशरथ और कैकेयी के पुत्र भरत का चरित्र सर्वाधिक भव्य और आदर्श है । वे भक्ति और भ्रातृप्रेम के साकार रूप है । भरत एक धीरोदात्त नायक है । धीरोदात्त नायक के अनुरूप भरत में विनम्रता, सर्वप्रियता, मधुरता, बुद्धिमत्ता तथा तेजस्विता आदि सभी गुण उपलब्ध होता है । राम के महान एवं भव्य चरित्र से होड़ लेने की क्षमता यदि रामायण के किसी चरित्र में हैं तो वह भरत में ही है । 'रामायण' और 'मानस' के अयोध्या काण्ड़ में बहुविध स्वभाव एवं चरित्र के अनेक पात्रों का संगम हुआ है किंतु राम के बाद यदि किसी पात्र का चरित्र पाठक के मन को सर्वाधिक प्रभावित करता है, तो वह भरत का चरित्र है । अपनी उदात्त चारित्र्य निष्ठा, स्वार्थ, त्याग, कुलोचित गौरव तथा अग्रज राम के प्रति अनन्य अनुराग भरत के चरित्र के ऐसे मौलिक गुण है, जो 'वाल्मीकि रामायण' से लेकर 'मानस' तक लगभग समान रूप से उत्कीर्ण किये गये हैं । वाल्मीकि ने भरत को भगवान विष्णु का अंशावतार बताया है -

भरतो नाम कैकेप्यां जज्ञे सत्यपराक्रमः ।
साक्षाद विष्णोचतुर्भागः सर्वेः समुदितो गुणैः ।।[102]

गोस्वामीजी ने भरत को विश्व का भरण पोषण करने में सक्षम बताया है -

विश्व भरन पोषण कर जोई । ताकर नाम भरत अस होई ।[103]

इस प्रकार 'मानस' में भरत का सत्यशील, पराक्रमी, सदाप्रसन्न चित्त, निर्मलबुद्धि,

आदर्श भ्रातृत्व, त्यागमूर्ति और धर्मात्मा आदि गुणों से युक्त चित्रण हुआ है ।

5.2.3.1 भ्रातृत्व की चरमसीमा :

भरत जेसा भ्रातृप्रेम सम्पूर्ण साहित्य जगत में शायद ही कहीं मिले । भरत के इस अगाध भ्रातृप्रेम को वाल्मीकि और तुलसीदास ने बड़ी मर्मस्पर्शी अभिव्यक्तियाँ दी हैं । उनके चरित्र के समस्त दिव्य गुण इसी भ्रातृप्रेम पर ही केन्द्रित है । राम का विरोध भरत के लिए असहनीय है । स्वयं अपनी माता कैकेयी ने राम को वन जाने के लिए विवश कर दिया तो भरत ने अपनी माता कैकेयी को धिक्कारते हुए पापिनी, पतिधातिनी आदि कहकर उसे मृत्यु का वरण कर लेने के लिए कहा -

सात्वमग्निं प्रविश वा स्वयं वा विश दण्डकान् ।
रज्जु बद्धवाथवा कण्ठे नहि तेडन्यत् परायणम् ।।[104]

अर्थात् अब तू जलती आग में प्रवेश कर जा, या स्वयं दण्ड़कारण्य में चली जा अथवा गले में रस्सी बाँधकर प्राण दे दे, इसके सिवा तेरे लिये दूसरी कोई गति नहीं है। रामवनवास से खिन्न भरत माता कौशल्या के सामने विविध सौगन्ध खाते तथा खुद को निरपराध-बताते हुए व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं और दुःख से आर्त होकर विलाप करने लगते हैं। मन्त्री आदि भरत से राज्य ग्रहण करने के लिए प्रस्ताव रखते हैं तो भाई श्री राम के प्रति अपना अगाध प्रेम दिखाते हुए भरत ने कहा कि श्री राम हमारे बड़े भाई है अतः वे ही राजा होंगे । राम के वनवास से दुःखी भरत चौदह वर्ष तक वन में जाने के लिए तैयार हो जाते है ।

रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यति महीपतिः
अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पच्च च ।[105]

गुरु वशिष्ठ ने भरत को राज्य पर अभिषिक्त होने का आदेश दिया तो भरत ने उनका उत्तर देते हुए कहा कि महाराज दशरथ का कोई भी पुत्र बडे भाई के राज्य का अपहरण कैसे कर सकता है, यह राज्य और मैं दोनों ही श्री राम के हैं, यह समझते हुए आपको धर्मसंगत बात करनी चाहिए । इस प्रकार राम के प्रति अपने अनन्य प्रेम को दिखाते हुए भरत ने वशिष्ठ के राज्याभिषेक की बात का भी खण्ड़न कर दिया । भरत

के भ्रातृप्रेम की चरम सीमा चित्रकूट प्रसंग में दिखाई देती है । श्रीराम को लेने के लिए गये हुए भरत जब चित्रकूट में राम को देखते हैं तब श्रीरामचन्द्रजी के चरणों तक पहुँचने के पहले ही पृथ्वी पर गिर पड़ते है और दीनवाणी से एक ही बार 'आर्य' इतना बोल सकते हैं । श्रीराम ने उनको उठाते हुए छाती से लगा लिया और दोनों के नेत्रों में से आँसुओं की धाराएँ बहने लगती है । चित्रकूट में राम को अयोध्या लौटने की प्रार्थना करते हुए भरत महाराज दशरथ को भी कोसते हैं । भरत कहते हैं कि महाराज इस समय परलोकवासी हो चूके हैं, इसलिए मैं उनकी निन्दा नहीं करता परंतु ऐसा कौन मनुष्य हो सकता है जो धर्म को मानते हुए भी स्त्री को प्रिय करने की इच्छा से ऐसा धर्म और अर्थ से हीन कुत्सित कर्म करे ? पिताजी ने क्रोध, मोह और साहस के कारण ठीक समझकर धर्म का उल्लंधन किया है उसे आप पलट दे ।[106] कहते हुए भरत भैया राम को अयोध्या का राज्य सम्भालने के लिए प्रार्थर्ना करते हैं । अंत में अपने मन की बात को प्रकट करते हुए भरत कहते हैं कि -

अथवा पृष्ठतः वानमेव भवानितः

गमिष्यति गमिष्यामि भवता साधर्मय्यहम् ।[107]

अर्थात् यदि आप मेरी प्रार्थना को ठुकराकर यहाँ से वन को ही जायेगे तो मैं भी आपके साथ जाऊँगा । यहाँ भरत के हृदय में अपने भाई के प्रति अतूट श्रद्धा, विश्वास और प्रेम दिखाई देता है । भरत खुद को श्रीराम का लघुभ्राता नहीं, सेवक मानते हैं और उनका पूरा निर्वाह करते हैं । उनकी भक्ति चरम साधना है । चित्रकूट से जाते, वक्त वह राम को कहते हैं कि ये दो सुर्वणभूषित पादुकाएँ आपके चरणों में अर्पित है आप इन पर अपने चरण रखें । ये ही सम्पूर्ण जगत के योगक्षेम का निर्वाह करेंगी ।[108] राम की चरणापादुकाओं का सिहासनासीन करके अत्यन्त निस्पृह त्यागी तपस्वी का जीवन व्यतीत करते हुए भरत ने आदर्श भातृत्व की स्थापना की है।

तुलसीदास ने भी भरत के चरित्र में आदर्श भ्रातृत्व दिखाया है । भरत का हृदय अत्यन्त कोमल और निश्चल है पिता की मृत्यु का समाचार तथा रामवनगमन सुनकर भरत व्यथीत हो जाते हैं, और माता कैकेयीको कठोर वचन कहते हुए कहते हैं कि -

हंसु बंसु दशरथु जनकु राम लखन से भाइ ।

जननी तू जननी भई विधि सन कछु न बसाइ ।।[109]

मुझे सूर्यवंश, दशरथ जैसे पिता और राम-लक्ष्मण जैसे भाई मिले परंतु दुःख तो इस बात का है कि मुझे जन्म देनेवाली माता तू हुई, क्या किया जाय विधाता से कुछ भी वश नहीं चलता कहते हुए भरत माता कौशल्या के पास चले जाते हैं । कौशल्या भरत को सवर्था निर्दोष प्रमाणित करती है । वह शोकाकुल भरत को सांत्वना देती हुई देव को इन सभी परिस्थितियों के लिए कोसती है । गहरे अनुताप, क्षोभ एवं आत्मग्लानि से भरकर भरत माता कौशल्या के समक्ष, अपने निर्दोष होने की जिन शब्दों में सफाई प्रस्तुत करते हैं, उनके सामने दुनियाँ की सारी कसमें फीकी पड़ जाती है । भरत को पुरवासियों सहित चित्रकूट की ओर आते देखकर लक्ष्मण क्रोधित हो जाते हैं, उस समय लक्ष्मण के क्रोध को शांत करने के लिए राम भरत के लिए जिन शब्दों का प्रयोग करते हैं, उनमें राम और भरत का प्रेम सहज ही उद्‌घाटित हो जाता है -

सुनहु लखन भल भरत सरीसा । विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा ।[110]

अर्थात् भरत जैसा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में न तो कहीं सुना गया है, न देखा ही गया है। भरत के प्रेम के आगे अयोध्या का राज्य भरत के लिए तुच्छ है, अगर भरत को ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद दिया जाये तो भी उनको राज्य का मद नहीं हो सकता -

भरतहि होइ न राजमदु विधि हरि हर पद पाइ ।[111]

'रामचरित मानस' का अत्यन्त मार्मिक स्थल चित्रकूट है, जहाँ भरत में विनम्रता, सहिष्णुता, शांति, धीरता आदि गुणों का दर्शन होता है । भरत का राम के प्रति प्रेम का दर्शन चित्रकूट में राम-भरत मिलन के समय दिखाई देता है । हे नाथ ! रक्षा कीजिए कहते हुए भरत जब दण्ड़ की भांति गिर पड़ते हैं तब राम उनको उठाके छाती से लगा लेते हैं, और दोनों के नेत्रों में से आँसू की धाराएँ बहने लगती है । राम भरत के मिलने की रीति को देखकर सब कोई सुध बुध खो बैठते है । दोनों भाई मन, बुद्धि चित्त और अहंकार को भुलकर परम प्रेम से पूर्ण हो जाते है -

परम प्रेम पूरन दोउ भाई । न बुद्धि चित्त अहमिति बिसराई ।[112]

राम और भरत के उदात्त प्रेम को देखते हुए तुलसीदास ने भी कह दिया कि जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और महादेव का भी मन नहीं जा सकता । उस प्रेम को मैं कुबुद्धि किस प्रकार कहूँ ?

जहँ न जाई मनु विधि हरिहर को, सो मैं कुमति कहौं कहि भांति।[113]

गुरु वशिष्ठ को भरत के अनुकूल देखकर राम को जो आनन्द प्राप्त हुआ, वह निश्चय ही भरत के प्रति उनके स्नेह का परिणाम है । भरत साक्षात् भातृप्रेम की मूर्ति है, कदापि राम के प्रतिकुल कार्य न करने वाले भरत राम को वनगमन से अयोध्या वापिस नहीं ला सके किन्तु वे चौदह वर्ष तक यह भरौसा लेकर बैठे रहे कि राम नियत अवधि पर अवश्य आ जायेंगे । राम यदि नियत समय पर नहीं आयें तो अपने प्राणों का रहना भी भरत को असम्भव लगता है -

बीते अवधि रहहिं जौ प्राना । अधम कबन जगमोहि समाना ।

भरत के लिए राम आगमन की प्रतीक्षा की विह्वलता बढ़ती ही जा रही थी कि राम आगमन का शुभ समाचार लेकर हनुमानजी आ गये । राम के आगमन का समाचार सुनकर भरत को जो प्रसन्नता हुई वह अपूर्व है । राम के आगमन पर भरत की दशा एवं राम भरत मिलन का चित्रण करते समय तुलसीदास को भी कोई उपमा न मिल सकी ।

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने भरत का आदर्श भातृत्व के रूप में चित्रण किया है । 'रामायण' में ननिहाल से लौटकर भरत माता कौशल्या से मिलने के लिए जाते हैं, उस समय कौशल्या ने भरत की कटु शब्दों में भर्त्सना की है उसे 'मानस' में गोस्वामीजी ने हटा दिया है । 'रामायण' में भरत को निदोर्ष दिखाते हुए कविने कौशल्या के सामने लगभग पचास शपथें खिलवायी है । 'वाल्मीकि रामायण' नर कथा के रूप में होने से उसमें भरत लक्ष्मण आदि के चरित्रों में मनुष्यों की कमजोरियों का ज्यादा चित्रण है तथा इसके लिए यथार्थवादी दृष्टिकोण है। जबकि 'मानस' में इन्ही पात्रों में सुधार करने का कवि का प्रयत्न रहा है । 'मानस' में राम और पिता दशरथ के विरह में तड़पते हुए भरत का चरित्र भाव विभोरता में चरमोत्कर्ष तक पहुँचे गया है, यहाँ

तक कि राम के प्रेम में डूबे भरत को देखकर देवताओं को भी संदेह होने लगता है कि सम्भवतः भरत के प्रेम के आगे राम हार न जाय । जबकि 'रामायण' में भरत के प्रेम का यथार्थवादी चित्रण दिखाई देता है । निष्कर्ष में डॉ. पाण्ड़ेय के शब्दो में ''भरत के चरित के त्याग, तप धैय, माधूर्य तितिक्षा, शौर्य एवं गाम्भीर्य आदि समस्त दिव्यगुण इसी भातृप्रेम पर ही केन्द्रित है ।[114]

5.2.3.2 राम और सीता के प्रति अगाध प्रेम :

राम और भरत के परस्पर प्रेम का जो आदर्श वाल्मीकि एवं तुलसीदास ने उपस्थित किया है वह अद्वितीय है । निषादराज गुह ने भरत को राम जहॉ सोये थे वह स्थल दिखाया तो उसको देखकर भरत दिग्मुढ़ हो जाते है और वहाँ पड़े हुए कुश समुहों को देखकर अपने आपको कोसने लगते हैं, कि मेरा जीवन व्यर्थ है, मैं बड़ा क्रूर हूँ, जिसके कारण सीता और श्रीराम को अनाथ की भांति ऐसी शय्या पर सोना पड़ता है। गुह के यह कहने पर कि उस रात मैंने श्रीराम के लिए विविध प्रकार के भोजन की व्यवस्था की थी, परंतु रामने क्षत्रियों को किसी से कुछ लेना नहीं चाहिए कहकर केवल पानी ही पीकर उपवास कर दिया । इस प्रकार की बात सुनकर भरत प्रेम विह्वल हो जाते हैं और कहने लगते हैं कि-

अद्य प्रभृति भूमौ शयिष्येडहं तणेषु वा ।
फल मूलाशनौ नित्यं जटायीराणि धारयन् ।।[115]

अर्थात् आज से मैं भी पृथ्वी पर अथवा तिनको पर ही सोऊँगा, फल मूलका ही भोजन करुँगा और सदा वल्कल वस्त्र तथा जटा धारण किये रहूँगा । 'मानस' में भी भरत जब राम को मनाने चित्रकूट जाते हैं तो रथ, अश्व, गज आदि सभी साधनों के होते हुए भी नंगे पाँच पैदल ही जाते हैं, और फिर भी उन्हें संतोष नहीं है । वह सोच रहे हैं कि मेरे लिए तो उचित यह है कि यदि राम उस मार्ग से पैदल गये हैं तो भरत सर के बल जाकर अपने कर्तव्य का निर्वाह करें -

गवने भरत पयादेहि पाए । कोतल संग जाहिं डोरिआए ।
कहहिं सुसेवक बारहि बारा । होइअ नाथ अस्व असवारा ।

रामु पयादेहि पायँ सिधाए । हम कहँ रथ गज बाजि बनाएँ ।

सिर भर जाऊँ उचित अस मोरा । सब ते सेवक धरमु कठोर ।।[116]

भरत के पैरों में फफोले पड़ गये हैं, यह जानकर सबको कष्ट होता है । भरत त्रिवेणी में आकर उसको नमस्कार करते हुए जन्म जन्मान्तर तक राम के चरणों में प्रेम रखने का आर्शिवाद माँगते है।[117] इसके उत्तर में त्रिवेणी से आवाज आती है कि हे तात ! भरत तुम सब प्रकार से साधु हो, श्रीरामचन्द्रजी को तुम्हारे समान कोई प्रिय नहीं है।[118] 'रामायण' में पिता की आज्ञा के पालन से राम को विरत होते हुए न देखकर भरत धरणा देने के लिए तैयार हो जाते हैं और कहने लगते हैं कि अब मैं बिना खाये पिये अपना मुँह ढँककर यहाँ लेट जाऊँगा, जब तक राम आयोध्या आने के लिए तैयार नहीं होते तब तक यहाँ पर पड़ा रहूँगा । यहाँ भरत का राम के प्रति उत्कृष्ट प्रेम का दर्शन होता है । अंत में उसी प्रेम की पराकाष्टा बिदा लेते हुए भरत का यह कहना कि चौदह वर्ष के पूर्ण होने पर नूतन वर्ष के प्रथम दिन ही मुझे आपका दर्शन नहीं मिलेगा तो मैं जलती हुई आग में प्रवेश कर जाऊँगा -

चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षडहनि रघूत्तम ।

न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।।[119]

इसप्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में कवि ने भरत का राम और सीता के प्रति अगाध-स्नेह दिखाया है । गोस्वामीजी ने भरत को दीन बनाकर यमुना नदी से भीख मँगवाना तथा त्रिवेणी का उत्तर दोनों वाल्मीकि रामायण में नहीं है । अतः 'मानस' मे भरत के प्रेम को अधिक तीव्र दिखाने हेतु गोस्वामीजी ने नई कथाओं को गढ़ा है ।

5.2.3.3 त्याग एवं कर्तव्य :

'रामायण' और रामचरित मानस' में भरत को त्यागी एवं कर्तव्य परायण के रूप में चित्रित किया है । 'रामायण' में मंत्रियों की ओर से भरत को राज्य ग्रहण कर लेने का प्रस्ताव रखा तो उनका सादर अस्वीकार करते हुए भरत खुद चौदह वर्ष तक वन में जाने के लिए तैयार हो जाता है -

रामः पूर्वो हि नो भ्राता भविष्यिति महीपतिः

अहं त्वरण्ये वत्स्यामि वर्षाणि नव पच्च च ।[120]

'रामचरित मानस' में भी इस प्रसंग को प्रकट करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि राम राजपद से वंचित हो और भरत स्वयं राजाधिराज बन बैठे, यह भरत के लिए असह्य है । वशिष्ठ के द्वारा विवश किये जाने पर भरत कहते हैं कि -

मोहि राजू हठि देइहहु जबहि । रसा रसातल जाइहि तबहिं ।
मोहि समान को पाप निवासू । जेहि लगि सीयराम बनवासू ।।[121]

'रामायण' और 'मानस' में भरत अयोध्या के शासन को राम की आज्ञा समझकर सम्भाल लेते हैं। अयोध्या के नन्दीग्राम में भरत ने राम की चरण पादुका को स्थापित करके खुद को राम का प्रतिनिधि बनाते हुए चौदह वर्षों तक अयोध्या का शासन किया । राम की ही भाँति मुनियों का वेश धारण करना कंदमूल फल का आहार करना, भ्राता राम की ही भांति जमीन पर सोना वगेरे नियमों में अपने आपको बाँधकर और अयोध्या से बाहर नन्दीग्राम में निवास करते हुए भरत में त्याग की पराकाष्टा दिखाई देती है । त्याग की ही भांति भरत के चरित्र में श्रेष्ठत्तम कर्तव्य परायणता का भी दर्शन होता है । ननिहाल से लौटे हुए भरत रामवनवास और महाराज दशरथ के निधन की खबर से अचेत हो जाते हैं । उस समय रघुकुल पर आयी विपरीत परिस्थितियों को परखकर वशिष्ठ ने भरत को समझाते हुए कहा कि अब यह शोक छोड़ो और समयोचित कर्तव्य पर ध्यान दो । महर्षि के ऐसा कहने पर भरत ने भ्राता राम के वनगमन से और पिता दशरथ के निधन से पूरे परिवार पर आये दुःख का बोज अपने सिर पर ढ़हाते हुए महाराज दशरथ अत्येष्टि संस्कार किया और तेरहवें दिन अस्थिसंचय का शेष कार्य पुरा करके भरत ने पुत्र के रूप में अपना कर्तव्य पूरा किया । 'मानस' में भी भरत की कर्तव्यपरायण्ता को दिखाते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि -

पितु हित भत कीन्हि जसि करनी । सो मुख लाख जाई नहिं बरनी ।[122]

अर्थात् पिताजी के लिए भरतजी ने जैसी करनी की वह लाखों मुखों से भी वर्णन नहीं की जा सकती । पिता दशरथ की अंत्येष्ठि क्रिया करने के पश्चात् भरत अपना अगला कर्तव्य राम को वन से लौटा लाने के लिये माताओं, गुरु मन्त्रियों आदि समेत

वन जाने के लिए तैयार होते हैं -

प्रस्थापिता मया पूर्व यात्रा च मम रोचते ।[123]

तथा

आन उपाउ मोहि नहिं सूझा । प्रातकाल चलिहऊँ प्रभु पाही ।[124]

भरत अत्यन्त हृदयस्पर्शी उदगारों की अभिव्यक्ति के साथ श्री राम से अयोध्या चलकर राज्य ग्रहण कर लेने की प्रार्थना करते हैं । वशिष्ठ भी इक्ष्वाकू की परम्परा के अनुसार ज्येष्ठ के राज्याभिषेक का ही औचित्य सिध्ध करते हैं किन्तु श्री राम पिता की आज्ञापालन को अपना कर्तव्य समझकर विरत नहीं होते और भरत को भी अपने कर्तव्य पर बने रहने के लिए अयोध्या के राज्य को सम्भालने का आदेश देते हैं । भरत श्री राम की आज्ञा से उनकी चरण पादुकाएँ लेकर बिदा होते हैं तथा नन्द्रीग्राम में श्रीराम की चरणपादुकाओं को सिंहासन पर अभिसिक्त कर राज्य का कार्य करते हैं । चौदह साल तक ''मागि मागि आपसु करत राज काज बहु भाँति'' ।[125] अर्थात् पादुका की आज्ञा माँग माँग कर राज काज करते हुए भरत ने अपनी कर्तव्यपरायणता का दर्शन करवाया है । इस प्रकार वाल्मीकि और तुलसीदास ने भरत का त्यागी एवं कर्तव्य निष्ठ सेवक के रूप में चित्रण किया है ।

5.2.3.4 धर्मात्मा के रूप में :

भरत अधिक धर्मशील है । धर्म में उनकी आस्था है । वह धर्म विरुध्ध कोई कार्य करना पसंद नहीं करते, विभिन्न देवी देवताओं की उपासना करना पसंद करते हैं साथ ही तीर्थ स्थानों में श्रध्धा व्यक्त करते हैं। ब्राह्मणों, गायो, साधु, संतो की सेवा करते हैं। भरत एक ओर राम को अपना जन जानकर उनके प्रति प्रेम तथा श्रध्धा की भावना व्यक्त करते हैं तो दूसरी ओर राम को परम ब्रह्म मानकर उनकी आराधना भी करते हैं। राम उनके सर्वस्व है, उनमें राम के प्रति दास्य भाव की भक्ति है । राम के प्रति अनुरक्ति और संसार के प्रति विरक्ति उनके चरित्र का मेरुदण्ड़ है । 'रामायण' और 'मानस' में भरत को माता कैकैयी की कूटनीति समझ में नहीं आती और माता को कटु वचन कहते हुए राज्य का अस्वीकार कर देते हैं । अयोध्या के राज्यसिंहासन, ऐश्चर्य, राजसी वैभव

आदि को ठुकराकर भरत के त्यागमय और तपोनिष्ठ जीवनको स्वीकार करने में उनकी निर्बलता या असक्षमता नहीं, प्रत्युत उनके चरित्र की पवित्रता संयम एवं धर्मनिष्ठा ही कारणभूत है। 'रामायण' के चित्रकूट में राम को लौटाने के लिए जाते हुए भरत पर निषादराज गुह संदेह करते हैं । भरत की बातों से निषादराज का संदेह दूर हो जाने पर उनकी प्रशंसा करते हुए निषादराज कहते हैं कि आप धन्य है, जो बिना प्रयत्न के हाथ में आये हुए राज्य को त्याग देना चाहते हैं । आपके समान धर्मात्मा मुझे इस भूमण्डल में कोई नहीं दिखाई देता ।[126] 'मानस' में भी तुलसीदास ने भरत को धर्मात्मा के रूप में चित्रित किया है । भरत का धर्मात्मा के रूप में चित्रण करते हुए मानसकार ने तो यहाँ तक कह दिया कि –

जौं न होत जग जनम भरत को ।
सकल धरम धूर धरनि धरत को ।[127]

यदि जगत में भरत का जन्म न होता तो पृथ्वी पर सम्पूर्ण धर्मो की धुरी को कौन धारण करता । राम भी भरत की प्रशंसा करते हुए कहते हैं कि भरत सरिखा उत्तम पुरुष ब्रह्मा की सृष्टि में नहीं हैं क्योंकि ब्रह्मा, विष्णु और महेश का पद अगर भरत को दिया जाये तो भी भरत को राज्य का मद नहीं आयेगा । इस प्रकार 'रामायण' और 'मानस' में भरत का धर्मधुरीण महात्मा के रूप में चित्रण हुआ है ।

5.2.3.5 चारित्र्य निष्ठा :

चारित्र्य निष्ठा भरत का श्रेष्ठ गुण है । राम में रही हुई उत्तम चारित्र्य निष्ठा से ही भरत का उन पर अधिक प्रेम था । महाराज दशरथ की मृत्यु के समाचार के बाद रामवनवास का समाचार पाकर भरत दुःखी हो जाते हैं और उन्हें अपने भाई के चरित्र पर शंका हो आती है - तच्छुत्वा भरतस्त्रस्तो भ्रातृश्चारित्रशङ्कया ।[128] परंतु कैकेयी के द्वारा यह पत्ता चलने पर कि मेरे कारण श्री राम को वनवास हुआ है तो उस पर वज्राधात होता है और अधिक दुःख होने से अपनी सुध बुध खो बैठते हैं । माता कैकेयी के लिए उत्तम चरित्र से गिरी हुई पापिनि (साधुचारित्र विभष्टे) का सम्बोधन करते हुए भरत चारित्र्यशीलता पर अधिक बल देते हैं । भरत के चरित्र में शील का गुण अपनी

पराकाष्ठा पर है, उनके इन्हीं गुणों के कारण सभी व्यक्ति उनके दास बन जाते हैं। भरत के इन्हीं गुणों की प्रशंसा करने के लिए 'रामचरित मानस' में खुद सरस्वति की बुद्धि भी हिचकती है-

भरत सील विनय बडाई । भायप भगति भरोस भलाई ।[129]

अपने शील के कारण ही भरत का स्वभाव संकोची है, जो किसी से कुछ कह नहीं पाते । अतएव राम उन्हें पूरी छूट देते हैं कि जो भरत कहेंगे वही मुझे स्वीकार होगा, परंतु भरत जानता है कि रघुरीति से युक्त उनका व्यवहार होगा । अपनी चारित्र्यशीलता का परिचय देते हुए भरत राम पर कोई दबाव नहीं डालते और श्री राम की चरणपादुकाओं को लेकर अयोध्या लौट आते हैं ।

इस प्रकार वाल्मीकि और तुलसीदास ने भरत का शीलवान के रूप में चित्रण किया है । 'मानस' में भरत के गुणों को लेकर जनकजी दिग्मूढ़ होकर कहते हैं कि ब्रह्माजी, गणेशजी, शेषजी, महादेवजी, सरस्वतीजी, कवि, ज्ञानि, पण्डित और बुद्धिमान सब किसी को भरतजी के चरित्र, कीर्ति, करनी, धर्म, शील गुण और निर्मल ऐश्वर्य समझने में और सुनने में सुख देनेवाले हैं। निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों में भरत का उदात्त शीलवान के रूप में चित्रण होने से वे 'रामायण' और 'मानस' की शोभा बन गये हैं ।

5.2.3.6 वीर और कुशल प्रशासक :

'रामायण' और 'मानस' में भरत वीर एवं कुशल प्रशासक के रूप में भी प्रकट होते हैं । 'रामायण' के बालकाण्ड से लेकर लंकाकाण्ड तक वाल्मीकि ने भरत की शौर्यता की अवहेलना की है, परंतु उत्तर काण्ड़ में गन्धर्व देश पर भरत के आक्रमण के प्रसंग को देकर भरत की वीरता दिखाने का कवि ने प्रयास किया है । श्री राम की आज्ञा से भरत अपने दोनों पुत्रों तक्ष और पुष्कल को साथ रखकर गन्धर्वों पर आक्रमण करते हैं और लगातार सात रात तक युद्ध चलता है । वह युद्ध इतना भयानक था कि ऐसा युद्ध देवताओं ने भी कभी देखा हो यह उन्हें याद नहीं है । ऐसे भयंकर युद्ध में भरत संवर्त नाम के शस्त्र का प्रयोग करके गन्धर्व देश पर विजय प्राप्त करते है । वहाँ सुन्दर दो नगर बसाते हुए भरत उन नगरों को अपने दोनों पुत्रों को सौंप देते हैं ।

'रामायण' में भरत की राजकाज करने की पद्धति से वह एक कुशल प्रशासक के रूप में भी प्रकट होते हैं । चित्रकुट जाने से पहले भरत अमात्यो सेनापतियों, ब्राह्मणों, क्षत्रियों, योद्धाओं आदि को जरूरी सूचना देते हैं और आवश्यक कार्यो को सोंप देते हैं जिससे राज्य पर कोई कष्ट न आये । श्रीराम की चरणपादुकाओं की नन्दिग्राम में स्थाप्ना करके महायशस्वी भरत मन्त्रियों के साथ नन्दिग्राम में रहकर राज्य का शासन करते हैं । भरत चरण पादुकाओं के सदा अधीन रहकर उन दिनों राज्य का सब कार्य मन्त्रि आदि से कराते थे ।

इस प्रकार 'रामचरित मानस' में तुलसीदास ने भी भरत का वीर और कुशल प्रशासक के रूप में चित्रण किया है । 'मानस' के लंकाकाण्ड में संजीवनी लेकर आते हुए हनुमानजी आकाश मार्ग से अयोध्यापुरी के ऊपर पहुँचे होंगे तब राक्षस जानकर भरत उन्हें बिना फल का बाण मारता है । उस समय घायल अवस्था में पृथ्वी पर पडे हुए हनुमानजी शुध्धि में आने पर भरत को संक्षेप में पूरी रामकथा कहते हैं । लक्ष्मण की मूर्छा की बात सुनकर भरत दुःखी हो जाते है और अपनी शौर्यतादिखाते हुए कहते है कि -

चढु मम सायक सैल समेता । पठवौं तोहि जहँ कृपा निकेता ।[130]

अर्थात् तूम्हें जाने में देर होंगी और सबेरा होते ही काम बिगड़ जायेगा । अतः तुम पर्वत सहित मेरे बाण पर चढ़ जाओं, मैं तूम्हें वहाँ भेज दू जहाँ कृपा के धाम श्रीराम है, कहते हुए भरत में शौर्यता का दर्शन होता है । 'रामायण' की भांति 'मानस' में भी चित्रकूट जाने से पहले भरत सोचते हैं कि अयोध्या की सारी सम्पति की रक्षा की व्यवस्था किये बिना उसे ऐसे ही छोड़कर जाना उचित नहीं है अतः भरत विश्वासपात्र सेवको को बुलाकर योग्यतानुसार काम पर नियुक्त कर देते हैं । चित्रकुट से लौटकर भरत ने नन्दिग्राम में कुटिया बनायी और वहाँ श्रीराम की चरणपादुका की स्थाप्ना करते हुए पादुका की आज्ञा लेते हुए अयोध्या के शासन को सम्भाला । भरत ने अपने मन्त्रियों और विश्वासी सेवकों को समझाकर उद्यत किया और वह सब सिखकर अपने अपने काम में लग गये । सुचारु शासन व्यवस्था के लिए भरत ने ब्राह्मणों को विनंति की, कि

आप निःसंकोच मुझे अच्छे बूरे कोई भी कार्य हो उसके लिए आज्ञा दे दीजियेगा । तत्पश्चात् भरत ने परिवार के लोगों को, नागरिकों को तथा अन्य प्रजा को बुलाकर उनका समाधान करके उनको सुखपूर्वक बसाया ।[131]

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने भरत का वीर एवं कुशल प्रशासक के रूप में चित्रण किया है । भरत की वीरता का प्रमाण 'रामायण' के उत्तरकाण्ड़ में मिलता है जब वे राम के आदेश से अपने पुत्रों को लेकर गन्धर्वो पर आक्रमण करते हैं । जबकि मानसकार ने उत्तरकाण्ड की इसी कथा को छोड़ दिया है परंतु लंकाकाण्ड में संजीवनी लेने गये हनुमान को भरत का बाण लगने के प्रसंग को देकर उनकी वीरता को प्रकट किया गया है। दोनों महाकाव्यों में रामवनवास के बाद चौदहवर्ष की अयोध्या के चित्रण की उपेक्षा की गई है, मात्र भरत के द्वारा उत्तम सेवको, मन्त्रियो द्वारा राज्य व्यवस्था की जिम्मेदारी सोंपने की कथा है । अपने विश्वासु मन्त्रियों एवं सेवकों को दिये योग्यतानुसार कार्य को देखते हुए भरत कुशल प्रशासक के रूप में उभरकर सामने आते हैं ।

5.2.3.7 पुत्र के रूप में :

भरत को अपनी माता कैकेयी के प्रति क्षोभ है क्योंकि उसके कारण की उन्हें पिता वियोग मिला और राम जैसे भाई को चौदह वर्ष के लिए वन में भटकना पड़ा । माता कैकेयी को फटकारते हुए भरत कहते है कि यदि राम तूझे माता के समान नहीं देखते होते तो तेरे जैसी पापपूर्ण विचारवाली माता का त्याग करने में मुझे तनिक भी हिचक नहीं होती । [132] 'मानस' में भी माता कैकेयी पर फटकार बरसाते हुए भरत कहते हैं कि -

जब तैं कुमति कुमत जियँठयऊ । खण्ड़ खण्ड होई हृदऊ न गयऊ ।[133]
बर मागत मन भइ नहि पीरा । गरि न जीह मुँह परेऊ न कीरा ।।

अर्थात् जब तूने हृदय में यह बुरा विचार ठाना, उसी समय तेरे हृदय के टुकडे टुकडे क्यों न हो गये ? वरदान माँगते समय तेरे मनमें कुछ भी पीड़ा नहीं हुई ? तेरी जीभ गल नहीं गयी ? तेरे मुहँ में कीड़े नहीं पड़ गये ? कहतें हुए भरत ने माता कैकेयी

के कुकर्म को फटकारा। भरत का पिता के प्रति भी विशेष स्नेह हैं । ननिहाल से लौटे तब पितृ दर्शन न होने से वे व्याकुल हो जाते हैं । कैकेयी के द्वारा जब यह पता चलता है कि पिता स्वर्ग सिधार गये तो भरत विषाद से व्याकुल हो उठते है -

ततः शोकेन संवीतः पितुर्मरण दुःखितः

विललाप महातेजा भ्रान्ताकुलित चेतनः ।[134]

अर्थात् उन महातेजस्वी राजकुमार की चेतना भ्रान्त और व्याकुल हो गयी । ये पिता की मृत्यु से दुःखी और शोक से व्याकुल चित होकर विलाप करने लगते हैं । माता से बढ़कर भरत के हृदय में विमाता कौशल्या तथा सुमित्रा के प्रति अधिकप्रेम था। क्षुभित अवस्था में भरत जब कौशल्या के पास जा रहे थे तब कौशल्या भरत की आवाज सुनकर उन्हें पहिचान गयी और उनसे मिलने चली । कौशल्या भरत को देखकर वियोगवश मूर्छित हो जाती है, आश्वस्त होने पर उन्होंने निर्दोष भरत की कड़े शब्दों में भर्त्सना की। कौशल्या की बातें सनुकर भरत उनके चरणों में गिर जाता है और बारंबार विलाप करने लगते है । सचेत होने पर भरत हाथ जोड़कर कहने लगते हैं कि में यहाँ की इन सारी घटनाओं से बिल्कुल अनजान था । मैं निरपराध हूँ । फिर भी आप मुझ दोष क्यों दे रही है ? आप जानती है कि श्रीराम मुझे प्राणप्रिय है । इसके बाद अपने को निर्दोष दिखाते हुए भरत शपथें खाता है । 'रामायण' में भरत कौशल्या मिलन के समय कौशल्या ने जिन कटु शब्दों में भरत की भर्त्सना की है उसे 'रामचरित मानस' में से तुलसीदास ने हटा कर कौशल्या के चरित्र में अधिक ऊँचाई ला दी है । 'मानस' में भरत कौशल्या के पास जाते हैं तो उन्हें देखते ही कौशल्या उठकर दौड़ती है परंतु उनको चक्कर आ जाने से वे मूर्छित हो जाती है । यह देखते ही भरत बड़े व्याकुल जो जाते हैं और शरीर की सूध भुलकर उनके चरणों में गिर पड़ते हैं -

भरतहि देखि मातु उठि धाई । मुरुछित अवनिपरी झई आई ।[135]

देखत भरतु बिकल भए भारी। परे चरन तन दसा बिसारी ।।

भरत ने कौशल्या को उठाते हुए अपनी आत्मग्लानि व्यक्त की तो वे संभलकर उठी और उन्होंने भरत को हृदय से लगाते हुए नेत्र जल से उनका अभिषेक कर दिया।

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में एक ओर भरत का कैकेयी माता के साथ निर्दयी कठोर रूप दिखाई देता है वहाँ दूसरी ओर विमाताओं के प्रति कोमल रूप का दर्शन होता है । 'रामायण' में कौशल्या भरत को देखकर उनकी भर्त्सना करती है तब खुद को निर्दोष दिखाते हुए भरत कौशल्या के सामने करीब पचास शपथें खाते हैं । जबकि 'मानस' में कौशल्या का भरत के प्रति अगाध स्नेह होने पर भी अपने आपको निर्दोष दिखाने के लिए भरत बीस बाईस शपथें खाते हैं । 'अध्यात्म रामायण' में ब्रह्महत्या तथा गुरु वशिष्ठ सपत्नीक हत्या केवल दो ही शपथ दिलायी है ।[136] निष्कर्ष में दोनों महाकवियों ने भरत का आदर्श पुत्र के रूप में चित्रण किया है ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'मानस' के अयोध्याकाण्ड़ को दो भागों में विभाजित किया जाये तो पूर्वाध राम की कथा के रूप में और उत्तरार्ध भरत की कथा के रूप में प्रकट होता है । कथावस्तु में थोड़ा बहुत परिवर्तन करते हुए महर्षिवाल्मीकि और तुलसीदास ने अपने युगानुरुप भरत के चरित्र को चित्रित करने का प्रयत्न किया है । 'रामायण' में भरत के चरित्र का महत्व इस कारण ही है कि कैकेयी द्वारा उनके पक्ष में राज्यप्राप्ति के अनन्तर भी उन्होंने अपनी निस्पृहता एवं सहज भ्रातृस्नेह के कारण स्वीकार नहीं किया । 'मानस' में भरत का चरित्र इसी केन्द्रबिन्दु से आलोकित होता ओर विस्तार पाता है । उनमें क्षत्रियोचित्.शौर्य विक्रम तथा नृप गरिमा का अभाव नहीं है, किन्तु उनमें व्रतपालन की गरिमा के समक्ष यह पक्ष गौण पड़ गया है । राम के प्रति भरत की श्रद्धा एवं प्रीति भरत के चरित्र की कुंजी है, जो कैकेयी को उनसे अपशब्द कहलाती है तथा चर्तुदर्श वर्ष तक व्रत बद्ध होकर उन्हें सन्यासी का जीवन बिताने के लिए प्रेरित करती है । 'मानस' में तुलसीदास ने भरत का राम के प्रति अनन्य अनुराग को केन्द्र में रखकर सर्वत्र भरत की निस्पृह त्याग इत्यादि का उल्लेख किया है । विभिन्न पात्रों के मुख से भरत का स्तवन कराते समय उनके इन गुणों को अधिकाधिक आलोकित किया गया है । संक्षेप में वाल्मीकि और तुलसीदास का भरत परम्परित साधु, निस्पृह, भ्रातृनिष्ठ सत्यशील, पराक्रमी, सदाप्रसन्न चित् और निर्मल बुद्धि हैं, जो भ्रातृत्व की बेजोड़ मिसाल है ।

5.2.4 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के दशरथ :

वाल्मीकि ने दशरथ को दूरदर्शी, तेजस्वी, बलवान दिव्यगुण सम्पन्न, सयंमी, सत्यप्रतिज्ञ कहा है । तुलसीदास ने भी दशरथ को धर्म धुरंधर, गुणनिधि, ज्ञानी कहकर वाल्मीकि के ही मत की पुष्ठि की है । दशरथ वृद्धावस्था में उत्पन्न शिशुओं के प्रति मोह मुग्ध हैं किन्तु पत्नीप्रेम तथा पुत्र प्रेम की अतिशयता के कारण वे स्वयं अपने लिए विपत्ति का अर्जन करते हैं । अपनी कामसक्ति, दुर्बल संकल्प शक्ति मोह तथा राग द्वेष जन्य दुर्बलताओं के कारण दशरथ के आदर्श चरित्र की छबि में घुँधलापन दिखाई देता है । एक किंकर्तव्य-विमूढ़ता की स्थिति उनके चरित्र को अनेक असंगतियों एवं अन्तर्विरोधो से युक्त करती है निष्कर्ष में महर्षि वाल्मीकि एवं तुलसीदास ने महाराज दशरथ को दिग्विजय सम्राट, दृढप्रतिज्ञ, धर्मात्मा तथा सत्यवादी के रूप में चित्रित किया है, इनके इन्हीं चारित्रिक गुणों के जरिए अब हम महाराज दशरथ के चरित्र का मूल्यांकन करने का सादर प्रयास करेंगे ।

5.2.4.1. दिग्विजय सम्राट :

महर्षि वाल्मीकि ने 'रामायण' में अयोध्या और महाराज दशरथ के गुणों का वर्णन करते हुए लिखा है कि अयोध्या नगरी भगवान मनु की बसाई हुई बारह योजन (करीब 150 कि.मी.) लम्बी तथा तीन योजन (करीब 37 कि.मी.) चौड़ी थी । यह कलाधरों और वीरों से भरी हुई थी । अयोध्या में कामी, कृपण, निर्दय, अनपढ़ तथा नास्तिक आदमी देखने को भी नहीं मिलते थे । महर्षि कल्प तथा ऋषियों से अयोध्यापुरी सुशोभित थी । ऐसी अयोध्या नगरी की रक्षा राजा दशरथ करते थे यथा दशरथ उनके राजा थे । राजा दशरथ ने आठ मंत्री रखे थे, वशिष्ठ तथा वामदेव राज पुरोहित थे । मंत्री विनयी सुजल कार्य कुशल, जितेन्द्रिय, पराक्रमी आदि गुणों से युक्त थे ।[137] दशरथ अयोध्या का उसी प्रकार पालन करते थे जैसे इन्द्र अमरावतीपुरी का पालन करते हैं । दशरथ के शासन काल में निवास करनेवाले सभी मनुष्य प्रसन्न, धर्मात्मा, बहुश्रुत, निलोर्भ, सत्यवादी तथा अपने अपने धन से संतुष्ट रहनेवाले थे । वाल्मीकि ने अयोध्या नगरी और उनकी प्रजा का बालकाण्ड के पाँचवे, छठ्ठे और सातवें सर्ग मे विस्तार में वर्णन करते हुए अयोध्या

की सुख संपत्ति तथा उच्चगुणी मनुष्यों एवं मंत्रियों की चर्चा की है । राजा दशरथ अपने शासन काल में सभी वर्णो के लोगों को समस्त सम्मान देते थे । अश्वमेघ यज्ञ में पृथ्वी पर के सभी धार्मिक राजा, ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र को यज्ञ में आने के लिए निमंत्रित किया था ।[138] दशरथने राजा होने पर भी स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार अपने पास नहीं रखा था, राम के राज्यभिषेक की बात वे ब्राह्मण, सेनापति नगर और जनपद के प्रधान-प्रधान व्यक्तियों के सामने रखते हैं । इस प्रकार अनेक सहस्त्र (साठ हजार) वर्षो की आयु प्राप्त करते हुए महाराज दशरथ ने हजारों वर्ष तक अयोध्या नगरी पर शासन किया ।

'रामचरित मानस' में तुलसीदास ने अयोध्या और अयोध्यावासियों का लम्बा-चौड़ा वर्णन न करते हुए दशरथ राजा का परिचय दिया है -

अवध पुरी रघुकुल मनि राऊ । बेद बिदित ते हि दसरथ नाऊँ
धर्म घुरंधर गुन निधि ग्यानी । हृदय भगति मति सारंग पानी ।[139]

अर्थात् अयोध्या में रघुकुल शिरोमणि दशरथ नामके राजा हुए, जिनका नाम वेदों में विख्यात है । वे धर्मधुरन्धर, गुणों के भण्ड़ार और ज्ञानी थे । उनके हृदय में शांगधनुष धारण करनेवाले भगवान की भक्ति थी और उनकी बुद्धि भी उन्हीं में लगी रहती थी। कहते हुए तुलसीदास ने दशरथ को राजर्षि के रूप में प्रकट किया है । 'मानस' में अपने मन में रही हुई राम राज्याभिषेक की बात दशरथ पहले गुरु विशिष्ठ के सामने रखते है, उनकी ओर से स्वीकार होने पर वे अपने मंत्री आदि को कहते है कि -

जो पाँचहि मत लागै नीका । करहु हरषि हिर्यं रामहि टीका ।[140]

यदि पंचों को (आप सब को) यह मत अच्छा लगे, तो हृदय में हर्षित होकर आप लोग श्रीरामचन्द्रजी का राज तिलक कीजिए । इस प्रकार मानसकार ने भी वाल्मीकि की ही भांति देश और प्रजा के हित की बात को ध्यान में रखते हुए गुरुजनों, मंत्रियों आदि से विचार विर्मश करते हुए दिखलाकर, आदर्श राजा के रूप में उनका चित्रण किया है।

इस प्रकार राजा के रूप में चित्रण करते हुए वाल्मीकि ने अयोध्यानगरी, प्रजाजन,

मंत्रीमण आदि के साथ अयोध्या के सुख समृद्धि, ऐश्वर्य आदि का विस्तार से वर्णन किया है । जबकि मानसकार ने इनको संक्षेप में कहते हुए कथा प्रवाह को आगे बढ़ा दिया है। अश्वमेघ यज्ञ में महाराज दशरथ राजाओं को आमंत्रण देने के लिए दूतों को भेजते है और प्रमुख राजाओं को आमंत्रण देने खुद जाते हैं । इस प्रकार पृथ्वी पर के सभी राजाओं और वर्णो को अश्वमेध यज्ञ में आमंत्रण देते हुए महाराज दशरथ का एक विशाल हृदयी राजा के रूप में महर्षि वाल्मीकि ने चित्रण किया है । जबकि 'मानस' में ''सृंगी रिषहि वशिष्ठ बोलावा । पुत्रकाम सुभ जग्य करावा'' । कहकर यज्ञ के प्रसंग को समाप्त कर दिया है । 'मानस' में राम के राज्याभिषेक की अपनी मन की बात दशरथ गुरु वशिष्ठ के पास रखते हैं, तत्पश्चात् अपने मंत्रियों को कहते हैं । जबकि 'रामायण' में राम राज्याभिषेक के प्रस्ताव को पारीत करने के लिए दशरथ मंत्रियों, गुरु, सलाहकार एवं जनपद तथा नगर के प्रमुख व्यक्तियों बुलाते हैं । इस प्रकार दोनों महाकाव्यों में महाराज दशरथ श्रेष्ठ शासक के रूप में अपना परिचय देते हैं ।

5.2.4.2 गुरुभक्त :

'रामायण' और 'मानस' में दशरथ की अपने गुरु के प्रति असीम श्रद्धा दिखाई देती है । अपनी जिज्ञासाओं को तृप्त करने से पहले वह गुरुजनों की राय अवश्य लेते थे । पुत्रप्राप्ति के लिए अश्वमेध यज्ञ का अनुष्ठान करने की इच्छा होने पर दशरथ तुरंत अपने गुरुजनों के सामने उसी प्रस्ताव को रखते हैं । गुरुजनों के साथ इसी विषय सम्बन्धित वार्तालाप के पश्चात् ही अश्वमेघ यज्ञ की तैयारी प्रारंभ होती है । अश्वमेध यज्ञ का पूर्णतः कार्यभार गुरु वशिष्ठ को सोंपते हुए दशरथ कहते हैं कि –

भावान स्निग्धः सुहृन्महयं गुरुश्च परमोमहान्
वोढव्यो भवता चैव भारो यज्ञस्य चोद्यतः ।[141]

अर्थात् आपका मुझ पर विशेष स्नेह है, आप मेरे सहृदय, अकारण हितैषी, गुरु और परम महान् हैं । यह जो यज्ञ का भार उपस्थित हुआ है, इसको आप ही वहन कर सकते हैं । 'रामचरित मानस' में भी दशरथ की गुरु भवित को दिखाते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि महाराज दशरथ अपने पुत्र राम का राज्याभिषेक करने की इच्छा को

लेकर गुरु वशिष्ठ के पास गये और राज्याभिषेक की आज्ञा माँगते हुए कहा कि -

नाथ रामु करिअहि जुबराजू । कहिअ कृपा करि करिअ समाजू ।[142]

हे नाथ ! श्री रामचन्द्रजी को युवराज कीजिए ! कृपा करके आज्ञा दीजिए तो तेयारी की जाय । राम के राज्याभिषेक की तैयारी करते हुए सभी मंत्रियों को भी महाराज दशरथ कहते हैं कि राज्याभिषेक के लिए मुनिराज वशिष्ठजी की जो भी आज्ञा हो आप लोग वहीं सब तुरंत करे । इस प्रकार 'रामायण' ओर 'रामचरित मानस' में गुरु के प्रति महाराज दशरथ की अतूट श्रद्धा को दिखाते हुए एक गुरुभक्त के रूप में दशरथ का चित्रण हुआ है ।

5.2.4.3 सत्यवादी धर्मात्मा के रूप में :

महर्षि वाल्मीकि और गोस्वामी तुलसीदास ने राजा दशरथ का सत्यवादी धर्मात्मा के रूप में चित्रण किया है । 'रामायण' में दशरथ के उक्त गुणों का वर्णन करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है कि दशरथ वेदों के विद्वान एवं यज्ञ करनेवाले धर्मपरायण एवं जितेन्द्रिय थे । महर्षियों के समान दिव्य गुण सम्पन राजर्षि थे । धर्म, अर्थ और काम का सम्पादन करने वाले, कर्मो का अनुष्ठान करनेवाले सत्यप्रतिज्ञ राजा थे ।[143] धर्मपूर्वक प्रजा का पालन करनेवाले राजा दशरथ अधर्म से दूर रहते थे, सभी सामन्त उनके चरणों में मस्तक झुकाते थे । सत्यवादी दशरथ ने अपनी पत्नी कैकेयी को दिये दो वरों की पूर्ति राम को वनवास और भरत को अयोध्या का राज्य देकर करते हैं । सत्यवादिता की रक्षा के लिए महाराज दशरथ को अपने प्राणों का भी बलिदान देना पड़ता है । इस प्रकार महाराज दशरथ का परिचय देते हुए तुलसीदास ने भी लिखा है कि -

धर्म धुरंधर ग्यानी । हृदयं भगति मति सारँगपानी ।[144]

वे धर्म धुरन्धर गुणों के भण्ड़ार और ज्ञानी थे। उनके हृदय में शाङधनुष धारण करनेवाले भगवान की भक्ति थी कहते हुए तुलसीदास ने गुणों के भण्ड़ार, धर्मधुरन्धर राजर्षि के रूप में महाराज दशरथ का चित्रण किया है। अपने सत्य वचन के लिए महाराज दशरथ अपने प्राणप्रिय पुत्र राम को वनवास दे दते हैं। अपने सहस्त्रों वर्षो के जीवन में धर्मपालन करने वाले दशरथ दारुण मानसिक यंत्रणा के बीच प्राण त्याग देते

हैं ।

इस प्रकार ‘रामायण’ और ‘मानस’ में दशरथ का एक सत्यवादी एवं धर्मात्मा के रूप में चित्रण हुआ है । ‘रामायण’ में दशरथ मृत्यु के समय जीवन की एक कलंकीत घटना श्रवण कुमार की कथा को याद करते हुए दिखाई देते हैं, जैसे मृगया करने निकले महाराज भांति से निरपराध श्रवण कुमार पर बाण छोड़कर उनको मृत्यु की शय्या पर सुला देते हैं । परिणामतः श्रवण कुमार के माता पिता ने दशरथ को शाप दिया था। कि तू भी हमारी भांति पुत्र शोक में प्राण छोड़ेगा । ‘रामायण’ में मुनिपुत्र का नाम नहीं है। ‘आनन्द रामायण’ में उसका नाम श्रवण [145] तथा ब्रह्मपुराण में उसका नाम श्रवण कुमार[146] बताया गया है । तुलसीदास ने ‘मानस’ में अंधे तपस्वी के शाप की याद आयी कहकर प्रसंग को छोड दिया है । अतः तात्पर्य यह है कि अपने लम्बे जीवन काल में धर्म का आचरण करनेवाले दशरथ भांति से छोड़े गये बाण से निरपराध श्रवण वध के अधर्म युक्त प्रसंग को भूल नहीं सके । संक्षेप में दोनों महाकाव्यों में दशरथ सत्य और धर्म की खातिर अपने प्राणों को न्यौछावर कर देने वाले सत्यवादी धर्मात्मा के रूप में प्रकट होते हैं ।

5.2.4.4. पति के रूप में :

’रामायण’ में महाराज दशरथ का एकाधिक पत्नियो के पति के रूप में चित्रण हुआ है । ’रामायण’ के अयोध्याकाण्ड़ के उनचालीसवे सर्ग में राम की साढ़े तीन सौ माताओं का उल्लेख है । अतः दशरथ की तीन प्रधान पत्नियों को छोड़कर ओर भी कई रानियाँ थी । जिसमें प्रमुखतः कौशल्या, सुमित्रा तथा कैकेयी तीन रानियाँ थी। वाल्मीकि ने कौशल्या की तुलना अदिति से की है । वह महाराज दशरथ की पटरानी है । कैंकेयी सभी रानियों से सुन्दर है । सुमित्रा न तो कौशल्या की तरह पटरानी है और नहीं कैंकेयी की भांति दशरथ की प्रिया । अपनी तीनों रानियों के प्रति दशरथ का प्रेम भेदभाव से भरा हुआ रहा है । कौशल्या को दशरथ की ओर से कभी प्रेम प्राप्त नहीं हुआ । जब कि कैंकेयी दशरथ का प्रिय पात्र बनी रही । सुमित्रा को न प्यार से देखा गया और न उपेक्षा से । ‘रामायण’ के अयोकाण्ड़ में अपने पुत्र राम के साथ संवाद में

दशरथ और कौशल्या के दाम्पत्य जीवन का अदाजा लगाया जा सकता है । दशरथ के प्रभुत्व काल में कौशल्या ज्येष्ठ पत्नी होने पर भी उनको कभी सुख प्राप्त नहीं हुआ था। सौतों से हृदय को बिंध दे ऐसी बातें सुननी पड़ती थी । महाराज दशरथ को लेकर वह कहती है कि -

अत्यन्त निगृहीतास्मि भर्तुर्नित्यमसम्मता ।
परिवारेण कैंकेय्या : समा वाय्यथवावरा ।।[147]

अर्थात् पति की ओर से मुझे सदा अत्यन्त तिरस्कार अथवा कड़ी फटकार ही मिली है, कभी प्यार और सम्मान नहीं प्राप्त हुआ हैं, मैं कैंकेयी की दासियों के बराबर अथवा उनसे भी गयी बीती समझी जाती हूँ। इस प्रकार 'रामायण' में कौशल्या से दशरथ का प्रेम के साथ-साथ तिरस्कार भरा व्यवहार भी रहा है । सुमित्रा के प्रति दशरथ का सामान्य स्नेह भाव है । वह न तो कौशल्या की तरह उपेक्षित है और नहीं कैंकेयी की तरह दशरथ उनसे विशष प्रेम ही करते हैं । कैकेयी को दशरथ की ओर से सभी रानियों से अधिक प्रेम प्राप्त हुआ है । दशरथ कैकेयी को अपने प्राणों से भी बढकर मानते हैं -

सवृद्धस्तरुणी भार्या प्राणेभ्योडपि गरीयसीम् ।[148]

अर्थात् राजा बूढ़े थे और उनकी वह पत्नी तरुण थी, अतः वे उसे अपने प्राणों से भी बढ़कर मानते थे । राजा प्रतिदिन निश्चित समय में उसके भाव में जाते थे। महाराज दशरथ उनको अत्यधिक चाहते थे, इसी कारण हर स्थान पर वह उनके साथ रहती थी, यहाँ तक कि युद्ध क्षेत्र में भी दशरथ कैकेयी को अपने साथ रखते थे । 'रामायण' की भाँति 'रामचरित मानस' में दशरथ कौशल्या के शील एवं चरित्र की प्रशंसा करते हैं । 'मानस' में कौशल्या पूर्वजन्म से ही अपने पति की अनुगामीनी रही है । कौशल्या को अपने पति दशरथ की ओर से पूर्ण संतोष है । रामवनगमन के समाचार से उसे दशरथ की चिन्ता होती है । अतः 'मानस' में कौशल्या और दशरथ का दाम्पत्य जीवन सुखी और समृद्ध दिखाया गया है । 'मानस' में भी कैकेयी के उपर महाराज दशरथ का विशेश प्रेम रहा है । राम राज्याभिषेक का समाचार अन्य रानियों को सुनाने से पहले

महाराज दशरथ सीधे कैकेयी भवन में जाकर कैकेयी को सुनाते हैं। 'मानस' में सुमित्रा के उपर दशरथ का विशेष स्नेह नहीं दिखाई देता। सुमित्रा को हविष्यान्न का चतुर्थांश प्राप्त होता है जो दशरथ के हाथों नहीं परंतु कौशल्या और कैकेयी के हाथों से मिलता है।

इस प्रकार 'रामायण' में दशरथ का कौशल्या के प्रति उपेक्षा पूर्ण व्यवहार रहा है, जिसको कौशल्या अपने पुत्र राम के साथ के संवाद में प्रकट करती है । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने दशरथ और कौशल्या का पूर्वजन्म से सम्बन्ध दिखालाया है । उनको दशरथ के प्रति कोई असंतोष नहीं दिखाई देता । कैकेयी के प्रति महाराज दशरथ का 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में पूरा प्रेम रहा है । दशरथ उनकी प्रत्येक बातों का स्वीकार करते हुए दिखाई देते हैं । कैकेयी की आशा को पूरी करने के लिए अयोध्या काण्ड़ में दशरथ राम की सौगन्ध भी खाते हैं । वृद्ध राजा के हृदय में तरुण पत्नी के प्रति आसक्ति का होना स्वाभाविक है, परंतु वह इतनी बढ़ गयी कि महाराज को अपने प्राणों से भी प्यारे राम को वन देना पड़ा और अपने प्राण गँवाने पड़े। मझली रानी के रूप में रही हुई सुमित्रा का न तो 'रामायण' में और न 'मानस' में महाराज का प्रेम प्राप्त रहा है या तिरस्कार। दोनों महाकाव्यों में सुमित्रा को आदर्श सपत्नी के रूप में चित्रित किया गया है । इस प्रकार 'रामायण' में दशरथ का आदर्श पति के रूप में कम और कामुक पति के रूप में अधिक चित्रण हुआ है । जबकि 'मानस' में महाराज के चरित्र को आदर्श पति के रूप में अधिकतः उभारा गया है।

5.2.4.5 पिता के रूप में :

'वाल्मीकि रामायण' के बालकाण्ड़ में दशरथ पुत्र के लिए चिन्तित दिखाई देते हैं। पुत्र प्राप्ति के लिए वह अश्वमेघ यज्ञ करने का विचार करते हैं । अश्वमेघ यज्ञ के पश्चात् दिग्विजयी धर्मपालन सम्राट राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न जैसे वीर पुत्रों के पिता बने । दशरथ वृद्धावस्था में उत्पन्न शिशुओं के प्रति मोह मुग्ध है । किन्तु पुत्र प्रेम की अतिशयता के कारण वे स्वयं अपने लिए विपत्ति खड़ी कर देते हैं । 'रामायण' में अपने सभी पुत्रों के प्रति दशरथ का अगाध प्रेम है –

सर्व एव तु तस्येष्टाश्चत्वार पुरुषर्षम :।

स्वशरीराद विनिर्वृत्ताश्चत्वारः इव बाहवः। ।[149]

अर्थात् अपने शरीर से प्रकट हुई चारों भुजाओं के समान वे सब चारों ही पुरुषमणि पुत्र महाराज को बहुत ही प्रिय थे । परंतु इन सभी पुत्रों में राम पर विशेष स्नेह है ।[150] अयोध्याकाण्ड़ में कैकेयी के सामने राम की शपथ खाते हुए दशरथ कहते हैं कि जिन्हें दो घड़ी भी न देखने पर निश्चय ही मैं जीवित नहीं रह सकता कहते हुए राम के प्रति अपने प्रगाढ़ प्रेम को प्रकट करते हैं । इस प्रकार 'रामायण' में अपने सभी पुत्रों के प्रति प्रेम रखने वाले दशरथ के चरित्र का दूसरा हिस्सा पुत्रों के प्रति संकुचित मनोवृतियों को भी दिखाता है । राम के सामने राज्याभिषेक की बात रख्ते हुए दशरथ कहते है कि भरत आचार व्यवहार में स्थित है, बड़े भाई का अनुसरण करनेवाला धर्मात्मा, दयालु और जितेन्द्रिय हैं तथापि जबतक भरत इस नगर से बाहर अपने मामा के यहॉ निवास करते हैं तबतक ही तुम्हारा अभिषेक हो जाना मुझे उचित प्रतीत होता है। दशरथजी ने नृपनीति के सहारे भरत के मामा, नाना तथा जनकजी को रामराज्याभिषेक का पत्ता नहीं होने दिया । दशरथ ने यही चाहा था कि भरत के बाहर रहते राज्याभिषेक का कार्य सम्पन्न हो जाये । यहाँ महाराज दशरथ के मन मे भरत के प्रति की संकुचितता दिखाई देती हैं । दशरथ की राम के प्रत्ये की मोह की पराकाष्ठा तब दिखाई देती है जब वनगमन की आज्ञा लेने के लिए राम पिता दशरथ के पास आते हैं । उस समय दशरथ अपनी सत्यवादिता, वचनपालन आदि सभी आदर्शो को खोकर यह कहते हैं कि रघुनन्दन ! मैं कैकेयी को दिये हुए वर के कारण मोह में पड़ गया हूँ। तुम मुझे कैद करके स्वयं ही अब अयोध्या के राजा बन जाओ ।[151] इस प्रकार यहाँ अपनी यशस्वी गाथा को भूलकर महाराज दशरथ पुत्र मोह में फँसे हुए दिखाई देते है और उसी मोहासिक्त से अपने प्राणों को त्याग देते हैं । 'रामचरित मानस' में भी तुलसीदास ने दशरथ को पुत्र के लिए ग्लानी करते हुए चित्रित किया है । अश्वमेघ यज्ञ के फल स्वरूप दशरथ पुत्र जन्म का समाचार सुनते हुए हर्षित हो जाते है-

दसरथ पुत्र जन्म सुनि काना । मानहुँ ब्रह्मानंद समाना ।[152]

मानसकार ने दशरथ का राम के प्रति विशेष मोह दिखाया है, परंतु दशरथ ने भरत को भी चाहा है। कैकेयी ने यह कहा कि जैसे राम आपका पुत्र है, तो भरत आपका पुत्र नहीं है ? तब दशरथ राम की ही भांति भरत का मूल्य करते हुए कहते हैं कि -

मोरे भरतु रामु दुई आँखी । सत्य कहऊँ करि सकंरु साखी ।[153]

मेरे तो भरत और रामचन्द्र दो आँखे है, यह मैं शंकरजी की साक्षी देकर सत्य कहता हूँ । यदि कैकेयी राज का वनवास वापिस ले ले तो महाराज दशरथ भरत का राज्याभिषेक करने के लिए तैयार हो जाते हैं । भरत को लेकर महाराज दशरथ को पूरा विश्वास है कि वह कभी भी श्रीराम के होते हुए राज्य नहीं संभालेगा।

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में दशरथ का स्नेहाधीन पिता के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' में पुत्र प्राप्ति के लिए अश्वमेघ यज्ञ का विस्तार से वर्णन किया गया है, जब कि 'मानस' में तुलसीदास ने इस प्रसंग को संक्षेप में कहकर कथा के व्याप को विस्तार से बचाया है । 'रामायण' में भरत के चरित्र पर दशरथ को संदेह है परंतु 'मानस' में दशरथ कहते हैं कि राम और भरत मेरी दो आँखे है, अतः भरत के चरित्र पर दशरथ को पूरा विश्वास है । इसी बात की पुष्टि कैकेयी के साथ संवाद करते हुए दशरथ के कथन से होती है कि भरत को अगर अयोध्या का राज्य भी दिया जाये तो स्वीकारेगा नहीं ।

इस प्रकार 'रामायण' और रामचरित मानस' में दशरथ का सत्यव्रती, दयालु, कृतज्ञ, प्रतिज्ञा पालक आदि गुणों से युक्त चित्रण हुआ है । जिन्होंने सत्य और प्रेम के विरोध में दोनों की एक साथ रक्षा की । वे राम को वनवास देने में सत्य की रक्षा और प्रतिज्ञा का पालन ह्रदय पर पत्थर रखकर उमडते हुए स्नेह और वात्सल्य भाव को दबाकर करते हुए पाये जाते हैं । सत्य की रक्षा उन्होंने प्रिय पुत्र को वनवास देकर और स्नेह की रक्षा प्राण देकर की । यही उनके चरित्र की विशेषता है और यही उनके जीवन का महत्व है ।[154]

5.2.5 ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ के हनुमान :-

सुमेरु पवर्त के राजा केसरी की पत्नी अंजना के गर्भ से वायुदेव ने हनुमान नाम के पुत्र को जन्म दिया । ‘रामायण’ तथा ‘रामचरित मानस’ में उनका शरीर पर्वताकार और सूर्यतुल्य दीप्तिमान है । हनुमानजी की कर्तव्य परायणता, सेवाभावना, स्वामिभक्ति बुद्धि चातुर्य आदि अद्वितीय हैं। ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ में हनुमान को अतुलित बलशाली, ज्ञानी, चतुर, राम के सेवक तथा दूत के रूप में चित्रित किया गया है । सुन्दरकाण्ड में हनुमान जी की कर्तव्य निष्ठा तथा गौरव गाथा का जो चित्रांकन हुआ है, वह वाल्मीकि एवं तुलसीदास की अप्रतिम कला एवं कवित्वशक्ति की पराकाष्ठा का निदर्शन है ।

5.2.5.1 ज्ञानगुण सागर :-

‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ में हनुमान जी का ज्ञानी और गुणों के भण्ड़ार के रूप में चित्रण हुआ है । ‘रामायण’ में इसी ओर संकेत करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है कि कपिश्रेष्ठ हनुमान जी व्याकरण का अध्ययन करने के लिए सूर्य की ओर मुख रखकर महान ग्रन्थ धारण करके उनके आगे आगे उदयाचल से अस्ताचल चले जाते थे। इन्हों ने सूत्र, वृत्ति, वार्तिक, महाभाष्य और संग्रह इन सबका अध्ययन किया है। अन्यायन्य ज्ञान तथा छन्दशास्त्र के अध्ययन में भी इनकी समानता करनेवाला दूसरा कोई नहीं है ।[155] किष्किन्धाकाण्ड में भिक्षु बनकर राम-लक्ष्मण के भेद जानने के लिए आये हुए हनुमान जी के ज्ञान से राम भी प्रभावित हो जाते हैं और कहते हैं कि -

नूनं व्याकरणं कृत्स्त्रमनेन बहुधा श्रुतम ।
बहु व्याहरतानेन न किंचिदप शब्दितम् ।।[156]

अर्थात् निश्चय ही इन्होंने समूचे व्याकरण का कई बार स्वाध्याय किया है । क्योंकि बहुत सी बातें बोले जाने पर भी इनके मुँह से कोई अशुद्धि नहीं निकली । सीता

अन्वेषण के लिए समुद्र मार्ग से लंका जाते हुए हनुमान जी मैनाक पर्वत की विश्राम की विनंति का न तो स्वीकार और न अस्वीकार करते हैं । वे कहते हैं कि जब तक राम कार्य सम्पन्न न हो जाय तब तक मैं विश्राम नहीं कर सकता ऐसा कहते हुए हनुमान जी अपनी तीक्ष्ण बुद्धि का परिचय देते हैं । लंका में सीता शोध के लिए गये हनुमान लंका के महत्त्व के स्थलों को जला देते हैं, जिससे युद्ध के लिए कठिनता न हो । इसी प्रकार लंका से लौटने पर हनुमान श्री राम आदि के सामने लंका के दुर्ग, फाटक, सेना विभाग और संक्रम आदि का वर्णन करते हैं, तब उनकी सूक्ष्म बुद्धि प्रतिभा का परिचय होता है।

'मानसकार' ने भी हनुमानका ज्ञान गुण सागर के रूप में चित्रण किया है । सुन्दरकाण्ड के प्रारंभ में ही तुलसीदास ने हनुमान के लिए ''ज्ञानिनामग्रगण्यम'' तथा ''सकल गुण निधानं'' अर्थात् ज्ञानियों में अग्रण्य तथा सम्पूर्ण गुणों के निधान कहा है। रामकार्य करने के लिए जाते हुए हनुमान जी की बलबुद्धि को जानने के लिए देवताओं ने सुरसा नामक सूर्यों की माता को भेजा । सुरसा हनुमान जी को खाने के लिए अपने मुख को फैलाती हुई सो योजन का मुख खोलती है, परंतु हनुमान जी इससे दुगुने हो जाते हैं। अंत में सुरसा के मुख में प्रवेश करने के प्रश्न को मिटाते हुए हनुमानजी सूक्ष्म रूप लेकर मुख में प्रवेश कर बाहर निकल आते है। उस समय हनुमान जी की बुद्धि प्रतिभा से प्रभावित सुरसा कहने लगती है कि मुझे देवताओं ने तुम्हारे बल-बुद्धि का भेद जानने के लिए भेजा था। क्योंकि –

मो हि सुरन्ह जेहि लागी पठावा। बुध्धिबल मरमु तौरे मै पावा।[157]

अतः तुम अवश्य श्रीरामचन्द्र के सब कार्य कर पाओगे । क्योंकि-

राम काजु सबु करिहहु तुम बल बुद्धि निधान ।[158]

अर्थात् तुम बल बुद्धि के भण्ड़ार हो । रामसंदेश लेकर गये हुए हनुमान जी भुख लगने पर माता सीताजी से आज्ञा माँगते हैं, उसी क्षण ही सीताजी उनकी बुद्धि प्रतिभा से प्रभावित हो जाती हैं ''देखि बुद्धि बल निपुन कपि'' हनुमान जी को बुद्धि बल में

निपुण देखकर फल खाने की आज्ञा देती है ।

इस प्रकार 'रामायण ' और 'रामचरित मानस' में हनुमान जी को बुद्धिचातुर्य में प्रवीण दिखलाया है। 'मानस' के किष्किन्धा काण्ड में जब हनुमान जी राम को उनका परिचय पूछते हैं तब राम ही उत्तर देते हैं, किन्तु 'वाल्मीकि रामायण' में हनुमान जी से लक्ष्मण बात करते हैं । इसी प्रसंग में 'रामायण' में हनुमान जी भिक्षुरूप धरकर आते हैं, जबकि 'मानस' में विप्ररूप धरकर राम के पास जाते हैं । निष्कर्षतः 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में हनुमान जी को श्रेष्ठ ज्ञानी के रूप में चित्रित किया गया है ।

5.2.5.2 चातुर्य :-

दोनों महाकाव्यों में हनुमान जी के चरित्र में चातुर्य दिखाई देता है । 'रामायण' और 'मानस' के किष्किन्धा काण्ड में हनुमान जी बड़े चातुर्य से राम और लक्ष्मण का भेद प्राप्त कर लेते हैं । इतना हीं नहीं, राम और सुग्रीव दोनों को अग्निसाक्षी में प्रतिज्ञाबद्ध करवा के दोनों की मित्रता को दृढ़ कर देते हैं । इस प्रकार सुन्दरकाण्ड में सुरसा और मैनाक के सामने बड़ी चतुराई से मध्यस्थ मार्ग निकालते हुए राम कार्य के लिए आगे निकल जाते हैं । 'मानस' में राम भक्त विभिषण से परिचय प्राप्त करना तथा उनके द्वारा सीता का पता मिलने के प्रसंग में भी हनुमान जी के चातुर्य को दिखालाया गया है। लंका में उनकी पूँछ को जलाने के समय बन्धित अवस्था में वे बड़ी चतुरता से विशाल स्वरूप को सूक्ष्म कर मुक्त हो जाते हैं और जलती हुई पूँछ से अनेक राक्षसों का वध कर देते हैं । तत्पश्चात् रावण के गुप्त शस्त्र भण्ड़ार, दुर्ग आदि प्रमुख-प्रमुख स्थलों को जलाकर लंकाविजय की अपनी कामना का प्रारंभ बड़ी चतुराई से कर देते हैं । इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में हनुमान जी के चरित्र को चातुर्य से भरकर चित्रित किया गया है ।

5.2.5.3 अतुलित बलधामा :-

महर्षि वाल्मीकि एवं तुलसीदास ने हनुमान जी को अतुलित बलशाली के रूप में

चित्रित किया है । 'रामायण' में शैशवास्था में हनुमान जी सूर्य, राहु और ऐरावत पर आक्रमण करते हुए अपने अपूर्व बल का परिचय दे देते हैं । विभिन्न देवताओं के द्वारा दिये गये वरों से हनुमान जी अधिक बलशाली तो हो ही गये, साथ ही सब प्रकार के ब्रह्मदण्ड़ों से अवध्य हो गये । हनुमान जी का पराक्रम सुन्दरकाण्ड और युद्धकाण्ड में दिखाई देता है । सीतान्वेषण के लिए दक्षिण दिशा की ओर अतुल वेग से गमन करते हुए हनुमान जी के अद्वितीय पराक्रम का चित्रण वाल्मीकि ने अत्यंत कवित्वपूर्ण शैली में किया है । समुद्र लांधने के लिए जब वे कूदे तब उनके वेग से आकृष्ट हो पर्वत पर उगे हुए वृक्ष उखड़ गये और अपनी सारी डालियों को समेटकर साथ ही उड़ चले । वे समुद्र के जिस-जिस भाग में जाते थे, वहाँ-वहाँ उनके अंग के वेग से उताल तरंगे वेग से उठने लगती थी । महान् वेगशाली महाकपि हनुमान पर्वतों के समान उँची महासागर की तरंगमालाओं को अपनी छाती से चूर चूर करते हुए आगे बढ़ रहे थे । हनुमान जी के शरीर से उठी हुई तथा मेघों की घटा में व्याप्त हुई प्रबल वायु ने भीषण गर्जना करनेवाले समुद्र में भारी हलचल मचा दी । वे प्रचंड वेग से समुद्र में बहुत-सी ऊँची ऊँची तरंगों को आकर्षित करते हुए इस प्रकार उड़े जा रहे थे, मानों पृथ्वी और आकाश दोनों को विक्षुब्ध कर रहे हैं । वे महान वेगशाली वानर वीर उस महा समुद्र में उठी हुई सुमेरु और मन्दराचल के समान उत्ताल तरंगों की मानों गणना करते हुए आगे बढ़ रहे थे ।[159] इस प्रकार हनुमान जी का प्रचण्ड़ वेग और उससे हुई प्राकृतिक हलचल को देखते हुए यह पता चलता है कि हनुमानजी अतुलित बलशाली हैं । हनुमानजी अपनी शक्ति का परिचय सीता खोज के बाद देते हैं । वे अपने पराक्रम को दिखाने तथा रावण की शक्ति को नापने के लिए प्रमदावन का विध्वंस कर देते हैं । प्रमदावन के विध्वंस के पश्चात् राक्षसों से युद्ध और उनका वध तथा अंत में लंका नगरी को जलाने मे हनुमान जी की वीरता तथा ताकत का जो दर्शन होता है, अन्यत्र दुर्लभ है । वे रावण के सामने अपनी शक्ति दिखाते हुए लंकावासियों को मानसिक तौर पर परास्त कर देते हैं और लंका पर राम की विजय आसान कर देते हैं। युद्धकाण्ड में भी धूम्राक्ष, अकम्पन, देवतान्तक आदि योद्धाओं का वध करते हुए हनुमान जी अतुलनीय पराक्रम का परिचय

देते हैं । इतना हीं नहीं, 'रामायण' में राम-लक्ष्मण समेत वानर सेना इन्द्रजित के ब्राह्मास्त्र से मूर्छित हो गई तो वे वायुवेग से हिमालय पर्वत पर जाकर औषधियों को ले आते हैं । लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने के लिए हनुमान जी पूरे पर्वत को उठा लाते हैं और अपने अपूर्व बल का परिचय देते हैं । 'रामचरित मानस' में तुलसीदास ने हनुमान जी को 'अतुलितबलधाम' अर्थात् अतुल बल के धाम कहकर, प्रणाम करते हुए सुन्दरकाण्ड का प्रारंभ किया है । समुद्र पार करने के लिए हनुमान जी जिस पर्वत पर पैर रखकर उछले वह पर्वत पाताल में धँस जाता है-

जेहि गिरिचरन देइ हनुमंता । चलेउ सो गा पाताल तुरंता ।[160]

यहाँ तुलसीदास ने हनुमान जी के अगाध बल का परिचय दिया है । समुद्र मार्ग में सुरसा हनुमान जी को खाने के लिए अपने मुँह का विस्तार करती हैं, परंतु हनुमानजी सुरसा के मुँह से दुगुना अपने शरीर का रूप कर देते हैं । इसी प्रकार लंका प्रवेश के समय लंकिनी के रोकने पर हनुमान जी एक ही घूंसा मारकर लंकिनी को पृथ्वी पर गिरा देते हैं । सुन्दरकाण्ड में रावणपुत्र का वध, मेघनाद के साथ युद्ध तथा लंकादहन के प्रसंग में हनुमान जी के अगाध पराक्रम को देखकर तुलसीदास कह उठे -

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी । सरसहुँ मुख न जाई सो बरनी ।[161]

अर्थात् हे नाथ ! पवनपुत्र हनुमान ने जो करनी की, उसका हजार मुखों से भी वर्णन नहीं किया जा सकता । 'युद्धकाण्ड' में भी हनुमान अपनी अगाध शक्ति का परिचय रावण के अनेक वीरश्रेष्ठ योद्धाओं को मारकर तथा औषधियाँ समेत पूरे पर्वत को उठाकर देते हैं ।

इस प्रकार हनुमानजी की मैनाक, सुरसा, सिंहिका आदि के द्वारा परीक्षा तथा बाधा उपस्थापन का वृत 'वाल्मीकि रामायण' तथा रामचरित मानस' दोनों में उल्लेखित है, किन्तु वाल्मीकि की दृष्टि अपेक्षाकृत अलौकिक एवं अतिप्राकृत तत्वों को ग्रहण करने के प्रति विशेष आग्रहशील नहीं है। 'वाल्मीकि रामायण' में वर्णित हनुमान का समुद्रलंधन

अलौकिक शक्ति की अपेक्षा मानव सामर्थ्य का आख्यान है । 'मानस' में हनुमान के समुद्र लंघन के व्यापार में अति प्राकृत तत्त्व का स्पष्ट संकेत है, जो किसी वैज्ञानिक तर्क की अपेक्षा भक्तिभाव को विशेष आन्दोलित करता है । 'महाभारत' के 'रामोपाख्यान' में भी हनुमान तैर कर ही समुद्र को पार करते हैं ।[162] 'मानस' में लंकिनी राक्षसी लंकाके द्वार की प्रतिहारी है । वह हनुमान की मुष्टिका से विचलित होकर ब्रह्मा के वरदान के रूप में समस्त राक्षसों के कुल के विनाश की भविष्यवाणी करती है । 'रामायण' में लंकिनी अपने आपको लंका बताती है और हनुमानजी की बाधा बनती है तब क्रोध कर हनुमान जी उसे मुष्टिका से मारते हैं । 'वाल्मीकि रामायण' में सीता खोज के पश्चात् हनुमान प्रमदावन का विध्वंस तथा लंका को जलाते हैं, जबकि 'मानस' में हनुमानजी माता सीता से भूख का बहाना करके आज्ञा लेकर अशोक वाटिका में जाते हैं और अशोकवाटिका के वृक्षों का भेदन करते हैं । 'रामायण' में हनुमान जी दो बार औषधियों को लेने जाते हैं, जबकि 'मानस' में लक्ष्मण की मूर्छा दूर करने के लिए सुषेन के कहने पर एक ही बार औषधियों को लेने के लिए हनुमान जी जाते हैं । इस प्रकार हनुमान जी को अतुलित बलधामा के रूप में वाल्मीकि और तुलसीदास ने चित्रित किया है ।

5.2.5.4 संकट मोचन के रूप में :-

महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने हनुमानजी का संकट मोचन के रूप में चित्रण किया है । सीता अन्वेषण हेतु गये हुए वानरों के लिए महासागर लांघन संकट बना हुआ था । उस समय जाम्बवानजी हनुमान जी को उनकी भूली हुई शक्ति याद दिलाते हुए कहते हैं कि -

विषण्णा हरयः सवे हनुमन् किमुपेक्षसे ।[163]

अर्थात् समस्तवानर चिन्ता मे पड़े हैं । तुम क्यों इनकी उपक्षा करते हो ? इसी प्रकार 'मानस' में भी जाम्बवन के यह कहने पर कि -

कवन सो काम कठिन जग माहीं ।

जो नहिं होइ तात तुम्ह पाहीं ।। [164]

अर्थात् जगत में ऐसा कौन-सा कठिन काम है, जो तुम से न हो सके । उस समय वानरों पर आये संकट को हनुमानजी समुद्र को लांघ कर और सीता का अन्वेषण करके मिटा देते हैं । 'रामायण' के युद्धकाण्ड में इन्द्रजित के ब्रह्मास्त्र के प्रयोग से राम समेत पूरी सेना घायल हो जाती है, सभी योद्धा खून से लथपथ हो जाते हैं, उस समय महाबली हनुमान जाम्बवान के आदेश पर हिमालय से दिव्य औषधियों के पर्वत को लाते हैं, इन औषधियों की गन्ध से श्री राम, लक्ष्मण एवं समस्त वानर पुनः स्वस्थ हो जाते हैं और श्रीराम समेत पूरी सेना पर आये इस भारी संकट को हनुमान जी मिटा देते हैं । 'मानस' में तुलसीदास ने इस प्रसंग को नहीं लिया । इस प्रकार 'रामायण' के युद्धकाण्ड में तथा 'मानस' के लंकाकाण्ड में लक्ष्मण के मूर्छित होने पर हनुमान जी सुषेन के कहने पर औषधियों के शिखर को उठा लाते हैं और श्री रामचन्द्र के अनुज लक्ष्मण पर आये संकट को मिटा देते हैं । चौदह वर्ष की अवधि समाप्त हो जाने पर यदि राम अयोध्या वापिस नहीं फिरेंगे तो अपने प्राणों का बलिदान दे देने की प्रतिज्ञा लेने वाले भरत के लिए भी राम अयोध्या लौट रहे हैं; ऐसा समाचार भरत को देकर हनुमान जी उनके लिए संकटमोचन बनते हैं । इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में हनुमान जी आये हुए संकट को दूर कर संकट मोचन के रूप में प्रकट होते हैं ।

5.2.5.5. रघुपति के दास :-

हनुमानजी एक आदर्श सेवक हैं । सेवक में जो गुण होने चाहिए, वे सब गुण हनुमानजी में हैं । राम के प्रत्येक कार्य में हनुमानजी की तत्परता दिखाई देती है । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में एक आदर्श सेवक की भांति हनुमानजी रामकार्य करते हुए दिखाई देते हैं । महासागर को लांघते हुए उन्होंने सीता का अन्वेषण किया। युद्धकाण्ड में वीर योध्धाओं का संहार करते हुए हनुमानजी मूछित श्रीराम लक्ष्मण तथा सेना के लिए औषधियाँ लाते हैं । अतः सेवक भाव का सम्पूर्ण स्फूरण हनुमानजी में दिखाई देता है । 'रामायण' में बिना किसी प्रकार के पूर्व परिचय राम को देखते ही

पहले-पहल आत्मसमर्पण करने वाले भक्त हनुमान ही हैं । 'मानस' में भी हनुमानजी सम्पूर्णतः आत्मसमर्पण करते हुए श्रीराम से कहते हैं कि -

ता पर मैं रघुबीर दोहाई । जानऊँ नहिं कछु भजन उपाई ।

सेवक सुत पति मातु भरोसे । रहइ असोच बनइ पभु, पोसे ।।[165]

अर्थात् है रघुबीर । मैं आपकी दुहाई करके कहता हूँ कि मैं भजन साधन कुछ नहीं जानता । सेवक स्वामी के और पुत्र माता के भरोसे निश्चिन्त रहता है । प्रभु को सेवक का पालन-पोषण करना ही पड़ता है । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों महाकाव्यों में हनुमान जी इस बात से सावधान रहते हैं कि अपने मान-सम्मान के लिए प्रभु का कार्य बिगाड़ना उनका कर्तव्य नहीं है । 'रामायण' में लंका जलाने के पश्चात् वे दुःखी होते हैं कि कहीं इस अग्नि में माता सीता तो नहीं जल गयी ? मैंने सब काम चौपट कर दिया कहते हुए हनुमान जी पुनः सीता के पास जाते हैं । 'मानस' में प्रभुकार्य के लिए उन्होंने अपने मान-अपमान पर भी ध्यान नहीं दिया । रावण जब उनको अनेक दुर्वचन कहता हुआ हँसता है, इस पर हनुमानजी को क्रोध नहीं आता; परंतु अपने कर्तव्य पर बने रहते हैं । इस प्रकार दोनों महाकाव्यों में हनुमानजी प्रभु श्रीराम की आदर्श सेवकाई करते हुए निष्ठावान सेवक के रूप में प्रकट होते हैं ।

5.2.5.6. युद्धकला में कुशल :-

'रामायण' तथा 'रामचरित मानस' के सुन्दरकाण्ड, युध्ध काण्ड/ लंकाकाण्ड में हनुमानजी युद्ध कला में निपुण योद्धा के रूप में उभरे हैं । सुन्दरकाण्ड में हनुमान जी प्रहस्तपुत्र, जम्बुमाली, मंत्री के सात पुत्र, रावण के पाँच सेनापति तथा अक्ष कुमार का वधकर देते हैं । अक्षकुमार के वध से क्रोधित रावण अपने पुत्र मेघनाद को हनुमान जी के साथ युद्ध में भेजता है । उस समय हनुमान जी की युद्ध कौशलता को दिखाते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि -

अति बिसाल तरु एक उपारा । बिरथ किन्ह लंकेश कुमार ।

रहे महाभट् ताके संगा । गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा ।[166]

अर्थात् उन्होंने एक बहुत बड़ा वृक्ष उखाड लिया और उस रावण पुत्र मेघनाद को बिना रथ का कर दिया । उसके साथ जो बड़े-बडे योद्धा थे, उनको पकड-पकड कर हनुमान जी अपने शरीर से मलने लगे । वे 'रामायण' के युद्धकाण्ड में घूम्राक्ष के ऊपर पर्वत शिखर चलाकर उनका वध कर देते हैं । उसी प्रकार अकम्पन के रथ पर वृक्ष फेंककर उनको मार गिराते हैं ।

स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना ।

राक्षसों वानरेन्द्रेण पपात च ममार च ।[167]

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में हनुमान अपने प्रगाढ बाहुबल से युद्धकला में निपुणता दिखाते हुए अनेक महायोद्धाओं का वध कर देते हैं ।

सुग्रीव की आज्ञा से हनुमान श्रीराम और लक्ष्मण से वन में आने का कारण पूछते हैं । वे अपने संभाषण के द्वारा अपनी विद्धता का परिचय देते हैं । 'मानस' में हनुमान जी केवल एक भक्त वानर के रूप में ही है । 'रामायण' में लंका की रमणिक पुरी में प्रवेश करने के उपरान्त हनुमान जी राक्षसों की वैभवपूर्ण समृद्धि के दर्शन करते हैं, जिससे यह फलित होता है कि राक्षसों का जीवन आदर्शमय होगा । 'रामचरित मानस' में उपर्युक्त वर्णनों का अभाव है । 'मानस' में हनुमान जी विभिषण के घर को रामायुद्ध अंकित तथा तुलसी के वृन्द से सज्जित देखते हैं, जो निश्चय ही परवर्ती कल्पना है । इस संदर्भ में डॉ. रांगेय राघव का मत है ''विभिषण को त्रेता युग में राम भक्त दिखाना ऐतिहासिक यथार्थ को अस्वीकार करना है; क्योंकि अपने भाई रावण की निरंकुशता से खिन्न होकर विभिषण राम से आ मिला था।[168] 'मानस' में निशाचरियों के स्थान को त्याग कर चले जाने के पश्चात् हनुमान जी वृक्ष शाखाओं के अन्तराल में छिपकर रामचरित का वर्णन करते हैं, किन्तु वाल्मीकीय 'रामायण' में परस्पर वार्तालाप से सीता कुछ आश्वस्त और विश्वस्त होती हैं । लंका दहन के वर्णन में 'रामायण' और 'रामचरित

मानस' में चमत्कारमयी कल्पना का आश्रय लिया गया है । 'रामायण' में पूँछ में वस्त्र लपेटे जाने तथा आग लगाये जाने का वर्णन अवश्य है, किन्तु 'मानस' जैसी चमत्कारमयी कल्पना का अभाव है । 'मानस' में लंकादहन के पश्चात् हनुमान सीता से जाने की आज्ञा लेते हैं, जबकि 'रामायण' में वे विदा पूर्व ही ले लेते हैं और उनके पास पुनः केवल उन्हें सकुशल देखते की इच्छा से आते हैं । अतः महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने अपने युगानुरूप हनुमान जी के चरित्र को चित्रित किया है । आदर्श सेव्य भक्ति से हनुमान जी का चरित्र 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में अद्वितीय बन गया है।

5.2.6. 'रामायण' आर 'रामचरित मानस' के रावण :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' के प्रतिनायक के रूप में रावण का चित्रण हुआ है । मुनिश्रवा और कैकेसी का पुत्र रावण अपने समय का ऐसा वीर है कि उसे कोई प्रतिभट्ट प्राप्त नहीं हुआ । उसने देव, यक्ष, गन्धर्व, नर, किन्नर, नाग; यहाँ तक कि बलपूर्वक सुन्दर कुमारियों का वरण कर लिया है । वह क्रुर धर्म विरोधी एवं अहंकारी हैं। यद्यपि वह घोर उद्यमी, अप्रतिमय शौर्ययुक्त बौद्धिक प्रतिभा सम्पन्न और विपुल धन-सम्पदा का स्वामि है, परंतु उसकी प्रवृतियाँ निकृष्ट है । वह परपीड़क और दुराचारी है। इसलिए उसके सभी गुण भयंकर दुर्गुणों में परिवर्तित हो गये हैं । सम्पूर्ण पृथ्वी उस आततायी से त्राहित हो गई थी । उनकी शक्ति की विराटता, पराक्रमता, पांडित्य आदि गुणों के कारण 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में प्रतिनायक के रूप में रावण अपना विशेष महत्वपूर्ण स्थान रखता है ।

5.2.6.1 शक्ति की विराटता :-

रावण की माता कैकेसी के यह कहने पर कि बेटा तुम भी ऐसा कोई यत्न करो, जिससे वैश्रवण की ही भाँति तेज और वैभव से सम्पन्न हो जाओ -

दशग्रीव तथा यत्नं कुरुष्वामितविकम ।

यथा त्वमपि में पुत्र भवेर्वैश्रवणोपमः ।।[169]

उस समय माता की बात सुनकर रावण निश्चय करता है कि तप के माध्यम से ही मैं शक्तिशाली बनकर अपने मनोरथों को पूरा करूँगा । इस प्रकार का निश्चय कर रावण ने दशहजार वर्षों तक लगातार उपवास किया और प्रत्येक सहस्त्र वर्ष के पूर्ण होने पर वह अपना एक मस्तक काटकर आग में होम देता था । इस प्रकार जब वह दसवाँ मस्तक काट रहा था ; उस समय पितामह ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उसे गरुड, नाग, यक्ष, दैत्य, दानव, राक्षस तथा देवताओं के द्वारा अवध्य होने तथा जब चाहे तब इच्छानुसार रूप बदलने की शक्तिः ऐसे दो वर दिये । तदन्तर रावण अपने बाहुबल और तपस्या से विविध शक्तियों को प्राप्त करता गया । कुबेर को पराजय देकर रावण ने उसका पुष्पक विमान ले लिया । रावण की विराट शक्ति का दर्शन तभी होता है, जब वह पुष्पक विमान में बैठकर यात्रा कर रहा था तब कैलास पर्वत के पास आकर पुष्पक विमान की गति रूक गई । उस समय क्रोध से रावण उस पर्वत को जड़ से उखाड कर फेंकने के लिए तैयार हो जाता है उस समय पर्वत के नीचे उसके हाथ दब जाते हैं । दबे हाथों के दर्द से बचने के लिए वह शिव स्तुति रचता है। अंत में शिवजी ने रावण के पराक्रम से प्रसन्न होकर चन्द्रहास खड़क दिया और दशानन का नाम रावण रखा ।[170] अतः देवताओं के लिए भी जो दुर्गम है, ऐसी लंकानगरी का राजा रावण है । इसके चारों दरवाजों की लाखों योद्धा रक्षा करते हैं।

'रामचरित मानस' में भी तुलसीदास ने तपस्या के द्वारा रावण को शक्ति एकत्रित करता हुआ दिखाया है । ब्रह्म देवता को प्रसन्न करने के बाद रावण वर माँगता हैं कि-

हम काहू के मरहिं न मारें । बानर मनुज जाति दुइबारें ।[171]

अर्थात् वानर और मनुष्य इन दो जातियों को छोड़कर हम किसी के मारे न मरें । अत्यन्त बलवान कुंभकर्ण रावण का भाई था, जिसकी बराबरी का योद्धा जगत में पैदा ही नहीं हुआ था । उनके जागते तीनों लोकों में तहलका मच जाता था । रावण का बड़ा पुत्र मेघनाद जगत का श्रेष्ठ योद्धा था, उसके भय से स्वर्ग में भी भागदौड़ मची

रहती थी । इसके सिवा दुर्मुख, अकम्पन वज्रदन्त, धूम्रकेतु, अतिकाय आदि ऐसे अनेक योद्धा रावण के पास थे; जो अकेले ही सारे जगत को जीत सकते थे । रावण की सम्पति, सेना, बल, बुद्धि, बड़ाई, जय आदि दिनप्रति दिन बढ़ते ही जाते थे, तुलसीदास ने लिखा है कि -

नित नूतन सब बाढ़त जाई । जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ।[172]

अंत में रावण की शक्ति का परिचय देते हुए तुलसीदास ने यहाँ तक कह दिया कि -

ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी । दसमुख बसबर्ती नर नारी ।

आयसु करहि सकल भयभीता । नवहिं आइ नित चरन बिनीता ।।[173]

अर्थात् ब्रह्माजी की सृष्टि में जहाँतक शरीरधारी स्त्री पुरुष थे, सभी रावण के अधीन हो गये, डर के मारे सभी उसी आज्ञा का पालन करते थे और नित्य आकर नम्रतापूर्वक उसके चरणों में सिर नवाते थे ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में रावण को अगाध शक्ति के भण्डार के रूप में चित्रित किया गया है । 'रामायण' में रावण की तपस्या और वर प्राप्ति का विस्तार से वर्णन किया गया है, जबकि 'मानस' में इन्हीं कथाओं को विस्तार से न देते हुए तुलसीदास ने उपर्युक्त प्रसंगों को संक्षेप में कह दिया है ।

5.2.6.2 पराक्रमी :-

रावण अपनी अथाह शक्ति के बल पर अनेक पराक्रम दिखाता है । महर्षि वाल्मीकि ने 'रामायण' के उत्तर काण्ड में रावण के पराक्रमों की कथाओं को विस्तार से दिया है, अपने बाहुबल और वरों से प्राप्त की हुई शक्तियों से रावण ने तीनों लोकों पर अपनी विजय पताका फहरायी है । उसने कुबेर पर आक्रमण कर उनके पुष्पक विमान को ले लिया । अपने मार्ग में अवरोध करनेवाले कैलास पर्वत को भी उठाकर फेंक देने

के लिए प्रयत्न करता है । रावण की अथाह शक्ति और उनके पराक्रमों से बचने के लिए देवता भी रावण के आ जाने पर अपने रूप को बदल देते थे -

इन्द्रो मयूर : संवृतों धर्मराजस्तु वायसः

कृकलासो धनाध्यक्षो हंसश्च वरुणोऽभवत् ।।[174]

अर्थात् इन्द्र मोर, धर्मराज कौआ, कुबेर गिरगिटे और वरुण हंस हो गये । अपने पराक्रमों से रावण ने तीनों लोकों में त्राही-त्राही मचा दी । अपने पराक्रम का श्रेष्ठ प्रदर्शन रावण राम के साथ युद्ध में दिखलाता है । प्रहस्त आदि वीर योद्धाओं का वध होने के पश्चात् क्रोधाग्नि में जलता हुआ रावण खुद युद्ध भूमि में चला आता है और युद्ध करता हुआ सुग्रीव आदि योद्धाओं को घायल कर देता है । रावण के इस पराक्रम से वानरों की सेना में भागदौड मच जाती है । वीरवर लक्ष्मण जब रावण के साथ युद्ध करने के लिए तत्पर दिखाई देते हैं; तब राम खुद लक्ष्मण के सामने रावण के पराक्रम की प्रशंसा करते हैं और कहते हैं कि -

रावणों हि महावीर्यो रणेऽदभूतपराक्रमः ।

त्रैलोक्येनापि संकुद्रो दुष्प्रसहयो न संशय ।।[175]

अर्थात् रावण महान बल विक्रम से सम्पन्न है । वह युद्ध में अद्भूत पराक्रम दिखाता है । रावण यदि अधिक कुपित होकर युद्ध करने लगे तो तीनों लोगों के लिए इसके वेग को सहन करना कठिन हो जायेगा । नील, हनुमान आदि को घायल कर रावण ने लक्ष्मण को ब्रह्मा की दी हुई शक्ति से मूर्छित कर दिया । राम तथा वानर सेना से युद्ध करते हुए रावण अलौकिक पराक्रम को दिखाता है । उस भयानक युद्ध का वर्णन करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है कि -

चकम्पे मेदिनी कृत्स्त्रा सशैलवनकानना ।

भास्करो निष्प्रभ्रश्वासीन्न ववौ चापि मारुतः ।।[176]

अर्थात पर्वतों, वनों और काननों सहित सारी पृथ्वी काँप उठी, सूर्य की प्रभा लुप्त हो गयी और वायु की गति भी रुक गयी । इस प्रकार रावण के इस भयानक पराक्रम से देवता, गन्धर्व सिध्ध महर्षि, किन्नर और बड़े-बडे नाग सभी चिन्ता में पड़ गये । महर्षि वाल्मीकि की तरह तुलसीदास ने भी रावण का पराक्रमी राक्षस राज के रूप में चित्रण किया है । एक करोड यक्ष लोग के साथ रहते हुए कुबेर से युद्ध कर रावण ने उसे भगा दिया और लंका नगरी को अपनी राजधानी बनायी । कुबेर पर पुनः आक्रमण करते हुए रावण उसके पुष्पक विमान को जीतकर ले आता है। इस प्रकार रावण के पराक्रम का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि-

कौत कहीं कैलास पुनि लीन्हेसि जाई उठाई ।[177]

रावण ने खिलवाड़ में ही कैलास पर्वत को उठा लिया । अपनी ताकत से मतवला होकर वह अपनी जोडी का योद्धा खोजता हुआ जगतभरमें दौडता फिरता है, परंतु उसे ऐसा कोई योद्धा नहीं मिला जो उनकी बराबरी कर सके । उसने अपनी भुजाओं के बल से सारे विश्व को वश मे कर लिया, किसी को स्वतंत्र नहीं रहने दिया । राम-रावण के युद्ध में रावण अपना अति भयानक पराक्रम दिखाता है, जिससे युद्ध में वानर सेना त्राही त्राही हो जाती है । रावण की माया से सेना को चारों दिशाओं में अनेक रावण दिखाई देते हैं । रावण के धनुष से चलते तीखें बाणों से बचने के लिए सेना में भागदौड़ मच जाती है । लक्ष्मण आदि वीर योद्धाओं को रावण अपने तीखें बाणों से घायल करता हुआ काल की भांति राम की सेना पर तूट पडता है । उस प्रसंग का वर्णन करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि -

भागे वानर धरहि न धीरा । त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा ।[178]

रावण अनेकानेक पराक्रम दिखाता हुआ राम के साथ भयानक युद्ध करता है, उस समय राम ने -

खैचि सरासन श्रवन लगि छाडे सर एकतीस ।

रघुनायक सायक चलें मानहुँ काल फलीस ।।[179]

कानों तक धनुष को खींच कर श्री रधुनाथजी ने काल सर्प जैसे इकतीस बाण छोडे और पराक्रमी रावण के पराक्रम का अंत कर दिया ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में रावण को पराक्रमी वीर योद्धा के रूप में चित्रित किया गया है । 'वाल्मीकि रामायण' में अनेक प्रसंगों में भगवान राम मूर्छित होकर रणभूमि में गिर पडते हैं, जो रामचरित मानस' में अनुपस्थित है । 'रामायण' में यह भी उल्लेख है कि रावण ने लक्ष्मण पर अमोध शक्ति चला दी, जिससे लक्ष्मण मूर्छित हो गये । अतः 'रामायण' में कई स्थलों पर लक्ष्मण के मूर्छित होने तथा राम के विलाप का उल्लेख है । युद्ध में राम असाधारण योद्धा अवश्य है, किन्तु रावण भी कम वीर नहीं है । 'रामायण' में रावण अपने अद्वितीय पराक्रम को दिखाता हुआ राम के साथ युद्ध करता है तब राम द्वारा रावण के सिर काटने पर जब वे बढ़ने लगते हैं तब इन्द्र का सारथी मातलि राम को ब्रह्मास्त्र द्वारा उनका वध करने का निर्देश करता हैं। अंत में राम के द्वारा चलाये गये ब्रह्मास्त्र के प्रहार से भयानक तेज शाली राक्षसराज प्राणहीन होकर पृथ्वी पर गिर पडता है । 'मानस' में विभिषण रावण के सिर के बार-बार बढ़ने के रहस्य का उद्घाटन करते हैं तथा वध का परामर्श देते हैं। संक्षेप में रावण के अतुलनीय पराक्रम को देखकर राम को भी प्रशंसा करनी पड़ी। निष्कर्ष में विभिषण के द्वारा रावण के रहस्यों को अगर न खोला गया होता तो पराक्रमी रावण को परास्त करना राम के लिए भी कठिन हो जाता ।

5.2.6.3. मायावी :-

'रामायण' और 'रामचरितमानस' में रावण को मायावी रूप में भी चित्रित किया गया है । मायावी होने से उसकी शक्ति दुगुनी हो जाती है, जब शत्रु का पलड़ा भारी दिखाई देने लगे तब तब मायावी शक्तियों का प्रयोग करके युद्ध के परिणाम को बदल देने की क्षमता वह रखता था । सुबेल शिखर से लंकापुरी का निरीक्षण करते हुए सुग्रीव

अनायास ही रावण के उपर आक्रमण कर देता है । उस समय विविध प्रकार के युद्ध के पश्चात् रावण थक जाने पर अपनी मायावी शक्ति को काम लेने का विचार करता है -

एत स्मिन्तरे रक्षो मायाबलमथात्मन :[180]

परंतु वानरराज सुग्रीव रावण के मायावी विचार को ताड गये और वहाँ से भाग गये । इसी प्रकार युद्धकाण्ड में रावण सीता को अपने वश में करने के लिए राक्षस विद्युजिह्वा से मिलकर माया रचता हैं जिसमें वह राम का कटा मस्तक सीता को दिखाते हुए कहता है कि जिसकी आशा में तुम बैठी हो, उसको मेरी सेना ने मोत के घाट उतार दिया है । राम के कटे मस्तक को देखकर विलाप करती हुई सीता को आश्वासन देती हुई सरमा रावण की माया के भेद को खोल देती है -

अयुक्तबुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधिना ।

एवं प्रयुक्ता रोद्रेण माया माया विना त्वयि ।।[181]

अर्थात् रावण की बुद्धि और कर्म दोनों ही बुरे हैं । वह समस्त प्राणियों का विरोधी, क्रूर और मायावी है । उसने तुम पर यह माया का प्रयोग किया था । इस प्रकार युद्ध में जगह-जगह पर रावण मायावी शक्ति का प्रयोग करते हुए शत्रु दल को प्रभावित करता रहता है । रामायण की भाँति 'रामचरित मानस' में भी रावण युद्ध में अपनी माया का प्रयोग करता है -

अंतरधान भयउ छन एका । पुनि प्रगटे खल रूप अनेका।

रघुपति कटक भालु कपि जेते । जहँ तहँ प्रगट दसानन ते ते ।[182]

अर्थात् रावण क्षणभर के लिए अदृश्य हो गया । फिर ईस दुष्ट ने अनेक रूप प्रकट किये । श्री रघुनाथजी की सेना में जितने रींछ वानर थे, उतने ही रावण जहाँ तहाँ (चारों ओर) प्रगट हो गये । रावण के अनेक रूप देखने पर वानर भालु आदि 'हे रघुवीर ! हे लक्ष्मण ! बचाईए' कहते हुए भागने लगे । उस समय श्रीराम ने शार्डगधनुष

पर एक बाण चढ़ाकर सब मायावी रावणों का संहार किया ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'मानस' में रावण का मायावी राक्षसराज के रूप में चित्रण हुआ है । 'वाल्मीकि रामायण' में रावण माया रचकर राम का कटा शिर दिखाते हुए सीता को भ्रमित करने का प्रयास करता है । 'मानस' में तुलसीदास ने इस प्रसंग को छोड़ दिया है। सुबेलपर्वत पर रावण और सुग्रीव का युद्ध और अंत में रावण द्वारा माया का प्रयोग करने के प्रसंग को भी मानसकार ने छोड़ दिया है । संक्षेप में वाल्मीकि ने मायापति रावण को विविध मायाओं का प्रयोग करता हुआ दिखाया है । 'रामायण' में रावण अपने मायाजनीत प्रसंगो से शत्रुदल में विह्वलता उत्पन्न कर देता है, जबकि मानसकार ने कई मायावी प्रसंगों को छोड दिया है ।

5.2.6.4 अहंकारी :-

अहंकारी आदमी अपने लोगों पर ही संदेह करता है और वह किसी की भली सलाह भी नहीं मानता । इसका फल यह होता है कि उसके स्वजन भी परजन हो जाते हैं और वह अपनी ही आँखों से अपना पतन देखता है । इसके लिए रावण का उदाहरण ज्वलंत है । विभिषण की हितकर बातें उसे अच्छी नहीं लगती, अपने ही भाई का वह तिरस्कार कर देता है । रावण के नाना माल्यवान ने राम के साथ संधि की सलाह दी तो रावण क्रोधित हो गया और अभिमान भरी वाणी से कहने लगा कि मैं राक्षसों का स्वामी हूँ । देवता भी मुझसे डरते हैं। मुझे किससे डर है ? निश्चित है, आपने मुझे कठोर वचन सुनाये हैं । लगता है आप मुझ से भीतर-ही भीतर द्वेष रखते है। मैं वन से कमल की भांति सुन्दरी सीता को लाया हूँ ? मैं तूटकर दो टुक भले हो जाऊँ, परंतु किसी के सामने झुक नहीं सकता । यह मेरा स्वाभाविक दोष है और स्वभाव को मिटाना कठिन है -

द्विधा भज्येयमय्येवं न नमेयंतु कस्यचित् ।

एष में सहजो दोषः स्वभावो दुरतिकमः ।।[183]

पत्नी मन्दोदरी के समझाने पर भी अपनी शक्ति का गर्व रखनेवाला रावण सीता को लौटाने के लिए तैयार नहीं होता । अपने बाहुबल और वीरता के अभिमान में हनुमान, विभिषण, अंगद, माल्यवान आदि की बातों को ठोकर मारता हुआ रावण युद्ध का निर्णय करके मौत को निमंत्रण देता है । अपने वीर श्रेष्ठ योद्धाओं तथा महापराक्रमी बंधु एवं पुत्रों को एक-एक कर युद्ध के हवन कुंण्ड में होम करता हुआ रावण अपने पूरे परिवार का समूल नाश कर देता है, परंतु अपने अभिमान को छोडने के लिए तैयार नहीं होता ।

'रामचरित मानस' में भी तुलसीदास ने रावण को अभिमानी राक्षसराज के रूप में चित्रित किया है । अभिमानी रावण विविध वरदानों को प्राप्त कर पृथ्वी, स्वर्गलोक आदि में हाहाकार मचा देता है । अभिमान वश कैलास पर्वत को भी उठा लेता है । अहंकारी रावण मारीच की बात को अनसुना कर राम की पत्नी सीता का हरण करता है । रावण की पत्नी मन्दोदरी उसे समझाने का प्रयत्न करती हुई सीता को उनके पति को लौटा देने की बात करती है, परंतु मन्दोदरी की बात सुनकर अभिमानी रावण हँस देता है -

श्रवण सुनी सठता करिबानी । बिहसा जगत बिदित अभिमानी ।।[184]

रावण को समझाती हुई मन्दोदरी कहती है कि राम ने जनक का धनुष तोड़कर सीता को ब्याहा, इन्द्रपुत्र जयन्त की एक आँख फोड़ दी, शूर्पणखा की दशा खराब की, विराध और खरदूषण को मारा, बाली को एक ही बाण से मारा और जिन्होंने खेल ही खेल में समुद्र पर बंध बाँध लिया ऐसा कहती हुई राम के इश्वरीय रूप को प्रकट करती है; परंतु अहंकारी रावण स्त्री के बाण के समान वचन सुनकर सबेरा होते ही उठकर सभा में चला गया और सारा भय भूलकर अभिमान में फूलकर सिंहासन पर जा बैठता है -

नारि वचन सुनि बिसिख समाना । सभाँ गयउ उठि होत बिहाना ।

बैठ जाई सिंघासन फूली । अति अभिमान त्रास सब भूली।[185]

युध्ध में अपने सारे योध्धाओं की बलि चढ़ जाने पर भी वह अपने गर्व को छोड़ता नहीं है और अंत में राम के हाथों उसका विनाश होता है ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'मानस' में रावण का अहंकारी राजा के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' और 'मानस' में विभिषण, माल्यवान, मन्दोदरी, हनुमान, अंगद आदि रावण को समझाते हैं कि सीता को राम के हवाले कर दो; परंतु रावण मानता नहीं । मन्दोदरी 'मानस' में अपने पति को सीता लौटाने की अनेक बार प्रार्थना करती है, परंतु रावण गर्व से हँसता हुआ उसकी बात को टाल देता है । निष्कर्ष में इस प्रकार दोनों महाकाव्यों में अपने पुत्रों, भाई, स्वजनों आदि का नाश हो जाने पर भी अभिमानी रावण राम के साथ युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त करता है ।

5.2.6.5 अत्याचारी :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में रावण का अत्याचार चरमोत्कर्ष पर था । रावण ऋषिगण, देवगण, यक्षों गन्धर्वों यानी कि तीनों लोकों के सभी जीवधारियों को मारता तथा पीडा देता है । देवताओं के नन्दनवन आदि विचित्र उद्यानों को रावण क्रोधित होकर उज़ाड देता था । रावण नदियों की धाराओं को छिन्न-भिन्न कर देता था । वृक्षों को वायु की भांति झकझोरता हुआ उख़ाड फेंकता था और पर्वतों को इन्द्र के हाथ से छुटे हुए वज्र की भांति तोड-फोड डालता था ।[186] दशानन के इन भयंकर अत्याचारों को देखकर धर्मज्ञ कुबेर ने उनको समझाने के लिए एक दूत भेजा, परंतु अपने बल के गर्व में कुबेर की बात का अस्वीकार कर रावण उसके दूत का वध कर देता है और उसका निष्प्राण शरीर राक्षसों को खाने के लिए दे देता है । रावण ने कुबेर के साथ भी युद्ध किया और उनके पुष्पक विमान को छीन लिया । अत्याचारी रावण के अत्याचारों को देखते हुए महर्षि नारद ने रावण को समझाया कि संसार के त्रिविध ताप में जलते हुए आम व्यक्तियों को जो पहले से ही दुःखी है, उनका वध करके और दुःखी न करो, परंतु रावण ने उनकी बात का भी अस्वीकार कर दिया ।

'रामायण' की भांति 'रामचरित मानस' में भी रावण का अत्याचारी के रूप में चित्रण हुआ है । ब्राह्मणभोजन, यज्ञ, हवन और श्राध्ध जैसे धार्मिक कार्यो में बाधा डालने की रावण ने अपने राक्षसों को आज्ञा दे दी । देवताओं को गालियाँ देता हुआ रावण युद्ध के लिए उनको ललकारने लगा । रावण के अत्याचारों से देवता, ब्राह्मण और गुरुओं को कोई नहीं मानता था । वेद और पुराण स्वप्न में भी सुनने को नहीं मिलते थे । जप, योग, वैराग्य तप तथा यज्ञ में देवताओं के भाग पाने की बात रावण कहीं कानों से सुन लेता तो उसी समय स्वयं उठ दौड़ता और सबको पकड़कर विध्वंस कर देता था । पराये धन और परायी स्त्री पर मन चलानेवाले प्रसंग भी खूब बढ़ गये। अंत में रावण के अत्याचारों के वर्णन की असमर्थता प्रकट करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि -

बरनि न जाइ अनीति घोर निसाचर जो करहिं,

हिंसा पर अति प्रीति तिन्ह के पापहि कवनि मिति ।।[187]

अर्थात् राक्षसराज जो घोर अत्याचार करते थे, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । हिंसा पर ही जिनकी प्रीति है, उनके पापों का क्या ठिकाना ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में रावण का अत्याचारी के रूप में चित्रण हुआ है । वाल्मीकि ने रावण को पशुता के प्रतिनिधि के रूप में चित्रित करते हुए उनके अत्याचारों का विस्तार से वर्णन किया है । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने संक्षेप में ही दुर्बुद्ध रावण के अत्याचारों का वर्णन किया है । 'रामायण' के उत्तरकाण्ड में श्री राम के दरबार में महर्षि अगस्त्य आदि के द्वारा रावण के अत्याचरों का विस्तृत वर्णन किया गया है, जबकि 'मानस' के बाल काण्ड में ही रावण के अत्याचारों का संक्षिप्त वर्णन करते हुए तुलसीदास ने अत्याचारी रावण का परिचय दे दिया है । संक्षेप में 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में रावण का तीनों लोकों पर अत्याचार करते अत्याचारी के रूप में चित्रित हुआ है ।

5.2.6.6 कामुकता :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' के रावण का चरित्र कामुकता से भरा हुआ है। रावण सुंदर स्त्री को देखकर उसका हरण कर लेता था या उस पर बलात्कार करता था यानी कि स्त्रीशील धन का वह सबसे बड़ा शत्रु था। रामायण के उत्तरकाण्ड में कुशध्वज की पुत्री वेदवती को देखकर रावण का चित कामजनित मोह के वशीभूत हो जाता है । कामांध रावण की ओर से तिरस्कार होने पर वेदवती अग्नि में समाजाती है।[188] इसी प्रकार कैलासपर्वत की प्रकृति के उद्दीपन उपकरणों के कारण रावण काम के अधीन होकर मार्ग से निकली हुई रम्भा पर बलात्कार करता है।[189] रावण जिस कन्या अथवा स्त्री का दर्शनीय रूप सौन्दर्य देखता उसके रक्षक बंधुओं का वध करके उन स्त्रियों या कन्याओं का अपहरण कर लेता था । इस प्रकार रावण ने अपनी कामतृप्ति के लिए नागों, राक्षसों, असुरों, मनुष्यों, यक्षो और दानवों की बहुत-सी कन्याओं का हरण कर विमान में बिठा लिया था -

एवं पन्नगकन्याश्च राक्षसासुरमानुषीः ।

यक्ष दानव कन्याश्च विमाने सोऽध्यरोपयत् ।।[190]

शूर्पणखा द्वारा सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा सुनकर ही रावण उनका हरण करने के लिए तत्पर होता है और अपनी कामुकता की अग्नि में पूरी राक्षस जाति को स्वाहा कर देता है ।

'रामचरित मानस' में भी रावण का कामी पुरुष के रूप में चित्रण हुआ है । रावण ने अपनी भुजाओं के बल से सुन्दरियों और स्त्रियों को जीत लिया था और उनके साथ विवाह कर लिया था -

देव जच्छ गंधर्व नर किंतर नाग कुमारि ।

जीति बरीं निज बाहुबल बहु सुंदर बर नारि ।।[191]

शूर्पणखा रावण के सामने अपने नाक कान कटे जाने की बात कहती हुई सीता के सौन्दर्य का बखान करती है तो सुनकर रावण तुरंत प्रण करता है कि यदि वे मनुष्य रूप में कोई राजकुमार होंगे तो उन दोनों को रण में जीतकर उनकी स्त्री को हर लूँगा-

जौ नररुप भूपसुत कोऊ । हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ।[192]

इस प्रकार सीता को हरने के लिए वह मारीच के पास चल देता है । रावण अपनी कामतृप्ति के कारण विविध प्रकार से सीता को मनाने का प्रत्यन करता है वह यहाँ तक कहता है कि -

कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी । मंदोदरी आदि सब रानी ।

तव अनुचरीं करउँ पन मोरा । एक बार बिलोकु मम ओरा ।।[193]

अर्थात हे सुमुखि ! हे सयानी ! सुनो । मंदोदरी आदि सब रानियों को मैं तुम्हारी दासी बना दूँगा, यह मेरा प्रण है । तुम एक बार मेरी ओर देखो तो सही । अंत में सीता के द्वारा रावण की बातों का अस्वीकार करने पर वह कामासक्त रावण तलवार निकालता हुआ सीता को मारने के लिए दौड़ता है ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'मानस' में रावण को वासनाग्रस्त दिखाते हुए स्त्रीयों और सुन्दरियों का हरण करता हुए दिखलाया गया है । 'रामायण' में वाल्मीकि ने कई जगह रावण को स्त्रियों और सुन्दरियों के प्रति आसक्त दिखाते हुए उनका कामी पुरुष के रूप में चित्रण किया है, जबकि तुलसीदास ने रावण को कामी पुरुष के रूप में इतना अधिक चित्रित नहीं किया ।

5.2.6.7 दृढ़ निश्चयी :-

'रामायण' और 'मानस' में रावण को दृढ़निश्चयी के रूप में चित्रित किया गया है। मन में कोई बात एक बार ठान ली तो उसको पूरा करने के लिए वह अपने प्राणों को भी दाँव पर लगा देता था । माता कैकेसी रावण को समझाती हुई यह कहती है कि

हे दशग्रीव । मेरे बेटे तुम भी ऐसा कोई यत्न करो, जिससे वैश्रवण की भांति तेज और वैभव से सम्पन्न हो जाओ।[194] तब माता की बात सुन कर रावण अपने दृढ़निश्चय को दिखाता हुआ प्रतिज्ञा करता है कि मैं भी अपने पराक्रम से भाई वैश्रवण के समान या उनसे भी बढकर हो जाऊँगा । इस प्रकार श्रेष्ठ पराक्रमी होने के लिए शक्तियों को इक्कठा करने का निश्चय किया और दस हजार वर्षों तक लगातार उपवास किया । प्रत्येक सहस्त्र वर्ष के पूर्ण होने पर वह अपना एक मस्तक काटकर आग में होम देता था । दस मस्तक काट देने के पश्चात् ब्रह्माजी प्रसन्न होते हैं और रावण को वर प्राप्त होते हैं, जिसके बल से रावण अपने श्रेष्ठ पराक्रम को दिखाता हुआ अजेय योद्धा के रूप में प्रकट होता है । रावण अपने अत्याचारों के द्वारा त्राही त्राही मचा देता है, जिससे दुःखी होकर कुबेर रावण को समझाने के लिए दूत भेजता है, परंतु हठी रावण दूत का भी वध कर देता है । तीनों लोकों पर विजय प्राप्त करने की अपनी कामना यक्ष, किन्नर, गन्धर्व तथा यम आदि पर आक्रमण करते हुए वह पूरी करता है । शूर्पणखा के द्वारा रावण को भड़काये जाने पर वह सीता हरण करने का दृढ निश्चय करता है । इसके लिए वह मारीच के पास जाता है । राम के हाथों पहले ही दण्डित हुआ मारीच रावण को समझाने का प्रयत्न करता है, परंतु वह मानता नहीं और अपने कार्य की दृढ़ता को दिखाते हुए रावण ने मारीच से कहा कि -

एवं में निश्चिता बुद्धि हृर्दि मारीच विद्यते ।
न व्यावर्तयितुं शक्या सेन्द्रेरपि सुरासुरैः ।।[195]

अर्थात् मारीच ! ऐसा मेरे हृदय का निश्चित विचार है, इसे इन्द्र आदि देवता और सारे असुर मिलकर भी बदल नहीं सकते। अंत में दण्ड का भय दिखलाता हुआ रावण अपने कार्य सिद्ध करने के लिए मारीच को तैयार करता है। इसी प्रकार सीताहरण के पश्चात् सीता राम को लौटा देने की मन्दोदरी की प्रार्थना को भी रावण ठुकरा देता है । विभिषण भी रावण को समझाने का प्रयत्न करता है कि वह सीता को उनके पति के पास पूरे सम्मान के साथ लौटा दें, तब दुर्बुद्धि रावण सीता को उनके पति के पास

लौटाने के बदले विभिषण को देश निकाला देते हुए अपनी हठ पर कायम रहता है ।

'रामचरित मानस' में भी रावण का हठी के रूप में चित्रण हुआ है । सीताहरण से पहले मारीच के समझाने पर रावण क्रोधित हो जाता है और मारीच को गालियाँ देने लगता है - सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी ।[196] और सीताहरण के लिए मारीच को सहायता कराने के लिए विवश कर देता है । सुन्दकाण्ड में हनुमान जी ने भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति से सनी हुई बहुत-सी हीत की वाणी कहीं तो भी वह महा अभिमानी रावण हँस देता है ओर हनुमान जी को मारने की आज्ञा देता है । राम के साथ समझौता करके सीता को वापिस लौटा देने की विभिषण की बात भी रावण को अच्छी नहीं लगती और उसने सीताहरण की हठ को कायम रखते हुए विभिषण को भी देश निकाला दे दिया । युद्ध में राम के हाथों रावण के पुत्र, भाई, मंत्री तथा वीर यौद्धा वगैरेह एक-एक करके मर रहे थे फिर भी रावण सीता को लौटाने के लिए तैयार नहीं था और अंत में अपने हठी स्वभाव के कारण ही पूरी राक्षसजाति को काल का भाजन बना देता है ।

इस प्रकार 'रामायण' ओर 'रामचरितमानस' में रावण को दृढ़ निश्चयी के रूप में चित्रित किया है । सीताहरण के पश्चात् रावण एक-एक करके अपने सभी पुत्रों तथा अपने वीर योद्धाओं की बलि चढ़ा देता है, परंतु सीता को वापिस न लौटाने का अपना दृढ़ निश्चय रावण बदलता नहीं। वह अंतिम साँस तक अपनी बात पर अड़िग रहता है।

5.2.6.8 पांडित्य :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में रावण प्रतिनायक होने के साथ साथ पंडित के रूप में भी प्रकट होता हैं । सीता हरण करने के लिये गया हुआ रावण सीता के सामने वेदमन्त्रों का उच्चारण करता है और उस एकान्त स्थान में विनीतभाव से उनसे कुछ कहने को उद्यत होता है -

दृष्टा कामशराविदो ब्रह्मघोषमुदीरयन् ।

अब्रवीत प्रश्रितं वाक्यं रहिते राक्षसाधिय : ।[197]

'मानस' में भी सीता हरण करने गया रावण विविध प्रकार की सुहावनी कथाओं को रचकर सीताजी को राजनीति, भय और प्रेम दिखलाता है -

नाना बिधिकरि कथा सुहाई । राजनीति भय प्रीति देखाई ।[198]

कैलासपर्वत पर अपने विमान की गति रुक जाने पर तथा नन्दी के द्वारा रावण को वापिस लौट जाने के लिए कहने पर कुपित रावण ने कैलास पर्वत को उठाकर फेंक देने का निश्चय किया । रावण पर्वत के मध्य जाकर उसके निचले भाग में भूजाओं को लगाता है, परंतु शिव ने अपने पैर के अँगूठे से पर्वत को दबा दिया और राक्षसराज की भुजाएँ पहाड़ के नीचे दब गयी । भुजाओं की पीडा से मुक्ति पाने के लिए रावण को शिवस्तुति का मार्ग मन्त्रियों ने दिखाया, उस समय रावण ने स्तुति करते हुए स्तोत्रों की रचना की जिसमें रावण के पांडित्य का दर्शन होता है -

एव मुक्तस्तदामात्यैस्तुष्टाव वृषभध्वजम् ।

सामभिर्विविद्यैः स्तोत्रे : प्रणम्य स दशाननः

संवत्सर सहस्त्रं तु रुदतो रक्षसो गतम् ।।[199]

अर्थात् मंत्रियों के ऐसा कहने पर दशमुख रावणने भगवन वृषभध्वज को प्रणाम करके नाना प्रकार के स्तोत्रों के तथा सामवेदोक्त मन्त्रों द्वारा उनका स्तवन किया । इस प्रकार हाथों की पीड़ा से रोते और स्तुति करते हुए उस राक्षस के एक हजार वर्ष बीत गये थे। रावण एक आचार्य की भांति छोटे-मोटे यज्ञ खुद ही कर लेता था। रावण राम के साथ युद्ध में विजय राम के पक्षमें खिसकती हुई देखकर लंका में अपने भवन में यज्ञ करता है -

उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य ।[200]

अर्थात् लंका में रावण मूर्छा से जागकर कुछ यज्ञ करने लगता है । इसी प्रकार

इन्द्रजित की मृत्यु के पश्चात् विलाप करती हुई रानियों को एक पंडित की भाँति उपदेश देते हुए रावण ने कहा कि ''नस्वर जगत सब देख हुँ हृदयँ विचारि''।

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में रावण के पांडित्य को दिखाते हुए दोनों महाकवियों ने पंडित के रूप में उनका चित्रण किया है । रावण महान बुद्धिमान, ज्ञानी पंडित, महान विचारक तथा मित्रता को बढ़ावा देनेवाला प्रिय व्यक्ति था। वह महान और उत्तम व्यक्ति तथा मानवता का उच्च और महान प्रतिरूप था।[200A] वाल्मीकि ने विविध कथा एवं वर्णनों के माध्यम से रावण की पंडिताई को अधिक दिखाया है जबकि तुलसीदास ने सूक्ष्म संकेतों के जरिए रावण के पांडित्य का चित्रण किया है । संक्षेप में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में रावण पंडित था, तपस्वी था, राजनीति कुशल था धीर था, वीर था, पर सबगुणों का उसने दुरुपयोग किया । उसके मरने पर उसका तेज राम के मुख में समा गया । सत् से निकलकर जो शक्ति असत्‌रूप हो गई थी, वह फिर सत् में विलीन हो गई ।[201]

5.2.7.9 सहृदय पिता और भाई के रूप में :-

रावण में अनेक दुर्गुण होने पर भी उसका एक मार्मिक पक्ष है और वह है पुत्रों और भाईयों के प्रति उनका स्नेह । वात्सल्य और सहृदयता जैसे दैवी गुणों की उपस्थिति रावण जैसे अत्याचारी और आतंकी पुरुष में भी दिखाई देती है । 'रामायण' में कुंभकर्ण के वध का समाचार सुनकर रावण शोक से संतप्त एवं मूर्छित हो जाता है और पृथ्वी पर गिर पड़ता है । रावण अपने प्राणों को छोड़कर कुंभकर्ण के पास जाना चाहता हैं, वह कहता है कि -

अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यात्रानुजो मम ।

नहि भ्रातृन समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे ।।[202]

अर्थात् मैं आज ही उस देश को जाऊँगा, जहाँ मेरा छोटा भाई कुंभकर्ण गया है । मैं अपने भाईयों को छोड़कर क्षणभर भी जीवित नहीं रह सकता । इसी प्रकार सीता को

वापिस लौटा देने की बात कहने वाले विभिषण को घर से निकाल देने तथा उनकी बात न मानने का भी रावण को बड़ा अफसोस हैं । वह कहता है कि मैंने महात्मा विभिषण की कही हुई जिन उत्तम बातों का अज्ञानवश स्वीकार नहीं किया था, वे मेरे ऊपर आज प्रत्यक्ष रूप से घटित हो रही है । मैंने धर्मपरायण श्रीमान विभिषण को जो घर से निकाल दिया था, उसी कर्म का यह शोक दायक परिणाम अब मुझे भुगतना पड़ रहा है,[203] कहते हुए रावण में भाईयों के प्रति अगाध स्नेह का दर्शन होता है । भ्रातृप्रेम की भांति रावण में पुत्र प्रेम भी दिखाई देता है । अपने पुत्रों की वीर गति का भारी दुःख है। इन्द्रजित के वध के समाचार से रावण खिन्न हो जाता है और भारी मूर्छा में दब जाता है-

स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वध पुत्रस्य दारुणम् ।

घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं प्राविशन्महत् ।।[204]

अर्थात युद्ध में अपने पुत्र इन्द्रजित के भयानक वध का धोर एवं दारुण समाचार सुनने पर रावण को बडी भारी मूर्छा ने धर दबाया, असहनीय पुत्र वियोग से व्याकुल रावण क्रोध को बरसाता हुआ सीता को मारने के लिए प्रवृत्त होता है ।

'रामायण' की भाँति 'रामचरित मानस' में भी रावण का सहृदय भाई तथा पिता के रूप में चित्रण हुआ है । कुंभकर्ण के वध का समाचार सुनकर रावण विलाप करने लगता है, तुलसीदास ने लिखा है कि -

बहु विलाप दसकंधर करई । बंधु सास पुनि पुनि उर धरई ।[205]

अर्थात् रावण बहुत विलाप कर रहा है । बार-बार भाई (कुम्भकर्ण) का सिर कलेजे से लगाता है । इसी प्रकार पुत्र इन्द्रजित के वध का समाचार सुनकर रावण मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ता है -

सुत वध सुना दसानन जबहीं । मुरूछित भयउ परेउ महि तबही ।[206]

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में रावण का स्नेही भाई तथा स्नेही पिता के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' में रावण कुंभकर्ण और इन्द्रजित का वध हो

जाने पर खूब विलाप करता है, जबकि मानसकार ने केवल संकेत कर दिया है । इन्द्रजित के वध के उपरांत रावण मूर्छा से जागने पर अति क्रोधित हो जाता है, जिससे राक्षस भी डर के मारे दूर भाग जाते हैं । पुत्र मेघनाद के वध से दुःखी रावण सीता तक का वध करने के लिए तैयार हो जाता है । जब कि 'मानस' में तुलसीदास ने लिखा है कि इन्द्रजित के वध से रावण मूर्छित हो गया और मूर्छा से जागने पर अपनी स्त्रियों को शोक न करने के लिए समझाया । 'रामायण' के रावण को विभिषण को घर से निकाल देने का दुःख है, जो कुम्भकर्ण का वध हो जाने पर दिखाई देता है । जब कि 'मानस' में रावण ने विभिषण के प्रति ऐसी कोई सहृदयता नहीं दिखायी । निष्कर्षतः 'रामायण' का रावण 'मानस' के रावण से अधिक भ्रातृस्नेही और पितृस्नेही के रूप में प्रकट होता है ।

निष्कर्षतः 'रामायण' के कई स्थलों पर रावण की भयंकर रूपाकृति का उल्लेख मिलता है । तथापि वहाँ इसे रावण का माया रूप कहा गया है । एक ओर रावण के अत्याचारी परपीड़क और स्वछंद स्वरूप का चित्रण है तो दूसरी ओर उसके शील, शक्ति सौन्दर्य पांडित्य तथा बुद्धि महिमा का स्तवन भी है । 'पद्मपुराण' में भी रावण ने अपने वध की इच्छा से सीता हरण किया था, ऐसा दिखाते हुए उदार कोटि के रूप में उनका चित्रण किया गया है ।[207] तुलसीदास ने रावण को हिरण्याक्ष, जलंधर, राजा प्रतापभानु और जय विजय का पुर्नजन्म प्राप्त व्यक्ति ही माना है । रावण के चरित्र के मूल्यांकन में यह दृष्टि पूर्वाग्रह से युक्त होने के कारण बाधा डालती है । रावण का मौलिक रूप शापों की पृष्ठभूमि के कारण धूमिल पड़ जाता है। नारद अपनी मोहग्रस्त असंतुलित मनः स्थिति में जय विजय को शाप देते हैं अथवा प्रतापभानु को ब्राह्मणों के मुख से जो शाप मिलता है उनकी पृष्ठभूमि में रावण का जन्म एक निर्दोष जीवन की गाथा प्रतीत होता है । अतः तुलसीदास ने आगे जाकर रावण पर चाहे जितना राक्षसत्व लादा हो; रावण के उदय की कारण कथाएँ उसे निदोर्ष सिद्ध करती है । रावण का राक्षसत्व कभी ब्राह्मण दर्प तथा कभी परिस्थिति पर एक दारुण व्यंग्य बनकर अट्टहास

करने लगता है।[208] 'रामायण' और 'मानस' के रावण में प्रत्यक्षतः कुछ अधिक अन्तर है, पर मूलतः वह उतना नहीं है । तुलसीदास ने रावण की निन्दा, तिरस्कार, और लांछना खुलकर की है, परंतु वाल्मीकि भी जब कुंभकर्ण के मुख से विभिषण की प्रशंसा और उसकी भर्त्सना कराते हैं, या शोकग्रस्त मन्दोदरी के मुख से उसकी इन्द्रिय-परायणता पर खेद प्रकट करवाते हैं तो रावण की वास्तविकता छिपी नहीं रहती । अन्तर यही है कि उन्होंने रावण के व्यक्तित्व की प्रभविष्णुता उसकी शक्ति की विराटता और उसके पांडित्य की प्रशंसा की है । राम ने भी रावण की अनेक बार अनेक प्रकार से प्रशंसा की है । वाल्मीकि ने राम के मुख से उनकी प्रशंसा करवाकर रावण का ही नहीं, रामकथा का भी गौरव बढा दिया है । वाल्मीकि के रावण के सीता के प्रति उद्‌गार अधिक सौन्दर्य निष्ठा के सूचक है, जबकि तुलसीदास के रावण के उद्‌गार कोरी कामुकता से भरे हुए है । 'रामायण' में रावण हनुमान को एक अदभूत रूप, धैर्य, सत्य एवं द्युति-सम्पन्न व्यक्ति प्रतीत होता है वहाँ ''मानस' में अंगद को रावण कुरूप 'कज्जलगिरि' के रूप में दिखाई देता है। 'रामायण' में रावण की पत्नियों का विलाप मार्मिक एवं करुणापूर्ण है, जबकि 'मानस' में वह राम के अलौकिक स्वरूप का विवेचन मात्र है । 'रामायण' की मंत्रणाओं में राजनीति कौशल, कुटनीति, निपुणता तथा परस्पर जासुसी पद्धतियों का स्वाभाविक प्रयोग हुआ है जबकि 'मानस' में रावण को परामर्श देनेवाले सभी पात्र या तो राम के अलौकिक रूप की प्रतिष्ठा कर भक्ति भावना का परिचय देते हैं अथवा हरिविमुख रावण की भर्त्सना करते हैं । अंत में वाल्मीकि के राम अपने मुख से रावण की प्रशंसा करते हैं और तुलसी के राम रावण के तेज को पचाकर अपने तेज की वृद्धि करते हैं ।

5.3 'रामायण' ओर 'रामचरित मानस' के प्रमुख स्त्री चरित्र

5.3.1 'रामायण' और 'रामचरित मानस की सीता :-

सीता राम कथा का केन्द्रबिन्दु है । 'रामायण' और 'मानस' की नायिका के रूप में रही हुई सीता के चरित्र में कई जगह पर दैवी गुण दिखाई देते हैं । सीता के चरित्र

में एक परम आदर्श पत्नी, एक परम महिमामयी राजमहिषी, एक आदर्श गृहस्वामिनी के समस्त गुण एक साथ पाए जातें हैं । सीता का व्यक्तित्व अलौकिक और अति प्राकृत है, उसका जन्म किसी मानवी के गर्भ से नहीं, अलौकिक रूप से पृथ्वी से हुआ, उसका अयोनिजा रूप अद्वितीयता की साक्षी देता है । दूसरी ओर वह साक्षात् आदि शक्ति है । लौकिक रूप से सीता पतिपरायण आदर्शपत्नी, आदर्श पुत्रवधू तथा आदर्श कन्या है । सभी स्वरूपों में वे अनिंद्य सुंदरी है । कवि ने कन्या रूप में उसके सात्विक सौन्दर्य का वर्णन किया है । वधू के रूप में इतनी कोमलता है कि भूमि पर कभी पैर नहीं रखा और कपि के चित्र को देखकर डरती है, परंतु पत्नी के रूप में पति के साथ दुर्गम वनों में सहर्ष चली जाती है । सीता के जन्म के सम्बन्ध में पंडितो का मानना है कि वेद में जो सीता कृषि की अधिष्ठात्री देवी थी, वे ही बाद में अयोनिजा कन्या बन गयी, जिन्हें जनक ने हल चलाते हुए खेत में पाया।[209] वाल्मीकि रामायण के उत्तरकाण्ड में वेदवती की कथा के अनुसार रावण से अपमानित होने पर वेदवती ने अपना प्राण त्याग दिया । तत्पश्चात् राजा जनक के हल के मुखभाग से भूभाग को जोते जाने पर सतीसाध्वी कन्या प्रकट होकर वेदवती महाराज जनक की पुत्री सीता के रूप में प्रादूर्भूत होती है।[210] 'रामचरित मानस' में भी तुलसीदास ने सीता के लिए 'ध्रनिसुत'[211] (धरती की कन्या) शब्द का प्रयोग किया है। अदभूत 'रामायण'' के अनुसार सीता मन्दोदरी की पुत्री है और जन्म के साथ मन्दोदरी ने उसे पृथ्वीतल में गाड दिया था । थोडे समय के पश्चात् जनक राजा ने हल से यज्ञ भूमि को खोदा और कन्या के रूप में सीता प्राप्त हुई ।[212] संक्षेप में इन सभी प्रसंगो से इतना स्पष्ट होता है कि सीता अयोनिजा बालिका है । जनक राजा ने पालक पिता के रूप में उसका पोषण किया अतः सीता उनकी पालिता कन्या है ।

5.3.1.1 अद्वितीय सौन्दर्य :-

सीता का सौन्दर्य अद्वितीय है । 'रामायण' और 'मानस' में सीता का सौन्दयशालीनी के रूप में चित्रण हुआ है । सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए महर्षि

वाल्मीकि ने लिखा है कि-

देवताभिः समारूपे सीता श्रीरिव रुपिणी।[213]

अर्थात् सीता रूप में देवांगनाओं के समान थी और मूर्तिमती लक्ष्मी सी प्रतीत होती थी । सीता के रूप पर मोहित होकर अनेक राजाओं ने धनुष उठाने का प्रयत्न किया परंतु विफल होकर मिथिला नगरी में घेरा डालकर पूरी नगरी को एक वर्ष तक पीड़ा देते रहे । 'रामायण' के अरण्यकाण्ड में सीताहरण करने गया हुआ रावण सीता के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता है । सीता को सम्बोधित करते हुए रावण कहता है कि शुभानने तुमश्री, ह्री, कीर्ति, शुभस्वरूपा लक्ष्मी अथवा अप्सरा तो नहीं हो ? अथवा वरारोहे । तुम भूति या स्वेच्छापूर्वक विहार करनेवाली कामदेव की पत्नी रति तो नहीं हो? कहता हुआ रावण सीता के सौन्दर्य का नख शिख वर्णन करता है । सौन्दर्य की देवी सीता की प्रशंसा करते हुए रावण ने कहा कि -

नैवंरूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ।[214]

अर्थात् पृथ्वी पर तो ऐसी रूपवती नारी मैंने आज से पहले कभी देखी ही नहीं थी। रावण की ही भांति शूर्पणखा भी सीता के रूप सौन्दर्य पर मोहित हो जाती है और वह रावण के सामने सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करती हुई कहती है कि उसकी आँखे विशाल और मुख पूर्ण चन्द्र के समान मनोरम है । उसके केश, नासिका उरू तथा रूप बडे ही सुन्दर तथा मनोहर है और दूसरी लक्ष्मी के समान शोभा पाती है । उसके सभी अंग सुडौल और कटिभाग सुन्दर तथा पतला है ।[215] देवताओं, गन्धर्वों, यक्षों और किन्नरों की स्त्रियों में भी कोई उसके समान सुन्दरी नहीं है । इस भूतल पर वैसी रूपवती नारी मैंने पहले कभी नहीं देखी थी -

नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंन्नरी

तथा रूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले ।।[216]

सुन्दरकाण्ड में सीता सौन्दर्य की चरमसीमा को दिखाते हुए रावण कहता है कि-

त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्ता विश्वकृत ।

नहि रूपोपमा हवन्या तवास्ति शुभ दर्शने ।।[217]

अर्थात् शुभदर्शने ! मैं तो ऐसा समझता हूँ कि रूप की रचना करने वाला लोक स्त्रष्टा विधाता तुम्हें बनाकर फिर कार्य से विरत हो गया, क्योंकि तुम्हारे रूप की क्षमता करनेवाली दूसरी कोई स्त्री नहीं है ।

'रामचरित मानस' में भी सीता का अद्वितीय सुन्दरी के रूप में चित्रण हुआ है। बालकाण्ड में धनुषभंग के पूर्व सीता के सौन्दर्य को देखकर राम क्षुब्ध हो जाते हैं और कहते है कि -

जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ।[218]

यानी कि जिसकी अलौकिक सुन्दरता देखकर स्वभाव से ही पवित्र मेरा मन क्षुब्ध हो गया है । सीता की सौन्दर्य राशि का अनुमान इससे भी हो सकता है कि राम सदृश अतुलित रूपवान पुरुष उन्हें देखकर अपनी द्रष्टि को सहसा अलग न कर सके ।[219] सीता के सौन्दर्य से मुग्ध होकर राम हृदय से उनकी सराहना करते हैं किन्तु मुख से वचन नहीं निकलते । सीता की शोभा इतनी अनुपम है कि मानो ब्रह्मा ने अपनी सारी निपुणता मूर्तिमान कर संसार को प्रकट करके दिखा दिया हो । सीता सौन्दर्य के वर्णन की असमर्थता जताते हुए गोस्वामीजी तुलसीदास ने कह दिया कि ''सब उपमा कवि रहे जुठारी । केहि पटतरों बिदेह कुमारी'' अर्थात् सारी उपमाओं को कवियों ने झुठा कर रक्खा है। मैं जनकनन्दिनी श्रीसीताजी की किससे उपमा दूँ। 'रामायण' की भाँति 'मानस' में भी शूर्पणखा अपने भाई रावण के सामने सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करती हुई कहती है कि -

रूप रासि बिधि नारि संवारी । रति सत कोटि तासु बलिहारी ।।[220]

यानी विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड रति (काम देव की स्त्री) उस पर निछावर है ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में सीता का अद्वितीय सुन्दरी के रूप में चित्रण किया गया है । 'रामायण' में सीता हरण करने गया हुआ रावण सीता के सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाता हैं और उनके सौन्दर्य को निरखता हुआ सीता का नख शिख वर्णन करता है , जिससे शृंगार रस उत्पन्न हो जाता है । कवि ने यहाँ रावण के मुंहँ से सत्रह श्लोकों में सीता के अंगो के सौन्दर्य का वर्णन कराया है । शृंगार रस का यहाँ नग्न चित्रण है जिसे एक पतिव्रता स्त्री दूसरे पुरुष के मुख से नहीं सुन सकती । मानसकारने इस विषय को छोड़ दिया है और सीता को जगदम्बा जानकी के रूप में चित्रित किया है । इस प्रकार अपनी दास्य भक्ति का दर्शन करवाते हुए तुलसीदास ने माता जगत् जननी के सौन्दर्य वर्णन में पूरी मर्यादा का परिपालन किया है । संक्षेप में 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में सीता का अद्वितीय सुन्दरी के रूप में चित्रण हुआ है ।

5.3.1.2 विनयशीलता :-

सीता का चरित्र 'रामायण' या 'मानस में नहीं अपितु पूरे भारतीय रामकथा साहित्य में विनम्रता के गुण से भरा हुआ है । कठिन से कठिन परिस्थितियों में उसने अपनी विनम्रता को नहीं छोड़ा है । राम के साथ वन में जाने के लिए वह राम को बड़े प्रेम से कहती है कि नारियों के लिए इस लोक और परलोक में एकमात्र पति ही सदा आश्रय देनेवाला है । हे प्राणेश्वर, केवल पत्नी ही पति के भाग्य का अनुसरण करती है। इस प्रकार सीता सविनय अपने भावों को प्रकट करती है और राम सीता को वन ले जाने के लिए तैयार हो जाते हैं । रेशमी वस्त्रों को धारण करनेवाली जनक नन्दिनी सीता को वल्कल वस्त्र पहनाकर वन भेजनेवाली माता कैकयी से भी कोई दुःख नहीं है। चित्रकूट में जिस विनम्रता से वह माता कौशल्या से मिलती है उसी ही विनम्रता से वह कैकेयी को भी मिलती है । लंका विजय उपरांत श्री राम सीता के चरित्र पर संदेह करते हैं और अपनी पवित्रता की शुद्धता के लिए सीता को अग्नि परीक्षा देने के लिए कहते हैं । उस समय राम के कठोर वचनों को सुनकर सीता की आँखों में से आँसूओं

का अविरत प्रवाह शरु हो जाता है और अग्नि परीक्षा देने के लिए जलती चिता में प्रवेश कर जाती है । 'रामायण' के उत्तरकाण्ड में लोकापवाद से बचने के लिए राम ने सीता का त्याग- कर दिया । सीता के साथ इसी विषय में कोई चर्चा करना उचित न जानते हुए सीधे ही लक्ष्मण को सीता को वन में छोड़ आने की आज्ञा दे दी । वन में पहुँचने पर सीता को पता चलता है कि पति ने उसे त्याग दिया है, तब वह मूर्छित हो जाती है। मूर्छा से जागने पर एक भी कठोर शब्द का प्रयोग न करके उसने अत्यंत दीन वाणी से लक्ष्मण को कहा कि -

मामिकेयं तनुर्नूनं सृष्टा दुःखाय लक्ष्मण ।

धात्रा पस्यास्तथा मेडद्य दुःखमूर्ति प्रदश्यते ।।[221]

अर्थात् लक्ष्मण निश्चय ही विधाता ने मेरे शरीर को केवल दुःख भोगने के लिए रचा है । इसीलिए आज सारे दुःखों का समूह मूर्तिमान होकर मूझे दर्शन दे रहा है । अतः दो-दो बार वन में जानेवाली अपने आप में पूर्ण पवित्र होने पर भी कठोरतम दुखों को सहने वाली सीता ने अपनी विनयशीलता को नहीं छोडा है ।

'रामायण' की भांति 'रामचरित मानस' में भी सीता के चरित्र में विनम्रता का दर्शन होता है । कैकेयी की ओर से मिलें वनवास का उसे कोई दुःख नहीं है, कौशल्या और सुमित्रा की भाँति कैकेयी को भी सीता बड़ी प्रेम से मिलती हैं -

लागि लागि पग सबनि सिय भेंटति अति अनुराग ।[222]

राम वनवास और दशरथ के निधन से खिन्न जनकसूता जानकी अपने माता-पिता के सामने अपने आपको सम्भालती हुई धैय धारण कर लेती है -

सिय पितु मातु सनेह बस विकल न सकी सँभारि ।

धरनि सुतौं धीरजु धरेउ समउ सुधरमु बिचारी ।। [223]

अर्थात् माता-पिता के प्रेम के मारे सीताजी ऐसी विकल हो गयी कि अपने को

संभाल न सकीं । परंतु पृथ्वी की कन्या सीताजी ने समय और सुंदर धर्म का विचार कर धैर्य धारण कर लिया । वन में जाते समय रास्तें में गाँवों की स्त्रियाँ सीताजी के पास आकर डरते हुए संकोचवश राम-लक्ष्मण का परिचय पूछती है । उस समय बड़ी विनम्रता के साथ उन गाँव की स्त्रियों को सीताजी ने राम-लक्ष्मण का परिचय दिया। जिससे गाँव की स्त्रियाँ आनंदित हो जाती है -

भई मुदित सब ग्राम बघूटी । रंकन्ह राय रासि जनु लूटीं ।।[224]

अर्थात् राम-लक्ष्मण का परिचय पाकर गाँव की सब युवती स्त्रियाँ इस प्रकार आनंदित हुई मानों कंगालों ने धन की राशियाँ लूट ली हो । सीता के प्रेम से अभिभूत होते हुए गाँव की स्त्रियाँ सीताजी की मंगल कामना करने लगती है -

सदा सोहागिनी होहु तुम्ह जब लगि महि अहि सीस ।[225]

'रामायण' की भाँति 'रामचरित मानस' में भी राम कठोर वचनों को कहते हुए सीता को अग्नि परीक्षा के लिए प्रवृत्त करते हैं । उस समय श्री राम के वचनों को सिर चढ़ाकर सीता लक्ष्मण को अपने धर्माचरण में सहायक बनाती हुई आग तैयार करने के लिए कहती है -

प्रभु के वचन सीस धरि सीता । बोली मन क्रम वचन पुनीता ।

लछिपन होहु धरम के नेगी । पावक प्रगट करहु तुन्ह बेगी ।[226]

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में अनेक दुःखों को सहती हुई सीता ने अपना विनय नहीं खोया । दोनों महाकाव्यों में सीता विनयशीलता की मूर्ति के रूप में प्रकट होती हैं ।

5.3.1.3. आदर्श पुत्रवधू :-

'रामायण' और 'मानस' में सीताजी ने पुत्रवधू के रूप में एक आदर्श की स्थापना की है । 'रामायण' में वन जाने से पहले राम सीता को वन में साथ न आकर अयोध्या

में रहकर माता-पिता की सेवा करने का उपदेश देते हैं । वह कहते हैं कि यहाँ रहते हुए तुम्हें मेरे पिता दशरथ की वन्दना करनी चाहिए । माता कौशल्या को भी प्रणाम करना चाहिए तथा शेष माताओं के चरणों में भी तुम्हें प्रतिदिन प्रणाम करना चाहिए । उस समय पुत्रवधू के रूप में अपनी जिम्मेदारियों को बताते हुए राम को उत्तर देती हुई सीता कहती है कि –

अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्राच विविधा श्रयम् ।

नास्मि सम्प्रति वक्तव्या वर्तितव्यं यथा मया ।।[227]

अर्थात् मुझे किसके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए, इस विषय में मेरी माता और पिता ने मुझे अनेक प्रकार से शिक्षा दी है, इस समय इसके विषय में मुझे कोई उपदेश देने की आवश्यकता नहीं है । चित्रकुट में भरत के द्वारा अपने श्वसुर महाराज दशरथ की मृत्यु का समाचार पाकर सीता व्यथित हो जाती है । दुःख से नेत्रों में आँसू भर आते हैं और वह अपने पति की ओर भी देख नहीं सकती । कौशल्या भी अपनी पुत्रवधू को प्रगाढ़ प्रेम देती हुई उसे छाती से चिपका लेती है । 'रामायण' के उत्तरकाण्ड में राम के द्वारा त्यागे जाने पर भी सीता पुत्रवधू मर्यादा का पालन करती हुई अपनी सासों को लक्ष्मण के साथ हाथ जोड़कर प्रणाम भिजवाती है।

'रामचरित मानस' में भी सीता का चरित्र पुत्रवधू के रूप में निखरा हुआ है । राम के साथ वन जाती हुई सीता को अपनी सास की सेवा न कर पाने का दुःख है, क्योंकि सास की सेवा करने का समय आया और दैव ने उसे वनवास दे दिया । अतः दीनता भरी वाणी से कहती है मैं अभागिन हूँ जो सास सेवा करने का मेरा मनोरथ था वह पूर्ण नहीं हुआ -

तब जानकी सासु पग लागी । सूनिअ माय मैं परम अभागी ।

सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा । मोर मनोरथु सफल न कीन्हा ।।[228]

वन में सीता को अपने परिवारजनों की चिंता रहती थी । चित्रकुट में रात को

देखे भयानक स्वप्न से सीता चिंतित हो जाती है और वह स्वप्न की बात राम को कहती है कि मैंने स्वप्नमें उदास, दीन और दुःखी अयोध्या के लोगों को तथा सासों को दूसरी ही सूरत में देखा है, कहती हुई वह व्यथित हो जाती है । पुत्रवधू के रूप में एक सुंदर आदर्श को स्थापित करनेवाली सीता ने पुत्रवधू की उन प्रत्येक मर्यादाओं को ध्यान में रखा है । चित्रकुट में अपने माता-पिता से मिलने गयी हुई सीता मन ही मन संकुचा रही है कि मेरी सासों की सेवा छोड़कर अपने माता-पिता की शिबिर में अधिक समय रहना पुत्रवधू के लिए उचित नहीं है । ऐसा सोचती हुई वह मन ही मन संकुचा रही है । उस समय माता सुनयना ने सीता के मन की बात जानकर राजा को बतायी और दोनों ने उनके शील और स्वभाव की सराहना करते हुये सीता को विदा कर दिया -

कहति न सीच सकुचि मन माहीं । इहाँ बसब रजनीं भल नाहीं ।

लखि सख रानि जनायउ राऊ हृदय सराहत सीसी सुभाऊ ।।[229]

युद्धकाण्ड में भी अपनी सास के प्रति उमदा भावना को प्रकट करती हुई सीता कहती है कि मैं श्री राम, लक्ष्मण और अपनी माताकी इतनी चिंता नहीं करती जितनी अपनी सास की करती हूँ ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में सीता को एक आदर्श पुत्रवधू के रूप में चित्रित किया गया है । 'मानस' में गोस्वामीजी ने लोकमर्यादाओं को ध्यान में रखते हुए सीता का पुत्रवधू के रूप में चित्रण किया है । 'रामायण' में सीता को सास-ससुर का प्रेम प्राप्त है परंतु 'मानस' में उससे कहीं अधिक स्नेह आदर प्राप्त है। अतः 'रामचरित मानस' में सीता का पूत्रवधू रूप जितना निखरा हुआ है सम्भवतः 'रामायण' में नहीं है ।

5.3.1.4 पति परायण आदर्श पत्नी :-

दोनों महाकाव्यों में सीता का आदर्श पतिपरायण के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' के अयोध्या काण्ड में राम के साथ वन में जाने की इच्छा रखती हुई सीता की

दलीलों में उसकी उत्कृष्ट स्वामिभक्ति का दर्शन होता है । स्त्रियों के लिए अपने पति के महत्व को प्रकट करती हुई सीता कहती है कि -

न पितानात्मजोवात्मा न माता न सखीजन : ।

इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ।।[230]

अर्थात् नारियों के लिये इस लोक और परलोक में एक मात्र पति ही सदा आश्रय देनेवाला है । पिता, पुत्र, माता, सखियाँ तथा अपना वह शरीर भी उसका सहायक नहीं है । सीता अपने पति श्रीराम को समझाती हुई यहाँ तक कह देती है कि यदि आप वन चलें गये और मुझे आपका वियोग सहना पडा तो निश्चय ही मेरी मृत्यु हो जायेगी अथवा मैं अपने जीवन का परित्याग कर दूँगी । पति-सेवा ही अपने जीवन का मूल उदेश्य समझने वाली सीता श्री राम को कटुशब्द भी कहती है कि हे श्री राम ! आप मुझे वन का डर दिखा रहे हैं परंतु क्या आप साथ हैं तो मेरी रक्षा नहीं कर सकते ? क्या मेरे पिता मिथिला नरेश जनक ने आपको जामाता के रूप में पाकर कभी यह भी समझा था कि आप केवल शरीर से ही पुरुष है, कार्यकलाप से तो स्त्री ही है ? अपने पतिधर्म को दिखाती हुई सीता ने कहा कि जैसे दूसरी कोई कुल कलंकिनी स्त्री परपुरुष पर दृष्टि रखती है वैसी मैं नहीं हूँ । मैं तो आपके सिवा किसी दूसरे पुरुष को मन से भी नहीं देख सकती । अरण्यकाण्ड में मारीचवध के प्रसंग में राम की सहायता के लिए जाने वाले लक्ष्मण पर सीता शब्द रूपी तीखे बाण चलाती हुई श्री राम के प्रति अपने अगाध स्नेह को प्रकट करती हुई कहती है कि यदि श्री राम नहीं रहे तो मैं भी एक क्षण के लिए भी जीवित नहीं रहूँगी । हे लक्ष्मण मैं श्री राम से बिछूड जाने पर गोदावरी नदी में समा जाऊँगी अथवा गले में फाँसी लगा लूँगी अथवा पर्वत के दुर्गम शिखर पर चढ़कर वहाँ से अपने शरीर को नीचे डाल दूँगी या तीव्र विषपान कर लूँगी अथवा जलती आग में प्रवेश कर जाऊँगी, परंतु श्री रघुनाथजी के सिवा दूसरे किसी पुरुष का कदापि स्पर्श नहीं करँगी ।[231] रावण ने राम-लक्ष्मण का कटा मस्तक सीता को दिखाकर उसे विश्वास दिला दिया कि राम और लक्ष्मण को हमने मार दिया है । उस समय सीता

अचेत हो जाती है । थोडे समय पश्चात् जब उसकी मूर्छा तूटती है तब वह भयंकर विलाप करती है । इसी प्रकार राम-लक्ष्मण को इन्द्रजित ने मूर्छित कर दिया उस समय रावण की आज्ञा से सीता को युद्ध भूमि में पुष्पक विमान में लाया जाता है और मूर्छित राम लक्ष्मण को दिखाया जाता है तब सीता उन दोनों की दशा देखकर खूब विलाप करती है । इन प्रसंगों में राम के प्रति सीता का प्रगाढ़ प्रेम तथा पतिव्रता धर्म का दर्शन होता है। युद्धकाण्ड के अंत में सीता के चरित्र पर संदेह प्रकट करनेवाले राम के सामने अग्नि परीक्षा देती हुई सीता पतिव्रता धर्मपरायण के रूप में प्रकट होती है । 'रामायण' के उत्तरकाण्ड में सीता की शुद्धता का विश्वास दिलाते हुए महर्षि वाल्मीकि अनेक शपथ लेते हुए पतिपरायण सीता की शुद्धता को प्रामाणित करते हैं । निष्कर्ष मे 'रामायण' में सीता का उच्च आदर्शोवाली पतिव्रता नारी के रूप में चित्रण हुआ है ।

'रामचरित मानस' में भी तुलसीदास ने सीता को पतिव्रता धर्मचारिणी के रूप में चित्रित किया है । सीता धनुषयज्ञ के पूर्व राम के सौन्दर्य का देखकर मुग्ध हो जाती है और राम को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए भवानी माता के मंदिर में जाकर प्रार्थना करती है । 'रामायण' की ही भांति 'मानस' के अयोध्या काण्ड में वन की भयानकता को दिखाते हुए सीता को अयोध्या में ही रहने का आग्रह राम करते हैं। उस समय वन में ले जाने का आग्रह करती हुई सीता राम से बहुत सी दलीलें करती हैं, जिसमें सीता द्वारा पतिव्रता स्त्रियों के लिए उच्चादर्शो की स्थापना होती है। राम के साथ वन जाने की हठ करती हुई सीता राम को विनंति करती हुई कहती है कि यदि चौदह वर्ष की अवधि तक मुझे अयोध्या में रखेगें तो समझ लीजिए कि मेरे प्राण नहीं रहेंगे । मैंने यह मन में ही समझ लिया है कि पति के वियोग के समान जगत् मे कोई दुःख नहीं है -

मैं पुनि समुत्रि दीखि मन माहिं । पियं वियोग सम दुःख जग नाही ।[232]

अरण्यकाण्ड में अत्रिजी की पत्नी अनसूया ने सीता को पतिव्रता धर्म की शिक्षा देते हुए सीता को श्रेष्ठ पतिव्रता दिखाते हुए कहा कि हे सीता ! तुम्हारा नाम लेकर ही

स्त्रियाँ पतिव्रत धर्म का पालन करेगी। यह कथा तो मैंने संसार के हित के लिए कहीं है-

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं ।

तोहि प्रानप्रिय राम कहिऊँ कथा संसार हित ।[233]

सीताजी के पतिव्रता धर्म से ही रावण पत्नी मन्दोदरी और त्रिजटा को सीता के प्रति अपने मन में कोमल भावना है ।[234] रामायण की भांति 'मानस' में भी लंकाकाण्ड के अंत में राम के वचनों को सिर चढ़ाकर मन, वचन और कर्म से पवित्र श्री सीताजी ने अग्नि परीक्षा देते हुए पतिव्रता का विश्वास श्री राम को दिया है ।

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में सीता का पतिव्रताधर्मचारिणी के रूप में चित्रण किया गया है । 'रामायण' में राम के साथ वन जाने के लिए सीता राम के मना करने पर उनको कहुवचन सुनाती है । मानसकार ने सीता के मुख से राम को कटुवचन कहना उचित नहीं जाना । 'हनुमन्न नाटक'[235] के कथानक की तरह 'मानस' में धनुषयज्ञ के पूर्व सीता राम के सौन्दर्य पर मोहित हो जाती है, परंतु महाराज जनक की ओर से रखी हुई धनुषभंग की शर्त का स्मरण होने से दुःखी हो जाती है । वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग का अभाव है । 'मानस' के केवट प्रसंग में नाव से उतरने के पश्चात् राम के पास केवट को देने के लिए कुछ भी नहीं है । उस समय पति के हृदय की बात को समझने वाली सीता ने अपनी अँगूठी उतार कर राम को दे दी जिसमें सीता के हृदय में रही हुई राम के प्रति प्रेम की प्रगाढता का दर्शन होता है । वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग को छोड़ दिया है । 'रामायण' और 'मानस' दोनों महाकाव्यों में सीता अपने पातिव्रत्य धर्म की शुद्धता के लिए अग्नि परीक्षा देती है । 'रामायण' में सीताजी अपने जीवन के अंतिम समय में भी अपनी शुद्धता का प्रमाण देती हुई धरती में समा जाती है जबकि 'मानस' में सीताजी का धरती में समजाने की कथा को तुलसीदास ने छोड़ दिया है । संक्षेप में पातिव्रत्य धर्म का पालन करनेवाली सीता के उत्तमशील एवं तपोजन्य शक्ति के कारण ही हनुमानजी को भस्म करने के लिए प्रज्वलित की गयी अग्निशान्त हो गयी थी । हनुमानजी की तो यह दृढ़ धारणा थी कि अपनी सत्य निष्ठा,

पतिपरायणता एवं तपस्या के कारण सीता ही अग्नि को जला सकती थी किन्तु स्वयं दाहक अग्नि उसे पीड़ा नहीं पहुँचा सकती थी ।[236] 'रामायण' और 'मानस' में सतीत्व साधना, तपोजन्य शक्ति तथा उत्तम शील जैसे गुणों से सीता का चरित्र आदर्श पत्नी के रूप में निखर उठा है । अतः द्वारका प्रसाद मिश्र के अनुसार रावण द्वारा सीता का हरण उसके जीवन की सबसे भयंकर घटना थी । परंतु इस कसौटी पर चढ़े बिना सीता का पति प्रेम अपनी आभा से सारे भारत को आलोकित नहीं कर सकता था ।[237]

5.3.1.5 मर्यादा पालन :-

'रामायण' और 'मानस' दोनों महाकाव्यों में सीता के चरित्र में मर्यादा पालन का उच्चगुण भी दिखाई देता है । 'रामायण' में सीता हरण के लिए ब्राह्मण वेश में आये हुये रावण ने सीता को अपना परिचय पूछते हुए वन में आने का प्रयोजन पूछा तो सुनकर सीता स्तब्ध हो जाती है और मन ही मन सोचने लगती है कि यह ब्राह्मण और अतिथि है, यदि इनकी बात का उतर न दिया जाये तो ये मुझे शाप दे देंगे, यह सोचकर सीता ने अपना परिचय देते हुए वन में आने का प्रयोजन बताया । सुन्दरकाण्ड में सीता को पत्नी बनाने के लिए रावण विविध प्रलोभन दिखाते हैं परंतु सीता मन में केवल अपने पति श्री राम का ही चिन्तन करती है । रावण के साथ बात करने से पहले सीता मर्यादा वश तिनके की ओट ले लेती है । हनुमानजी ने सीताजी को यह कहा कि हे सति साध्वी देवी । आप मेरी पीठ पर बैठ जाईए मैं आपको इस राक्षस जनित दुःख से छुटकार दिला दूँगा । उस समय हनुमानी के वचन सुनकर सीता को आनंद हुआ परंतु अपनी पतिव्रता नारी की मर्यादा को दिखाते हुये हनुमानजी को इस प्रकार कहा कि -

भर्तुर्भवित पुरस्कृत्य रामादन्दस्य वानर
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्र मिच्छेयं वानरोत्तम ।।[238]

अर्थात् वानर श्रेष्ठ ! पति भक्ति की ओर द्रष्टि रखकर मैं भगवान श्री राम के सिवा दूसरे किसी पुरुष के शरीर का स्वेच्छा से स्पर्श करना नहीं चाहती । रावण द्वारा

किये गये जबरदस्ती स्पर्श से भी वह व्यथित है, उसी बात को प्रकट करती हुई वह कहती हैं कि रावण के शरीर से मेरा स्पर्श हो गया था परंतु उस समय मैं असमर्थ अनाथ और बेबस थी क्या करती !

'रामचरित मानस' में भी सीता का मर्यादावादी के रूप में चित्रण हुआ है । फूलवाडी में रामदर्शन करती हुई सीता को अज्ञान वश देर हो जाती है, उस समय उसे मन में माता का डर सताता है और वहाँ से शीध्र ही लौट जाती है । ''भयउ विलंबु मातु भय मानी ''[239] अयोध्याकाण्ड में पुत्रवधू की मर्यादाओं का पालन करते हुए सीताजी को जबतक कौशल्या की आज्ञा नहीं मिलती तब तक अपने पिता से मिलने नहीं जाती । इतना ही नहीं अपनी सासों की सेवा छोड़कर माता-पिता के पास अधिक समय व्यतित करना सीताजी को अनुचित लगता है अतः वह मन ही मन संकुचाती है । अंत में माता सुनयना सीता की मनोदशा को समझ जाती है और उसे विदा करती है । इस प्रकार सुन्दर काण्ड में रामकथा कहते हुए हनुमानजी सीताजी के आग्रह पर प्रकट होते हैं परंतु सीताजी को संदेह होता है कि रामदूत के रूप में कोई दानव है, तो अपने पातिव्रत्य धर्म की मर्यादा बनाये रखकर अन्य पुरुष के मुख को न देखते हुए अपना मुख फेर लेती है । परंतु हनुमान जी की ओर से करुणानिधान की सौगन्ध लेने पर सीता को विश्वास होता है ।[240]

इस प्रकार सीता का दोनों महाकाव्यों में मर्यादावादी के रूप में चित्रण हुआ है। 'रामचरित मानस' के बाल काण्ड में भवानी की पूजा करने गई सीता पुष्पवाटिका में फूल चूनने आये हुये राम को बार बार, निरखती है, उसी प्रकार राम भी सीता को बार बार निरखते हुए उनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं । इसी प्रसंग में सीता के मर्यादावाद का खण्ड़न होता हुआ दिखाई देता है । धनुष तोड़ने की जनक राजा की शर्त अभी पूरी भी नहीं हुई और सीता का राम के प्रति मोहित होना मर्यादा का खण्ड़न है । वाल्मीकि रामायण में इस प्रसंग का अभाव है । निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों में सीता को मर्यादावादी के रूप में चित्रित किया गया है । 'मानस' में राम के साथ पूर्वराग

दिखाने के मोह में पुष्पवाटिका में राम सीता एक दूसरे को निरखते हैं का प्रसंग गोस्वामीजी ने दिया है । निरखने के प्रसंग को छोड़कर अन्यत्र सीताजी को मर्यादावादी के रूप में चित्रित किया है ।

5.3.1.6 धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत :-

दोनों महाकाव्यों में सीता धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत दिखाई देती है । 'रामायण' में राम के राज्यभिषेक से पहले सीता राम के साथ श्रीनारायण की उपासना करती है और भगवान विष्णु के मंदिर में श्री नारायणदेव का ध्यान करते हुये कुश की चटाई पर सोती है । वन मे जाते समय सीता भागीरथी की बीचधारा मेें पहुँचकर गंगाजी से प्रार्थना करती है कि चौदह वर्ष की अवधि समाप्त कर हम सकुशल अयोध्या लौट आयेंगे तो मैं बड़ी प्रसन्नता से आपकी पूजा करुँगी।[241] इसी प्रकार नदी के तट पर रहे और देवी देवताओं के पूजन का भी प्रण करती है। राम ने जब सीता के चरित्र पर संदेह करते हुए उसका त्याग कर दिया तब अपने चारित्र्य की शुद्धता के लिए अग्नि परीक्षा देती हुई सीता अग्निदेव तथा अन्य देवताओं को प्रार्थना करती हुई कहती है कि यदि भगवान सूर्य, वायु, दिशाएँ, चन्द्रमा, दिन, रात दोनों सन्ध्याएँ, पृथ्वीदेवी तथा अन्य देवता भी मुझे शुद्ध चरित्र से जानते हो तो अग्निदेव मेरी सब ओर से रक्षा करें ।[242] धार्मिक भावनाओं से जुड़ी हुई सीता ने केवल पूजा अर्चन ही नहीं किया परंतु उसने आवश्यकतानुसार धर्मउपदेश भी दिया है । वह राम को विचरते हुये पशु-पक्षियों का वध न करने के लिए समझाती हैं। ऋषियों की रक्षा के लिए राक्षसों के वध की राम की प्रतिज्ञा से दुःखी सीता कहती है कि है वीरवर आपको धनुष लेकर किसी तरह बिना बैर ही दण्डकारण्यवासी राक्षसों के वध का विचार नहीं करना चाहिए । बिना अपराध के किसी को मारना संसार के लोग अच्छा नहीं समझेंगे ।[243] अपना हरण करनेवाले रावण को भी सीता ने परस्त्री हरण पाप बताते हुए सत्यथ पर चलने का उपदेश दिया । सीता को कष्ट देनेवाली राक्षसियों का वध करने के लिए प्रवृत हनुमानजी को धर्म का उपदेश देते हुये सीताजी ने कहा कि पुरुष को पापी, पुण्यात्मा एवं वध्य व्यक्तियों पर भी दया

करनी चाहिए । साधु पुरुष का आभुषण उनका चरित्र है, कहते हुए दया धर्म का उपदेश देकर राक्षसियों को न मारने के लिए समझाया ।

'रामचरित मानस' में भी सीता को धर्मज्ञा के रूप में चित्रित किया गया है । प्रथम राम दर्शन के पश्चात् सीता भवानी के मंदिर में जाकर उनके चरणों को पकडकर अपने मनोरथों की पूर्ति के लिए प्रार्थना करती है । वन जाते समय गंगाजी की पूजा करती है और पति एवं देवर के साथ वन से कुशलपूर्वक लौट आने पर पूजा करने की कामना करती है-

पति देवर संग कुसल बहोरी । आई करौं जेहि पूजा तोरी ।[244]

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस की सीता का चित्रण धर्मचारिणी के रूप में हुआ है । धनुषभंग के पहले सखियों के साथ सीता का पार्वती पूजन के लिये जाना 'रामायण' में नहीं है । दोनों महाकाव्यों में सीता ने गंगा का पूजन किया। 'रामायण' में भागीरथी का आशीर्वाद सीता को नहीं मिलता जबकि 'मानस' में गंगाजी का आशीर्वाद प्राप्त होता है । 'रामायण' में गंगापूजन के पश्चात् सीताजी दान करने का भी संकल्प करती है जबकि 'मानस' में दान का संकल्प नहीं है । संक्षेप में दोनों महाकवियों ने सीता को धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत के रूप में चित्रित किया है।

5.3.1.7 क्षत्राणी के रूप में :-

दोनों महाकाव्यों में सीता के चरित्र में .क्षत्राणी का गुण भी दिखाई देता है । वन में जाने से पहले राम सीता को वन की कठिनाईयों और भयानक राक्षसों का डर दिखाते हुए सीता को वन में आने के लिए मना करते हैं, परंतु सीता पर उनका कोई प्रभाव नहीं पड़ता । वन में साथ आने की अपनी तीव्र इच्छा को दिखाते हुये राम को यह भी कह देती है कि यदि आप मुझे वन में साथ नहीं ले गये तो मैं विष खाकर अपने प्राणों को छोड़ दूँगी । सीताहरण करने आये हुए रावण को भी वह एक क्षत्राणी की भांति फटकारती हुई कहती है कि अभागे राक्षस ! तेरा इतना साहस ! तू श्री रघुनाथी के

प्यारी पत्नी का अपहरण करना चाहता है । निश्चय ही तुझे बहुत से सोने के वृक्ष दिखाई देने लगे हैं - अब तू मौत के निकट जा पहुँचा है ।[245] रावण अपनी वीरता की बड़ी-बड़ी डिंग मारता है फिर भी जरा सी विचलित हुए बिना राम के प्रभाव और क्रोध को दिखाते हुए वह रावण पर कटु शब्दों को बरसाती है । लंकाविजय के उपरांत राम सीता के चरित्र पर संदेह करते हैं, उसी समय अपनी पतिव्रता का परिचय देने के लिए सीता बिना संकोच अग्नि में प्रवेश करके अपनी शुद्धता का परिचय देती है ।

'मानस' में भी सीता के क्षत्राणी रूप का दर्शन होता है । सीताहरण के लिये आये हुए रावण को सीता धैर्यता से कहती है कि अरे दुष्ट । खड़ा तो रह प्रभु आ गये। अरे राक्षस तू काल के वश हो गया है । कहती हुई सीता रावण पर फटकार बरसाती है। सुन्दरकाण्ड में सीता को मनाने के लिए आये हुये रावण को सीता ने बिना डरे उनको जुगनू के समान तथा राम को सूर्य के समान दिखाते हुये कहा कि रे पापी । तू मुझे सुने में हर लाया है । रे अधम ! निर्ल्लज तुझे लज्जा नहीं आती ? अतः सीता ने त्रिलोक विजयी की डिंग मारनेवाले रावण का अपमान कर दिया । 'रामायण' की भांति अपने चारित्र्य की शुद्धता के लिए सीता ने राम के कटु शब्दों को सर चढ़ाते हुए अग्नि परीक्षा देने पर सीता में सच्ची क्षत्राणी का रूप प्रकट होता है।

इस प्रकार दोनो महाकाव्यों में सीता का क्षत्राणी के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' के वन गमन प्रसंग में सीता राम पर विविध आक्षेप करती हुई दिखायी गयी है जबकि 'मानस' में सीता के इस प्रकार के व्यवहार को नहीं दिखाया गया है। 'रामायण' में सीता हरण करने आये हुए रावण को सीता कटु शब्दों द्वारा खूब उपेक्षित करती है जबकि मानसकार ने कथा को व्याप न देते हुए एक दोहे में ही क्रोध से रावण को फटकार ने की बात कह दी है । 'रामायण' में सीता के चरित्र में क्षत्राणी का रूप उभरा हुआ है। परंतु 'मानस' में सीता के चरित्र में विनम्रता, कोमलता, प्रेम आदि गुणों की अधिकता से क्षत्राणी सहज स्वाभाविक गुण दब गया है। निष्कर्ष में दोनों महाकवियों ने सीता को क्षत्राणी के रूप में प्रकट करने का प्रयास किया है ।

5.3.1.8 पतिप्रेम :

'रामायण' में राम का सीता के प्रति उत्कृष्ट प्रेम दिखाई देता है । राम के सीता के प्रति प्रेम को प्रकट करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है कि -

रामश्च सीतया सांर्ध विजहार बहूनृतन ।

मनस्वी तद्गतमनास्तस्या हृदि समर्पितः ।।[246]

अर्थात् श्री रामचन्द्रजी सदा सीता के हृदय मंदिर में बिराजमान रहते थे तथा मनस्वी श्री राम का मन भी सीता में ही लगा रहता था; श्री राम ने सीता के साथ अनेक ऋतुओं तक विहार किया। 'रामायण' में राम और सीता के प्रेम की संवादितता को प्रकट करते हुए कविने लिखा है कि सीता श्री राम को बहुत ही प्रिय थी क्योंकि वे अपने पिता जनकराजा द्वारा श्रीराम के हाथ में पत्नी रूप से समर्पित की गई थी । सीता के पातिव्रत्य आदि गुण से तथा उनके सौन्दर्य गुण से भी श्रीराम को उनके प्रति अधिकाधिक प्रेम बढ़ता रहता था । श्री राम एक मात्र उन्हीं को चाहते थे जैसे लक्ष्मी के साथ देवेश्वर भगवान विष्णु की शोभा होती है, उसी प्रकार उन सीता देवी के साथ राजर्षि दशरथ कुमार श्री राम परम प्रसन्न रहकर बड़ी शोभा पाते थे ।[247] सीता के मन को लुभाने वाले स्वर्णमृग के पीछे गये राम जब वापिस लौटते हैं तब सीता को कुटिया में न पाने से वह व्याकुल हो जाते हैं और बाणों द्वारा त्रिलोक का विनाश करने के लिए तत्पर होते हैं -

नैव देवा न दैंतेया न पिशाचा न राक्षसा :।

मविष्यन्ति मम क्रोधात् त्रैलोक्य विप्रणाशिते ।।[248]

अर्थात् मेरे क्रोध से त्रिलोकी का विनाश हो जाने पर न देवता रह जायेंगे न दैत्य, न पिशाच रह पायेंगे न राक्षस । इस प्रकार राम का विलाप और क्रोध में सीता के प्रति प्रेम की गहनता का दर्शन होता है ।

'रामचरित मानस' में भी राम का सीता के प्रति अगाध प्रेम का दर्शन होता है। पुष्पवाटिका में सीता के साथ प्रथम मिलन में राम उनके सौन्दर्य पर क्षुब्ध हो जाते हैं और मनमें उनके प्रति प्रेम बन्धन को बाँध लेते हैं । 'रामायण' की भाँति 'मानस' में भी राम कोमलांग सीता को वन की भयानकता दिखाते हुए वन में आने से रोकते हैं। परंतु राम की बात न मानकर सीता वन में साथ जाती हैं तो राम अपनी प्रियतमा सीता को पूरी तरह से प्रसन्न रखने का प्रयत्न करते हैं जो 'मानस' की इन पक्तियों से प्रकट होता है -

एक बार चुनि कुसुम सुहाए । निज कर भूषन राम बनाएँ ।

सीतहि पहिराए प्रभु सादर । बैठे फटिक सिला पर सुंदर ।।[249]

अर्थात् एक बार सुन्दर फुल चुनकर श्रीराम ने अपने हाथों से भांति भांति के गहने बनाये और सुन्दर स्फटिकशिला पर बैठे हुए प्रभु ने आदर के साथ वे गहने श्री सीताजी को पहनाये । 'रामायण' की भाँति राम ने अपनी पत्नी सीता का अपमान करनेवाले इन्द्रपुत्र जयन्त को कडा दण्ड़ दिया । स्वर्णमृग मारने गये राम ने जब लक्ष्मण को आते देखा तो तुरंत उन्हें सीता की चिंता होने लगती है और लक्ष्मण को कहने लगे -

रघुपति अनुजहि आवत देखी । बाहिज चिंता कीन्हि बिसेषी ।

जनक सुता परिहरिहु अकेली । आयहु तात बचन मम पेली ।।[250]

यथा है भाई, तुमने जानकी को अकेली छोड़ दिया और मेरी आज्ञा का उल्लंघन कर यहाँ चले आये। लंका से लौटे हुए हनुमान जी ने जब सीताजी का दुःख राम को सुनाया तब सुनते ही राम की आँखों में से अश्रुधारा बहने लगती है -

सुनि सीता दुःख प्रभु सुख अपना । भरि आए जल राजिव नयना ।।[251]

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में सीता के प्रति प्रगाढ़ प्रेम का चित्रण हुआ है । 'रामायण' में राम को मानव के रूप में चित्रित करते हुए वाल्मीकि ने सीता के विरह में राम को अधिक व्याकुल दिखाये है । विरहाग्नि में ही सीता के बिना

मरने की बातें करना तथा इन्द्रजित के द्वारा मायामयी सीता का वध होने का समाचार सुनकर राम का मूर्छित होना आदि 'रामायण' की सीताविरह की राम की व्याकुलता 'मानस' में नहीं है । 'मानस' में सीता की अग्नि परीक्षा न लेते हुए राम अग्निदेव के पास से मूल रूप में सीता को प्राप्त करते है, प्रसंग को देकर तुलसीदास ने राम का सीता के प्रति प्रेम को बढ़ा दिया है । जबकि महर्षि वाल्मीकि ने राम का कठोर रूप दिखाते हुए सीता पर राम का संदेह और अग्नि परीक्षा लेने के प्रसंग में राम सामान्य मनुष्यों की भाँति संदेहवृति से पत्नी की शुद्धता की परीक्षा लेते हैं । इसी प्रकार रामायण के उतरकांड में सर्वत्र फैले हुये लोकापवाद से राम सीता को पुनः वन भेज देते हैं । पुनः वन भेजने के विषय में राम ने इसी विषय में सीता के समक्ष चर्चा करना भी उचित न जानते हुए लक्ष्मण को सीधे ही आज्ञा दे देते हैं कि सीता को वन में छोड़ आओ । इस प्रकार 'रामायण' के अग्नि परीक्षा और पुनः वनवास के प्रसंगों से राम का सीता के प्रति प्रेम पक्ष-थोड़ा सा निर्बल दिखाई देता है। यह भी स्पष्ट है कि सीता विरह में राम की व्याकूलता भी इतनी तीव्र है जो एक सामान्य मनुष्य की होती है और अपनी प्रियतमा के प्रेम की परीक्षा लेने का ढँग भी इतना ही कठोर ओर तीव्रतम है, जिससे राम सीता का प्रेम तपे हुए सोने की भांति और चमकता है । जबकि मानसकार ने अग्नि परीक्षा के प्रसंग में परिवर्तन कर दिया है अतः पुनः वनवास के प्रसंग को छोड़ते हुए राम का सीता के प्रति उज्जवल प्रेम का चित्रण करवाया है ।

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि वाल्मीकि ने सीता का पालन करते हुए एक पिता की भाँति पुत्री के गुण दोषों को दिखाते हुए सीता का यर्थाथ चित्रण किया है परंतु मानसकार ने सीता में जगत्जननी आराध्यमाता के रूप को देखते हुए सीता के आदर्श मर्यादावादी रूप का चित्रण किया है । 'रामायण' में सीता की दिव्योत्पति, अलौकिक आचरण और अवतारवाद के अनेक संकेत मिलते हैं । इन्ही अलौकिक तत्वों का 'मानस' में तुलसीदास ने विकास कर दिया है ।[252] वाल्मीकि की सीता में अपना पृथक आकर्षण और निजी विशेषता है । जबकि मानसकार की सीता की अतिशय विनयशीलता, आदर्श पत्नी, आदर्श, पुत्रवधू तथा आदर्श कन्या है । उनके चरित्र में

गतिमयता लाने का कवि को अवकाश नहीं है । सीता के रूप सौन्दर्य के चरमोत्कर्ष का चित्रण वाल्मीकि और तुलसीदास ने समान भाव से किया है । परंतु तुलसीदास में एक आदर्श की प्रतिष्ठा सर्वत्र रही है । दोनों ही महाकाव्यों में सीता का लौकिक चरित्र यर्थाथ और आदर्श दोनो दिशाओं में विकसित हुआ है । दोनों ही महाकवियों ने सीता को पातिव्रत का चरम प्रतिमान माना है । दोनों महाकाव्यों की सीता में भारतीय कुलवधू का आदर्श है । दोनों महाकाव्यों की सीता पति और देवर के लिए भागीरथी के सामने मनौति रखती है । 'मानस' की सीता में ऐसे प्रसंगो की वृद्धि हुई है । चित्रकुट के प्रसंग में सीता माता-पिता से मिलने के बाद अपनी शिबिर में लौट आती है । अंत में आर.सी.दत्त के शब्दों में ''इस विशाल भारत में किसी ऐसी स्त्री का होना सम्भव नहीं है जिसने सीता की दुःखभरी कथा न सुनी हो और जिसके लिए सीता का चरित्र आदर्श एवं अनुकरणीय न रहा हो ।[253] वाल्मीकि की सीता के चरित्र का एक सबसे अधिक महत्वपूर्ण पहलु जो उसीकी अपनी निजी विशेषता है जो उसके चरित्र का सबसे बड़ा आकर्षण हैं और जो सीता का वस्तुतः 'सीतापन' है, वह है आदि कवि की सीता की तेजस्विता, दीप्ति और गरिमा । सीता के चारों ओर प्रकाश का एक ऐसा तेजोमय मण्ड़ल है जिसका अतिक्रम करना सहज नहीं । प्रभा मण्डल उसे साधारण से असाधारणता की ओर ले जाता है।[254] तुलसीदास की सीता तत्कालीन अभिशप्त, शोषित एवं दमित नारीत्व का प्रतीक है। उनकी सीता में उनके युग की, मर्यादा की शृंखलाओं में जकड़ी हुई पराधीन निःसत्व नारी का एक अन्तयन्त वास्तविक चित्र उपलब्ध होता है जिसे तुलसीदास ने अपने आदर्शो का पुट देकर यथा सम्भव एक महान रूप देने का प्रयत्न किया है।[25]

5.3.2 'रामायण' और 'रामचरित मानस' की कैकेयी :-

कैकयराज की कन्या और महाराज दशरथ की पत्नी कैकेयी 'रामायण' एवं 'रामचरित मानस' का सर्वाधिक महत्पूर्ण पात्र है । कैकेयी के ही कारण कथा में नाटकीय परिवर्तन आता है । राम के राज्याभिषेक के समय मंथरा द्वारा जिसकी मति भ्रष्ट की गयी थी उस कैकेयी ने महाराज दशरथ से दो वर मांगे 1. राम को बनवास और 2. भरत को राजगद्दी । कैकेयी के चरित्र में खटकनेवाली दो बातें हैं एक तो ईर्ष्या से इतना आविष्ट हो जाना कि पुत्र और पति का त्याग स्वीकार करने को प्रस्तुत होना और पति की मृत्यु को पुत्र प्रेम के आवेश में लघुहानि बताना । इनका चरित्र आरंभ में अत्यंत उदात्त है परंतु मंथरा द्वारा उकसाये जाने पर उसका पुत्र प्रेम और सपत्नी के प्रति ईर्ष्या भाव दोनों मिलकर उसके भविष्य में अंधकार फैला देते हैं । दोनों महाकाव्यों में कैकेयी को नारी सुलभ दुर्बलताओं से युक्त, सपत्नी विद्वेष से पीड़ित, महात्वाकांक्षाओं से उत्तेजित तथा स्त्रीहठ से अनुप्रेरित नारी के रूप में प्रस्तुत किया गया है ।

5.3.2.1 सरल हृदया नारी :-

दोनों महाकाव्यों के प्रारंभ में कैकेयी सरलहृदया के रूप में प्रकट होती है । 'रामायण' में राम का राज्याभिषेक कैकेयी के लिए अनिष्टकारी होगा ऐसा जान मंथरा ने कैकेयी को इस बात की खबर देते हुए भड़काना चाहा परंतु कैकेयी राम के राज्यानिभषेक के समाचार से प्रसन्न हो जाती है और मंथरा को पुरस्कार के रूप में दिव्य आभुषण देती है । मंथरा में राम के राज्याभिषेक की प्रसन्नता को देखकर कैकेयी श्री राम के गुणों की प्रशंसा करती हुई कहती है कि वह राजधर्म के ज्ञाता, गुणवान और जितेन्द्रिय हैं, वे दीर्धजीवी होकर अपने भाईयों और भृत्यों का पिता की भाँति पालन करेंगे । राम के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करती हुई वह कहती है कि–

यथा वै भरतो मान्यस्तथा भूयोडपि राघव : ।
कौसल्यातोडतिरिक्तं च मम शुश्रुषते बहु ।।

अर्थात् मेरे लिए जैसे भरत आदर के पात्र हैं वैसे ही बल्कि उससे भी बढ़कर श्री राम हैं । वे कौसल्या से भी बढ़कर मेरी बहुत सेवा किया करता हैं ।

'रामायण' की भाँति 'रामचरित मानस' में भी प्रारंभ में कैकेयी सरल हृदया के रूप में प्रकट होती है । राम के राज्याभिषेक के समाचार से खिन्न मंथरा कैकेयी को उकसाने का प्रयत्न करती है तो वह उसको डाँटती हुई कहती है कि...

पुनि अस कबहूँ कहसि घरफोरी । तब धरि जीभ कढावउँ तोरी ।। [257]

यानी अब चूप रह घर फोडी कहीं की फिर कभी ऐसा बात कही तो जीहवा काट लुँगी । मंथरा पर भरोसा न करती हुई वह कहती है कि कानों, कुबड़ों, कुटिल और कुचाली होते हैं, उनमें भी स्त्री और खासकर दासी । मंथरा को समझाती हुई वह कहती है कि बड़ा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है यह सूर्यवशं की सुहावनी रीति है । राम के गुण से प्रभावित कैकेयी विधाता से राम जैसे पुत्र और सीता जैसी बहु को माँगती है । राम उसके लिये प्राणों से भी प्यारे है ं। ऐसे प्राण प्यारे राम के राज्याभिषेक के अवसर पर मंथरा को क्षोभ न करने के लिए समझाती है –

जौ बिधि जनमु देइ करि छोहु । होहूँ राम सिय पूत पुतोहू ।
प्रान तें अधिक रामु प्रिय मोरें । तिन्ह के तिलक छोभु कस तोरे ।।[258]

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में कैकेयी को प्रारंभ में सरल हृदया नारी के रूप में चित्रित किया है ।

5.3.2.2 वीरांगना :-

'रामायण' और 'मानस' में कैकेयी का वीरांगना के रूप में चित्रण हुआ है। 'रामायण' के अयोध्याकाण्ड़ में वाल्मीकि ने कैकेयी की वीरता को प्रकट करता हुआ एक प्रसंग दिया है, जिसमें दक्षिण दिशा के वैजयन्त नगर के शम्बर असुर ने इन्द्र के साथ युद्ध किया था, उसी युद्ध में महाराज दशरथ ने भी हिस्सा लिया था । उस समय असुरों ने दशरथ के शरीर को जर्जर कर दिया तब सारथि का काम करती हुई कैकेयी पति को दूर हटाकर उनकी रक्षा करती हैं । परंतु वहाँ भी असुरों ने आक्रमण करके

दशरथ को और घायल कर दिया तो कैकेयी वहाँ से भी पति को दूर ले जाकर उनसे बचा लेती है – जिससे प्रसन्न होकर महाराज दशरथ ने कैकेयी को पुरस्कार के रूप में दो वचन दिये थे। 'मानस' में इस प्रसंग की कथा को गोस्वामीजी ने विस्तार से नहीं दिया परंतु मंथरा के द्वारा कैकेयी को याद दिलाया गया है कि महाराज के पास धरोहर के रूप में दो वचन हैं । इस प्रकार कैकेयी के वीरत्व को दिखाते हुए 'रामायण' में वाल्मीकि ने देवासुर संग्राम के पूरे प्रसंग को दिया है जबकि मानसकार ने इस ओर संकेत मात्र करके प्रसंग को छोड़ दिया है ।

5.3.2.3 पतिप्रेम :-

'रामायण' और 'मानस' दोनों में कैकेयी को दशरथ की ओर से अन्य राणियों की तुलना में अधिक प्रेम प्राप्त होता है । इसी संदर्भ में वाल्मीकि ने लिखा है कि –

सवृद्धस्तरूणी भार्या प्राणेभ्योऽपि गरीयसीम् ।[259]

अर्थात राजा बूढे थे और उनकी पत्नी तरुणी थी अतः वे उसे अपने प्राणों से भी बढ़कर मानते थे । रामके राज्याभिषक के सामाचार दशरथ सबसे पहले कैकेयी को सुनाने के लिए उसके भवन में जाते हैं । अपने भवन में कैकेयी को न देखकर और प्रतिहारी के यह कहने पर कि वह कोप भवन में गई है तो राजा व्याकुल हो जाते हैं । कैकेयी को मनाने के लिए महाराज दशरथ विविध प्रलोभन देते है । कैकेयी दशरथ को दो-वचन की याद दिलाती हुई उसे तत्काल पूरा करने को कहती है । कैकेयी के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करते हुए महाराज दशरथ कहते हैं कि संसार में श्री राम और तेरे सिवा ऐसा कोई मनुष्य नहीं हैं जो मुझे अधिक प्रिय हो –

अवलिप्ते न जानासि त्वतः प्रियतरो मम ।
मनुजो मनज व्याध्राद रामादन्यो न विद्यते ।।[260]

इस प्रकार कैकेयी की इच्छा की पूर्ति करने का विश्वास देते हुऐ महाराज दशरथ अपने प्राणों से भी प्रिय श्री राम की शपथ खाते हुए कहते हैं कि कैकेयी ! जिन्हें दो घड़ी भी न देखने पर निश्चय ही मैं जीवित नहीं रह सकता उस श्रीराम की शपथ

खाकर कहता हूँ कि तुम जो कहोगी उसे पूर्ण करुँगा । मंथरा भी बार-बार कैकेयी को कहती है कि महाराज दशरथ न तो तुम्हें कुपित कर सकते हैं और न कुपित अवस्था में तुम्हें देख सकते हैं । राजा दशरथ तुम्हारा प्रिय करने के लिए अपने प्राणों का भी त्याग कर सकते हैं । महाराज दशरथ के कैकेयी के प्रति प्रेम को प्रकट करती हुई मंथरा कहती है कि –

दयिता त्वं सदा भर्तुरत्र में नास्ति संशयः
त्वत्कृते य महाराजो विशेदपि हुताशनम् ।। [261]

अर्थात् इसमें तनिक भी संदेह नहीं है कि तुम अपने पति को सदा ही बड़ी प्यारी रही हो । तुम्हारे लिए महाराज आग में भी प्रवेश कर सकते हैं । कैकेयी के प्रति महाराज की आसक्ति से राम भी दुःखी हैं । वह लक्ष्मण को कहते भी हैं कि ऐसा कौन अज्ञानी पुरुष होगा जो पत्नी के कहने पर आज्ञाकारी पुत्र का परित्याग कर दे । प्रस्तुत प्रसंग के द्वारा महाराज दशरथ की कैकेयी के प्रति गहरी आसकित प्रकट होती है ।

'मानस' में भी कैकेयी के प्रति दशरथ का प्रेम गहनतम दिखाई देता है । मन्थरा द्वारा कैकेयी को भडकाते वक्त उसका यह कहना कि राजा का सबसे अधिक प्रेम तुझ पर है, राजा तुम्हारी सेवा के वश में है आदि बातों में दशरथ का कैकेयी के प्रति मोह दिखाई देता है । 'मानस' में तो दशरथ का कैकेयी के प्रति प्रेम चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है । दशरथ जब कोप भवन में रानी कैकेयी को मनाने गये तब वह उससे कहतें हैं कि..

प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें । परिजन प्रजा सकल बस तोरें ।
जौं कछु कहौं कपटु करि तोही । भामिनि राम सपथ सत मोही ।। [262]

अर्थात् हे प्रिये ! मेरी प्रजा, कुटुम्बी सर्वस्व (सम्पति) पुत्र, यहाँ तक कि मेरे प्राण भी ये सब तेरे वश में (अधीन) हैं । यदि मैं तुझसे कपट करके कहता होऊँ तो हे भामिनी । मुझे सौ बार राम की सौगन्ध है । महाराज दशरथ कैकेयी में इतने प्रेम मग्न थे कि कैकेयी के मुख को चन्द्रमा और खुद को चकोर की उपमा देते हुए कहते हैं कि-

जानसि मोर सुभाउ बरोरु। मनु तव आनन चंद चकोरु।[263]

इस प्रकार 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में महाराज दशरथ का कैकेयी के प्रति गहरा लगाव दिखाई देता है । 'रामायण' में कैकेयी के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करते हुए दशरथ दुःख के साथ राम की सौगन्ध लेते हैं, जबकि 'मानस' में अपना सर्वस्व कैकेयी के अधिकार में है कहते हुए राम की सौ बार सौगन्ध लेते हैं । अतः दोनों महाकवियों ने दशरथ का कैकेयी के प्रति प्रेम का चरमोत्कर्ष दिखाया है।

5.3.2.4 पुत्र वत्सला नारी :-

'रामायण' और 'मानस' के प्रारंभ में कैकेयी का प्रेम सभी पुत्रों पर समान है। राम के राज्याभिषेक के समाचार सुनकर वह खुशी के मारे मन्थरा को पुरस्कार के रूप में मूल्यवान भेंट देती है और कहती है कि मन्थरे, तू मुझसे प्रिय वस्तु पाने के योग्य है। मेरे लिये श्री राम के अभिषेक सम्बन्धी इस समाचार से बढ़कर दूसरा कोई प्रिय एवं अमृत के समान मधुर वचन नहीं है । ऐसी परम प्रिय बात तुमने कीं है; अतः अब वह प्रिय संवाद सुनाने के बाद तू कोइ श्रेष्ठ वर माँग ले, मैं उसे अवश्य दूँगी ।[264] 'मानस' में भी तुलसीदास ने लिखा है कि मंथरा की ओर से यह खबर मिलने पर कि राम का कल राज्याभिषेक होगा तो खुशी के मारे कैकेयी कहती है कि –

राम तिलकु जौं साँचेहु काली । देऊँ मागु मन भावत आली । [265]

यानी कि यदि सचमुच कल ही श्री राम का तिलक है तो हे सखी । तेरे मन को अच्छी लगे वहीं वस्तु माँग ले, मैं दूँगी । परंतु कैकेयी का सभी पुत्रों के प्रति अपना समान प्रेम मंथरा के उकसाने पर भरत तक सीमित रह जाता है और महाराज दशरथ के पास से अपने दो वरों को माँगते हुए राम को चौदह वर्ष का वनवास और भरत का राज्याभिषक करवा देती है । भरत का राज्याभिषेक करवाने के लिए कैकेयी को अपना सुहाग उज़डने का भी दुःख नहीं है । महाराज दशरथ के निधन का समाचार भरत को देती हुई कैकेयी 'मानस' में कहती है कि हे तात ! मैंने सारी बात बना ली थी , बेचारी

मन्थरा भी सहायक हुई । पर विधाता ने बीच में जरा सा काम बिगाड़ दिया । वह यह कि राजा देवलोक को पधार गये । 'रामायण' में कैकेयी दशरथ की मृत्यु का समाचार भरत को आसानी से देती हुई कहती है कि एक दिन समस्त प्राणियों की जो गति होती है, उसी गति को वे प्राप्त हुए हैं । निष्कर्ष में अपने पुत्र-मोह में कैकेयी को न धृणा का डर है और न अपने वैधव्य का डर है । पुत्र-मोह में अपने वरों को दशरथ से माँगकर भरत का राज्याभिषेक करवा देती है ।

5.3.2.5 सपत्नी रूप :-

कैकेयी अन्य रानियों में अधिक सुन्दर तथा उम्र में छोटी होने से वृद्ध राजा का ईस पर अधिक प्रेम रहा है – जिससे कैकेयी को मन ही मन घमंड भरा रहता है। अभिमान से भरकर वह अपनी सौतों के प्रति रूखा व्यवहार करती है । मंथरा कैकेयी को भड़काती हुई यह कहती है कि कौशल्या अपने अपमान का बदला राम के राजा बनने के बाद ले सकती है, और वह बार-बार अपनी सौत के अभ्युदय को लेकर कैकेयी को भड़काने का प्रयत्न करती है । कैकेयी के प्रति महाराज दशरथ की अधिक आसक्ति के कारण कौशल्या राम को कहती है कि बड़ी रानी होने पर भी मुझे अपनी बातों से हृदय को विदीर्ण कर देने वाली छोटी सोतों से बहुत से अप्रिय वचन सुनने पडेंगे । मैं आजतक कैकेयी की दासियों के बराबर अथवा उनसे भी गयी-बती समझी जाती हूँ । महाराज दशरथ का प्रेम प्राप्त करके कैकेयी अपने सौतों के प्रति खासकर कौशल्या के प्रति अधिक कठोर हो गई थी । सौतिया डाह से प्रेरित होकर उसने दशरथ से कहा था कि यदि मैंने श्री राम की माता कौशल्या को एक दिन भी राजमाता के रूप में आदर प्राप्त करते देख लिया तो उसी क्षण मैं मरना उचित समझ लूँगी । हे नरेश आप राम का राज्याभिषेक करके कौशल्या से ऐश करना चाहते हैं ।

'मानस' में भी कैकेयी सपत्नियों से रूखा व्यवहार करती है । 'रामायण' की भाँति मंथरा यहाँ भी कैकेयी को सौतों का भय दिखाती है । मंथरा कैकेयी को समझाती हुई कहती है कि कौशल्या यह समझती है कि सभी सौतें मेरी अच्छी तरह सेवा करती

है, परंतु एक भरत की माँ पति के बलपर गर्वित रहती है । इसी से कौशल्या की आँखों में तुम बहुत साल से खटक रही हो । राजा का तुझ पर विशेष प्रेम कौशल्या देख नहीं सकती और उसने राजा को अपने वश में करके राम के राज्यतिलक के लिए मुहूर्त निकलवा लिया । अंत में तुलसीदास ने लिखा है कि मंथरा ने सैंकडों सौतों की कहानियाँ इस प्रकार (बना-बनाकर) कही जिस प्रकार विरोध बढ़े –

कहिसि कथा सत सवति कै जैहि बिधि बाढ़ बिरोधु ।।[266]

इस प्रकार दोनों महाकाव्यो में सपत्नियों के प्रति कैकेयी का व्यवहार मधुर नहीं है । 'मानस' में कैकेयी अपने नैहर जाकर जीवन बिताने के लिए तैयार हो जाती है परंतु जीते जी सौत की सेवा चाकरी करने के लिए तैयार नहीं है –

नैहर जनमु भरब बर जाई । जिअत न करबि सवति सेवकाई ।[267]

'रामायण' में सुमित्रा अपने सौतों को लेकर चूप रहती है जब कि 'मानस' में सुमित्रा कैकेयी की निन्दा करती है । 'रामायण' की कौशल्या को महाराज दशरथ से उपेक्षित व्यवहार का दुःख है जिसका मुख्य कारण कैकेयी है । परंतु 'मानस' में महाराज दशरथ के प्रति कौशल्या को कोई दुःख नहीं है । निष्कर्षतः दोनों महाकाव्यो में कौशल्या और कैकेयी सपत्नी के स्वाभाविक गुणों से प्रकट होती है ।

5.3.2.6 स्त्रीहठः-

दोनों महाकाव्यों में कैकेयी का हठी स्त्री के रूप में चित्रण हुआ है । मंथरा के द्वारा कैकेयी को भड़काये जाने पर वह महाराज से दो वचनों को माँगती है जिसमें भरत का राज्याभिषेक तथा राम के चौदह वर्ष का वनवास था, जिसकी पूर्ति के लिये वह महाराज दशरथ से हठ करती है । महाराज दशरथ चौदह वर्ष के वनवास के वर को वापिस ले लेने के लिए कैकेयी को बार-बार समझाते हैं, परंतु कैकेयी टस से मस नहीं होती । हठी कैकेयी को मनाते हुए महाराज दशरथ यहाँ तक कह देते हैं कि यदि राम बन में चले गये तो उनके विरह में मेरे प्राण क्षण में ही निकल जायेंगे। परंतु कैकेयी महाराज की मृत्यु से आनेवाले वैधव्य से बिना डरे ही अपनी हठ पर कायम रहती है ।

दशरथ धर्म-अधर्म की अनेकविध बातों को कहकर तथा उनके पैरों पड़कर कैकेयी को समझाने का प्रयत्न करते हैं । परंतु कैकेयी अपनी हठ पर कायम रहते हुए महाराज दशरथ को साफ साफ कह देती हैं कि –

भवत्वधर्मो धर्मो वा सत्यं वा यदि वानृतम।
यत्वया संश्रुतं महयं तस्य नास्ति व्यतिक्रम ।।[268]

अब धर्म हो या अधर्म, झुठ हो या सच, जिस बात के लिये आपने मुझसे प्रतिज्ञा कर ली है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं हो सकता । हठ पर द्रढ़ कैकेयी को सुमन्त्र भी दोनों हाथ जोड़कर सान्तवनापूर्ण तथा तीखे वचनों के सहारे मनाने का प्रयन्त करते हैं परंतु वह टस से मस नहीं होती । कैकेयी हठवश मर्यादा का उल्लंधन करके अधर्म की ओर पैर बढाती हुई सीता को भी वल्लकल वस्त्र पहनाने का प्रयत्न करती है । उस समय वशिष्ठ ने भी ज़िद् पर बैठी हुई कैकेयी को समझाना चाहा, परंतु उसे सभी की बातों को अनसुना कर दिया।

'रामायण' की भाँति 'रामचरित मानस' में भी तुलसीदास ने कैकेयी का हठी स्त्री के रूप में चित्रण किया है । राम को चौदह वर्ष का वनवास न देने के लिये महाराज कैकेयी को समझाते हुए कहते हैं कि मैं सबेरे ही दूत भेजकर भरत और शत्रुध्न को बुलवा लेता हूँ और अच्छा दिन देखकर भरत को राज्य दे दूँगा परंतु राम को वनवास देने का वर न माँग परंतु अपनी जिद्द पर अटल कैकेयी दशरथ को कहती है कि–

कहइ करहू किन कोटि उपाया । इहाँ न लागिहि राउरि माया ।
देहु कि लेहु अजसु करि नाहीं । मोहि न बहुत प्रपंच सोहाहीं ।।[269]

अर्थात् आप करोंडों उपाय क्यों न करें, यहाँ आपकी माया नहीं चलेगी । या तो मैंने जो माँगा है सो दीजिये, नहीं तो 'नाही' करके अपयश लीजिये । मुझे प्रपंच पसंद नहीं है । ब्राह्मणों की स्त्रियाँ, कुल की माननीय बड़ी-बूढ़ी और जो कैकेयी की परम प्रिय थी वे उसके शील की सराहना करके उसे सीख देने लगी परंतु इनकी एक भी बात को न मानकर वह सब को छोडकर चली जाती है ।

इस प्रकार दोनों महाकाव्यों में महारानी कैकेयी का हठी स्त्री के रूप में चित्रण हुआ है । कैकेयी ने अपने वचनों की पूर्ति के लिये नारी मर्यादाएँ तथा लोकलाज को छोड़ दिया है । इतना ही नहीं वह महाराज को मर्मभेदी वचन भी कह देती है । 'मानस' में तो कैकेयी दशरथ को असहाय स्त्री की उपमा देती हुई कहती है कि असहाय स्त्री की भांति रोईये – पीटिये नहीं या तो प्रतिज्ञा छोड़ दीजिए अथवा धैर्य धारण कीजिए। रामायण में भी ऐसे कई स्थान हैं जहाँ पर कैकेयी जिद्द करके मर्यादा का उल्लंधन करती हुई महाराज दशरथ से चर्चा-बहश करती है । निष्कर्षः में दोनों महाकाव्यों में कैकेयी का हठी स्त्री के रूप में चित्रण हुआ है ।

5.3.2.7 धृणित व्यक्तित्व :-

दोनों महाकाव्यों में कैकेयी का चरित्र धृणापात्र बताया गया है । 'रामायण' में भरत का राज्याभिषेक और रामवनवास जैसे दो वर कैकेयी के द्वारा दशरथ के पास से माँगने पर वह दुःखी होकर कैकेयी का त्याग करते हैं और उसी को शाप देते हैं कि पापिनी । मैंने अग्नि के समीप 'साङगुष्ठं ते गृभ्णामि सौभगत्वाय हस्तम' इत्यादि वैदिक मंत्र का पाठ करके तेरे जिस हाथ को पकड़ा था उसे आज छोड़ रहा हूँ । साथ ही तेरे और अपने द्वारा उत्पन्न हुए तेरे पुत्र का भी त्याग करता हूँ । श्री राम के अभिषेक के लिए जो सामान जुटाया गया है उसके द्वारा मेरे मरने के बाद श्री राम के हाथ से मुझे जलांजलि दिलवा देना; परंतु अपने पुत्र सहित तू मेरे लिये जलांजलि न देना ।[270] धृणा का पात्र बनी हुई कैकेयी के लिए रामायण में पतिध्नी, भतृनृशंसा, कुलध्नी, शीलवर्जिते, पतिघातिनी, कुलदूषिणी तथा अनार्या आर्य रुपिणी जैसे निदांत्मक शब्दों का प्रयोग हुआ है । कुलगुरु वसिष्ठ भी कैकेयी के व्यवहार से दुःखी होकर उसको दुर्बुद्धि तथा शील का परित्याग करनेवाली दुष्टे कहकर फटकारते हैं । ननिहाल से लौटे हुए भरत माता कैकेयी से रामवनगमन और महाराज दशरथ के निधन का वृतांत सुनकर दुःख से संतप्त होकर उसको धिक्कारने लगते हैं । अपने रोष को प्रकट करते हुए भरत कैकेयी को कहते हैं कि तू इस कुल का विनाश करने के लिए कालरात्री बन कर आयी थी । तू

माता के रूप में मेरी शत्रु है । सती साध्वी कौशल्या का तूने उनके पुत्र से बिछोह करा दिया है इसलिए तू सदा ही इसलोक और परलोक में भी दुःख ही पायेगी । दुःखी भरत ने माता कैकेयी का त्याग करते हुए कहा कि –

राज्याद भंशस्व कैकेयि नृशंसे दुष्टचारिणि ।
परित्पयक्तासि धर्मेण मा मृतं रुदती भव ।। [271]

अर्थात् दुष्टतापूर्ण बर्ताव करनेवाली क्रुरहृदया कैकेयी ! तू राज्य से भ्रष्ट हो जा । धर्म ने तेरा परित्याग कर दिया है, अतः अब तू मरे हुए महाराज के लिये रोना मत (क्योंकि तू पत्नी धर्म से गिर चुकी है) अथवा मुझे मरा हुआ समझकर तू जन्मभर पुत्र के लिये रोया कर । कैकेयी के दुर्भाग्य से भरत ने अपनी माता के द्वारा प्रयत्नपूर्वक अर्जित किये गये अयेध्या के विशाल राज्य को अस्वीकार करके अपने यश को तो सुरक्षित बनाए रखा किन्तु विफल मनोरथ हुई कैकेयी सार्वजनिक निंदा का केन्द्र बन गयी । [272]

'रामायण' की भाँति 'मानस' में भी कैकेयी का चरित्र धृणास्पद बन गया है। राम के राज्याभिषेक के समय कैकेयी के विपरीत व्यवहार से खिन्न महाराज दशरथ कैकेयी को कड़वे और मीठे शब्दों में मनाने का प्रयत्न करते हैं परंतु नागिन की भाँति फूँकार करती हुई कैकेयी टस से मस नहीं होती । परिणामतः कैकेयी के प्रति स्थित महाराज दशरथ का गहनतम प्रेम धृणा में बदल जाता है । भरत भी पिता के निधन तथा श्री राम के वनगमन से खिन्न होकर माता कैकेयी पर कटु शब्दों की झड़ी बरसाते हैं । दुःखी भरत क्रोधावेश में डाँटते हुए कैकेयी को कहते हैं कि पापिनी ! तूने हर तरह से कुल का नाश कर दिया । मुझे दशरथ जैसे पिता और राम जैसे भाई मिले परंतु दुःख इस बात का है कि मुझे जन्म देनेवाली माता तू हुई । पूरी अयोध्या के स्त्री और पुरुष कैकेयी के इस व्यवहार से दुःखी हैं, मन ही सब लोग उसे कोस रहे हैं, गोस्वामीजी ने लिखा है कि –

राजू करत यह दैअँ बिगोई । कीन्हेसि अस जस करइ न कोई ।
ऐहि बिधि बिलपहिं पुर नर नारीं । देहिं कुचालिहि कोटिक गारी ।। [273]

यानी कि राज्य करते हुए इस कैकेयी को देव ने नष्ट कर दिया । इसने जैसा कुछ किया वैसा कोई भी न करेगा । नगर के स्त्री पुरुष इस प्रकार विलाप कर रहे हैं और उस कुचाली कैकेयी को करोडों गालियाँ दे रहे हैं ।

इस प्रकार दोनों महाकाव्यो में कैकेयी का चरित्र धृणास्पद रहा है । 'रामायण' में महाराज दशरथ कैकेयी से सभी सम्बन्धों को तोडते हुए कठोर शब्दों मे उसकी भर्त्सना करते हैं । जबकि 'मानस' में दशरथ कैकेयी को मनाने में अति कठोरता न दिखाते हुए विनंति करते हुए गिडगिड़ाते हैं । राम के राज्याभिषेक के समय कैकेयी के व्यवहार से खिन्न सुमन्त्र तथा गुरु वशिष्ठ कैकेयी को कठोर शब्दों में झाडते हैं । जबकि मानस में गोस्वामीजी ने इस बात को छोड़ दिया है । 'रामायण' में भरत के द्वारा कैकेयी को जो फटकार मिली है 'मानस' में भरत की क्रोधाग्नि की वह आक्रमकता कम दिखाई देती है । संक्षेप में दोनों महाकाव्यों में राम के राज्याभिषेक के मंगलदायक प्रसंग में मंथरा के बहकावे में आकर अयोध्या पर अमंगल के बादलों को धीरनेवाली कैकेयी धृणित चरित्र के साथ प्रकट होती है । निष्कर्षतः 'रामायण' में कैकेयी की विस्मृत आकांक्षा एवं सुप्त अधिकार को मंथरा के द्वारा जाग्रत किया जाना स्वाभाविक और मनौवैज्ञानिक लगता है जबकि 'मानस' में इसी प्रसंग के साथ सरस्वती का प्रवेश उचित नहीं दिखाई देता । 'मानस' में मंथरा की बुद्धि को सरस्वती के द्वारा फेर देना 'अध्यात्म रामायण' का प्रभाव दिखाई देता है। 'मानस' की ही भाँति 'अध्यात्म रामायण' में इस प्रसंग का वर्णन मिलता है, जैसे –

एतस्मिन्नतरे देवा देवीं वाणीमयोदयन् ।
गच्छ देवि भुवो लोकमयोध्यायां प्रयुत्रतः ।
मन्थरां प्रविश्स्वदौ कैकेयी चततः परम् ।।[274]

अर्थात् इसी समय देवताओ ने सरस्वती देवी से आग्रह किया कि हे देवि । तुम यत्नपूर्वक भूलोक में अयोध्यापूरी में जाओं और वहाँ ब्रह्माजी की आज्ञा से रामचन्द्रजी के

राज्याभिषेक में विध्न उपस्थित करने के लिए यत्न करो । प्रथम तो तुम मन्थरा में प्रवेश करना और फिर कैकेयी में । 'अध्यात्मरामयण' की इसी प्रेरणा को ग्रहण कर तुलसीदास ने राम के राज्याभिषेक के विध्न के लिए अलौकिक कथा की उद्‌भावना की है । 'रामायण' की कैकेयी क्रोधी, स्वाभिमानी, सपत्नियों के प्रति ईर्ष्या-भाव रखनेवाली है । जब कि 'मानस' की कैकेयी में उपर्युक्त अवगुण कम दिखाई देते हैं। 'रामायण' की कैकेयी के द्वारा राम को चौदह वर्ष का वनवास देने में इसका उद्देश्य भरत के लिए निष्कंटक राज्य को देना प्रतीत होता हैं, परंतु 'मानस' में राम वनवास के पीछे देवों का षड्‌यंत्र बताया गया है जिससे 'मानस' की कैकेयी के प्रति हमारी सहानुभूति बढ़ जाती है । 'रामायण' में कैकेयी को सुमंत्र, वशिष्ट, दशरथ तथा भरत तथा 'मानस' में दशरथ और भरत की निदांत्मक शब्दों के सहारे की गई फटकार वह चुपचाप सह लेती है – जिससे यह स्पष्ट होता है कि कैकेयी का चरित्र जन्म से विरोधीवृति का नहीं होगा परंतु कुछ समय के लिए वह मंथरा तथा देवो की कठ पुतली बन गई थी । परिणामतः सह्रदया नारी कैकेयी का रूप कुलघातिनी के रूप में प्रकट हो गया । 'मानस' की कैकेयी के संदर्भ में डॉ. शारदा त्यागी के विचार यहाँ द्रष्टव्य है "कैकयी तुलसी की असत् नारी पात्रों की श्रेणी में नहीं रखी जा सकती । वह स्वभाव से सत्पात्र ही है परन्तु परिस्थितियाँ उसके सत्व को असत्व से आवृत कर देती है । यह आवरण पश्चाताप करने पर छिन्न भिन्न हो जाता है और कैकेयी सह्रदय पाठकों की सम्पूर्ण सहानुभूति की अधिकारिणी बन जाती है । [275]

5.3.3. 'रामायण' और रामचरित मानस की कौशल्या :-

कौशल्या महाराज दशरथ की ज्येष्ठ पत्नी तथा श्री राम की माता है । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में उसका उदार एवं आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है । 'रामायण' में कौशल्या का चित्रण मानवीय धरातल पर किया गया है । जिससे मानव

सहज स्वाभाविक गुण-अवगुणों का मिश्रण होता हुआ दिखाई देता है । तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' के बालकाण्ड़ में कौशल्या के पूर्वजन्म का वृतांत देते हुए लिखा है कि वह पूर्व जन्म में शतरुपा थी । शतरुपा ने मनु के साथ तपस्या करके विष्णु से यह वरदान प्राप्त किया था कि भगवान विष्णु उनके यहाँ पुत्र के रूप में अवतरित होंगे । महर्षि वाल्मीकि ने भी कौशल्या की तुलना अदिति से की है। दोनों महाकाव्यो में कौशल्या ममतामयी माँ, पतिव्रता पत्नी और धार्मिक विचारोंवाली के रूप में प्रकट होती है ।

5.3.3.1 पत्नी के रूप में :-

पत्नी के रूप मे कौशल्याका चरित्र आदर्श बन गया है। कौशल्या ने अपने प्रेम से महाराज दशरथ के प्रेम को जीत रखा था । इस बात की पुष्टि करते हुए महाराज दशरथ राम को कहते हैं कि बेटा तुम्हारा जन्म मेरी बड़ी महारानी कौशल्या के गर्भ से हुआ है । तुम अपनी माता के अनुरूप ही उत्पन्न हुए हो —

'ज्येष्ठायामसि में पत्न्या सदृश्यां सदृशः सुतः ।[276]

राम वनवास प्रसंग मे कौशल्या में वात्सल्य और त्याग दोनों का दर्शन होता है। राम पर अधिक स्नेह होने पर भी पति के वचनों की रक्षा के लिए अपने कर्तव्य को निभाती हुइ वह अपने प्राणों से भी प्रिय राम को वन जाने की अनुमति दे देती है। वन जाने की आज्ञा लेने गये राम माता कौशल्या को पतिसेवा की श्रेष्ठता को दिखाते हुए कहते हैं कि जो नारी पति की सेवा नहीं करती उसे पापियों को मिलनेवाली गति (नरक) की प्राप्ति होती है । वेद और लोक में प्रसिद्ध सनातन धर्म है कि नारी पति के प्रिय एवं हित साधन में तत्पर रहकर उनकी सेवा करे । इस प्रकार पति-सेवा ही पत्नी का धर्म दिखाते हुए राम ने माता को उपदेश दिया तो कौशल्या के नेत्रो में आंसू छलक आये और पुत्र शोक से पीड़ित माता ने राम की बातो का स्वीकार कर लिया। रामवनवास से खिन्न कौशल्या दशरथ को कठोर शब्दो मे उपालम्भ देती हुई कहती है कि आपने राम को वनवास देकर बड़ा निर्दयतापूर्ण कर्म किया है । कैकेयी के कहने से

आपने मेरे बान्धवों को निकाल दिया ? कौशल्या की कठोर वाणी से महाराज दुःखी होकर उस के सम्मुख हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हैं। इस प्रकार दो हाथ जोड़कर क्षमा माँगते हुए दशरथ को देखकर कौशल्या की आँखें छलक आयी । अधर्म के भय से भयभीत कौशल्याने दशरथ के दो हाथ अपने सिर पर रखकर कहा कि महाराज, आप प्रसन्न रहें । कठोर शब्दो में उपालंभ देने के पश्चात् अपनी गलती का एहसास होने पर कौशल्यां ने अंतः करण पूर्वक दशरथ की क्षमा याचना करते हुए कहा कि धर्मज्ञ महाराज, मैं स्त्री धर्म को जानती हूँ और यह भी जानती हूँ कि आप सत्यवादी है । इस समय मैंने जो कुछ भी न कहने योग्य बातें कह दी है वह पुत्र शोक से पीड़ित होने के कारण मेरे मुख से निकल गई। महाराज दशरथ के निधन पर पति ही पत्नी की गति है, समझकर कौशल्या अग्नि में प्रवेश करने को तत्पर हो जाती है –

साहमद्यवै दिष्टान्तं गमिस्यामि पतिव्रता ।
इदं शरीरमालिङ्गय प्रवेश्यामि हुताशनम।। [277]

अर्थात् मैं भी आज ही मृत्यु का वरण करुँगी । एक पतिव्रता की भांति पति के शरीर का आलिंगन करके चिता की आग में प्रवेश कर जाऊँगी ।

'रामचरित मानस' में भी गोस्वामीजी ने कौशल्या को आदर्श पतिपरायण पत्नी के रूप में चित्रित किया है । मानसकारने कौशल्या और दशरथ का पूर्वजन्म से (शतरूपा और मनु) ही सम्बन्ध दिखाया है । वह पति के सुख में सुखी और दुःख में दुःखी रहती है । 'रामायण' में कौशल्या दशरथ द्वारा आयोजित सभी धार्मिक अनुष्ठानों में हिस्सा लेती है । 'मानस' में भी 'बाबा' ने इस बात का समर्थन किया है। महाराज दशरथ से कैकेयी ने जब अपने दो वर माँगे तब महाराज दशरथ कौशल्या पर अपना विश्वास प्रकट करते हुए कहते हैं कि यदि मैं भरत को राजा बना दूँ तो भी कौशल्या मुझे कुछ नहीं कहेगी । इससे स्पष्ट होता है कि 'रामायण' की भांति 'मानस' में भी दशरथ के प्रति कौशल्या की अतूट निष्ठा है । रामने माता से वन जाने की आज्ञा माँगी तो कौशल्या के सामने बड़ा संकट खड़ा हुआ। उसके लिए एक ओर धर्म-दूसरी ओर स्नेह

इन दोनों ने मिलकर कौशल्या की बुद्धि को घेर लिया। वह सोचने लगती है कि यदि मैं अनुरोध करके पुत्र को रख लेती हूँ तो धर्म जाता है और भाईयो मे विरोध होता है, यदि वन जाने को कहती हूॅ तो बड़ी हानि होती है । इस प्रकार के धर्म संकट में पड़कर रानी विशेष रूप से शोक के वश हो गयी । फिर बुद्धि मति कौशल्या स्त्री धर्म (पातिव्रत धर्म) को समझकर कहती है कि तुमने अच्छा किया।[278] पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है । इस प्रकार यहाँ कौशल्या ने अपने स्नेह को खोकर भी अपने पतिव्रता धर्म की रक्षा की और शोक करते हुए पुत्र को पिता की आज्ञा का पालन करने हेतु वन जाने की अनुमति दे दी । रामवनगमन से व्याकुल महाराज को कौशल्या सान्वतना देती हुई समझाती है कि हे नाथ ! रामचन्द्र का वियोग समुद्र है, अयोध्या जहाज है, आप उसके कर्णधार है हम मुसाफिर हैं अगर आप धैर्य खो देंगे तो हमारा क्या होगा।

इस प्रकार दोनो महाकाव्यों में कौशल्या का आदर्श पत्नी के रूप में चित्रण हुआ है। ‘रामायण’ की कौशल्या पुत्रप्रेम से दशरथ पर कठोर शब्दो का प्रयोग करके फटकारती है । कौशल्या की कड़ी फटकार सुनकर महाराज दशरथ दो हाथ जोड़कर उससे क्षमा माँगते हैं । जब कि ‘मानस’ में पुत्र-वियोग से पीड़ित महाराज को कौशल्या फटकारने के बजाय उनको धैर्य बँधाती है । यहाँ तुलसीदास ने कौशल्या की कड़ी फटकार तथा दशरथ का क्षमा माँगना न दिखाकर कौशल्या का मर्यादावादी पत्नी के रूप में चित्रण किया है । ‘रामायण’ में कौशल्या अपने पुत्र राम के साथ वन जाने की इच्छा रखती है । जब कि मानस मे कौशल्या अयोध्या में ही रहकर अपने धर्म का पालन करती है । ‘रामायण’ में कौशल्या दशरथ की मृत्यु के पश्चात् महाराज के साथ अग्नि में जलकर मरना चाहती है । जब कि ‘मानस’ में कौशल्या ने यह नहीं चाहा । सम्भवतः गोस्वामी जी ने अपनी युगीन परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए उनको छोड़ दिया होगा । इस प्रकार ‘रामायण’ की कौशल्या की तुलना में ‘मानस’ की कौशल्या अधिक आदर्शवादी है । संक्षेप में दोंनों महाकाव्यो मे हमें कौशल्या के चरित्र में पतिव्रता नारी के सभी गुण दिखाई देते हैं।

5.3.3.2 पतिप्रेम :-

'रामायण' की कौशल्या को महाराज दशरथ की प्रधान पत्नी होने पर भी पति की ओर से पूरा प्रेम न होने का दुःख है । वन जाने की आज्ञा लेने गये हुए राम के सामने अपनी व्यथा को प्रकट करती हुई कौशल्या कहती है कि बेटा ! पति के प्रभुत्व-काल में एक ज्येष्ट पत्नी को जो सुख प्राप्त होना चाहिए वह मुझे कभी प्राप्त नहीं हुआ। महाराज दशरथ की ओर से किये गये तिरस्कार भरे व्यवहार को प्रकट करती हुई वह कहती है कि –

अत्यन्तं निगृहीतास्मि भर्तुर्नित्यमसम्मता ।
परिवारेण कैकेय्याः समा वाप्यथवावरा ।।[279]

अर्थात् पति की ओर से मुझे सदा अत्यन्त तिरस्कार अथवा कड़ी फटकार ही मिली है, कभी प्यार और सम्मान प्राप्त नहीं हुआ । मैं कैकेयी की दासियों के बराबर अथवा उनसे भी गयी बीती समझी जाती हूँ । इससे विपरीत 'मानस' की कौशल्या को महाराज दशरथ की ओर से कोई दुख नहीं है, न तो वह कटु शब्दों का प्रयोग करती है। 'रामायण' की कौशल्या को पुत्रेष्टि यज्ञ से प्राप्त हविष्यान्न का आधा भाग नहीं मिलता । 'मानस' की कौशल्या को आधा भाग मिलता है । इस प्रकार इन सब प्रसंगों से इतना स्पष्ट हो जाता है कि 'रामायण' की कौशल्या पति सुख से संतुष्ट नहीं है जिसका उसे खेद है । जबकि 'मानस' की कौशल्या को पति प्रेम का पूर्ण सन्तोष है । 'रामायण' में कैकेयी के सौन्दर्य पर मोहित होकर महाराज कौशल्या से उपेक्षित व्यवहार करते हैं । जबकि मानसकार ने दशरथ की ओर से पूरा सम्मान देने का प्रयत्न किया है ।

5.3.3.3 आदर्श माता के रूप में :-

श्री राम की माता के रूप में कौशल्या का चरित्र निखर उठा है । कौशल्या को अपना पुत्र राम प्राणों से भी प्यारा है । राम के राज्याभिषेक की सूचना मिलते ही उसके

नेत्रों में से हर्ष के आँसू बहने लगते हैं और वह राम को अनेक आर्शीवाद देती है । अपने पुत्र राम के राज्याभिषेक में विध्नों के निवारण के लिये कौशल्या रेशमी वस्त्रों को धारण करके प्राणायाम के द्वारा परम पुरुष नारायण का ध्यान करती है । इतना ही नहीं कौशल्या पुत्र की मंगलकामना से रातभर जागकर सबेरे एकाग्रचित् होकर विष्णु की पूजा करती है । परंतु राम के द्वारा वन जाने की बाते कहने पर कौशल्या अचेत सी होकर पृथ्वी पर गिर पड़ती है । होश सम्भालने पर वह राम को कहती है कि –

एक एव हि वन्ध्यायाः शोको भवति मानसः
अप्रजास्मीति संतापो न हयन्यः पुत्र विद्यते ।।[280]

अर्थात् बेटा ! वन्ध्या को एक मानसिक शोक होता है । उसके मन में यह संतोष बना रहता है कि मेरी कोई संतान नहीं है, इसके सिवा दूसरा कोई दुःख उसे नहीं होता। राम ने वन जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया है जानकर कौशल्या आद्र वाणी में राम से कहती है कि मुझे भी तुम्हारे साथ वन ले चलो । जिस प्रकार धेनु आगे जाते हुए अपने बछड़े के पीछे-पीछे चली जाती है उसी प्रकार मैं भी तुम जहाँ जाओगे, तुम्हारे पीछे पीछे चलूँगी । कौशल्या पुत्र-मोह में महाराज दशरथ को भी कटुशब्दों में फटकारती हुई कहती है कि पुत्र माँ का सहारा होता है आज आपने उसे भी मुझसे छीन लिया है । वन जाते हुए राम के रथ के पीछे कौशल्या को दौड़ती हुई आती देखकर राम लक्ष्मण और सीता की आँखों में से अश्रुओं की धारा बहने लगती है ।[281] भरत के साथ चित्रकूट गई हुई माता कौशल्या ने राम और लक्ष्मण के स्नान करने के घाट को देखा तो उनसे रहा नहीं गया, उन दोनों की आँखों मे से अश्रुधारा बहने लगी ।

'रामचरित मानस' की कौशल्या के यहाँ दीनों पर दया करनेवाले हितकारी कृपालु प्रभु प्रकट होते हैं । प्रभु का ईश्वरीय रूप देखकर माता ने कहा कि हे तात ! यह रूप छोड़कर अत्यन्त प्रिय बाल लीला करो और प्रभु बालक बनकर रोने लगते हैं । कौशल्या पुत्र प्रेम वश रात दिन बितना नहीं जानती है वह अपने पुत्र को स्नान और शृंगार कराके पालने में सूला देती है । प्रभु ने विविध प्रकार की बाल लीलाएँ करते हुए

कौशल्या और महाराज दशरथ को स्नेह में बाँध रखा है । जनकपुर से विवाह सम्पन्न होकर चारों भाईयों की बारात अयोध्या लौटी तो खुशी के मारे कौशल्या अपनी सुध बुध खो बैठती है । पुत्र विवाह से खुश हुई माता कौशल्या मन की सभी ईच्छाओं को पूरी जानकर देवता तथा पितृओं का पूजन करती है और राम के कल्याण के लिए देवताओं से वरदान माँगती है ।[282] 'रामायण' की भाँति 'मानस' में भी कौशल्या राम के राज्याभिषेक की बात सुनकर खुश हो जाती है, परंतु राम ने जब यह कहा कि पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है, तो उनके ये वचन कौशल्या को बाण के समान लगते हैं, नेत्रों में जल भर आता है और शरीर थर-थर काँपने लगता है । कौशल्या अपने आपको परम अभागिनी जानकर श्रीरामचन्द्रजी के चरणो में लिपट जाती है –

बहुबिधि बिलपि चरन लपटानी ।
परम अभागिन आपुहि जानी ।[283]

चित्रकुट में कौशल्या-राम मिलन में बहे हुए प्रेम और विषाद को प्रकट करने में कविने भी अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहा है कि –

अति अनुराग अंब उर लाए । नयन सनेह सलिल अन्हवाए ।
ते हि अवसर कर हरष विषादू । किमि कबि कहै मूक जिमिस्वाद ।[284]

अर्थात् बड़े ही स्नेह से माता ने उन्हें हृदय से लगा लिया और नेत्रों से बहते हुए प्रेमाश्रुओं के जल से उन्हें नहला दिया । उस समय के हर्ष और विषाद को कवि किन शब्दों में प्रकट करें ? गुँगे करे गुड की सी बात है ।

इस प्रकार दोनों महाकाव्यों की कौशल्या के हृदय में अपने पुत्र के प्रति अथाह प्रेम है । 'रामायण' की कौशल्या में राम के प्रति पुत्रवत् प्रेम का दर्शन होता है । जबकि 'मानस' की कौशल्या अपने पुत्र में परब्रह्म का दर्शन करती है । 'रामायण' में राम की बाललीलाओं का वर्णन नहीं है । परंतु मानसकार ने राम की बाललीलाओं का वर्णन करते हुए कौशल्या के हृदय की वात्सल्य भावना को और अधिक जाग्रत किया है। 'रामायण' में पुत्र-प्रेम वश कौशल्या महाराज दशरथ को कड़वी वाणी में उपालम्भ देती

है, परंतु मानस में कौशल्या को संयमित रूप में चित्रित किया है । दोनों महाकाव्यो में राम वनवास से कौशल्या व्याकुल हो जाती है, परंतु 'मानस' में कौशल्या अपने आपको तुरंत सम्भाल लेती है । 'रामायण' में कौशल्या पति तथा सोतों के बुरे व्यवहार को राम के सामने प्रकट करती हुई राम के साथ वन जाने की ईच्छा प्रकट करती है जब कि 'मानस' की कौशल्या राम को 'पितृ आज्ञा श्रेष्ठ धर्म कहती हुई वन जाने की आज्ञा देती है । 'रामायण' में पुत्र मोह में कौशल्या अपने पति तथा सोतों एवं सौत पुत्र को कोसती है जबकि मानसकार ने इस प्रकार का वर्णन करना उचित नहीं जाना । संक्षेप में दोनों महाकाव्यो में कौशल्या का मातृत्व अपने चरमोत्कर्ष पर दिखाई देता है ।

5.3.3.4 विमाता के रूप में :-

कौशल्या के हृदय में केवल राम के प्रति ही प्रेम भावना नहीं है बल्कि अपने सौत पुत्रों के प्रति भी इतना ही लगाव है । 'रामायण' मे रामवनगमन से कौशल्या के मन में भरत के चरित्र पर संदेह प्रकट होता हुआ दिखाई देता है, परंतु जब भरत अपनी सत्यता दिखाते हुए सौगन्ध लेते हैं तो कौशल्या के मन में रहा हुआ भरत के प्रति का क्रोध दूर हो जाता है और वह उनको छाती से लगा लेती है । कौशल्या वन में गये लक्ष्मण की भी उतनी ही चितां करती है जितनी राम की । चित्रकूट के स्नान घाटों को देख कर कौशल्या सुमित्रा से कहती है कि तुम्हारा बेटा लक्ष्मण तनिक भी आलस्य किये यहां से राम के लिए जल ले जाया करता है। उसने राम सेवा हेतु सामान्य से अति सामान्य कार्य भी प्रेम से किया है ।[285]

'रामचरित मानस' में कौशल्या के हृदय में राम-लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न चारों समान है । चारों पुत्रों के लिए उसका प्रेम समान रहा है । 'मानस' में कौशल्या भरत को एक भी कटु वचन नहीं कहती । ननिहाल से लौटे हुए भरत और शत्रुध्न जब कौशल्या को मिलने के लिए आते हैं तब वह भरत को छाती से लगा लेती है । उसे लगता है जैसे राम स्वयं आ गये हों -

सरल सुभाय मायँ हियँ लाएँ । अति हित मनहुँ राम फिरि आए ।

भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई । सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ।[286]

कौशल्या के भरत के प्रति प्रेम की पराकाष्टा तो तब दिखाई देती है जब भरत खुद को निर्दोष बताता हुआ अनेक सौगन्ध लेता है, तब माता कौशल्या भरत को छाती से लगा लेती है जिस दृश्य को प्रकट करते हुए महात्मा तुलसीदास ने लिखा है कि–

अस कहि मातु भरतु हिएँ लाए । थन पय स्त्रवहिं नयन जल छाए ।[287]

अर्थात् माता कौशल्या ने भरतजी को हृदय से लगा लिया । उसके स्तनों से दूध बहने लगा और नेत्रों में (प्रेमाश्रुओं का) जल छा गया । कौशल्या चित्रकूट में सुनयना के आगे श्री राम की सौगन्ध लेकर कहती है कि भरत जैसा शील, गुण, नम्रता, बडप्पन, भ्रातृत्व, भक्ति और अच्छेपन का वर्णन करने में सरस्वती की बुद्धि भी हिचकती है । निष्कर्षतः कौशल्या के हृदय मे राम की ही भांति भरत, लक्ष्मण और शत्रुध्न के प्रति प्रेम है । अतः कौशल्या के हृदय में अपने चारों पुत्रों के प्रति समान प्रेम 'मानस' में दिखाई देता है ।

इस प्रकार 'रामायण' में कौशल्या के मन में भरत के प्रति कहीं न कहीं संदेह बना हुआ है कि राम को प्राप्त वनवास में भरत की ईच्छा रही होगी । इसीलिए वह उसको कोसती है और उस पर आक्षेप करती है कि राज्य पाने की तुम्हारी चाह थी वह तुम्हें प्राप्त हो गया । इस सन्दर्भ में डॉ. विद्या का मत है कि "विपत्तियों का पहाड़ तूटने पर यदि कौशल्या भावावेश में आकर भरत की भर्त्सना करती हैं तो उसमें उसका दोष नहीं क्योंकि वह अपने दुःखी हृदय की पीड़ा बाहर निकालने के लिए विवश है ।"[288] जब कि 'मानस' में कौशल्या को भरत के प्रति कोई संदेह नहीं है । वह भरत को धैर्य देती हुई आयोध्या के शासन को सम्भालने के लिए भी कहती है । 'मानस' की कौशल्या में भरत के प्रति गहन प्रेम दिखाई देता है । वह कहती है कि मुझे चिंता भरत की है ऐसी प्रेम की गहनता 'रामायण' की कौशल्या में नहीं दिखाई देती ।

5.3.3.5 आदर्श सास के रूप में :-

दोनों महाकाव्यों में कौशल्या को आदर्श सास के रूप मे चित्रित किया गया है।

राम, लक्ष्मण, भरत एवं शत्रुघ्न की बारात आने पर कौशल्या एवं अन्य माताएँ मिलकर सवारी से बहुओं को मंगलगीत गाते हुए उतारती है । अपनी चारो बहुओं को देवमन्दिरों में ले जाकर उन से देवताओं का पूजन करवाती हैं । पति के साथ वन में जाती हुई सीता जिसने कभी भी दुःखद बर्ताव नहीं किया था, कौशल्या दोनों भुजाओं से कसकर उसे छाती से लगा लेती है और मस्तक को सूँधकर धर्म का उपदेश देती है ।[289] राम और लक्ष्मण की चिंता करने के साथ-साथ कौशल्या को जनकपुत्री की भी चिंता है । महाराज को उपालम्भ देती हुई कौशल्या कहती है कि सोलह-अट्ठारह वर्ष की सुकुमारी तरुणी मिथिलेश कुमारी सीता जो सुख भोगने के ही योग्य है वन में सर्दी, गरमी का दुःख कैसे सहेगी ! जो स्वादिष्ट भोजन किया करती थी अब वह जंगल की तिन्नी के चावल का सूखा भात कैसे खायेगी ? जो माँगलिक वस्तुओं से सम्पन्न रहकर सदा गीत और वाद्य की मधुर ध्वनि सुना करती थी वह जंगल में माँस भक्षी सिंहो का शब्द कैसे सून सकेगी ।[290] कौशल्या ने चित्रकूट में वनवास के कारण दुर्बल सीता को देखा तो उससे रहा नहीं गया और दुःखी होकर वह विलाप करने लगती है कि –

पद्ममातपसंतप्तं परिकिल्ष्टमिवोत्पलम् ।
काञ्चनं रजसा ध्वस्तं क्लिंष्टं चन्द्र मिवाम्बुदैः ।।[291]

अर्थात् बेटी तुम्हारा मुख धूप से तपे हुए कमल, कुचले हुए उत्पल, धूल से ध्वस्त हुए स्वर्ण और बादलों से ढके हुए चन्द्रमा की भांति श्रीहीन हो रहा है ।

'मानस' में भी कौशल्या का आदर्श सास के रूप में चित्रण हुआ है । विवाह के पश्चात् सीता ने जब अयोध्या में पहला कदम रखा तो कौशल्या समेत सारी माताएँ हर्ष के मारे अपने शरीर की सुध खो देती हैं । सीता की छबि को देखकर कौशल्या अपने जीवन को धन्य मानती है । राम के साथ वन में जाती हुई सीता को देखकर कौशल्या व्याकुल हो जाती है और कहने लगती हैं कि सीता सुकुमारी है और सबकी प्यारी है । रूप की राशि, सुन्दर, गुण और शीलवान प्यारी पुत्र वधू सीता में मैंने अपने प्राण लगा रखे हैं । सीता को मैंने बड़ी लाड चाव के साथ पाला है । उसने कभी पलंग के ऊपर

गोद औार हिंडोले को छोड़कर कठोर पृथ्वी पर कभी पैर नहीं रखा । उसको कभी दीपक की बत्ती हटाने को भी नहीं कहती और जो तस्वीर में भी बंदर को देखकर डर जाती है, वह सीता वन में किस तरह रह सकेगी ? अर्थात् सीता वन में जाने के बजाय घर में रहे तो मुझे भी बहुत सहारा हो जाय ।[292] इसी प्रकार कौशल्या के हृदय में स्थित सीता के प्रति पुत्रीवत भाव प्रकट होता है । चित्रकूट में कौशल्या समेत अपनी सासों की बुरी दशा सीता देख नहीं सकती और दुःख के मारे उसने अपने नेत्र बंद कर दिये । धैर्य को रखते हुए सासो से जब वह मिलती है तब तुलसीदास लिखते हैं कि, 'ते हि अवसर करूना मह छाई।'[293] यानि पूरी पृथ्वी पर करुणा छा जाती है ।

इस प्रकार 'रामायण' में कौशल्या अपनी पुत्रवधू सीता के वनगमन से दुःखी होकर महाराज से उपालम्भ देती हुई कहती है कि स्वादिष्ट भोजन खानेवाली मेरी बहु वन का रूखा-सुखा भोजन कैसे करेगी । जबकि 'मानस' में कौशल्या सीता के सामने ही उनकी कोमलता को प्रकट करती हुई बहु के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करती है । 'रामायण' में कौशल्या वन जाती हुई सीता को रोकने का प्रयत्न नहीं करती । जबकि 'मानस' में कौशल्या सीता को घर में रहने के लिए मनाती है । चित्रकूट में सीता के दुर्बल शरीर को देखकर माता कौशल्या प्रेम-जनित वचनों को कहती है । जबकि 'मानस' में कौशल्या सीता को देखकर दुःखी तो अधिक है परंतु कुछ बोल नहीं सकती। संक्षेप में दोनों महाकाव्यों में कौशल्या का आदर्श सास के रूप में उत्कृष्ट चित्रण हुआ है ।

5.3.2.6 धर्मज्ञा :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में कौशल्या धार्मिक कार्य करती हुई धार्मिक भावनाओं से ओतप्रोत दिखाई देती है । 'रामायण' के प्रारंभ में पुत्रप्राप्ति के लिए किये गये अश्वमेध यज्ञ में धार्मिक व्रत उपासना में महाराज के साथ सामिल होती है और धर्मपालन की ईच्छा रखती हुई कौशल्या एक रात अश्व के निकट निवास करती है । नववधू कै रूप में आयी हुई सीता आदि वधूओं को कौशल्या आदि राज परिवारकी

स्त्रियाँ देवमंदिरों में ले जाकर देवताओं का पूजन करवाती है। 'मानस' में अश्वमेघ यज्ञ का वर्णन न करके गोस्वामी ने इसी ओर संकेत करके कथाप्रवाह को आगे बढ़ा दिया है। 'रामायण' की भाँति 'मानस' में भी सीता आदि नववधूओं को आदर सत्कार करने के पश्चात् कौशल्या सहित सभी माताएँ देवों और पितरों का पूजन करवाती है । राम के राज्याभिषेक का समाचार सुनकर कौशल्या उसकी निर्विघ्न पूर्ति के लिए व्रतपरायण होकर मन्त्रोचार पूर्वक अग्नि में आहुति देती है । देवकार्य के लिए दही, अक्षत, घी, मोदक, हविष्य, धारका लावा, सफेद माला, खीर आदि सामग्री संग्रह करके अग्नि में हवन करा रही थी । कौशल्या के व्रत, अनुष्ठान आदि के प्रति लगाव को दिखाते हुए वाल्मीकि ने लिखा है कि-

तां शुक्ल क्षौम सवीतां व्रतयोगेन कर्शिताम ।
तपयन्ती ददर्शाद्रिर्देवतां वर वर्णिनीम। ।।[294]

अर्थात् उत्तम कान्तिवाली माता कौशल्या सफेद रंग की रेशमी साडी पहने हुए थी। वे व्रत के अनुष्ठान से दुर्बल हो गयी थी और इष्टदेवता का तर्पण कर रही थी। 'मानस' में भी राम राज्याभिषेक के समाचार सुनकर कौशल्या ब्राह्मणों को दान देती है। कौशल्या ग्रामदेवियों, देवताओं और नागों की पूजा करती है और फिर बलि भेंट देने के लिए कहकर प्रार्थना करती है कि जिस प्रकार से श्रीरामचन्द्रजी का कल्याण हो दया करके वहीं वरदान दीजिये -

पूजी ग्राम देबि सुर नागा । कहेउ बहोरि देन बलिभागा ।
जेहि बिधि होइ राम कल्यान । देहु दया करि सो बरदान ।।[295]

'रामायण' की कौशल्या की भांति 'मानस' में भी कौशल्या को होम हवन में विश्वास है पर वह करती नहीं है । 'रामायण' की कौशल्या ग्राम देवी देवता की पूजा नहीं करती है । 'रामायण' की कौशल्या को कर्मवाद का ज्ञान है परंतु 'मानस' की कौशल्या भाव वत्सला है ।

5.3.3.7 सपत्नी के रूप में :-

दोनों महाकाव्यो में कौशल्या का सपत्नी के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण'

में कौशल्या और सुमित्रा के बीच में जो प्रेम दिखाई देता है वह प्रेम कौशल्या और कैकेयी के बीच नहीं दिखाई देता । रामराज्याभिषेक का समाचार सबसे पहले सुमित्रा कौशल्या को सुनाने के लिए जाती है । राम वनगमन के पश्चात् सुमित्रा कौशल्या के साथ ही रहती है इतना ही नहीं पुत्र वियोग में व्याकुल कौशल्या को धैर्य देती हुई सुमित्रा कहती है कि पापरहित देवी ! तुम्हें तो इन सब लोगों को धैर्य बंधाना चाहिए फिर स्वयं ही इस समय अपने हृदय में इतना दुःख क्यों करती हो ? [296] इस प्रकार पुत्र-वियोग और पति की अवदशा के समय पर सुमित्रा का कौशल्या के पास ही रहना सुमित्रा का कौशल्या के प्रति गहरा लगाव दिखाई देता है। इसी प्रकार 'रामायण'में कौशल्या की अन्य सौतें सुमित्रा, कैकेयी तथा अन्य साढ़े तीन सौ रानियों के प्रति सहृदयता का व्यवहार दिखाई देता है परंतु कैकेयी ने कौशल्या के प्रति उपेक्षित व्यवहार ही किया है । इस बात को प्रकट करनी हुई कौशल्या अपने पुत्र राम को कहती है कि मैंने सोचा था कि पुत्र के राज्यकाल में मुझे सर्व सुख प्राप्त होगा और इसी आशा में मैं अबतक जीवित रही परंतु अब तुम वन जा रहे हो । यानी मेरा वह स्वप्न भी तूटता नज़र आता है । तुम्हारे वन जाने से मुझे हृदय को बिंध देने वाले छोटी सोतों के बहुत से वचन सुनने पडेगे । हे पुत्र, तुम्हारे रहते हुए भी मैं सौतों से तिरस्कृत रही हूँ । तुम्हारे जाने पर मेरी क्या दशा होगी ? यानी उस दशा में मेरी मृत्यु निश्चित है । पति एवं सोत के तिरस्कार भरे व्यवहार को प्रकट करती हुई कौशल्या कहती है कि पति की ओर से मुझे सदा अत्यन्त तिरस्कार अथवा कड़ी फटकार ही मिली है कभी प्यार और सम्मान प्राप्त नहीं हुआ है । मैं कैकेयी की दासियों के बराबर अथवा उनसे भी गयी बीती समझी जाती हूँ । [297] महाराज दशरथ के सामने स्वच्छन्दविचारों वाली कैकेयी को लेकर कौशल्या कहती है कि –

राघवे नरशार्दूले विषं मुक्तवाहिजिहमगा ।
विचिरिष्यति कैकेयी निर्मुक्तेव हि पन्नगी ।
त्रासयिष्यति मां भूयो दुष्टाहिरिव वेश्मनि ।। [298]

अर्थात् नरश्रेष्ठ श्रीराम पर अपना विष उँडेलकर टेढी चाल से चलनेवाली कैकेयी केंचूल छोड़कर नूतन शरीर से प्रकट हुई सर्पिणी की भाँति अब स्वछंद विचरगी। ऐसी स्वछंद चारिणी कैकेयी राम को वनवास देकर सफल मनोरथ हुई वह मुझे त्रास देती रहेगी । राम वनगमन से हुई महाराज दशरथ की मृत्यु से खिन्न कौशल्या कैकेयी को दुराचारिणी, क्रूर कैकेयी, नारी धर्म का त्याग देने वाली आदि शब्दों का प्रयोग करती हुई बहुत फटकारती है ।[299] इस प्रकार रामायण की कौशल्या अपनी सौतों के प्रति सद्भावपूर्ण व्यवहार करती है परंतु कैकेयी के द्वारा कौशल्या उपेक्षित होती रहती है ।

'रामायण' की भाँति 'रामचरित मानस' में भी कौशल्या का सपत्नी के रूप में चित्रण हुआ है । 'मानस' में कौशल्या का सपत्नी रूप सभी सौतों के साथ सहृदयता भरा दिखाई देता है । राम के वनवास से दुःखी कौशल्या कैकेयी तथा अन्य सोतों के प्रति कटु वचन नहीं कहती । राम वनगमन का कारण जानने के पश्चात् वह स्तब्ध हो जाती है और राम को कहती है कि –

जौं केवल पितु आयसु ताता । तो जनि जाहु जानि बडि माता ।
जौं पितु मातु कहेउ बन जाता । तौ कानन सत अवध समाना ।।[300]

अर्थात् हे तात ! यदि केवल पिताजी की ही आज्ञा हो तो माता को पिता से बडी जानकर वन को मत जाओ किन्तु यदि पिता-माता दोनों ने वन जाने को कहा हो तो वन तुम्हारे लिये सैंकडों अयोध्या के समान है । 'मानस' की कौशल्या को रामबनगमन का दुःख अवश्य है पर इसके लिये न तो वह महाराज को और न कैकेयी या अन्य किसी को दोष देना चाहती है । चित्रकूट में सुनयना आदि के सामने कौशल्या अपने कर्मों को दोष देती हुई विधि की इच्छा दिखाती है जो विधि शुभ-अशुभ फल को देनेवाला है –

कौसल्या कह दोसु न काहु । करम बिबस दुःख सुख छतिलाह ।
कठिन करम गति जान बिधाता । जो सुभ असुभ सकल फल दाता ।[301]

इस प्रकार 'रामायण' की कौशल्या को अपनी सौत कैकेयी की ओर से होते दुर्व्यवहार से दुःखी है, जिसको वह राम के सामने प्रकट करती है । 'मानस' में

कौशल्या कैकेयी को लेकर एक भी अपशब्द नहीं कहती । जबकि 'रामायण'में महाराज दशरथ के सामने कौशल्या निंदात्मक शब्दो द्वारा कैकेयी को फटकारती है। 'मानस' की कौशल्या कैकेयी के प्रति सहानुभूति पूर्ण व्यवहार रखती है । 'रामायण' में कैकेयी कौशल्या के साथ उपेक्षित व्यवहार करती है । परिणामतः कौशल्या दुःख या क्रोध से राम और महाराज दशरथ के सामने कैकेयी पर कटु शब्दों का वार करती है । अतः दोनों महाकाव्यों में कौशल्या सपत्नी के रूप में प्रकट होती है।

निष्कर्ष में महाकवियों के दृष्टिकोण में भिन्नता के कारण दोनों में कौशल्या के चरित्रान्तर्गत पर्याप्त अंतर है । 'रामायण' में कौशल्या के मानवीय रूप का यथातथ्य इतिहास अंकित है तो 'मानस' में उनके दैवी रूप का आदर्श तेजस्वी रूप चित्रित है। प्रथम के प्रति हम उनके समकक्ष स्थित होकर करूण सहानुभूति प्रगट करते हुए उसके दुःख सुख के समभागी बनते हुये उनकी सराहना करते हैं तो 'मानस' की कौशल्या को हम अलौकिक सोपान पर आसीन होकर उन्नत ग्रीवाकर उस पर अवलोकन कर श्रद्धा समर्पित करते हैं ।[302]

वाल्मीकि की कौशल्या आदर्श माता, पत्नी एवं सास है । वाल्मीकि ने कौशल्या के चरित्र- चित्रण में नारी सुलभ विद्वेष तथा सपत्नीगत ईर्ष्याभाव का चित्रण किया है। जबकि 'मानस' की कौशल्या इससे सर्वथा मुक्त है। वाल्मीकि कौशल्या महाराज दशरथ तथा सौतों की ओर से होती उपेक्षा का मुक्त रूप से उल्लेख करती है। जबकि 'मानस' की कौशल्या विवेकशीला के रूप में प्रकट होकर किसी को भी दोषी नहीं ठहराती। वाल्मीकि रामायण की कौशल्या भरत तथा महाराज को कठोर वचन कहती है तथा कैकेयी के चरित्र के ऊपर संदेह करती है । जबकि 'मानस' की कौशल्या सहिष्णु और संदेहमुक्त के रूप में प्रकट होती है । माताप्रसाद गुप्त के शब्दों में "कौशल्या में हम पति द्वारा उचित सम्मान से वंचिता और इसीलिए क्षीण काया खिन्नमना, उपवासदिपरा पर क्षमाशीला, त्यागशीला, सौम्य, विनीत गंभीर प्रशांत, विशाल हृदया तथा पति सेवा परायणता आदर्श महिला का चित्र पाते हैं।''[303]

5.4 ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ के गौण चरित्र :-

‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ के प्रमुख चरित्रों की तुलना करने के पश्चात् अब हम दोनों महाकाव्यों के गौण चरित्रों की तुलना करेंगे । मुख्य चरित्रों के रूप में राम, सीता और रावण के सिवा हमने जिन चरित्रों को लिया है, उन चरित्रों की विशेषता यह नहीं है कि इन पात्रों के योगदान से संवृत में नाटकीय मोड़ आ गया है । जिस प्रकार कथानक में चरित्र के महत्व को ध्यान में रखते हुए प्रमुख चरित्रों का चुनाव किया गया है, उसी प्रकार गौण चरित्रों के रूप में उन्हीं चरित्रों को लिया गया है, जो दोनों महाकाव्यों की आधिकारिक कथावस्तु को विशेषतः प्रभावित नहीं कर सकते परंतु प्रसंगोचित उन चरित्रों का योगदान महत्व का है। अतः आलोचकों ने रामकाव्य का अध्ययन करते समय प्रमुख और गौण चरित्र का जो वर्गीकरण किया है, उसमें किंचित परिवर्तन करके दोनों महाकाव्यों के चरित्रों में से गौण चरित्रों को चुना गया है । अतः ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ के गौण पुरुष चरित्रों में सुग्रीव, विभिषण, मेघनाद, वाली, वशिष्ट, शत्रुध्न, अंगद तथा जनक। इसीप्रकार ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ के स्त्री चरित्रों में सुमित्रा, मन्दोदरी, तारा तथा मन्थरा को लिया गया है

5.5 ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ के गौण पुरुष चरित्रः-

5.5.1 ‘रामायण’ एवं ‘रामचरित मानस’ का सुग्रीव :-

‘रामायण’ ओर रामचरित मानस’ में सुग्रीव सूर्य का पुत्र तथा किष्किन्धा नरेश बाली का छोटा भाई है, जो देश निष्कासित होकर ऋष्यमूक पर्वत पर रहता है। सीताकी खोज में निकले राम-लक्ष्मण को हनुमानजी द्वारा सुग्रीव का परिचय होता है । दोनों महाकाव्यों में सुग्रीव का चरित्र बहुत उत्कृष्ट नहीं है । वह परिस्थितियों के वशीभूत होकर प्रारंभ में दीन, हीन दिखाई देते हैं परंतु राम से मित्रता करके अपनी सम्पूर्ण शक्ति को वह राम कार्य में लगा देता है ।

दोनों महाकाव्यों के किष्किन्धाकाण्ड़ में सुग्रीव की राम से मित्रता होती है । राम

उसे आश्वासन देते हुए उसकी पत्नी और राज्य को वापिस दिलवाने के लिए बाली वध की प्रतिज्ञा करते हैं । उस समय सुग्रीव भी अपनी मित्रता को निभाते हुए राम को पत्नी वियोग से मुक्त करने का वचन देते हैं । [304] सीता के आभूषणों को देखकर श्रीराम शोकग्रस्त अवस्था में अश्रु बहाने लगते है तब सुग्रीव विविध प्रकारेण उनको धैर्य बँधाते है जिसको देख राम को भी बड़ी प्रसन्नता होती है ।[305] 'मानस' में भी सुग्रीव एक सच्चे मित्र के रूप में प्रकट होते हैं । तुलसीदास ने लिखा हैं कि दोनों मित्रों ने एक दूसरे के प्रति अन्तर को समाप्त करके अपने अपने दुःख को प्रकट कर दिया । [306] दोनों महाकाव्यों में राम बाली वध के उपरांत किष्किन्धा नरेश के रूप में सुग्रीव का राज्याभिषेक कर देते हैं । सुग्रीव भी सखा सहज भाव से वानर दल बल के साथ राम की सहायता करते हैं जिससे लंका पर राम की विजय सरल हो जाती है ।

सुग्रीव का व्यक्तित्व भीरु है और इसी भीरुतावश ही वह वाली से छिपकर ऋष्यमूक पर्वत पर रहने के लिए चले जाते है। 'रामायण'[307] और 'मानस'[308] दोनों में राम लक्ष्मण को ऋष्यमूक पर्वत की ओर आते देख सुग्रीव डरने लगते हैं जिसका वाल्मीकि ने विस्तृत वर्णन किया है । विलासिता में डूबे सुग्रीव को उसका कर्तव्य याद दिलाने के लिए लक्ष्मण किष्किन्धा आते हैं तब सुग्रीव लक्ष्मण के क्रोध को शांत करने के लिए खुद जाने के बजाय तारा को भेज देते हैं ।

बाली के साथ शत्रुता से पहले सुग्रीव उनका आदर करते थे । मायावी राक्षस के साथ युद्ध के लिए हुए वाली के पैरों पड़कर उन्हें रोकते हैं परंतु वह नहीं मानते तो स्नेहवश ही सुग्रीव उनके साथ युद्ध के लिए निकल पड़ते हैं । 'मानस' में बाली के प्रति अपने प्रेम को प्रकट करते हुए सुग्रीव कहते हैं कि,

नाथ बालिका अरु मैं दोऊभाई ।
प्रीति रही कछु बरनि न जाई ।[309]

'रामायण' में बाली वध से दुःखी होकर सुग्रीव राम के पास प्राण त्याग ने की आज्ञा माँगते हैं ।[310] यहाँ बाली वध से दुःखी सुग्रीव के विलाप को वाल्मीकि ने विस्तार

से दिया है, जिसका ‘मानस’ में अभाव है । दोनों महाकाव्यों में सुग्रीव और वाली में शत्रुता होने पर भी भ्रातृत्व का उज्जवल पक्ष उभरता हुआ दिखाई देता है ।

सुग्रीव के चरित्र में भीरुता के साथ-साथ वीरता का भी दर्शन होता है । वाली को बार बार ललकारते हुए उनके साथ युद्ध करना, सुबेल पर्वत पर रावण के उपर आक्रमण कर देना तथा कुंभकर्ण पुत्र कुम्भ को रण में मार गिराना आदि में उसकी वीरता दिखाई देती है । ‘मानस’ में भी सुग्रीव , मेघनाद तथा कुंभकर्ण आदि वीर योद्धाओं के सामने अपने पराक्रम को दिखाते हैं । सुग्रीव के पराक्रम को प्रकट करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है कि वायुदेव की भांति विशालकाय वानर राज ने बड़े बड़े राक्षसों को गिरा-गिराकर मथ एवं कुचल डाला ।[311]

निष्कर्ष के रूप में इतना कहा जा सकता है कि दोनों महाकाव्यों में सुग्रीव के चरित्र में भीरुता के साथ-साथ वीरता के गुण को भी उभारा गया है । सुग्रीव के पराक्रम को महर्षि वाल्मीकि ने विस्तार से वर्णित किया है । जबकि ‘मानस’ में इसका अभाव है। दोनों महाकाव्यों में सुग्रीव के चरित्र में अनेक दुर्बलताएँ दिखाई देती है । इस पर प्रकाश डालते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते हैं कि ‘सुग्रीव का चरित्र तो और भी औसत दरजे का है, न उनकी भलाई ही किसी भारी हद तक पहुँची हुई दिखाई देती थी न बुराई ही । राम के साथ उन्होंने मैत्री की और राम का कुछ कार्य साधन करने के पहले ही बड़े भाई का राज्य पाया । पर जैसा कि साधारणतः मनुष्य का स्वभाव होता है, वह सुख विलास में फँसकर राम का कार्य भूल गये । जब हनुमान ने चेताया तब धबराएँ और अपने कर्तव्य में दत्तचित हुए।”[312] अंत में सुग्रीव ने जगत् प्रसिद्ध वीरभाई वाली को श्री राम द्वारा छिपकर मरवाया तथा पीछे उनकी पत्नी तारा को भी अपनी पत्नी बना लिया । इन सबसे इनका व्यक्तित्व न तो आदर्शमय है और न वंदनीय है।[313]

5.5.2 ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ के विभिषण :-

कैकेयी तथा विश्रवा के छोटे पुत्र विभिषण दोनों रामकथाओं में सदाचारी, रामभक्त, साधुप्रकृति तथा सहृदयी के रूपमें चित्रित हुए हैं । रावण के अत्याचारों तथा

धर्म विरुद्ध के कार्यो से वह दुःखी हैं । वह रावण को सत्यमार्ग पर लाने के लिए बार-बार समझाता है, परंतु अहंकारी रावण उन्हें देश-निष्कासित कर देता है । अंत में विभिषण प्रभु श्रीराम की शरण में चले जाते हैं और राम के श्रेष्ठ भक्तों में अपना स्थान बना लेते हैं।

'रामायण' में वाल्मीकि ने विभिषण को धर्मात्मा के रूप[314] में चित्रित करते हुए उनकी हजारों वर्ष की तपस्या आदि का विस्तार से वर्णन किया है । "रामचरित मानस' में भी तुलसीदास ने विभिषण का साधु चरित्र के रूप में चित्रण किया है।[315]

'रामायण' में युद्धकाण्ड के प्रारंभ की महत्वपूर्ण घटना विभिषण की शरणागति है। रावण द्वारा निन्दित होकर विभिषण राम की चरण में चले आते है और राम शरणागत रक्षा का महत्त्व बताते हुए उनको शरण देते हैं । [316] विभिषण भी अपना ऋण चुकाते हुए श्रीराम के पूछने पर राक्षसों की शक्ति, युद्ध विषयक शैली, गोपनीय स्थलों तथा उनकी माया जैसे अनेक रहस्यों को खोल देते हैं। 'मानस' में तुलसीदास ने विभिषण को शरणागत भक्त का रूप प्रदान किया है, यहाँ राम के अलौकिक रूप की उद्‌भावना प्रमुख है । रावण द्वारा त्याग किये जाने की बात का विभिषण को तनिक भी दुःख नहीं है । राम के पास जाते समय वह मन ही मन पुलकित और हर्षित होते है।[317] विभिषण की दीनवाणी सुनकर भक्तवत्सल श्री राम उनको हृदय से लगा लेते हैं।[318] दोनों महाकाव्यों में शरणागत विभिषण को श्री राम लंका का राज्य देते हुए उनका राज्याभिषेक कर देते हैं ।

'रामायण' में विभिषण को राम की शरण लेने से कुल का कलंक बताया है । इस में विभिषण की मंत्रणा का स्वरुप पर्याप्त मनोवैज्ञानिक है । विभिषण की मंत्रणा को प्रथम बार रावण मौन होकर सुनता है । दूसरे दिन उसके परामर्श को शांत चित से सुनकर उसके भय को आत्मपराक्रम के कथन से दूर करने की चेष्टा करता है । किन्तु तीसरी बार जब रावण के प्रलाप एवं आत्मबल के अतिरंजित आख्यान को सुनकर विभिषण सीताजी को लौटाने का परामर्श देता है तो रावण कटूक्तियों की वर्षा कर देता

है । अतः विभिषण न्यायोचित मंत्रणाओं को देने में कुशल है । इसी संदर्भ में डॉ. विद्याजी का मत है कि 'विभिषण सुमन्त्रणा देने में नितान्त पटु है । जिस किसी पक्ष को वे मंत्रणा देते हैं, वह उसी पक्ष के लिए परम हितकारी होती है। रावण ने जब बल दर्प के कारण उसकी मंत्रणा का तिरस्कार और अवहेलना की तभी उसका सर्वनाश हुआ।[319] 'अध्यात्म रामायण' में श्री विभिषण रावण को राम के आध्यात्मिक रूप का परिचय देते हैं ।[320] परंतु रावण की ओर से इसकी उपेक्षा की जाने पर भक्तिभाव से प्रेरित होकर वह राम की शरण में चले जाते हैं ।

सत्य नीति के समर्थक के रूप में प्रकट होते हुए विभिषण सीता को लौटा देने के लिए रावण को अनेक बार प्रार्थना करते हैं । इतना ही नहीं वह राम के हाथों खर का वध भी न्यायोचित बताते हैं ।[321] 'मानस' में भी राम की सेना समुद्र तट पर पहुंच गयी है, गुप्तचरों से ऐसा समाचार जान विभिषण पंडितो पुराणो और वेदों द्वारा अनुमोदित वाण्ी से नीति को बखान कर रावण को कहते हैं ।[322] परंतु रावण पर उनका कोई असर नहीं होता । समुद्र से मार्ग लेने के लिए उनसे प्रार्थना करने का विभिषण का नीतियुक्त परामर्श [323] राम को भी पसंद आया और उनका सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में विभिषण की लंका के प्रति की उमदा भक्ति दिखाई देती है । राम के क्रोध से पूरी लंका का सर्वनाश हो जायेगा इसी भय से विभिषण बार-बार रावण को समझाते हुए सीता को लौटा देने की प्रार्थना करते है। [324] 'मानस' में विभिषण एक ही बार रावण को समझाने का प्रयत्न करते हैं और रावण से तिरस्कृत होकर वह राम की शरण में चले जाते हैं । 'रामायण' में रावण के साथ संवाद करते हुए विभिषण में लंका के प्रति का प्रेम प्रकट होता है । जबकि 'मानस' में इसका अभाव है ।

दोनों महाकाव्यों में विभिषण का न्यायप्रिय, सत्यनिष्ठ एवं धर्मात्मा के रूप में चित्रण होने पर भी उसका चरित्र उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित नहीं हो पाया है । कुंभकर्ण आदि ने रावण के कृत्य की भर्त्सना अवश्य की, किन्तु आत्मीयता की वेदी पर वे जुझ

गए, संकट में रावण को छोड़कर भागे नहीं । लंका की चहुँ और शत्रु सेना का पड़ाव और युद्ध के प्रारंभ होने से पहले लंका को छोड़ देना बुद्धिमानी नहीं मानी जाती । विभिषण के इस कृत्य को जनमानस कभी क्षमा नहीं कर सकता । राम के द्वारा लंका के राजा बनाने का आश्वासन पाकर विभिषण के चरित्र में घर के भेदिया की गंध आने लगती है ।[325] अपने पुत्र समान इन्द्रजित के यज्ञ में विध्न डालकर उनको लक्ष्मण के हाथों मरवाना तथा राम-रावण के युद्ध की अंतिम क्षणो में रावण की मृत्यु के रहस्य को प्रकट कर भ्रातृहन्ता का कलंक अपने शिर पर लेने वाले विभिषण का चरित्र राष्ट्र द्रोही, कुलद्रोही तथा भ्रातृद्रोही के रूप में प्रकट होता है- जिसको प्रकट करता हुआ इन्द्रजित कहता भी है कि –

न ज्ञातित्वं न सौहांर्द न जाति स्तव दुर्मते ।
प्रमाणं न च सौन्दर्य न धर्मो धर्मदूषणं ।।[326]

अर्थात् तुममें न तो परिवारजनों के प्रति अपनापन का भाव है, न आत्मीजनों के प्रति स्नेह है और न अपनी जाति का अभिमान ही है । तुममें कर्तव्य अकर्तव्य की मर्यादा, भ्रातृप्रेम और धर्म कुछ भी नहीं है । तुम राक्षस धर्म को कलंकित करने वाले हो। 'रामचरित मानस' में तुलसीदास ने सुन्दर काण्ड में ही विभिषण का परिचय दे दिया है । राम की शरण में जाकर विभिषण एक बार भी अनादर किये बिना लंका का राज्याभिषेक करवा लेते हैं । 'रामायण' की भाँति 'मानस' में भी मेघनाद और रावण के यज्ञ का रहस्य खोलकर विभिषण उनको मृत्यु के मुँह में धकेल देते हैं।[327]

'रामचरित मानस' मे विभिषण को संत की उपमा दी गई है ।[328] 'आनन्द रामायण' में भी समस्त भक्तों को विभिषण के अंशावतार माने गये है । [325] यहाँ प्रश्न उठता है कि विभिषण यदि संत है तो असंत कौन है ? अतः विभिषण को यदि राजा रावण से असंतुष्टि है तो रावण को छोड़कर कहीं ओर जाकर चूप हो जाना चाहिए था यह नहीं कि शत्रुपक्ष से मिलकर राज्याभिषेक करवाके रावण वध की योजना बनाना शुरु कर दे । दोनों महाकाव्यों में शत्रुपक्ष से मिलकर अपने भाईयों तथा उनके पुत्रों का राम

के हाथों वध करवाकर विभिषण का चरित्र अनेक विवादों से घिर जाता है ।

निष्कर्षतः रामायण के सुन्दर काण्ड़ में हनुमानजी तथा विभिषण का न तो मिलन दिखाया गया है और न रामभक्त के रूप में उनका चित्रण हुआ है । 'रामायण' में विभिषण को कुल का कलंक कहा गया है । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने कुंभषर्ण के मुँह से कुलभूषण बताया है। दोनों महाकाव्यों में विभिषण को शरणागत के रुप में चित्रित किया गया है। 'रामायण' में विभिषण राम की शरण में राजनैतिक दूरदर्शिता से और 'मानस' में भक्तवत्सलता से प्रेरित होकर जाते है । अंत में अपने पुत्र-भाई, परिवार, देश आदि को छोड़कर राम की सहायता करनेवाले विभिषण का चरित्र स्पष्ट रूप से प्रकट न होकर विवादास्पद चरित्र के रूप में प्रकट होता है ।

5.5.3 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के मेघनाद :-

मन्दोदरी एवं रावण के पुत्र मेघनाद का दोनों महाकवियों ने पितृभक्त, महान योद्धा एवं शूरवीर के रूप में चित्रण किया है । जन्म के साथ ही रोते रोते उन्होंने गंभीर नाद किया था अतः रावण ने उसका मेघनाद नाम रखा था । इसी प्रकार देवराज इन्द्र पर विजय प्राप्त करके उसने ब्रह्मदेव से इन्द्रजित की संज्ञा भी प्राप्त की थी । मेघनाद जितना वेगवान योद्धा है इतना ही धोर तपस्वी है । अपने पिता रावण की तरह यह भी दुर्वृत्तियों का पक्षधर है ।

तपस्वी इन्द्रजित ने अपने पिता को बताये बिना ही शुक्राचार्य के मार्गदर्शन में अग्नि होम, अश्वमेघ, राजसूय आदि सात यज्ञों की पूर्णाहूति करके भगवान पशुपति से अनेक वर प्राप्त कर लिये थे ।[330] यज्ञ-विधान का ज्ञाता इन्द्रजित राम के साथ युद्ध की भयानकता को देखकर निकुम्भिला मंदिर में जाकर अजेय रथ के लिए यज्ञ करता है । 'मानस' में भी जाम्बवान् से परास्त होकर मेघनाद निकुम्भिला मंदिर में रुधीर और भैंसों की आहुतियाँ देकर अपवित्र यज्ञ करता है ।[331] वाल्मीकि ने उत्तर काण्ड में मेघनाद के यज्ञों और उनसे प्राप्त वरों का विस्तृत वर्णन किया है । जबकि 'मानस' में इसका

अभाव है । दोनों महाकवियों ने इन्द्रजित के निकुम्भिका मंदिर का विस्तार से वर्णन किया है ।

दोनों महाकाव्यों में इन्द्रजित पृथ्वीपर के अनेक वीरों तथा स्वर्ग के अनेक देवताओं पर विजय प्राप्त करके अजेय योद्धा के रूप में प्रकट होता है । 'रामायण' में रावण के साथ युद्ध में गये मेघनाद अपनी माया से इन्द्र को बन्दी बनाकर लंका ले आते हैं । राम-रावण युद्ध में मेघनाद नागपाश तथा ब्रह्मास्त्र के द्वारा राम लक्ष्मण को दो-दोबार मूर्छित कर देते हैं । मेघनाद के पराक्रम से राम-सेना इतनी डर जाती है कि आकाश मार्ग से आते विभिषण को मेघनाद समझकर सेना में भागदौड मच जाती है । राम-लक्ष्मण से युद्ध करते हुए पराकमी मेघनाद का वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि ने लिखा है कि –

नास्य वेगगतिं किंचिन्न च रुपं धनुः शरान्।
न चास्य विदित किंचित सूर्यस्येवाभ्र समप्लवं।[332]

अर्थात् इन्द्रजित की वेगपूर्ण गति, रूप, धनुष और बाणों को कोई देख नहीं पाता था । मेघों की घटा में छिपे् हुए सूर्य की भाँति उसकी कोई भी बात किसी को ज्ञात नहीं हो पाती थी । 'मानस' में भी मेघनाद के पराक्रम को प्रकट करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि –

दस दिसि रहे बान नभ छाई । मानहुँ मघा मेघ झरि लाई ।[333]

यानी कि आकाश में दशों दिशाओं में बाण छा गये, मानों मघा नक्षत्र के बादलों की झड़ी लगा दी हो । राम सेना से भयानक युद्ध करता हुआ मेघनाद प्रमुख वीरों को आकुल व्याकुल कर देता है ।[324] 'रामायण' में मेघनाद के ब्रह्मास्त्र से राम समेत सेना का मूर्छित होने का प्रसंग 'मानस' में नहीं है । दोनों महाकाव्यों में विभिषण के द्वारा मेघनाद के यज्ञ के रहस्य खोले जाने पर लक्ष्मण के हाथों उसका वध बताया गया है । अतः इन्द्रजित का वध शूरता की न्यूनता के कारण नहीं अपितु घर के भेदी के विश्वासघात के कारण होता है ।

गुरु शुक्राचार्य के द्वारा मेघनाद ने अनेक वरों के साथ-साथ तामसी माया को भी प्राप्त कर लिया था । जिसके सहारे वह कोई भी युद्ध के परिणाम को बदल देता था । 'रामायण' में राम भी मेघनाद की माया से व्याकुल हो गये थे, जिसको वे लक्ष्मण के सामने प्रकट करते हुए दिखाई देते हैं । [335] मेघनाद अपनी माया से ही हनुमान आदि के सामने माया सीता का वध करता है । 'आनन्द रामायण' में रावण खुद माया सीता का वध करता है । [336] 'रामचरित मानस' में भी मेघनाद राम लक्ष्मण के साथ युद्ध में माया का प्रयोग करता है । अतः 'रामायण' में इन्द्रजित को 'मानस' की तुलना में अधिक मायावी के रूप में चित्रित किया गया है ।

दोनों महाकाव्यों में इन्द्रजित को अहंकारी के रूप में चित्रित किया गया है । अपने पिता की भी आत्मश्लाधा करता हुआ मेघनाद मंत्रियों आदि के सामने अपने पराकमों की डिंग चलाता रहता है । इतना ही नहीं अपने चाचा विभिषण को बल, वीर्य, पराक्रम तथा तेजहीन कहकर उनका अपमान भी कर देता है ।[337] 'मानस' में भी माल्यवान के द्वारा दिये गये राम के साथ संधि के परामर्श की हँसी उडाता हुआ मेघनाद अपनी बड़ाई करता है । 'रामायण' में इन्द्रजित विभिषण को अपनमानित करता है तथा निकुम्भिका मंदिर के बाहर उन्हें फटकारता है आदि प्रसंगों को मानसकार ने छोड़ दिया है । संक्षेप में 'रामायण' का इन्द्रजित 'मानस' के इन्द्रजित से अधिक घमंडी है ।

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में इन्द्रजित पिता के सत् या असत् कार्यों की समीक्षा किये बिना ही उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करता हुआ पितृभक्त के रूप में प्रकट होता है । पिता रावण की अवज्ञा करनेवाले को इन्द्रजित फटकारता है, यहाँ तक कि अपने चाचा विभिषण को भी वीर्यहीन कह देते हैं ।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है – दोनों महाकाव्यों में इन्द्रजित का लंका के प्रति उमदा प्रेम दिखाई देता है । 'रामायण' में वाल्मीकि ने मेघनाद के चरित्र में देश प्रेम, पितृ प्रेम तथा जाति प्रेम जैसे अनेक उमदा गुणों को भर दिया है । जबकि मानसकार ने

विभिषण का पक्ष लेते हुए मेघनाद के इन गुणों को मानो ढँक सा दिया है।

5.5.4 'रामायण' और 'रामचरित मानस' का वाली :-

किष्किन्धा के राजा ऋक्षराज की पत्नी के गर्भ से इन्द्र के संयोग से बाली का जन्म हुआ था । पिता की मृत्यु के पश्चात् उनके ज्येष्ठ पुत्र बाली को किष्किन्धा का राजा बनाया गया । बाली ने अपनी नगरी किष्किन्धा को रमणीय बनाया था जिसकी शोभा को देखकर लक्ष्मण भी चकित से रह गये थे । महर्षि वाल्मीकि ने इसकी शोभा का 'रामायण' में विस्तृत वर्णन किया है।[338] दोनों महाकाव्यों में वाली की असाधारण शक्ति और विवेक-शीलता से उनका चरित्र भिन्न रूप से प्रकट होता है ।

वाली वीर शक्तिशाली तथा अपराजेय योद्धा है । 'रामायण [339] और 'मानस'[340] में सुग्रीव ने उसकी शक्ति की प्रशंसा राम के सम्मुख की है । युद्ध की कामना करता हुआ रावण बाली को युद्ध के लिये ललकारता है । उसकी ललकार को सूनकर वाली ने रावण को काँख में दबा दिया और चारों दिशाओं में समुद्र तट पर जाते हुए किष्किन्धा ले आते हैं । तब वाली के पराक्रम से प्रभावित होकर रावण भी उसकी प्रशंसा करने लगते हैं ।[341] 'रामचरित मानस' में अंगद भी रावण के सामने अपने पिता के इस पराक्रम को प्रकट करते हैं ।[342] दुंदुभि और मायावी राक्षस के साथ भी बाली ने भयानक युद्ध करके उनका वध कर दिया था । अतः बाली अपने समय के शक्तिशाली अपराजेय योद्धा के रूप में प्रकट होते हैं । बाली के पराक्रमों का महर्षि वाल्मीकि ने विस्तार से वर्णन किया है जबकि मानसकार ने इसकी ओर इशारा मात्र कर दिया है ।

दोनों महाकाव्यों में बाली भ्रातृस्नेही तथा वात्सल्यपूर्ण पिता के रूप में भी प्रकट होते हैं । सुग्रीव भी राम के सामने इस बात का स्वीकार करते हैं कि बाली के साथ वैर के पहले मेरे मन में उनके प्रति आदर का भाव था । मरने से पहले बाली अपना राज्य, इन्द्र की दी हुई सोने की माला तथा पुत्र अंगद सुग्रीव को सौपतें हैं और भाई-भाई के बैर के लिए अपने कर्मों को दोष देते हैं ।[343] 'रामायण' में वाली मरने से पहले अपना सर्वस्व सुग्रीव को सौंपते हुए उनको स्नेहमयी भाषा में उपदेश देते हैं । जबकि 'मानस'

में इसका अभाव है । बाली में भ्रातृस्नेह की भांति पितृस्नेह भी उभरा हुआ है । अपनी मृत्यु के समय पुत्र अंगद की अनाथता उन्हें सता रही थी, जिसको वह राम के आगे भी प्रकट करते हैं । [344] 'रामायण'[345] और 'मानस' [346] दोनों महाकाव्यों मे बाली अपने पुत्र अंगद को क्रमशः सुग्रीव और राम को सौंपते हुए उनकी रक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं । 'रामायण' में वाली सुग्रीव के सामने अंगद की बाल्यावस्था को विस्तार से प्रकट करते हैं । जबकि 'मानस'में वह केवल राम से ही प्रार्थना करते हैं । 'रामायण' में मृत्यु से पूर्व वाली अंगद को चाचा की छत्रछाया में देश काल के अनुरूप रहने का उपदेश देते हैं, जिस का 'मानस' में अभाव है । 'रामायण' में वाली का पुत्र प्रेम विस्तार से वर्णित है। जबकि मानसकार बाली के हृदय में पड़े पुत्र प्रेम के कोमल तारों को छेड़े बिना ही आगे निकल गये हैं ।

किष्किन्धा काण्ड में राम के साथ संवादों में वाली की धर्मनिष्ठा दिखाई देती है । अपार शक्ति होने पर भी बाली ने अधर्मता से इनका प्रयोग किसी पर भी नहीं किया । 'मानस' में भी बाली की राम के प्रति धर्मनिष्ठा दिखाई देती है । वह राम के अनन्य भक्त के रूप में उभरते हुए राम की शरण का स्वीकार कर लेते हैं ।[347] 'रामायण' में वाली राजधर्म की चर्चा करते हुए राम को धर्म तथा मर्यादा हीन कहते हैं ।[348] जबकि 'मानस' में "धर्म हेतु अवतरेहु गोसाई । अवगुन कवन नाथ मोहि मारा।" कहकर अपने पर चलाये गये बाण को अधर्म भरा व्यवहार मानते हैं । वाली की धार्मिकता को लेकर श्री अम्बाप्रसाद श्रीवात्सव का मत है कि "धर्म, नीति और आचार की दृष्टि से बाली ठीक उसी मार्ग का अनुसरण करता रहा है जो स्वयं राम का था । ब्राह्मणों, ऋषियों अथवा राजर्षियों द्वारा दी गई व्यवस्थाओं के प्रति वाली की आस्था निसंदेह उदाहरणीय है । मुझे यह कहने में भी कोई संकोच नहीं होता कि वाली ने राम की उपेक्षा अधिक दृढ़तापूर्वक आर्यव्यवस्थाओं का निर्वाह किया था। राग-द्वेष अथवा इन्द्रिय विषयों की कोई भी ऐसी कमजोरी उसमें दिखाई नहीं देती जिसके आधार पर उसे पथ से विचलित हुआ

माना जा सके ।"[349]

निष्कर्षतः 'रामायण' में बाली के चरित्र को नायक की भांति चित्रित किया गया है । जबकि मानसकार ने इनको सामान्य कोटि के चरित्र की भांति चित्रित किया है। 'रामायण' में वाली राम को भी ललकारते हुए कहते हैं कि 'यदि आप युद्ध स्थल में मेरी दृष्टि के सामने आकर मेरे साथ युद्ध करते तो आज मेरे द्वारा मारे जाकर सूर्यपूत्र यम देवता का दर्शन करते । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने वाली को राम के ब्रह्मत्व की ओर आकृष्ट करके उनकी शरणों में स्थान दिला दिया है । दोनों महाकाव्यों में रामने अधर्म से वाली का वध कर दिया है जिससे 'रामायण' और 'रामचरित-मानस' मानवजीवन के निकट के काव्य बन गये हैं । इसी संदर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के विचार दृष्टव्य है" वाल्मीकि और तुलसीदास ने बाली को छिपकर मारने के काले धब्बे पर कुछ सफेद रंग पोतने का प्रयत्न किया है। यह हमारे देखने में तो यह धब्बा ही सम्पूर्ण रामचरित को उच्च आदर्श के अनुरूप एक कल्पना मात्र समझे जाने से बचाता है।[350]

5.5 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के वशिष्ठ :-

महर्षि वशिष्ठ वैदिक काल के ऋषि हैं । इश्वाकु वंश के कुलगुरु आचार्य वशिष्ट को ब्रह्मा का मानस पुत्र भी कहा गया है । 'रामायण' में निमि वशिष्ट के परस्पर शाप की कथा को प्रकट करते हुए वाल्मीकि ने वशिष्ठ की जन्म कथा को दिया है ।[351] महाभारत के अनुसार "इन्द्रियाणां वशकरो वशिष्ठ इति चोच्यते" [352] अर्थात् इन्द्रियों को वश में रखने के कारण ही वे वशिष्ठ कहलाये । दोनों महाकाव्यों में वशिष्ट नीतिविशारद, प्रमुख मंत्री तथा कुलगुरु के रूप में चित्रित किये गये हैं ।

'रामायण' और 'मानस' में इश्वाकु कुल के पुरोहित एवं कुल गुरु के रूप में वशिष्ट का चरित्र समाधानकारी विचारक के रूप में प्रकट होता है । कुल पुरोहित के रूप में वशिष्ठ ने सूर्यकूल में उत्पन्न प्रत्येक समस्याओं को अपने गहनत्तम ज्ञान से

सुलझाई है । 'रामायण' में दशरथ के द्वारा पुत्र प्राप्ति की कामना से किये गये अश्वमेघ यज्ञ का सारा कार्यभार वशिष्ठ अपने पर ले लेते हैं ।[353] 'मानस' में भी पुत्रहीनता से पीड़ित महाराज दशरथ से वशिष्ठ पुत्रेष्ठि यज्ञ करवाते हैं ।[354] इस प्रकार महारानी कैकेयी के द्वारा जब सीता को वल्कलवस्त्र पहनाया जाता है तो सीता के प्रति अन्याय होता हुआ देख वशिष्ठजी कैकेयी को फटकारते हैं । महाराज की मृत्यु से अयोध्या पर आयी विपत्ति में परिवारजनों तथा नगरवासियों को धैर्य बँधाते हुए वशिष्ठ भरत और शत्रुध्न को ले आने के लिये दूतों को भेजते हैं । कुलगुरु वशिष्ठ शोक संतप्त भरत को आश्वासन देकर कुल के रिवाजों के अनुकूल उनकी अन्त्येष्ठि संस्कार करवाते हैं ।[355] 'मानस'में भी तुलसीदास ने लिखा है कि गुरु ने जो जो आज्ञा दी भरत ने सब वैसा ही हजारों प्रकारों से किया।[355] 'रामायण' में भरत के साथ चित्रकूट गये वशिष्ठ इक्ष्वाकुवंश की परम्परा का वर्णन करते हुए श्री राम को राज्याभिषेक करने के लिये समझाते हैं ।[357] 'रामचरित मानस' में भी वशिष्ठ पूरी सभा को संबोधित करते हुए आदरणीय कुलगुरु की भूमिका अदा करते हैं । 'रामायण' में दशरथ अश्वमेध यज्ञ का प्रस्ताव खुद रखते हैं। जबकि 'मानस' में वशिष्ठ अश्वमेघ यज्ञ के लिए महाराज दशरथ को प्रेरित करते हैं। 'रामायण' में वल्कल वस्त्र को लेकर वशिष्ठ महारानी कैकेयी को फटकारते हैं । जबकि 'मानस' में इस प्रसंग को छोड़ दिया गया है ।

'रामायण' के बालकाण्ड में वशिष्ठ और विश्वामित्र के वैमनस्य को चित्रित करते हुए वाल्मीकि ने वशिष्ठ के ब्रह्मबल की श्रेष्ठता दिखाई है।[358] जिसमें विश्वामित्र के द्वारा हजारों वर्ष की तपस्या के फलस्वरूप प्राप्त अस्त्र-शस्त्र का वशिष्ठ के ब्रह्मबल के आगे पराभव हो जाता है और वशिष्ठ से परास्त होकर विश्वामित्र पुनः तपस्या करने चले जाते है।[353] 'मानस' में तुलसीदास ने उपर्युक्त प्रसंगों को छोड दिया है।

दोनों महाकाव्यों में वशिष्ठजी सर्वज्ञानी महात्मा के रूप में प्रकट होते हैं । 'रामायण' में सृष्टि परम्परा के साथ वशिष्ठजी सर्वज्ञानी महात्मा के रूप में प्रकट होते

हैं । 'रामायण' में सृष्टिपरम्परा के साथ इक्ष्वाकु कुल की परम्परा बताते हुए वशिष्ठ श्री राम को राज्यग्रहण करने का आग्रह करते हैं ।[360] 'मानस' में भी वशिष्ठ वेद, पुराण आदि की प्रसिद्ध बातों को कहते हुए भरत को राज्याभिषेक के लिए समझाते हैं।[361]

निष्कर्ष में वाल्मीकि ने वशिष्ठ तथा विश्वामित्र की वैरभावना तथा युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है जबकि 'मानस' में इसका अभाव है । 'रामायण' में वशिष्ठ राम के गुरु तथा पुरोहित के रूप में प्रकट होते हैं । जबकि 'मानस' में वशिष्ठ राम के गुरु के साथ साथ विष्णुरूप राम भक्त के रूप में भी प्रकट होते हैं । दोनों महाकाव्यों में वशिष्ठ का आदर्श महात्मा के रूप में चित्रण हुआ है ।

5.5.6 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के शत्रुध्न :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में सुमित्रा और दशरथ के पुत्र तथा लक्ष्मण के छोटे भाई के रूप में शत्रुध्न का परिचय दिया गया है । ये वीर साक्षात् भगवान विष्णु के अर्धभाग से सम्पन्न और सब प्रकार के अस्त्रों की विद्या में कुशल थे। जिस प्रकार लक्ष्मण राम की छाया बन कर रहते थे, बिलकुल वैसे ही शत्रुघ्न भी भरत की छाया बन कर रहते है।

लक्ष्मण की भांति शत्रुध्न का स्वभाव भी क्रोधी है । षडयंत्रकारिणी मंथरा को देखकर उनके मन में क्रोध धधक उठता है और उसको घसीटते हुए भरत के पास ले आते हैं । परंतु भरत द्वारा "सुमित्रा कुमार क्षमा करो"[362] कहने पर वह मंथरा को छोड़ देते हैं । शत्रुध्न की क्रोधभरी फटकार से कैकेयी भी डर जाती है और भरत के पास चली जाती है । ननिहाल से लौटे शत्रुध्न भरत के सामने पिता का स्त्री के वश में होना तथा वीरवर्य लक्ष्मण का उनको कैद न करने का दुःख प्रकट करता है ।[363]

दोनों महाकाव्यों में शत्रुध्न भरतानुगामी के रूप में प्रकट होते हैं । 'मानस' में भरत ओर शत्रुध्न वन में निवास करे और राम तथा लक्ष्मण सीता सहित अयोध्या लौट जाये के प्रस्ताव को सुनकर भरत की भांति शत्रुध्न भी हर्षित हो जाते हैं –

सुनि सुबचन हरषे दोउ भ्राता । में प्रमोद परिपुरन गाता ।[364]

शत्रुध्न श्री भरत के सच्चे अनुगामी हैं, वे भरतजी के राज्यपद स्वीकार करने के पक्ष या विपक्ष में बोलते नहीं है, चित्रकूट की यात्रा में उनका महामौन अक्षण्य है। श्री भरत के तपस्वी जीवन और राज्य संचालन में वे प्रतिक्षण उनके साथ है । रामराज्य की आधार शिला में जिन समर्पित व्यक्तियों ने स्वयं को नींव में अर्पित कर दिया उनमें श्री शत्रुध्न अग्रण्य है ।[365]

महर्षि वाल्मीकि ने शत्रुध्न के पराक्रम का प्रसंग उतरकाण्ड में दिया है । मथुरा को लवणासुर के अत्याचारों से मुक्त करने का कार्य शत्रुध्न को सौंपा जाता है। उस समय अपने पराक्रम को दिखाते हुए शत्रुध्न लवणासुर का वध कर देते हैं और मथुरा के शासक के रूप में नियुक्त होते हैं ।

निष्कर्षतः 'रामायण' में क्रोध के मारे शत्रुध्न भरत के आगे अपने पिता को कोसते हैं तथा अग्रज के द्वारा महाराज का विरोध न करने का अपना दुःख प्रकट करते हैं । जबकि 'मानस' में शत्रुध्न का सयंमित रूप दिखाई देता है । 'रामायण' में शत्रुध्न कैकेयी को फटकारते हैं, परंतु 'मानस' में कैकेयी का क्रोध वह मंथरा पर उतारते हैं । दोनों महाकाव्यों में शत्रुध्न भरत की छाया के रूप में प्रकट होते हैं । मंथरा के दण्ड़ देने की एक ही घटना ऐसी है, जिसमें वह भरत के स्वभाव से विपरीत व्यवहार करते हैं । यदि 'रामायण' और 'रामचरित मानस'में राम वनगमन का प्रसंग नहीं आता तो भरत भी लोकदृष्टि से इतने ही ओझल रहते जितने शत्रुध्न रहे हैं । परिस्थितियाँ ऐसी घटित होती हैं कि भरत को मजबूरन सामने आना पडा, जबकि शत्रुध्न के लिए ऐसी कोई परिस्थिति नहीं थी ।

5.5.7 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के अंगद :-

किष्किन्धा नरेश वाली तथा तारा के पुत्र अंगद शौर्य, पराक्रम तथा वाक्चातुर्य में अपने पिता की बराबरी करते हैं । दोनों महाकाव्यों में अंगद राम के सच्चे सेवक के रूप में प्रकट होते हैं । इतना ही नहीं वह राम कार्य सम्पन्नता के लिये अपनी सर्वशक्ति को

भी लगा देते हैं । अतः शौर्य, पराक्रम तथा कुशल सेनानायक आदि की दृष्टि से अंगद का चरित्र उच्च कोटि का बन गया है ।

दोनों महाकाव्यों में अंगद का अपने पिता के प्रति प्रगाढ प्रेम दिखाई देता है । 'रामायण' में पिता की हत्या करवाने वाले सुग्रीव के प्रति वह अपना दुःख प्रकट करता हुआ दिखाई देता है ।[366] इसी प्रकार 'मानस' में भी अंगद सुग्रीव के प्रति अपना अविश्वास प्रकट करता है ।[367]

अंगद के चारित्रिक गुणों में उनको वाक्चातुर्य का गुण विशेष दिखाई देता है। समुद्रतट पर अंगद अपने कथनों के द्वारा सम्पाति को प्रसन्न करके सीता अन्वेषण के लिये यथा योग्य सहायता प्राप्त कर लेता है। इसी प्रकार लंकाकाण्ड में दूत बनकर गये अंगद का रावण ने जब परिचय पूछा तब बड़ी चतुरता से उत्तर देते हुए कहते है कि –

मम जन कहि तोहि मिताई । तव हित कारन आयउँ भाई ।[368]

अर्थात् मेरे पिता की तुमसे मित्रता थी । इसीलिए हे भाई ! मैं तुम्हारी भलाई के लिये ही आया हूँ । रावण ने अंगद के सामने जब अपने पराक्रमों की डिंग मारना शुरु किया तो सुनकर उन्होंने रावण का जहाँ जहाँ पराभव हुआ था सारी घटनाओं को एक एक करके याद दिलाया और कहा कि हारे हुए इन रावणों में तू कौन सा रावण है ? अतः रामदूत के रूप में अंगद पहले रावण के हितैषी के रूप में प्रकट होकर उनके महान कार्यो की याद दिलाकर राम की शरण ले लेने की बात करते हैं। रावण को युद्ध में हुए पराभवों की यादें दिलाकर उसे मानसिक रूप से कमजोर बना देता है । अंत में अपनी वाणी विलासिता से राम की शक्ति को प्रकट करके तथा अपने पराक्रम को दिखाकर रावण तथा सभा-स्थित अन्य राक्षसों को मानसिक तौर से तोड देते हैं । दोनों महाकाव्यों में अंगद की श्रेष्ठतम वावपटुता का दर्शन होता है। 'रामायण' में अंगद का दूतकार्य संक्षेप में दिया गया है । जबकि 'मानस' में यहीं प्रसंग विस्तृत है ।

दोनों महाकाव्यों में अंगद पराक्रमी वीर योद्धा के रूप में भी प्रकट होता हैं । 'रामायण' में दुत बन कर गए अंगद राक्षसों के बंधन तोड़ कर महल की चोंटी पर चढ़

जाते हैं और रावण की नजरों के सामने ही वह चोटी उनके पैंरों के बल से तूट जाती है। 'मानस' मे तो अंगद रावण की सभा में अपना पैर रोपते हुए उसको हटा देने के लिए राक्षसों को चुनौती देते हैं ।[369] 'रामायण' में अनेक वीर योद्धाओं का संहार करते हुए अंगद ने इन्द्रजित को धायल करके उनके घोड़े और रथ को बड़ी हानि पहुँचायी । उस समय उनके पराक्रम से प्रसन्न होकर ऋषियों, सहित देवताओं तथा दोनों भाई श्रीराम ओर लक्ष्मण उनकी प्रशंसा करते हैं।[370] 'मानस'के लंकाकाण्ड़ में शत्रुदल का संहार करते हुए अंगद और हनुमान लंका में घुसकर भारी विध्वंस कर देते हैं तथा दोनों राक्षसी सेना से युद्ध करते हुए भारी पराक्रमों को दिखाते हैं । दोनों महाकाव्यों में नरांतक, महापार्श्व, वज्रदृष्ट्र जैसे अनेक वीर योद्धाओं को तहस नहस करनेवाले अंगद वीर वानर राज के रूप में प्रकट होते हैं । अंगद का महाभयानक युद्ध और अनेक राक्षसयोद्धाओं के वध का वाल्मीकि ने विस्तार से वर्णन किया है । जब कि इन प्रसंगों को मानसकार ने संक्षेप में ही दे दिया है ।

निष्कर्ष में 'रामायण' में पितृघाती सुग्रीव के प्रति अंगद का अविश्वास उनकी युद्ध कुशलता तथा डर के मारे भागती हुई वानर सेना को आश्वासन देकर युद्ध के लिये पुनः प्रयुक्त करना आदि घटनाओं से उनका चरित्र यर्थाथ बन गया है । जब कि 'मानस' में रामभक्ति से प्रेरित होकर किये गये राम कार्य में उनका चरित्र आदर्शमय बन गया है । 'रामायण' में 'अंगद के दूतत्व' प्रसंग को संक्षेप में ही बताया गया है । जब कि 'मानस' में गोस्वामीजी ने इसको विस्तार से दिया है । 'मानस' के दूत अंगद में उनकी तेजस्विता, निर्भिक्ता आत्मविश्वास एवं स्वामिभक्ति इत्यादि गुणों का उत्तरोत्तर विकास दर्शाया है । उक्त प्रसंगों में उसका नीतिरूप, उसकी व्यंगोक्तियाँ, धैर्य, साहस दृढ़ संकल्प एवं सबल व्यक्तितवादि उनके ऐश्वर्यमय गुणशाली रूप का चित्रण करते है ।[371] संक्षेप में दोनों महाकाव्यों में राम कार्य में अपना सर्वस्व सर्मपित कर देने वाले अंगद का चरित्र उच्च कोटि का बन पड़ा है ।

5.5.8 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के जनक :-

रामायण में ह्रस्वरोमा के ज्येष्ठ पुत्र के रूप मे जनक का परिचय दिया गया है। महर्षि वाल्मीकि ने कई जगह जनक के लिये महात्मा शब्द का प्रयोग करते हुए उनका धर्मात्मा, सत्यवादी तथा पराक्रमी शासक के रूप में चित्रण किया है । 'रामचरित मानस'में तुलसीदास ने महाराज जनक में उपर्युक्त गुणों के साथ-साथ राम भक्त रूप को भी बहुत उभारा है ।[372] भगवद् गीता में भी आसक्ति हीन कर्माचरण के द्वारा जनक आदि ज्ञानी जन परमसिद्धि को प्राप्त हुए थे कहकर उनके ज्ञान योग को प्रकट किया गया है ।[373] 'रामायण' में जनक के चरित्र को कवि ने अपनी मूल विशेषताओं से दूर अचित्रित सा रखा है ।

'रामायण' में जनक का पराक्रमी शासक के रूप में चित्रण करते हुए महर्षि वाल्मीकि ने सांकास्य नगर के राजा सुधन्वा के साथ महाराज जनक के युद्ध का प्रसंग दिया है । इसी प्रकार अनेक पराक्रमी राजाओंने सीता को प्राप्त करने के लिये मिथिला को घिरकर पीड़ा देना शुरु किया तब महापराक्रमी महाराज जनक ने चतुरंगिणी सेना की सहायता से उन राजाओं को भगा दिया था । 'मानस' में जनक के पराक्रमों को दिखाने वाले उपर्युकत युद्ध प्रसंगों का अभाव है ।

महाराज जनक के चारित्रिक गुणों में उनकी सत्यवादिता का भी श्रेष्ठतम रूप दिखाई देता है । राम के हाथों शिव धनुष तूटने पर वे बिना सोचे ही अपनी पुत्री सीता का वरण उनसे करवाने के लिये तैयार हो जाते हैं । इसी प्रकार 'मानस' में स्वयंवर में पधारे अनेक राजाओं से धनुष उठा नहीं गया तो जनक दुःखी हो जाते हैं। परंतु अपने प्रण पर अड़िग रहते हैं ।

दोनों महाकाव्यों में महाराज के चरित्र में पितातुल्य वात्सल्य भावना का दर्शन होता है । विवाह के उपरांत ससुराल जाती हुई अपनी बेटियों को महाराज जनक भारी दहेज देकर बिदा करते है। 'मानस' में भी तुलसीदास ने लिखा है कि "जो अवलोकत

लोकपति लोक संपदा थोरि।"[374] 'मानस' में चित्रकूट में सीताजी को तपस्वी वेष में देखकर जनकजी को उन पर विशेष प्रेम उभरता है और वह सीताजी की बार-बार प्रशंसा करने लगते हैं ।[375]

'रामचरित मानस' में धर्म और भरत के प्रेम से संबंधित उठी समस्याओं के समाधान के लिए चित्रकूट में सबकी दृष्टि महाराज जनक पर अंकित होती है । इतना ही नहीं विकट परिस्थिति में ज्ञानी जनक ही मार्ग निकाल सकते हैं ऐसा दृढ़ विश्वास वशिष्ठ भी व्यक्त करते हैं । उस समय महाराज जनक की भूमिका एक शुष्क विचारक की भाँति न होकर वे प्रेम मूर्ति भरत के परम प्रशंसक के रूप में प्रकट होते हैं । अतः 'रामचरित मानस' के जनक औपनिषदिक परम्परा के स्थान पर प्रेम के प्रतिनिधि के रूप में सामने आते हैं ।[376]

दोनों महाकाव्यो में महाराज जनक ऐश्वर्यशाली होने पर भी विनयशीलता की मूर्ति के रूप में प्रकट होते हैं । विश्वामित्र तथा महाराज दशरथ के स्वागत में उनकी विनयशीलता का दर्शन होता है । इसी प्रकार जनक अपने स्नेह को महाराज दशरथ के आगे पूरे विनय के साथ प्रकट करते हुए दिखाई देते हैं ।

निष्कर्ष में रामायण के चित्रकूट में वाल्मीकि ने जनक के आगमन को नहीं दिखाया । जबकि मानसकार ने चित्रकूट में उनका आगमन दिखाकर रामायण की त्रुटि को पूरा करने का प्रयत्न किया है । वेद ओर उपनिषद में महाराज जनक का तत्वदर्शी चरित्र का 'रामायण' और 'मानस' में अभाव सा है । 'रामायण' मे जनक का स्नेही पारिवारिक पक्ष को इतना नहीं उभारा गया जितना 'मानस' में उभरता है। 'रामचरित मानस' में सीता स्वयंवर का विस्तृत वर्णन किया गया है जिसका 'रामायण' में सर्वथा अभाव है । 'रामायण' और रामचरित मानस' के जनक के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए डॉ. विद्या मिश्रने लिखा है कि 'मानस' के जनक का चरित्र 'रामायण' के जनक की अपेक्षा कृत विशेष गौरव एवं गरिमा से युक्त है । उनमें ज्ञानयोग, राजयोग एवं भक्ति योग की त्रिवेणी तरंगित होती हुई दर्शक ह्रदय को पावन एवं रसमय कर देती है ।[377]

5.6 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के गौण नारी चरित्रः-

5.6.1 'रामायण' और 'रामचरित मानस' की सुमित्रा :-

महाराज दशरथ की मझली रानी तथा लक्ष्मण की माता सुमित्रा को दोनों महाकाव्यों में अत्यन्त संक्षिप्त रूप से चित्रित किया गया है । 'रामायण' में पुत्रेष्ठि यज्ञ के अंत में हविष्यान्न का आधा भाग कौशल्या को और बचे हुए आधे से आधा भाग सुमित्रा को और आधा कैकेयी को प्राप्त होता है । 'मानस' में हविष्यान्न का चतुर्थ भाग सुमित्रा को दशरथ के हाथों से नहीं बल्कि कौशल्या और कैकेयी के हाथों से प्राप्त होता है ।

दोनों महाकाव्यों में सुमित्रा को महाराज दशरथ की ओर से विशेष स्नेह प्राप्त नहीं है । पति के प्रेम को लेकर इनके मन में न तो हर्ष है और न विषाद है । राम वनगमन के पश्चात् सुमित्रा कौशल्या के साथ पति भवन में ही रहती है । 'रामायण' में दशरथ की मृत्यु हुई तब सुमित्रा हा, नाथ ! कहती हुई गिर पड़ती है ।[378] 'मानस' में तुलसीदास ने इनका स्वतंत्र वर्णन न करते हुए सर्वे रानियों का एक साथ वर्णन किया है।[379] 'मानस' की सुमित्रा सती होना चाहती है परंतु भरत अन्य माताओं की भांति इन्हें भी रोक देते हैं ।

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में सपत्नियों के प्रति तथा विमाता के रूप में सुमित्रा का चरित्र सद्भाव से भरा हुआ है । 'मानस' में सुमित्रा केवल एक ही बार लक्ष्मण के आगे कैकेयी के लिये पापिनी शब्द का प्रयोग करती है । [380] 'रामायण' में रामवनवास से दुःखी कौशल्या को सुमित्रा आश्वासन देती हुई राम के विविध गुणों के साथ उनके पुरुषश्रेष्ठ रूप को भी प्रकट करती है । 'मानस' में सुमित्रा अपने पुत्र लक्ष्मण को राम सीता की सेवा करने का आदेश देती है ।[381] जिससे उनका प्रेममयी विमाता रूप प्रकट होता है ।

सुमित्रा पुत्र-मोहासक्त हुए बिना ही लक्ष्मण को वन जाने की आज्ञा देती है । 'रामायण' ओर 'मानस' मे उनको लक्ष्मण जैसे पुत्र प्राप्त होने का गर्व है । 'रामायण' में वन जाते हुए लक्ष्मण को बिदा करती हुई सुमित्रा कहती है कि राम संकट में हो या समृद्धि में यही तुम्हारी परम गति है, संसार में सत्पुरुषों का यही धर्म है कि सर्वदा अपने बड़े भाई की आज्ञा के अधीन रहें । 'मानस' में भी लक्ष्मण को विदा करती हुइ सुमित्रा कहती है कि संसार में वहीं युवती स्त्री पुत्रवती है जिसका पुत्र रघुनाथजी का भक्त हो नहीं तो जो राम से विमुख पुत्र से अपना हित जानती है, वह तो बाँझ ही अच्छी । अतः लक्ष्मण को अनेक प्रकार के आशिर्वाद एवं उपदेश देती हुई वह वन के लिए उनको विदा करके निःस्वार्थ वात्सल्य और ममता की एक आदर्श छबि प्रकट कर देती है ।

निष्कर्ष में 'रामायण' में सुमित्रा दशरथ की मृत्यु के पश्चात् स्मशान जाती है तथा उन्हें जलांज्जली देती है। जबकि 'मानस' की सुमित्रा ऐसा नहीं करती परंतु सती होना चाहती है । 'रामायण' की सुमित्रा राम के दिव्य गुणों से प्रभावति है परंतु 'मानस' की सुमित्रा के ह्रदय में रामभक्ति का बीज अंकुरित होता हुआ दिखाई देता है। 'रामायण' की सुमित्रा वीर क्षत्राणी, विवेकशील और त्यागमयी जैसे गुणों से देदिय्यमान है तो 'मानस' में तुलसीदास ने उन्हीं गुणों के साथ संवेदनशीलता तथा व्यवहार कुशलता को भरकर उनके पात्र को आदर्श बना दिया है । सुमित्रा के चरित्र सम्बन्धी गुणों को प्रकट करते हुए श्री रामानन्द शर्मा कहते हैं कि 'सचमुच सुमित्रा ने जो दृष्टि पाई थी, अपने को उसने जिस पारदर्शी मानस भूमि में सुस्थित कर लिया था, धोर आंधी तूफान में भी वह कभी डिगती नहीं दीखी । राम के साथ जाने का उन्होंने कोई आग्रह नहीं किया, पर मन और आत्मा से उन्होंने जैसा साथ दिया, सीता को छोड़कर और कौन उनकी क्षमता कर सकता है ? लक्ष्मण तो आखिर उन्हीं की भेंट थे । कवियों ने इस अनमोल रत्न को ओर अधिक खराद पर क्यों न चढ़ाया इसे ओर अधिक क्यों न चमकाया – परिताप होता है ।[382]

5.6.2 'रामायण' और 'रामचरित मानस' की मन्दोदरी :-

'रामायण' के उत्तरकाण्ड़ में [383] तथा 'रामचरित मानस' के बालकाण्ड में[384] मय और हेमा की पुत्री मन्दोदरी का परिचय दिया गया है । दोनों महाकाव्यों में मन्दोदरी अपने उदात्त गुणोंके कारण रावण परिसर के पात्रों में आदर्श नारी के चरित्र के रूप में प्रकट होती है ।

दोनों महाकाव्यों में मन्दोदरी सौन्दर्यशालिनी के रूप में प्रकट होती है । 'रामायण' [385] और 'रामचरित मानस'[386] में उसको सुन्दर कन्या के रूप में चित्रित किया गया है । रावण ने भी मन्दोदरी के लिये मृगनयनी शब्द का प्रयोग किया है । रावण की मृत्यु के पश्चात् मन्दोदरी अपने आपको सीता से भी सर्वश्रेष्ठ बताती है।[387]

महर्षि वाल्मीकि ने सुन्दराकाण्ड में कामुक स्त्रियों से घिरे रावण से दूर मन्दोदरी को सोयी हुई दिखलाकर उसका पतिव्रता स्त्री के रूप में चित्रण किया है, तो मानसकार ने मन्दोदरी को स्त्रियों में शिरोमणि कहकर उनके पतिव्रता के रूप में चित्रित किया है । दोनों महाकाव्यों में मन्दोदरी पतिहित साधन में तत्पर दिखाई देती है, जिसके लिये वह सीता को लौटा देने का परामर्श बार-बार अपने पति रावण को देती है । 'मानस' में रावण को अनेक बार समझाने पर भी जब वे नहीं मानते तब मन्दोदरी उसके सामने कठोरता से प्रकट होती है जबकि 'रामायण' में इसका अभाव है । 'रामायण' में रावण के मरने के पश्चात् मन्दोदरी का विलाप चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाता है । जबकि 'मानस' में इस प्रसंग को गोस्वामीजी ने संक्षेप में ही दिया है ।

'रामायण' और 'मानस' में मन्दोदरी मेघनाद की माता के रूप में प्रकट होती है। शक्तिशाली मेघनाद के बल और पराक्रमों का उसको गर्व है । 'रामायण' में पुत्र मेघनाद पर गर्व करती हुई वह कहती है कि इन्द्र पर विजय प्राप्त करने वाला इन्द्रजित मेरा पुत्र है यह सोचकर मैं गर्व से भरी रहती थी । [388] दोनों महाकाव्यो में लक्ष्मण के हाथों मेघनाद के वध का समाचार सुन उसको गहरा आधात लगता है । 'मानस' में वह

छाती पीट-प्ीटकर भारी विलाप करती है । अतः माता के रूप मे मन्दोदरी का चरित्र निखरा हुआ दिखाई देता है ।

'रामायण' में मन्दोदरी राम को परब्रह्म का अवतार मानती है । रावण की मृत्यु के पश्चात् वह विलाप करती हुई राम के परमेश्वर रूप को प्रकट करती हुई कहती है कि भगवान विष्णु ने समस्त लोकों के कल्याण के लिये मनुष्य रूप धारण करके राक्षसों सहित आपका वध किया है ।[389] 'मानस' में भी मन्दोदरी परमेश्वर परमात्मा श्री राम के विराट रूप का वर्णन करती हुई रावण को उनकी शरण में चले जाने की प्रार्थना करती है । 'रामायण' की भांति 'मानस' में भी वह राम के पराक्रमों को प्रकट करके उन्हे परमेश्वर का अवतार बताती है। 'रामायण' की मन्दोदरी को राम का परम स्वरूप ज्ञात है, परंतु उससे प्रेरित होकर न तो वह उनकी स्तुति करती है और न रावण को राम की भक्ति करने के लिये कहती है । जबकि 'मानस' में मन्दोदरी श्री राम की स्तुति करती हुई रावण को रामभक्ति करने के लिये विनंती करती है । 'मानस' में मन्दोदरी राम के परब्रह्म रूप से प्रभावित होने से उनमें राम भक्ति के भाव अधिक मात्रा में आ गये हैं । परंतु उनका पातिव्रत्य भाव निर्बल दिखाइ देता है । इसी संदर्भ में डॉ. आशा भारती का कथन महत्वपूर्ण दिखाई देता हैं, तुलसी ने जिस विवेक, धर्म बुद्धि एवं रामभक्ति का उसमें समावेश किया है, उसके अतिरिक्त उसके पत्नीत्व की हानि की है, हाँ उसे रामभक्त की पदवी अवश्य दी जा सकती है । [390]

मंदोदरी अत्यंत सुंदरी थी जिससे रावण सदैव उस पर मुग्ध रहा करता था । मन्दोदरी अपने पति रावण के साथ नित्य विहार करती थी । इसी बात की ओर संकेत करते हुए वाल्मीकिने लिखा है कि मन्दोदरी रावण के साथ विमान द्वारा कैलास, मन्दाचल मेरुपर्वत, चैत्ररथ वन तथा सम्पूर्ण देवोद्यानों में विहार करती थी और विविध देशों को उसने देखा था । [391] 'मानस' में भी मन्दोदरी पतिप्रेम से संतुष्ठ दिखाई देती है । लंकाकाण्ड के प्रारंभ से रावण मन्दोदरी के साथ नाच गान देख रहा था । अशोक वाटिका में सीता के पास रावण मन्दोदरी के साथ ही आता है । अतः 'रामायण' की

भांति 'मानस' में भी मन्दोदरी रावण के साथ नित्य रहा करती थी ।

निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों में मन्दोदरी का राक्षस जाति की आदर्श स्त्री तथा अनुपम सुन्दरी के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' में मन्दोदरी का जन्म तथा विवाह सम्बन्धी कथाओं को वाल्मीकि ने विस्तार से दिया है । जब कि 'मानस' में इनका अभाव है ।

5.6.3 'रामायण' और 'रामचरित मानस' की तारा :-

तारा बानरवीर सुषेण की पुत्री तथा वानर सेना के सेना नायक मैन्द और द्विविद की बहन है । किष्किन्धा नरेश बाली की धर्मपत्नी तारा 'रामायण' के अनुसार अनिन्धा सुन्दरी है । इसलिये महर्षि वाल्मीकि ने कई जगह पर शुभलक्षणा, मनस्विनी, चारुहासिनी तथा चन्द्रमुखी शब्द का प्रयोग किया है । दोनों महाकाव्यों में तारा पतिव्रता पत्नी, वात्सल्यमयी माता तथा नीतिज्ञा के रूप में प्रकट होती है ।

'रामायण' ओर 'रामचरित मानस' में तारा का पतिव्रता नारी के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' में तारा बाली के साथ राजनैतिक विचार-विमर्श करती हुई सुग्रीव के साथ बैर को समाप्त कर देने के लिए समझाती है। सुग्रीव के साथ युद्ध के लिए गये वाली की विजय कामना के लिये स्वस्तिवाचन भी करती है । वाली वध का समाचार सुन तारा पुत्र अंगद के साथ कन्दरा से बाहर निकल जाती है । उस समय वानरवीरों के द्वारा कन्दरा के भीतर ही रहने के लिये समझाया जाता है, तब वह एक पतिव्रता स्त्री की भाँति कहती है कि-

पुत्रेण मम किं कार्ये राज्येनापि किमात्मना ।
कृपिसिंहे महाभागे तस्मिन भर्तरि नश्यति ।।[392]

अर्थात् वानरों जब मेरे महाभाग, पतिदेव कपिसिंह वाली ही नष्ट हो रहे है तब मुझे पुत्र से, राज्य से तथा अपने इस जीवन से भी क्या प्रयोजन है । शौकसंतप्त तारा राम के द्वारा हुए वाली वध की निन्दा करती हुई कहती है कि अन्य के साथ युद्ध करते हुए मेरे पति को मारकर कुकुत्स्थ भूषण श्रीराम ने अत्यन्त निन्दित कर्म किया है । पति की मृत्यु से व्याकुल तारा पति के साथ चिता में बैठकर मृत्यु का वरण करने की भी

इच्छा रखती है ।[393] 'मानस' में भी वाली वध का समाचार सुनकर तारा व्याकुल हो जाती है जिसका वर्णन करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि –

नाना बिधि विलाप कर तारा । छूटे केस न देह संभारा ।[394]

अर्थात् वाली वध का समाचार सुनकर तारा अनेक प्रकार का विलाप करने लगती है । उसके बाल बिखरे हुए है और देह की सुधि नहीं है ।

'रामायण' में तारा अपने पुत्र अंगद के प्रति ममतामयी मां के रूप में प्रकट होती है । मृत्यु शय्या पर पड़े वाली को भी वह पुत्र अंगद के लिए उचित उपदेश देने की प्रार्थना करती है । सीता अन्वेषण करने गये अंगद समुद्र तट पर प्राण छोड़ने का निर्धार करता है तब भी वह अपनी माता के प्रेम को प्रकट करता हुआ कहता है कि वह बेचारी स्वभाव से दयालु और पुत्र पर प्रेम रखनेवाली है ।[395] 'मानस' में तुलसीदासने तारा के चरित्र में वात्सल्यमयी माता के रूप की ओर तनिक भी प्रकाश नहीं डाला है ।

'रामायण' में तारा के वाकचातुर्य तथा बौद्धिकता के पक्ष को भी बहुत उभारा गया है । 'रामायण' में तारा सुग्रीव के साथ युद्ध करने जाते हुए वाली को समझाती है। उस समय उसकी वाक्पटुता से वाली भी प्रसन्न हो जाते हैं और कहते हैं कि मैं उनका वध नहीं करुँगा परंतु केवल उनका घमंड तोड दूँगा । तारा की बाक्छटा का उत्तम रूप हमें तब दिखाई देता है जब क्रोधावेश में किष्किन्धा आये हुए लक्ष्मण को समझाती हुई वह उनके क्रोध को शांत कर देती है । 'रामायण' में वाली के साथ विचार विमर्श तथा लक्ष्मण को समझाते हुए उनके संवादों में तारा की बौद्धिक प्रतिभा का दर्शन होता है । 'रामचरित मानस' में तुलसीदास ने तारा को रामभक्ति के प्रवाह में प्रवाहित करते हुए उसकी अन्य चारित्रिक विशेषताओं की ओर ध्यान नहीं दिया है ।

निष्कर्ष में दोनों महाकवियों ने तारा का पतिव्रता के रूप में चित्रण करके यह सिद्ध किया है कि वानरजाति में भी उच्च गुणों से युक्त नारियाँ थी । इसी संदर्भ में श्री रामानन्द शर्मा का कहना है कि तारा बुद्धिमति है जरूर, पर सती नहीं, वाली को वह शीध्र भूल जाती है और सुग्रीव के साथ मदमाधुरी में मग्न हो जाती है । स्त्रियों के

चरित्र का यह शैथिल्य आदि कवि को भी खटकता नहीं जान पड़ता ।[396] 'रामायण' मे वाली की विजय के लिये स्वस्तिवाचन करती हुई तारा का विदूषी के रूप में चित्रण हुआ है । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने संक्षेप में ही इस प्रसंग को दे दिया है । 'रामायण' में तारा सती होना चाहती है जबकि 'मानस' में इसका अभाव है । तारा के चरित्र से रामकथा में कोई विकास नहीं दिखाई देता परंतु दोनों महाकाव्यों में उसका महत्व अधिक है । डॉ. राजूरकर के शब्दों में सुषेण की पुत्री वाली की पत्नी तारा का चरित्र राम कथा में अनेक द्रष्टियों से महत्वपूर्ण है । वानरजाति की स्त्रियों का प्रतिनिधित्व तारा यदि कर रही होगी तो उस समाज में स्त्रियों के स्थान का स्पष्टीकरण तारा के चरित्र से हो जाता है ।[397]

5.6.4 'रामायण' और रामचरित मानस' की मन्थरा :-

रामकथा के वस्तुविकास में महत्वपूर्ण कड़ी मंथरा है, जो अपनी कुटिल और कलुषित बुद्धि के कारण कैकेयी को उकसाकर अयोध्या के उपर विपति के बादल छा देती है । वाल्मीकि ने इसका परिचय देते हुए लिखा है कि कैकेयी के पास मंथरा नाम की एक दासी थी, जो उसके मायके घर से आयी थी । तुलसीदास ने इसका परिचय देते हुए मात्र इतना ही लिखा है कि कैकेयी की मन्थरा नाम की एक मन्दबुद्धि दासी थी। बुल्केजी के अनुसार महाभारत के रामोपाख्यान में जब रानी सहायता करने के लिये देवताओं द्वारा ऋषि तथा वानरों की स्त्रियों से पुत्र उत्पन्न करने का उल्लेख किया गया है, गन्धर्व दुंदुर्भी के मंथरा के रूप में प्रकट होने की चर्चा मिलती है ।[398] इस संदर्भ में पू. मोरारिबापू के विचार भी द्रष्टव्य है "कैकेयी के विवाह से पहले उसके पिता ने महाराज दशरथ से यह शर्त रखी थी कि कैकेयी का पुत्र ही राज्याधिकारी होगा । महाराज ने इस शर्त का स्वीकार किया था । परंतु कैकेयी के पिता को संदेह हुआ कि भविष्य में यदि कैकेयी यह बात भूल जायें अथवा स्नेहवश इस बात को टाल दे तो इनको अपनी बात पर अड़िग रखने के लिये कैकेय नरेश ने अपनी पुत्री के साथ मन्थरा को भेजा था ।[399]

रामराज्याभिषेक का समाचार सुनकर मन्थरा व्याकुल हो उठती है । राजधर्म से भलिभांति परिचित वह महाराज दशरथ और कौशल्या के व्यवहार पर संदेह करती हुई कैकेयी को उकसाती है । वह कहती है कि महाराज धर्म की बातें तो बहुत करते हैं, परंतु ह्रदय के बड़े क्रुर हैं । तुम समझती हो कि वे सारी बाते शुद्ध भाव से ही करते हैं, परंतु ऐसा नहीं है, उनका ह्रदय इतना दूषित है कि उन्होंने भरत को उसके मामा के यहाँ भेज दिया और पीछे से राम का राज्याभिषेक कर रहे हैं । महाराज तुम्हारे भवन में उपस्थिति होते हैं वह दिखावा मात्र है, वास्तविकता तो यह है कि वे कौशल्या को अर्थ से सम्पन्न करने जा रहे है ।[400] 'मानस' में भी कैकेयी को भड़काती हुई वह कहती है कि तू राजा को अपने वश में जानती हो किंतु राजा मन के मैले और मुँह के मीठे हैं और तेरा स्वभाव सीधा होने से राजा की कपटभरी चतुराई तेरी समझ में नहीं आती।[401] महाराज दशरथ की भाँति मन्थरा कौशल्या को भी दोषी बताती हुई उनके विरूद्ध कैकेयी को उकसाती है । इनके लिये वह अनेक झूठी कहानियों को बना बनाकर कहती है । वह कैकेयी को राम के राजा बनने के बाद उनका और कौशल्या के द्वारा भविष्य में दुर्व्यवहार होने की आशंका जताती है ।

'रामायण' में मन्थरा महाराज दशरथ के कपट भरे व्यवहार को राजनीतिक खेलों का एक भाग बताती है । जबकि 'मानस' में मन्थरा मनोवैज्ञानिक ढंग से कैकेयी को अपनी बात का विश्वास दिला देती हे । 'रामायण' में मन्थरा अयोध्या की शोभा तथा राम राज्याभिषेक के समाचार सुनकर चकित रह जाती है और व्याकुल होती हुई वह कैकेयी को भड़काने लगती है जिस में उसकी चतुराई, वाक्पटुता, राजनैतिक ज्ञान तथा स्त्रियों की निर्बलता की ज्ञाता आदि प्रकट होता है। अंत में मन्थरा इन्हीं विशेषतांओं के कारण कैकेयी को अपने कुचक्र में फँसा लेती है। 'मानस' में तुलसी दास ने सरस्वती के द्वारा मन्थरा की बुद्धि को फेर दिया लिखकर मन्थरा को देवकार्य का निमित मात्र बना दिया और उनकों पाठकों की सहानुभूति प्राप्त करवा दी ।

निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों मे मन्थरा की स्वामिभक्ति निखरी हुई है ।

रामराज्याभिषेक से दुःखी मन्थरा की बात सुनकर प्रारंभ में कैकेयी उसे फटकारती है, परंतु मन्थरा उसको सहती हुई अपनी स्वामिनी के हित में लगी रहती है । इसी संदर्भ में डॉ. आशाभारती का कहना है कि मंथरा में भौतिक मूल्यों का प्राधान्य है । स्वामिनी के उत्कर्ष में उसका उत्कर्ष है, अपकर्ष में अपकर्ष । स्वामिनी का सुख दुःख स्वामिनी से अधिक उसका अपना है । कैकेयी की हित चिंता उसके जीवन का लक्ष्य है । अतः शुद्र स्वार्थवृति से परिचालित अधम पात्रों की कोटि में गणनीय होने पर भी उसको स्वामि भक्त और तदनुकूल कर्तव्य निष्ठा अवश्य ही ध्यातव्य है ।[402] 'रामायण' की मन्थरा जैसा 'मानस' की मन्थरा के पास राजनैतिक ज्ञान नहीं है । 'रामायण' में मन्थरा कैकेयी को पुत्रीवत् प्यार करती है । जबकि 'मानस' में स्वामी दास का सम्बन्ध दिखाई देता है । 'रामायण' में मन्थरा का विस्तार से चित्रण किया गया है । जबकि 'मानस' में इसको संक्षेप में ही चित्रित किया गया है ।

5.6.5 'रामायण' और रामचरित मानस' की शूर्पणखा :-

'रामायण' में शूर्पणखा का परिचय कैकेयी की पुत्री के रूप में दिया गया है । जिसका रावण और कुंभकर्ण के बाद जन्म हुआ था । जन्म के समय उसका मुख भयानक और विकराल था । कालका के पुत्र दानवराज विद्युजि्हव के साथ शूर्पणखा का विवाह हुआ था, परंतु रावण ने युद्ध के उन्माद में कालकेय दैत्यो के साथ उनका भी वध कर दिया था । उस समय बहन शूर्पणखा को अपना जीवन व्यतीत करने हेतु रावणने उसको दण्डकारण्य दिया था । 'मानस' में शूर्पणखा का परिचय रावण की बहन के रूप में देकर तुलसीदास ने उसके जन्म और विवाह सम्बन्धी प्रसंगो को छोड़ दिया है । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों महाकाव्यों में राम के सम्मुख अपना प्रणय निवेदन करती हुई शूर्पणखा का कामी स्त्री के रूप में चित्रण किया गया है । दोनों महाकाव्यों में विफल होकर शूर्पणखा भयंकर रूप प्रकट करके सीता को मारने दौड़ती है, उसी समय बड़ी स्फूर्ति से लक्ष्मण उसके नाक और कान को काट देते हैं । इसी प्रसंग के संदभ मे डॉ. श्रीमति आशा भारती का कहना है कि 'रामकथा जिस सांस्कृतिक

संघर्ष की कथा है उस के बीज भी यहाँ मिलते हैं । भौतिकवादी राक्षसी संस्कृति पर आर्यसंस्कृति की जय का प्रथम चरण राम लक्ष्मण द्वारा शूर्पणखा के प्रणय प्रस्ताव की अस्वीकृति है ।[403]

राम लक्ष्मण से अपना प्रतिशोध लेने के लिए वह बड़ी चतुरता से खर दूषण को अपनी बात का विश्वास दिला देती है और युद्ध के लिए उनको प्रवृत कर देती है। राम के हाथों खर-दूषण का सेना समेत विध्वंस होने के पश्चात् बदले की आग में जलती हुई शूर्पणखा रावण के पास जाती है । वहाँ महाराज रावण को अपनी वाफ्छटा तथा राजनीतिक ज्ञान के सहारे उकसाती हुई अपना प्रतिशोध लेने के लिए प्रवृत कर देती है। वाक्पटुता में प्रवीण शूर्पणखा खर दूषण के सामने राम के बल पराक्रम को प्रकट करती है, जिसका उसे ज्ञान है कि वे दोनों भाई उसके सिवा अन्यों का शौर्य सह नहीं सकेंगे। अर्थात् युद्ध के लिए प्रवृत हो जायेगे । इसी प्रकार रावण के सामने जाकर वह सीता के सौन्दर्य की प्रशंसा करती हुई यह कहती है कि मैं उस स्त्री को तेरी भार्या बनाने के लिए ले आने को उद्यत हुई तो क्रूर लक्ष्मण ने मुझे इस तरह कुरुप कर दिया।[404] 'मानस' में शूर्पणखा राम के बल पराक्रम का रावण के सम्मुख वर्णन करती हुई सीता के सौन्दर्य की भी प्रशंसा करती है ।

निष्कर्षतः, 'रामायण' की शूर्पणखा बलशालिनी तथा राजनीतिज्ञा के रूप में प्रकट होती है। जबकि 'मानस' में शूर्पणखा के इस रूप की ओर ध्यान न देते हुए तुलसीदास ने इसको संयमित रूप में प्रकट किया है । 'रामायण' में शूर्पणखा का जन्म, विवाह आदि से सम्बन्धित प्रसंगो को वाल्मीकि ने दिया है । जबकि तुलसीदास ने शूर्पणखा रावण की बहन बताकर काम चला लिया है । दोनों महाकाव्यो में स्वच्छंद विचरण करती हुई तथा अपनी काम तृप्ति के लिए मर्यादाओं की सीमाओं को तोड़ती हुई दानवी के रूप में शूर्पणखा का चित्रण हुआ है । सीता जहाँ संयम का आदर्श प्रस्तुत करती है, शूर्पणखा वहाँ भोगवादी मर्यादा और लज्जा की सीमाओं के अतिक्रमण की चरम स्थिति का द्योतन करती है ।[405]

5.7 ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ के अति गौण चरित्र :-

इसके पूर्व हम मुख्य एवं गौण चरित्रों का तुलात्मक अध्ययन कर चूके हैं। अब हम ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ के उन पात्रों का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे जिनका राम-कथा में थोड़ा बहुत भी योगदान है अथवा जो पात्र प्रसंगवश प्रकट होते हैं और अपना काम पूर्ण करके लुप्त हो जाते हैं । इनमें से कई पात्र ऐसे हैं जिनका कथा विकास के लिए महत्व है और कई पात्र ऐसे हैं जो ‘रामायण’ और ‘मानस’ की विभिन्न कथाओं में प्रकट होते हुए रामकथा विकास की पूर्व भूमिका तैयार करते हैं । अतः हमने मुख्य और गौण पात्रों को छोड़कर शेष उन सभी पात्रों को अतिगौण पात्रों में समाविष्ट करके उनका तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रयास किया है । पूर्वलिखित में हमने दोनों महाकाव्यों के कथानक में पात्रों के कार्यकलाप एवं इनके महत्व को ध्यान में रखते हुए उनका उसी क्रम में तुलनात्मक अध्ययन किया है । परंतु इस विभाग मे हमने ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ के बालकाण्ड से लेकर युद्ध काण्ड / लंकाकाण्ड तक के काण्डों में पात्र जैसे जैसे उपस्थित होते गये वैसे वैसे क्रमशः पहले पुरुष पात्र तथा बाद में स्त्रीपात्रों का क्रमशः तुलनात्मक अध्ययन किया है । निष्कर्ष में प्रबंध विस्तार के भय से हमने केवल उन्हीं चरित्रों को अतिगौण में लिया है जिनका ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ दोनों में थोडा बहुत चित्रण हुआ है । दोनों महाकाव्यों में से किसी एक महाकाव्य में चित्रित चरित्रों को अतिगौण में न लेते हुए उनको छोड़ दिया है ।

5.8 ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ के अतिगौण पुरुष चरित्र :-

5.8.1 नारद :-

‘रामायण’ के बालकाण्ड में प्रकट होते हुए महर्षिनारद वाल्मीकि को संक्षिप्त रामकथा सुनाते हैं । ‘रामचरित मानस’ के बालकाण्ड में तुलसीदास ने नारद के मोहभंग की कथा के जरिए नारद के द्वारा शिवगणों [406] और विष्णु [407] को दिये गये

शाप की कथा को दिया है । 'रामायण' में इश्वाकु वंश के रघुनंदन श्री राम के गुणों की प्रशंसा करते हुए नारद उनसे प्रभावित दिखाई देते हैं ।[408] जबकि 'मानस' में नारद का भक्त के रूप में चित्रण किया है।[409] 'मानस' में नारद अपने शाप के परिणाम स्वरूप भटकते हुए राम को देखकर दुःखी है, अतः राम के पास जाकर वह भक्त के हृदय में प्रभु को निवास करने की प्रार्थना करते हैं जिसका 'रामायण' में अभाव है । दोनों महाकाव्यों में नारद लोक कल्याणार्थ कर्म में रत दिखाई देते हैं । तुलसीदास ने नारद के चरित्र में रामभक्ति को जोड़कर उसे आदर्श सन्त के रूप में चित्रित किया है

5.8.2 वाल्मीकि :-

प्रचेता के पुत्र तथा 'रामायण' महाकाव्य के रचयिता महर्षि वाल्मीकि 'रामायण' में राम के समकालीन तथा 'रामचरित मानस' में रामभक्त के रूप में उभरे है । वनगमन के समय राम दर्शनार्थ वाल्मीकि आश्रम में जाते हैं तब महर्षि की ओर से उनका पूरे आदर के साथ स्वागत होता है । 'मानस'में भी राम भार्या और अनुज लक्ष्मण के साथ वाल्मीकि आश्रम में जाते हैं । उस समय महर्षि अपने मन में स्थित भक्त तुल्य भावो को प्रकट करते हुए राम लक्ष्मण और सीता के ईश्वरीय रूप को प्रकट करते हैं ।[410] 'रामायण' के उत्तरकाण्ड में वाल्मीकि श्री राम के सम्मुख अनेक शपथे खाकर सीताजी की शुद्धता का प्रमाण देते हैं । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने उत्तरकाण्ड की कथा को छोड़ दिया है । संक्षेप में 'रामायण' के वाल्मीकि त्रिकाल दर्शी महात्मा तथा 'मानस' के वाल्मीकि भक्त के रूप में प्रकट होते हैं ।

5.8.3. ब्रह्मा :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों महाकाव्यों मे तपस्वियों को वर देते हुए तथा लोकपीड़क के नाश के लिये उद्यत इस रूप में ब्रह्मदेव का चित्रण किया गया है । 'रामायण'[411] तथा 'रामचरित मानस'[412] में ब्रह्मदेव रावण जैसे अत्याचारी के विनाश का उपाय देवगणों को दिखाते हैं । दोनों महाकाव्यों में ब्रह्मा अनेकों को तपस्या के

फलस्वरूप वचन देते हैं । ‘रामायण’ में ब्रह्माजी ने बीस से अधिक वचन दिये हैं। विष्णु के राम अवतार को सार्थक करने के लिये ब्रह्मदेव ने देवताओं को बुद्धिमानी, मायावी पराक्रमी तथा नीतिज्ञ पुत्रों की सृष्टि का आदेश दिया तथा खुद ने भी कुछ काल पहले ऋक्षराज जाम्बवान की सृष्टि कर दी थी । ‘रामायण’ में ब्रह्मदेव के द्वारा दिये गये वचनों के प्रसंगो को वाल्मीकि ने विस्तार से दिया है । जबकि मानसकारने इसको संक्षेप में ही दिया है । दोनों महाकाव्यों में ब्रह्माजी का सृष्टि के आदितत्व तथा सृष्टि के रचयिता के रूप में चित्रण हुआ है ।

5.8.4 कुश :-

कुश सीता और श्रीराम का बड़ा पुत्र है, जिसका जन्म सीता पुनः वनवास के दौरान महर्षि वाल्मीकि के आश्रम में हुआ था । आश्रम में ही कुश ने शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी । यह धर्म के ज्ञाता, वेद के पारंगत तथा गान्धर्व विद्या के तत्वज्ञ थे।[413] कुश अपने छोटे भाई लव के साथ स्वर मिलाकर ‘रामायण’ महाकाव्य का पाठ करते थे । ‘रामायण’ के उतरकाण्ड मे महर्षि वाल्मीकि कुश और लव को ‘रामायण’ गान करने का आदेश देते हैं । ‘रामचरित’ मानस में तुलसीदास ने राम-सीता के पुत्रों कुश लव का उल्लेख मात्र करते हुए लिखा है कि –

दुई सुत सुंदर सीता जाए । लव कुसबेद पुरानन्ह गाए ।
दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर । हरि प्रतिबिंब मनहुँ अति सुंदर ।[414]

अर्थात् सीता के लव और कुश ये दो पुत्र उत्पन्न हुए जिनका वेद पुराणोने वर्णन किया है । वे दोनों ही विनयी नम्र और गुणों के धाम है और अत्यंत सुन्दर है, मानों श्री हरि के ही प्रतिबिंब हों । निष्कर्ष में ‘रामायण’ में वाल्मीकि ने कुश लव का जन्म, संस्कार पढ़ाई आदि को विस्तार से दिया है । जबकि मानसकार ने इसका उल्लेख मात्र करके कथा प्रवाह को काकभुशंडि के माध्यम से रामभकित की ओर खिंच लिया है ।

5.8.5 लव :-

राम सीता का पुत्र तथा कुश का जुडवा भाई लव अपने भाई के ही समान

गुणवान है । 'मानस' में तुलसीदास ने स्वतंत्रता से लव का चित्रण न करते हुए कुश के साथ ही लव का परिचय दे दिया है । कुश की ही भांति ये वेद में पारंगत, गान्धर्व विद्या के विशारद, मधुर स्वर से सम्पन्न तथा गन्धर्वों के समान मनोहर रूप वाले थे । इन्होंने 'रामायण' को कंठस्थ कर लिया था और ऋषियों, ब्राह्मणों तथा साधुओं के समागम के समय इनके बीच बैठकर एकाग्र चित् से रामकथा सुनाते थे।[415] लव अपने भाई कुश के साथ अयोध्या के राजभवन में श्री राम तथा उनके भाईयों के सम्मुख राम कथा का गान करते हैं, जिससे राम को यह पत्ता चल जाता है कि वे दोनों बालक ओर कोई नहीं परंतु सीता के ही दो पुत्र हैं । महर्षि वाल्मीकि ने लव और कुश की चारित्रिक विशेषताओं को एक समान प्रकट करते हुए उसका चरित्र-चित्रण किया है । 'मानस' में तुलसीदास ने लव कुश के जन्म को विस्तार से न कहते हुए उसकी ओर संकेत मात्र ही कर दिया है ।

5.8.6 सुमन्तः-

सुमन्त अयोध्या के नरेश महाराज दशरथ के आठ मंत्रियों में से एक हैं । उनके चरित्र मे आज्ञाकारिता, भावुकता, स्वामिभक्ति तथा स्पष्टवादिता जैसे उत्तमगुण भरे हुए हैं । 'रामायण' तथा 'मानस' में घटित होने वाली प्रत्येक घटनाओं के वे साक्षी रहे हैं । 'रामायण' में अपनी जिद्द पर अड़िग कैकेयी को वे नीतियुक्त वचनों से समझाते हैं, परंतु कैकेयी के न मानने पर वे क्रोधित होकर उसको फटकारते हैं।[416] 'मानस' में सुमन्त एक सेवक की भांति प्रकट होते हुए कैकेयी की आज्ञाओं का स्वीकार करते हुए दिखाई देते हैं । 'रामायण' में राम के वन जाने से मृतःप्राय बनी अयोध्या नगरी का चित्रण सुमन्त ने बड़ी विद्वता से महाराज दशरथ के सामने प्रकट किया है । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने इसका संक्षेप में ही वर्णन कर दिया है। दोनों महाकाव्यों में सुमन्त के चरित्र में अपनी स्वामिभक्ति चरमोत्कर्ष पर पहुँची हुई दिखाई देती है । 'मानस' में राम को वन छोड़ आने पर सुमन्त की दशा का तुलसीदास ने जो चित्र

खिंचा है अद्वितीय है ।[417] निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों में अपने उत्तम गुणों से सुमन्त ने जनमानस में सन्मानीत स्थान प्राप्त कर लिया है ।

5.8.7 ऋष्यशृंग मुनि :-

अश्वमेध यज्ञ का आयोजन करने जा रहे महाराज दशरथ को मंत्री सुमन्त विभाण्डक के पुत्र ऋष्यशृंग मुनि का परिचय देते हुए यज्ञ में बुलाने की सलाह देते हैं।[418] 'रामचरित मानस'में महाराज दशरथ के पुत्र कामेष्टि यज्ञ के लिये महर्षि वशिष्ट शृंगी ऋषिको बुलावाते हैं और उनसे पुत्रेष्ठि यज्ञ सम्पन्न करवाया जाता है।[417] 'रामायण' में वाल्मीकि ने शृंगीऋषि की कथा विस्तार से दी है, जिसके अनुसार अंगदेश के राजा रोमपाद के द्वारा धर्म का उल्लंघन हो जाने के कारण भयानक अनावृष्टि होती है । अपने पाप का प्रायश्चित करने के लिये वे ऋष्यशृंग मुनि को अपने राज्य में ले आकर उनका आतिथ्य सत्कार करते हैं और अपनी पुत्री शांता का विवाह उनके साथ कर देते हैं । सुमंत के कहने से राजा दशरथ सपरिवार अंग राज के यहाँ जाते हैं जहाँ से शान्ता और ऋष्यशृंग को अपने घर ले आते हैं । 'रामचरित मानस' में ऋष्यशृंग का शांता के साथ विवाह तथा महाराज के सपरिवार उनको लेने के लिये जाना तुलसीदास ने छोड़ दिया है जबकि 'रामायण' में इन प्रसंगों का विस्तार से वर्णन किया गया है ।

5.8.8 प्राजापत्य पुरुष :-

पुत्र प्राप्ति की इच्छा से महाराज दशरथ ऋष्यशृंग ऋषि से यज्ञ करवाते हैं । यज्ञ के अन्त में हवन कुण्ड से प्राजापत्य पुरुष प्रकट होते हैं । उनका वर्णन करते हुए महर्षिवाल्मीकि ने लिखा है कि अग्निकुण्ड से उत्पन्न विशालकाय पुरुष का इतना प्रकाश था कि उनकी तुलना नहीं की जा सकती थी । उसका मुख लाल था । वाणी में दुन्दुभि के समान गम्भीर ध्वनि प्रकट होती थी । उसकी आकृति सूर्य के समान तेजस्वी थी । वह प्रज्जवलित अग्नि की लपटों के समान देदिय्यमान हो रहा था।[420] प्राजापत्य पुरुष देवताओं की बनायी हुई खीर देते हुए महाराज को कहते हैं कि इसे अपनी पत्नियों को दो और कहो तुम लोग इसे खाओं । ऐसा करने पर उनके गर्भ से आपको अनेक पुत्रों

की प्राप्ति होंगी, जिसके लिए तुम यज्ञ कर रहे हो । तुलसीदास ने 'मानस' में इस प्रसंग को संक्षेप में ही कहते हुए लिखा है कि भक्ति सहित आहुतियाँ देने पर अग्निदेव हाथ में चरु (हविष्यान्त खीर) लिये प्रकट होते हैं और सारी सभा को समझाकर अर्न्तधान हो जाते हैं ।[422] 'रामायण' में प्राजापत्य पुरुष का वाल्मीकि ने विस्तार से वर्णन किया है । जबकि 'मानस' में ऐसा कोई वर्णन नहीं है ।

5.8.9 विष्णु :-

अनादि तथा अनंत परमेश्वर का नाम विष्णु है । दुष्टों का संहार करना तथा सुष्टों का पालन करना उनका मुख्य कार्य है । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में ब्रह्मा के द्वारा प्राप्त वरों को अनियंत्रित आचरण करने वाले रावण का वध-करने के लिये वे अवतार लेते हैं । 'रामायण'[423] और 'मानस'[424] में देवों की प्रार्थना सुनकर विष्णु मानव के रूप में अवतरित होकर पृथ्वी को आतताईयों से मुक्त करने का देवताओं को आश्वासन देते हैं । दोनों महाकाव्यों में विभिन्न कथाओं के जरिए विष्णु के चरित्र को प्रकट किया गया है । पापियो के संहार और धर्मसंस्थापना के हेतु युगे युगे अवतरित होते हुए भगवन् विष्णु का लोकरक्षक के रूप में चित्रण हो रहा है और दोनों महाकाव्यों में हुआ है । रावण जैसे अत्याचारी राक्षसों के संहार के लिये राम के रूप में अवतार लेते हुए श्री विष्णु 'रामायण' में लोकरक्षक मानव के रूप में प्रकट होते हैं । जब कि 'मानस' में तुलसीदास ने जगह जगह पर विष्णु के गुणों का गान करते हुए विष्णु के अवतार प्रभु श्री राम का चित्रण किया है ।

5.8.10 विश्वामित्र :-

विश्वामित्र कान्य कुब्ज देश के गाधि नामक प्रतापी राजा के पुत्र थे । दोनों महाकाव्यों में विश्वामित्र का आदर्श आचार्य दृढनिश्चयी, सफल तपस्वी एवं महापराक्रमी के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' में कामधेनु की प्राप्ति के लिये वशिष्ठ के साथ वैमनस्य हजारों वर्ष की तपस्या तथा ब्रह्मत्व की प्रप्ति के लिये और अधिक कठोर तप

आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है ।[425] जबकि 'मानस' में इसका अभाव है । दोनों महाकाव्यों में विश्वामित्र अपने अनुष्ठान की रक्षा के लिये राम और लक्ष्मण को अपने साथ ले जाते हैं । 'रामायण'[426] तथा रामचरित मानस'[427] में विश्वामित्र उन दोनों भाईयों को अनेक प्रकार के शस्त्रोअस्त्रों दिव्यास्त्रों का दान देते हैं । 'रामायण में विश्वामित्र के चरित्र में पितातुल्य गुरु भाव प्रकट होता है, जबकि मानसकार ने विश्वामित्र के चरित्र मे राम भक्त के कोमल भावों को भी भर दिया है । निष्कर्ष में विश्वामित्र का चरित्र लोककल्याण की उत्तम भावनाओं के प्रयोजन से भरा हुआ है ।

5.8.11 शिव :-

'रामायण' और रामचरित मानस'में शिव का अलग अलग चित्रण हुआ है । 'रामायण' में शिव जहाँ देवाधिदेव के रूप में प्रकट होते हैं, वहाँ 'मानस' में राम से भक्तिदान माँगते हुए दिखाई देते हैं । 'रामायण' में शिव का प्रथम दर्शन बालकाण्ड में होता है जब विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को देवताओं द्वारा शिव को सुरत कीडा से निवृत करने की कथा सुनाते हैं । तुलसीदास ने 'मानस' के बालकाण्ड में सती के भ्रम की कथा दी है – जिसमें भ्रमित अवस्था में सती श्री राम की परीक्षा लेती है, जिससे खिन्न होकर शिव उसका त्याग कर देते हैं । 'रामायण' में शिव महिमा की अनेक कथाएँ है, जिसमें गंगा को सिर पर धारण करना,[428] समुद्र मंथन से निकले जहर को पीना,[429] तथा दशग्रीव का मानभंग करके चन्द्रहास को देना[430] आदि विस्तृत है। जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने इन कथाओं को संक्षेप में हीं दिया है। 'मानस' में सती का त्याग[431] पार्वती का तप, कामदेव को जलाना, शिवपार्वती विवाह आदि प्रसंगों को विस्तार से दिया गया है ।[432] 'मानस' में शिव उमा को कथा सुनाते हैं जबकि 'रामायण' में ऐसा नहीं है ।

5.8.12 कार्तिकेय :-

भगवान शिव के तेज से गंगादेवी के द्वारा कार्तिकय की उत्पति होती हे । कथा

के अनुसार कार्तिकेय की रक्षा के लिए रखी गयी छः कृतिकाओं का एक ही दिन में दूध पीकर सुकुमार शरीरवाले शक्तिशाली कुमार अपने पराक्रम से सारी सेना पर विजय प्राप्त कर लेते हैं ।[433] 'रामचरित मानस'में तुलसीदास ने कार्तिकेय के जन्म सम्बन्धी प्रसंग को देते हुए लिखा है कि शिव पार्वती के विवाह के बहुत समय व्यतीत हो जाने के पश्चात् छः मुखवाले स्वामिकार्तिक का जन्म होता है, जो बड़े होकर तारका सुर का वध करते हैं । 'रामायण' की भाँति 'मानस' में कथा को विस्तार से नहीं दिया गया । 'रामायण' में अग्नि देव के द्वारा शिवतेज और गंगा से कार्तिकेय की उत्पति होती है । जबकि 'मानस' में शिवपार्वती के द्वारा कार्तिकेय की उत्पति बतायी गयी है ।

5.8.13 इन्द्र :-

इन्द्र एक पद का नाम है । सौ यज्ञ करने के पश्चात् इन्द्र का पद प्राप्त होता था। 'रामायण' और 'मानस' में जिस इन्द्र का उल्लेख किया गया है वे अदिति के पुत्र तथा देवताओं के राजा है । 'रामायण' मे वाल्मीकि ने इन्द्र के द्वारा सगर के यज्ञ सम्बधी अश्व का अपहरण, दितिके गर्भ का नाश तथा रावण आदि के साथ युद्ध का विस्तृत वर्णन किया है । इन कथाओं का 'मानस' में अभाव सा है । इन्द्र ने गौतमऋषि के रूप में अहल्या के साथ समागम करके उनको छला था जिससे क्रोधित होकर गौतमऋषि ने इन्द्र और अहल्या को शाप दिया था । 'मानस' में भी शापग्रस्त अहल्या की कथा श्रीराम को सुनाते हुए विश्वामित्र राम के चरणस्पर्श के द्वारा अहल्या का उध्धार करवाते हैं । राम-रावण के युद्ध में राम की सहायता करते हुए इन्द्र ने अपने रथ और सारथि को राम की सेवा में भेजा था ।[434] इसी प्रकार 'रामचरित मानस' में भी इन्द्र ने रथारूढ़ रावण के साथ पैदल ही युद्ध करते हुए राम को देखा तो तुरत अपने रथ के साथ सारथि मातलि को राम की सेवा में भेज दिया ।[435] 'रामायण' में इन्द्र के पराक्रमों को दिखाते हुए वाल्मीकि ने अनेक प्रसंगों का विस्तार से वर्णन किया है । जबकि मानसकार ने इसको छोड़ दिया है । 'रामायण' में कबन्ध के साथ युद्ध का

विस्तृत वर्णन है, जिसका 'मानस' में संकेत मात्र है । 'रामायण' में शरभंग ऋषिको ब्रह्मलोक ले जाने के लिये इन्द्र खुद आते हैं। जबकि 'मानस' में ऋषि की ब्रह्म लोक यात्रा का वर्णन है परंतु इन्द्रादि उन्हें लेने के लिये नहीं आते । निष्कर्ष में लोककल्याणार्थ अपने कर्तव्य में रत इन्द्र का चित्रण किया गया है ।

5.8.14 गौतम :-

महात्मा गौतम वैवस्वत मन्वंतर के सप्तर्षियों में से एक थे । ये धर्म के शास्त्रकार थे। इनका गौतम स्मृति शीर्षक ग्रन्थ विख्यात है । इसके अलावा ये आस्तिकसूत्र, पितृमेघसूत्र, दानतन्द्रिका गौतमी शिक्षा, न्यायसूत्र आदि कई ग्रन्थों के रचयिता हैं ।[436] अहल्या उनकी धर्मपत्नी तथा शतानंद उनका पुत्र था, जो मिथिला नरेश महाराज जनक के पुरोहित थे । भिथिल के निकट ही गौतम ऋषि का आश्रम था, जिनकी देवता भी पुजा एवं प्रशंसा किया करते थे । इसी आश्रम पर अपनी पत्नी अहल्या के साथ रहते हुए गौतम ऋषि ने हजारों वर्ष तक तपस्या की थी । एक दिन महर्षि गौतम आश्रम पर नहीं थे तब उपयुक्त अवसर समझकर शचीपति इन्द्र गौतम ऋषि का वेश धारण कर अहल्या के साथ समागम करते हैं । आश्रम से निकलते समय महर्षि गौतम ने इन्द्र को देख और उनके कुकर्म को जान उनको शाप देते हैं कि तू अंडकोषों से रहित हो जा । तत्पश्चात् गौतम ने अपनी पत्नी अहल्या को भी शाप दे दिया कि तू भी कई हजार वर्षों तक केवल हवा पीकर या उपवास करती हुई यहाँ राख में पडी रहेगी । जब यहाँ दशरथ पुत्र राम आयेंगे तब तुम्हारा उद्धार होगा।[437] अपनी पत्नी को शाप देकर गौतम ऋषि इस आश्रम को छोड़कर चल गये और सिद्धों तथा चारणों से सेवित हिमालय के रमणीय शिखर पर रहकर तपस्या करने लगे । 'मानस' में गौतम ऋषि के प्रसंग को तुलसीदास ने संक्षेप में ही दे दिया है ।

5.8.15 शतानंद :-

शतानंद महर्षि गौतम तथा अहल्या के पुत्र तथा मिथिलापुरी महाराज जनक के पुरोहित थे । इनके चरित्र से मातृभक्ति की महक निकलती हुई दिखाई देती है । अपने

शिष्यों के साथ मिथिला आये हुए विश्वामित्र को वह पूछते हैं कि मेरी माता बहुत दिनों से तपस्या कर रही थी क्या राम को उनका दर्शन करवाया । क्या मेरी माता ने श्री राम का पूजन किया ? शापग्रस्त माता अहल्या की दशा से दुःखी शतानंद विश्वामित्र को पूछते हैं कि –

अपि कौशिक भद्रं ते गुरुणा मम संगता ।
मम माता मुनिश्रेष्ठ रामसंदर्शनादितः ।।[438]

अर्थात् मुनिश्रेष्ठ कौशिक ! आपका कल्याण हो । क्या श्री रामचन्द्रजी के दर्शन आदि के प्रभाव से मेरी माता शाप मुक्त हो पिताजी से जा मिली । अतः माता-पिता के प्रति अपने हृदयस्थ भावों को प्रकट करते हुए शतानंद माता अहल्या के उद्धार का समाचार विश्वामित्र से सुनकर प्रसन्न हो जाते है । 'रामचरित मानस' में शतानंद के द्वारा राम-लक्ष्मण को विश्वामित्र के पूर्जजन्म की कथा सुनाना तथा अपनी माता के उध्धार को जानने की जिज्ञासा प्राप्त करने की कथा नहीं है, परंतु जनकजी के यहाँ पौरोहित्य कर्म करते हुए शतानंद ज्ञानी तथा शांत स्वाभाववाले पुरोहित के रूप में अवश्य उभरते हैं ।

5.8.16 परशुराम :-

महर्षि जमदग्नि के पुत्र परशुराम का प्रथम दर्शन 'रामायण' में राम-सीता के विवाह के उपरांत तथा 'मानस' में विवाह के पहले तथा धनुष तूटने के बाद होता है। 'रामायण' में परशुराम के आगमन से महाराज के मुँह पर विषाद छा जाता है । वह दीनभाव से हाथ जोड़ते हुए अपने पुत्रों का अभय दान माँगते हैं । परंतु परशुराम महाराज दशरथ की ओर ध्यान न देते हुए अपने पास रहे हुए धनुष पर बाण चढाने के लिए राम को निमंत्रण देते हैं और कहते हैं कि यदि तुम बाण चढ़ाने में सफल हो जाओ तो मैं द्वन्द युद्ध का भी तुम्हें अवसर दूँगा । 'रामायण' के अनुसार राम-परशुराम के संघर्ष का कारण यह है कि क्षत्रिय विरोधी परशुराम दाशरथि राम के पराक्रम तथा उनके द्वारा धनुभँग के विषय में सुनकर उनके साथ द्वन्द युद्ध करना चाहते थे ।[439] इस

प्रसंग को तुलसीदास ने ‘मानस’ में बड़े नाटकीय ढंग से प्रकट किया है । राम एक ओर क्रोधित परशुराम के क्रोध को शांत करते हैं, तो दूसरी ओर लक्ष्मण कडवीवाणी का प्रयोग करते हुए उनके क्रोध को ओर भड़काते हैं । दोनों महाकाव्यों में राम के द्वारा विष्णुधनुष पर बाण चढ़ाये जाने पर परशुराम को श्री राम का विष्णुरूप ज्ञात हो जाता है।[440] ‘रामायण’ में मिथिला से अयोध्या जाते समय रास्ते में परशुराम से भेंट होती है। जबकि ‘मानस’ में धनुष मण्डप में ही परशुराम आ जाते हैं । इसी संदर्भ में अभिलाषदास का कहना है कि वाल्मीकि रामायण के अनुसार जब दशरथ राम आदि मिथिला से बिदा होकर अयोध्या के रास्ते में होते हैं, तब परशुराम उससे जाकर मिलते हैं । इस ढ़ंग से वहाँ परशुराम का मिलना कविने स्वाभाविक बनाया है । क्योंकि धनुष्य टूटने की जब बात सूनी होगी तभी तो परशुराम वहाँ गये होंगे और आगे जाने में काफी कुछ समय भी लगा होगा। गोस्वामीजी ने धनुष मंडप में ही परशुराम को लाकर सभा में एक मनोरंजन तो जरूर करवा दिया परंतु परशुराम का आना अस्वाभाविक बना दिया। धनुष तूटते ही परशुराम आ जाते हैं, मानों वे मिथिला नगर के किसी कोने में बैठे हैं। ‘रामायण’ में राम परशुराम के तेज को छिन लेते हैं तब तेजहीन परशुराम राम के ब्रह्मरूप को समझ जाते हें । जबकि ‘मानस’ में राम की रहस्यमयी बातों से ही परशुराम को राम के ब्रह्मरूप का ज्ञान होने लगता है ।[441]

5.8.17 निषादराज गुह :-

निषादराज शृंङगेवरपुर के राजा तथा श्री राम के परम स्नेही मित्र थे । दोनों महाकाव्यों में उनका राम अनुरागी के रूप में चित्रण हुआ है । अतः ‘रामायण’ के निषादराज में कर्तव्य की प्रधानता तथा ‘मानस’ के निषादराज में भक्तिभावना की प्रधानता दिखाई देती है । वह लक्ष्मण के सामने शपथ खाकर राम के प्रति अपनी प्रेम भावना को प्रकट करते हैं ।[442] भरत तथा उसकी सेना को वन में जाते देखकर निषादराज अपने बंधुःबाँधवों सहित युद्ध करने के लिये तत्पर हो जाते हैं। शृंङगेवरपुर से लेकर चित्रकूट तक भरत की सहायता करके निषादराज गुह ने अपने मन में भरे राम-

भक्ति भाव को प्रकट किया है । वनवास पूर्ण कर लौटे राम, लक्ष्मण और जानकी को देख अत्यंत हर्षित होते हुए निषादराज भूमि पर गिर पड़ते हैं । उन को अपने देह की सुधि नहीं रहती । संक्षेप में दोनों महाकाव्यों मे निषादराज गुह के चरित्र में सखा, सेवक तथा भक्त रूप का दर्शन होता है ।

5.8.18 भरद्वाज :-

प्रयाग में गंगा यमुना के संगम स्थल के समीप भरद्वाजजी का आश्रम है । कठोर तपस्या के द्वारा मुनिने तीनों कालों को जानने की शक्ति प्राप्त कर ली है । राम को दिये गये चौदह वर्ष के वनवास को वे उचित नहीं मानते । रामायण [443] और 'रामचरित मानस'[444] में वन जाते हुए राम, सीता तथा लक्ष्मण का भरद्वाज पत्नी तथा भ्राता सहित आतिथ्य सत्कार करते हैं । चित्रकूट जाते हुए भरत भरद्वाज आश्रम में आते हैं, उस समय मुनि भरद्वाज भरत का सेना समेत भव्यातिभव्य आतिथ्य सत्कार करते हैं।[445] 'रामायण' में सेना समेत भरत के आतिथ्य के लिये वे देवों, गन्धर्वों, नदियों, पर्वतों आदि का आवाहन करते हैं । जबकि 'मानस' में रिद्धि और सिद्धि प्रकट होकर भरत का सत्कार कर मुनि के सोच को दूर कर देती हैं । 'रामायण' में भरद्वाज सेना का साथ राम के पास जाते हुए भरत पर संदेह करते हैं और पूछ भी लेते हैं कि राम को लेकर तुम्हारे मन में कोई दुराग्रह तो नहीं है ? जबकि 'मानस' में भरत के मन की बात को जानते हुए भरद्वाज विधि की वक्रता को दिखाते हुए उनको सान्तवना देते हैं । दोनों महाकाव्यों में भरद्वाज आदर्श चरित्र युक्त महात्मा के रूप में प्रकट होते हैं ।

5.8.19 अत्रिमुनि :-

चित्रकूट से पंचवटी की ओर जाते हुए भार्या और अनुज सहित राम अत्रि आश्रम में जाते हैं। 'रामायण' में राम के आगमन से हर्षित होते हुए अत्रि ऋषि राम का आतिथ्य सत्कार करते हैं। 'राम चरित मानस' में आश्रम में पधारे हुए राम को देखकर अत्रि मुनि भाव-विभार हो जाते हैं और भक्तवत्सल भगवान श्री राम की स्तुति भी करते हैं। 'रामायण' में अत्रि मुनि का महात्मा रूप तथा 'मानस' में भक्त रूप का दर्शन होता है।

5.8.20 विराध :-

जव नामक राक्षस का पुत्र विराध पूर्व जन्म में तुम्बरू नामक गन्धर्व था । तुम्बरू कुबेरकी सेवा में ठीक समय पर उपस्थित न हो पाने से कुबेर ने उसको राक्षस होने का शाप दिया था ।[446] विराध ने ब्रह्मा की तपस्या करके किसी भी शस्त्र से वध न होने का वरदान प्राप्त कर लिया था । राम और लक्ष्मण के द्वारा अनेक बाण चलाये जाने पर उसकी मृत्यु नहीं होती तो दोनों भाईयों ने शस्त्रों से उसके शरीर को शत-विक्षत करके जमीन में गाड दिया । 'मानस' में भी राम और लक्ष्मण के हाथों भयंकर राक्षस विराध का वध होता है ।[447] 'रामायण' में विराध के साथ राम लक्ष्मण के युद्ध को वाल्मीकि ने विस्तार से दिया है जबकि तुलसीदास ने संक्षेप में ही इस प्रसंग को प्रकट करके कथा प्रवाह को आगे बढ़ा दिया है ।

5.8.21 शरभंग मुनि :-

'रामायण' में इन्द्रलोक, स्वर्गलोक तथा ब्रह्मलोक आदि पर अपनी तपस्या से विजय प्राप्त करनेवाले महात्मा शरभंग को इन्द्रादि, ब्रह्मलाक ले जाने के लिये आते हैं परंतु श्री राम जैसे अतिथि के दर्शन की ईच्छा से मुनि इन्द्र की बात की अवज्ञा कर देते है ।[448] इन्द्र के चले जाने के बाद राम अतिथि बनकर उनके आश्रम पधारते हैं, तब उनका सत्कार करके तथा उनको देखते हुए मुनि ब्रह्मलोक प्रयाण कर देते हैं । 'मानस' में भी आश्रम में पधारे हुए श्री राम को प्रार्थना करते हुए शरभंग अपने शरीर को अग्नि में जलाते हुए ब्रह्मलोक की ओर चल देते हैं ।[449] 'रामायण' में शरभंग मुनि को ब्रह्मलोक ले जाने के लिये इन्द्र आदि देवता मुनि के आश्रम में आते हैं, परंतु राम दर्शन की ईच्छा से मुनि ब्रह्मलोक आने की अवज्ञा कर देते हैं । 'मानस' में रामदर्शन करते हुए शरभंग मुनि ब्रह्मलोक चले जाते हैं परंतु इन्द्रादि देवता उन्हे लेने के लिये नहीं आते ।

5.8.22 सुतीक्ष्ण :-

महात्मा शरभंग ऋषि की ही भांति सुतीक्ष्ण ने भी अपनी तपस्या के द्वारा सभी

लोकों पर विजय प्राप्त कर ली थी । राम के दर्शन करने हेतु सुतीक्ष्ण वर्षो से उनका इतंझार कर रहे थे । प्रेमवश वे राम को अपने आश्रम में ही वनवास व्यतीत करने का आग्रह करते हैं । 'रामचरित मानस' में सुतीक्ष्ण को भगवद् भक्त के रूप में अधिक प्रकट किया गया है, उनकी प्रेम दशा को देखकर राम भी प्रसन्न हो जाते हैं।[450] आश्रम में पधारे हुए राम का आतिथ्य सत्कार करते हुए मुनि प्रभु को अपने हृदयरूपी आकाश में चन्द्रमा की भांति निवास करने की प्रार्थना करते हैं । श्री राम की भांति गुरु अगस्त्य के प्रति भी सुतीक्ष्ण में श्रेष्ठ गुरु-भक्ति का दर्शन होता है । संक्षेप में 'रामायण' के त्रिकालदर्शी महात्मा सुतीक्ष्ण का 'मानस' में एक भक्त के रूप में चित्रण हुआ है ।

5.8.23 अगस्त्य :-

अगस्त्य वशिष्ठ की भांति मित्र वरुण के पुत्र थे ।[451] उनके जन्म-सम्बन्धी कथा ऋग्वेद में प्राप्त होती है ।[452] राजकुमारी लोपामुद्रा उनकी पत्नी थी । अगस्त्य के आश्रम में आकर देवता, गन्धर्व, सिद्ध और महर्षि सदैव आराधना करते हैं। उनका प्रभाव इतना था कि इनके आश्रम में झुठ बोलने-वाला, क्रूर नृशंस अथवा पापाचारी मनुष्य जीवित नहीं रह सकता था । दक्षिण दिशा में राक्षसों का नित्य दिन तांडव मचा रहता था, वहाँ अगस्त्य ने अपने तपोबल से अर्जित की हुई शक्तियों से उन राक्षसों का संहार करके दक्षिण दिशा को शरण लेने योग्य बना दिया था । चिरकाल से राम के आगमन का इतंज़ार करते हुए धर्मज्ञ महात्मा अगस्त्य ने उनके आने का समाचार सुना तो वे हर्षित हो उठते हैं ।[453] 'मानस' में भी राम को आश्रम में पधारे हुए देखकर मुनि की आँखों में से हर्ष के अश्रु बहने लगते हैं ।[454] राम के साथ अपना स्नेह दिखाते हुए तथा विश्वकल्याण के लिये रावण जैसे आतताई का खत्म होना जरूरी समझते हुए अगस्त्यजी राम को रावण के साथ युद्ध हो उससे पहले सनातन, गोपनीय स्त्रोत 'आदित्य हृदय' सुनाते हैं ।[455] निष्कर्ष में 'रामायण' में अगस्त्यजी का चरित्र विश्वकल्याणमयी भावनाओं से ओतप्रोत दिखाई देता है । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने इसी गुण के साथ अगस्त्यजी के चरित्र में राम -भक्तिभावना को भी जोड़ दिया है ।

राम को अगस्त्यजी के द्वारा प्राप्त शिक्षा के संदर्भ में अपने विचारों को प्रकट करते हुए रामानन्द सागर कहते हैं कि “राम की शिक्षा विश्वामित्र से शुरु हुई और अगस्त्य के पास पूरी हुई । शिक्षा में विश्वामित्र के यहाँ जो छूट गया था वह अगस्त्य के यहाँ पूरा हो गया ।[456] दोनों महाकाव्यों में अरण्यकाण्ड तक जिन-जिन महात्माओं की उपस्थिति हुई है उनमें अगस्त्य जी अंतिम है ।

5.8.24 जटायु :-

जटायु अरुण तथा श्येनी का पुत्र तथा सम्पाति का छोटाभाई है । इन्द्र के द्वारा वृतासुर वध होने के पश्चात् जटायु और सम्पाति ने मिलकर इन्द्र पर आक्रमण करते हुए उसको पराजित कर दिया था । ‘रामायण’[457] तथा ‘रामचरितमानस’[458] दोनों महाकाव्यों में सीता का हरण करके जाते हुए रावण के साथ जटायु ने भयानक युद्ध किया और उनके सारथि का वध कर दिया । इतना ही नहीं रावण के शरीर को भी उन्होंने क्षत-विक्षत, कर दिया था । ‘रामायण’ में सीता को बचाने के प्रयत्न में हुई जटायु की मृत्यु का राम को भी दुःख होता है ।[459] ‘मानस’ में भी राम कार्य करते– करते मिली मृत्यु का हर्ष प्रकट करते हुए जटायु परमधाम चले जाते हैं । दोनों महाकाव्यों में जटायु का वीर, पराक्रमी तथा रामभक्त के रूप में चित्रण किया गया है । ‘रामायण’ में जटायु की वीरता के प्रसंगों को वाल्मीकि ने विस्तार से दिया है । जबकि गोस्वामीजी ने इन्हीं प्रसंगों को संक्षेप में ही कह दिया है । रावण और जटायु के द्वन्द का विवरण वाल्मीकि रामायण में विस्तृत है जबकि ‘मानस’ में उस दिगन्त-व्यापिनी करुणा का विशद अंकन नहीं हुआ है, जिसमें समस्त प्रकृति सीता के आते क्रन्दन से अभिभूत हो उठती है । मानसकार ने सूत्र शैली का आश्रय लेकर उक्त सब सन्दर्भों का समाहार किया है ।[460]

5.8.25 खर :-

पुलत्स्यवंशी खर राम के साथ युद्ध करते हुए मृत्यु को प्राप्त करता है । दोनों महाकाव्यो में खर को अपनी बहन शूर्पणखा के प्रति गहरा लगाव है । अंगहीन तथा

रक्त से भीगी शूर्पणखा को देखकर वह क्रोधित हो जाता है और राम को मारने के लिये तत्पर हो उठता है ।[462] 'मानस' में भी शूर्पणखा की दशा देखकर पूरी सेना समेत राम पर वह आक्रमण कर देता है । । उस समय इन्द्रास्त्र का प्रयोग करके राम उनका वध कर देते हैं । 'रामायण' में शूर्पणखा की दशा देखकर खर उनके साथ भयानक चौदह राक्षसों को भेजते हैं परंतु उन सबका राम के हाथों वध होने पर खुद खर सेना समेत युद्ध के लिये जाता है । जबकि 'मानस' में शूर्पणखा का प्रतिशोध लेने के लिये खर सेना सहित सीधा ही आक्रमण कर देता है । 'रामायण' में त्रिशिरा और दूषण के वध से खिन्न खर राम के साथ भयानक युद्ध करता है । जबकि 'मानस' में खर राम के सुन्दर रूप पर मोहित हो जाता है ।[462] दोनों महाकाव्यों में खर को वीर, महापराक्रमी तथा शक्तिशाली योद्धा के रूप में चित्रित किया गया है ।

5.8.26 दूषण :-

पुलत्स्यवंशी खर का छोटा भाई दूषण राम के साथ युद्ध में अपना सर्वश्रेष्ठ पराक्रम दिखाता है । दूषण भी खर की भाँति शूर्पणखा के नाक कान काटने वाले राम लक्ष्मण से प्रतिशोध लेने हेतु राम के साथ युद्ध करने के लिये जाता है और भयानक युद्ध करते हुए राम के हाथों मारा जाता है । दुषण में शूर्पणखा के प्रति कोमल भाव विद्यमान है। इसी प्रकार खर के प्रति उनकी आज्ञाकारिता भी दोनों महाकाव्यों में प्रकट होती है। दूषण के चरित्र में वीरता तथा पराक्रम को दिखाते हुए वाल्मीकि ने 'रामायण' में राम के साथ उनका अलग युद्ध दिखाया है । जबकि मानसकार ने इसको अति संक्षेप में ही कह दिया है । 'रामायण' में दूषण का चरित्र राम के साथ युद्ध करने से थोड़ा सा उभरा हुआ है । परंतु 'मानस' में तुलसीदास ने दूषण के चरित्र को स्वतंत्र रूप से चित्रित न करते हुए मानों ढक सा दिया है ।

5.8.27 त्रिशिरा :-

खर और दूषण के साथ राक्षस सेना का सेनापति त्रिशिरा भी युद्ध में राम के

हाथों मारा जाता है । 'रामायण' में वाल्मीकि ने त्रिशिरा का स्वतंत्र वर्णन करते हुए राम के साथ उसके युद्ध को चित्रित किया है । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने खर और दूषण के साथ ही त्रिशिरा का संक्षेप में ही चित्रण किया है ।

5.8.28 अकम्पन :-

अकम्पन राक्षसो में सूर्य के समान तेजस्वी था । युद्ध भूमि में देवता भी इसे कम्पित नहीं कर सकते थे । इसीलिए वह अकम्पन के नाम से जाना जाता था। रावण को सीताहरण करने का परामर्श सबसे पहले अकम्पन ने ही दिया था। अकम्पन वीर योद्धा अवश्य है, परंतु राम की वीरता तथा युद्ध कौशल से वह डरा हुआ था । 'रामायण' में वह रावण के सामने राम के गुण, शौर्य तथा युद्ध कौशलता की प्रशंसा करता है [462] 'मानस' में सीताहरण के लिये अकम्पन के द्वारा रावण को उकसाये जाने का प्रसंग नहीं है । रावण की आज्ञा से अकम्पन राम के साथ युद्ध करने जाता है और भयानक युद्ध करते हुए वह राम सेना में त्राही-त्राही मचा देता है। अंत में युद्ध करते हुए वह हनुमानजी के हाथों मारा जाता है । महर्षि वाल्मीकि ने इनका विस्तार से तथा तुलसीदास ने इसका संक्षेप में ही चित्रण किया है ।

5.8.29 मारीच :-

मारीच ताटका और सुन्दका पुत्र है । अगस्त्य मुनि के शाप से वह राक्षस हो गया था । 'रामायण'[464] तथा 'रामचरित मानस'[465] में विश्वामित्र के यज्ञ का विध्वंस करने आये मारीच को राम ने बाण मारकर उसे सौ योजन दूर फेंक दिया था। तब से वह समुद्र के दूसरे तट पर रमणीय वन के भीतर एकांतावस्था मे आश्रम बनाकर शरीर मे काला मृगचर्म और सिर पर जटाओं का समूह धारण करके निवास करने लगता है । सीता-हरण के लिये रावण ने जब मारीच से सहायता माँगी तब वह विविध प्रकार के उपदेश से उसे समझाता है, परंतु रावण पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता । अंत में रावण के हाथों मरने से अच्छा राम के हाथों उद्धार हो सोचकर रावण की सहायता करने के लिये तैयार हो जाता है । 'मानस' में भी रामदर्शन की साध मनमें लेकर वह

रावण की सहायता करता है ।[461] 'रामायण' में मारीच राम के बल, पराक्रम से डरा हुआ है और रावण की बात सुनकर भय से थर्रा उठता है । जब कि 'मानस' में मारीच रामको सामान्य नर न समझते हुए उनके इश्वरीय रूप का स्वीकार करते हुए भक्त के रूप में प्रकट होता है । 'रामायण' में मारीच रावण को राजधर्म तथा नीतियुक्त वचनों से समझाता है जिसका वाल्मीकि ने विस्तार से वर्णन किया है, परंतु मानस में इसका अभाव है । 'रामायण' में स्वर्णमृग बनकर राम के पास जाने में मारीच की कर्तव्य भावना प्रमुख है । जबकि 'मानस' में रामदर्शन की इच्छा प्रमुख है । 'रामायण' में वाल्मीकि ने मारीच का मायावी, यज्ञ विध्वंसक तथा रामशक्ति से प्रभावित राक्षस के रूप में यर्थाथ चित्रण किया है जबकि 'मानस' में मारीच के चरित्र में उपर्युक्त विशेषताओं के साथ-साथ राम भक्ति को भी जोड़ दिया गया है ।

5.8.30 कबन्ध :-

स्थूलशिरा महर्षि के शाप से राक्षस रूपी कबन्ध का उद्धार श्री राम के हाथों होता है । सीता अन्वेषण करते हुए राम और लक्ष्मण कबन्ध के हाथों में पड़ जाते हैं, उस समय दोनों भाई अपनी तलवार की पैनी धार से कबन्ध की भूजाओं को काट देते हैं । इन्द्र की मार से विचित्र शरीरावस्था धारण किया हुआ कबन्ध का राम दाह संस्कार करते हैं, परिणामतः उन्हें उनका पूर्व दिव्य रूप प्राप्त होता है । अपने दिव्य रूप में प्रकट होते हुए कबन्ध राम और लक्ष्मण को सुग्रीव से मित्रता करने तथा मतङ्ग मुनि के आश्रम का परिचय देकर प्रस्थान करते हैं । तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में कबन्ध की कथा को अति संक्षेप में ही कह दिया है । जबकि महर्षि वाल्मीकि ने कबन्ध का पूर्वजीवन, शाप तथा इन्द्र के साथ युद्ध का विस्तार से वर्णन किया है । दोनों महाकाव्यों में श्री राम के हाथों कबन्ध का उद्धार होता हुआ दिखाया गया है ।

5.8.31 नल :-

विश्वकर्मा के औरस पुत्र नल शिल्प कर्म में अपने पिता के समान है । समुद्र को

पार करने के लिये श्री राम समुद्र के कहने पर नल को पुल बनाने का कार्य सौपते हैं । नल भी विस्तृत समुद्र पर सेतु का निर्माण करने के लिये अपनी तत्परता दिखाते हैं और पाँच दिन में वानरों की सहायता से समुद्र पर सौ योजन सेतु बाँध देते हैं ।[467] 'रामचरित मानस' में भी समुद्र के कहने पर नल और नील के द्वारा सेतु बाँधने का कार्य सम्पन्न करवाया जाता है।[468] दोनों महाकाव्यों में विश्वकर्मा पुत्र नल के द्वारा समुद्र पर सेतु बनवाया जाता है। 'रामायण' मे नल की शिल्पकार्य में निपुणता पिता विश्वकर्मा की देन बताया है। जबकि 'मानस' में इसको ऋषियों का आर्शीवाद बताया है।

5.8.32 नील :-

अग्निपुत्र नील राम सेना के नायक है । 'मानस' में नल और नील के द्वारा सेतुबुध बाँधने का कार्य किया जाता है । रावण के साथ युद्ध करते हुए नील ने राक्षस सेना के अनेक वीर योद्धाओं का वध कर दिया था । राक्षस सेना के वीर सेनापति वानर सेना को जब नहस नहस कर रहा था उस समय नील अपने पराक्रम को दिखाते हुए महापराक्रमी प्रहस्त का वध-कर देते हैं । महोदय के प्रहार से नील मूर्छित हो जाता है, परंतु होश सम्भालने के बाद पर्वत शिखर को भयंकर वेग से महोदर के उपर फेंककर उनका भी वध कर देते हैं । 'मानस' में रावण सेना के साथ नील का स्वतंत्र युद्ध वर्णित नहीं है । निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों में नील वीर, पराक्रमी तथा बुद्धिशाली योद्धा के रूपमें प्रकट होता है ।

5.8.33 सम्पाति :-

ब्रह्मांड पुराण मे इसे गृन्धी का पुत्र बताया गया है तो वायु पुराण में इसकी माता का नाम श्येनी दिया गया हैं ।[469] इन्द्र के प्रभाव को बढ़ता हुआ देख सम्पाति और जटायु ने मिलकर उन पर आक्रमण करके विजय प्राप्त की थी । सम्पाति ने अपने छोटे भाई जटायु के साथ कैलास पर्वत के ऋषियों के सामने यह शर्त लगायी थी कि वह दोनों सूर्य अस्ताचल हो उससे पहले उनके पास पहुँच जायेंगे । परंतु सूर्य के पास पहुँचने से पहले ही सूर्याग्नि से वह दोनों दग्ध हो जाते हैं । सम्पाति पंख फैलाकर

जटायु को बचा लेते हैं, परंतु उसके पंख जल जाते हैं । समुद्र के तटपर अंगद आदि वानर दल से जटायु की मृत्यु का समाचार सुन वह खिन्न हो जाते हैं और वानरों की सहायता से वे जटायु को जल्लाजंली देते हैं । दोनों महाकाव्यों मे सीता अन्वेषण करते हुए वानर दल की महत्वपूर्ण सहायता करनेवाले सम्पाति का समान चित्रण हुआ है ।

5.8.34 जाम्बवान :-

'रामायण' के अनुसार जाम्बवान ब्रह्मा के पुत्र थे । ब्रह्माजी जम्हाई लेते थे तब एकाएक जाम्बवान मुख से निकल पड़े थे । दोनों महाकाव्यों में जाम्बवान स्थिर, विवेकी, परामर्श दाता, वीर तथा बुद्धिशाली के रूप में प्रकट होते हैं । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में जाम्बवान वानर दल के सामने अपनी पूर्वोक्त शक्ति को प्रकट करते हैं । बलि के यज्ञ में तीन पग भूमि नापने के लिये विष्णु ने जब अपना पैर बढ़ाया तब जाम्बवान ने उनके विराट स्वरूप की दो घडी में परिक्रमा कर ली थी। इसी प्रकार समुद्र मंथन में भी इन्होंने महत्व का योगदान दिया था ।[470] सीता अन्वेषण में समुद्र को लांघना एक समस्या बनी हुई थी तब जाम्बवानजी ही उस समस्या का समाधान देते हैं।[476] 'रामायण' में इन्द्रजित के ब्रह्मास्त्र से घायल राम समेत पूरी सेना में नये जीवन का संचार करते हुए जाम्बवान हनुमानजी को औषधियाँ लाने के लिये हिमालय भेजते हैं। परिणामतः उन औषधियो की गंध मात्र से पूरी सेना स्वस्थ हो जाती है । 'मानस' में इस प्रसंग का अभाव है। 'मानस' में वीरघातिनी शस्त्र से मूर्छित लक्ष्मण को स्वस्थ करने के लिये जाम्बवान लंका से सुषेन वैद्य को लाने के लिये हनुमानजी को भजते हैं । 'रामायण' में जाम्बवान इन्द्रजित के पैर पकड़कर उनको घुमाते हुए लंका में फेंक देते है ।[472] जिसमें उनकी वीरता का दर्शन होता है । 'रामायण' में इस प्रसंग का अभाव है परंतु अन्य योद्धाओं के साथ उनके युद्ध का वर्णन मिलता है । निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों में संकट के समय परामर्श देते हुए जाम्बवानजी के चरित्र में लम्बे जीवन काल का अनुभव दिखाई देता है । जाम्बवानजी में अनेक गुणों को भरकर दोनों महाकवियों ने उनके चरित्र को महान बना दिया है ।

5.8.35 अक्षयकुमार :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में रावण पुत्र अक्षयकुमार सुन्दरकाण्ड में प्रकट होता है और हनुमानजी के साथ युद्ध करता हुआ वह वीरगति को प्राप्त होता है। महर्षि वाल्मीकि ने अक्षयकुमार के रूप, गुण तथा शौर्य को विस्तार से दिया है। अक्षय कुमार और हनुमानजी के महाभयानक युद्ध का चित्रण 'रामायण' में विस्तार से हुआ है। जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने इसका लम्बा चौडा चित्रण न करते हुए सुन्दरकाण्ड में अक्षयकुमार को प्रकट करके, हनुमानजी के हाथों उनका वध संक्षेप में ही चित्रित कर दिया है । दोनों महाकाव्यों में अक्षयकुमार एक योद्धा के रूप में प्रकट होता है ।

5.8.36 प्रहस्त :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में प्रहस्त वीर, पराक्रमी तथा स्वामीभक्त के रूप में प्रकट होता है । वह रावण सेना के मुख्य सेनापति है और राम सेना के साथ युद्ध करते हुए नील के हाथों मारा जाता हैं । दोनों महाकाव्यों में प्रहस्त सीता को उनके पति श्रीराम को लौटा देने के पक्ष में था । 'रामायण' में प्रहस्त की रावण के प्रति स्वामि भक्ति निखरी हुई है ।[473] स्वामिभक्ति के आगे अपना जीवन, पत्नी, पुत्र और धन आदि की उसे कोई चिंता नहीं है । कवि नारणदान सुरु ने 'रामरसेन्दु चन्द्रिका' में एक सुन्दर काल्पनिक चित्र खिंचा है कि गीधो के द्वारा राक्षसों के माँस का विभाजन हो रहा था कि कौन गीध किस राक्षस का माँस खाये । सब गीध अपनी-अपनी पसंद के राक्षसों को पसंद कर रहे थे । उस समय इस दृश्य को प्रहस्त देख लेता है और अपने पिता के पास जाकर सारा वृतांत सुनाता है और डर के मारे राम के साथ संधि करने के लिये उन्हें समझाता है।[474] 'रामायण' में प्रहस्त का सुमाली के पुत्र के रूप में परिचय दिया गया है । जबकि 'मानस' में रावण के पुत्र के रूप में उसका परिचय मिलता है । 'रामायण' में प्रहस्त का विस्तृत चित्रण हुआ है । जबकि 'मानस' में उसका संक्षेप में ही चित्रण हुआ है ।

5.8.37 कुंभकर्ण :-

विश्रवा के पुत्र तथा रावण के छोटे भाई कुंभकर्ण महाबली तथा कुशल योद्धा के रूप में चित्रित हुए हैं । जन्म के साथ ही वे भूख से त्रस्त होकर कई सहस्त्र प्रजाजनों को खा गये थे । ब्रह्मा ने उनको शाप दिया था कि यदि तू जिन्दा रहेगा तो जगत का नाश हो जायेगा अतः आज से तु मुर्दे के समान सोता रहेगा । परंतु रावण ने जब ब्रह्मा से विनंति की तो उनके सोने का समय निश्चित करते हुए ब्रह्मदेव ने कहा कि यह छः महिने तक सोता रहेगा और एक दिन जागेगा । कुंभकर्ण का शरीर पर्वताकार और नेत्र भूरे तथा बड़े भयंकर थे । कुंभकर्ण की आकृति पर अपना विचार प्रकट करते हुए डॉ. रेणु महेश्वरी ने लिखा है कि 'कुंभकर्ण के नाम में छिपा हुआ उसकी आकृति का रहस्य यदि उद्घाटित किया जाये तो उसके भौतिक व्यक्तित्व को समझा जा सकता है । कुंभ में आवाज अंदर ही गुंजती हे । अतः अपने अंदर की जो उधेडबुन में रहे और दूसरे की न सुने ऐसा आत्म केन्द्रित और दुनिया से कटा हुआ व्यक्तित्व कुंभकर्ण ही कहा जायेगा।[475] 'रामायण' में रावण को समझाते हुए कुंभकर्ण राजनीति का उपदेश देता है जिसमें उसका राजनीतिज्ञ रूप उभरता है । [476] जबकि 'मानस' में राजनीतिक उपदेश के बजाय राम भक्ति का उपदेश अधिक है । 'रामायण'[477] तथा 'रामचरित मानस'[478] में कुंभकर्ण की वीरता के अनेक प्रसंग चित्रित हुए हैं । 'रामायण' में कुंभकर्ण भातृस्नेही के रूपमें प्रकट होते हैं । जबकि 'मानस' में उसी गुण के साथ रामभक्त का रूप भी निखरा हुआ है । इसीलिए तो वह भातृद्रोही विभिषण को राम की शरण लेने पर कुल का भूषण बताते है । दोनों महाकाव्यों में कुंभकर्ण स्नेहवश रावण को उपालम्भ देते हैं । इसी संदर्भ में डॉ. विद्या मिश्र का मानना है कि कुंभकर्ण अपने भाई रावण का हित चिन्तन स्नेह भाव से करता है इसी कारण भाई रावण के दोषों की आलोचना भी निर्भिक भाव से की है ।[479] निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों में कर्तव्यवेदी पर अनेक पराक्रम दिखाकर अपने आप की बलि चढ़ा देनेवाले कुंभकर्ण हमें अवश्य प्रभावित कर देते हैं ।

5.8.38 शुक :-

रावण का दूत शुक 'रामायण' में तोता[480] तथा 'रामचरित-मानस' में वानर[481] के रूप में राम सेना के रहस्यों को जानने के लिये समुद्र के तट पर आता है । गुप्तचरी करते हुए शुक दोनों महाकाव्यों में राम की सेना के हाथ में पड़ जाता है । मृत्यु के हाथ में पड़े हुए शुक ने जब क्षमा की प्रार्थना की तब प्रभु श्री राम उसको क्षमा देते हुए वानरों के हाथों से उसको छुड़ाते हैं । अतः राम के द्वारा उसको क्षमा और जीवित छोड़ देने से वह राम के ईश्वरीय रूप पर प्रभावित हो जाता है । वह रावण के सामने राम की सेना तथा उनके बलवान यौद्धा के वर्णन के साथ साथ उनके गुणों और उदारता की भी चर्चा करता है । 'रामायण' में शुक का यर्थाथ चित्रण हुआ है । जबकि 'मानस' में शुक श्री राम के त्रिलोकी स्वरूप का स्वीकार करते हुए रावण को संधि करने के लिये समझाता है । अतः दोनों महाकाव्यों में शुक रावण के दूत के रूप में चित्रित हुआ है ।

5.8.39 माल्यवान :-

सुकेश ओर देववती के पुत्र[483] माल्यवान 'रामायण' में वीर तपस्वी और अपने पिता की भांति घोर तपस्वी तथा 'मानस' में वे विष्णु के अवतार श्री राम के भक्त के रूप में प्रकट होते हैं । 'रामायण' में स्वर्ग पर अधिकार जमाते हुए माल्यवान ने भगवान विष्णु के साथ भी भयानक युद्ध किया था और उनको भी धायल कर दिया था । अतः माल्यवान के वीरता भरे प्रसंगों का महर्षि वाल्मीकि ने विस्तार से वर्णन किया है । जबकि 'मानस' में इन्हीं प्रसंगों का अभाव सा है । 'रामायण'[483] और रामचरित मानस[484] दोनों महाकाव्यों में वे श्री राम के विष्णु रूप को प्रकट करते है और रावण को उनके साथ संधि करने के लिये समझाते है । 'रामायण' में माल्यवान श्री राम को बराबरी का शत्रु तथा 'मानस' में उनको विष्णु रूप समझते हैं। अतः माल्ववान रावण को श्री राम से संधि कर लेने का उपदेश देते हैं । दोनों महाकाव्यों में माल्यवान को नीतियुक्त मंत्री रूप को उभारा गया है ।

5.8.40 गरुड :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों महाकाव्यों में गरुड इन्द्रजित के नागपाश बाण में बँधे राम और लक्ष्मण को छुड़ाने के लिये आते हैं । नागपाश का बन्धन गरुड के द्वारा कट जाने पर दोनों भाई पूर्ववत शक्ति को प्राप्त कर लेते हैं । 'रामायण' में गरुड को देवताओं से यह समाचार प्राप्त होता है कि राम और लक्ष्मण को मेघनाद ने नागपाश से बाँध दिया है ।[485] जबकि 'मानस' में गरुड को नारदजी समाचार देते हैं[486] और राम लक्ष्मण की सहायता के लिये उनको तुरंत भेज देते हैं। दोनों महाकाव्यों में गरुड राम सखा तथा राम सेवक के रूप में प्रकट होते हैं ।

5.8.41 सुषेण :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों महाकाव्यों में सुषेण वैद्य का नाम है। इन्दजित तथा रावण के बाणों से राम और लक्ष्मण जब मूर्छित हो जाते हैं, तब उनकी मूर्छा का उपचार करते हुए वैद्य सुषेण हनुमानजी को हिमालय पवर्त पर से औषधियाँ लाने के लिये भेजते हैं । हिमालय के शिखर से प्राप्त औषधियों की सहायता से सुषेण राम ओर लक्ष्मण की मूर्छा को दूर कर देते हैं । 'मानस' में भी उपचार करवाने हेतु हनुमानजी सुषेण को लंका से उनके घर समेत ले आते हैं । हनुमानजी के द्वारा लायी गई औषधियों का प्रयोग करके सुषेण लक्ष्मण पर आयी विपत्ति को टाल देते हैं । दोनों महाकाव्यों में सुषेण राम लक्ष्मण आदि का उपचार करते हुए आदर्श वैद्य के रूप में प्रकट होते हैं ।

5.9 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के अतिगौण स्त्री चरित्र :-

5.9.1 पार्वती :-

पार्वती गिरिराज हिमवान की छोटी पुत्री है । दोनों महाकाव्यों में पार्वती का तपस्विनी के रूप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' में उमा के साथ विवाह करने के पश्चात् शिव सौ वर्ष तक क्रिडा विहार करते हैं , उस समय उनको क्रिड़ा से निवृत

करने के लिये देवताओं के द्वारा अनुरोध किया जाता है । परिणामतः महादेव और पार्वती हिमालय पर्वत के उत्तर भाग में उसी के एक शिखर पर तप करने लगते है।[487] 'रामचरित मानस' में शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिये पार्वती धोर तपस्या करती है ।[488] महर्षि वाल्मीकि ने पार्वती के पुत्री रूप को संक्षेप में प्रकट किया है जबकि 'मानसकार ने इसका विस्तृत वर्णन किया है । पार्वती की तपस्या का जो वर्णन 'मानस' में मिलता है उसका 'रामायण' में अभाव सा है । 'मानस' में पर्वत-राज के द्वारा पार्वती को दहेज दिया जाता है । जबकि 'रामायण' में इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है । 'मानस' में शिव के द्वारा रामकथा सुनती हुई पार्वती का पत्नी रूप विस्तृत रूप से प्रकट होता है, जिसका 'रामायण' में अभाव है। 'रामायण' में पार्वती का क्रोधी रूप दिखाई देता है जब वह देवताओं को शाप देती हैं । जबकि 'मानस' की पार्वती में उनका शान्त और सौम्य स्वभाव ही दिखाई देता है । निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों में पार्वती पतिव्रता, तपस्विनी और अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न नारी के रूप में चित्रित की गई है ।

5.9.2 ताडका :-

ताडका यक्षराज सुकेतु की कन्या तथा सुन्द दैत्य की पत्नी है । वह इच्छानुसार रूप धारण करनेवाली तथा शक्ति में एक हजार हाथियों का बल रखने वाली है । ताड़का पुत्र मारीच भी पराक्रम में इन्द्र के समान है । अगस्त्य ने ताड़का के पति का वध कर दिया था, जिससे खिन्न होकर उसने अगस्त्य ऋषि पर आक्रमण कर दिया । उस समय क्रोध से भरकर मुनि ने ताड़का को भयानक रूप वाली होने का शाप दे दिया था ।[489] विश्वामित्र की आज्ञा से राम उनका वध कर देते हैं ।[490] 'रामचरित मानस' में ताड़का का अति संक्षेप में चित्रण हुआ है । 'रामायण' में राम ताड़का का वध कर देते हैं । जबकि 'मानस' में श्री राम ताड़का के प्राण हरके उसको अपना पूर्व दिव्य रूप प्रदान करते हैं । दोनों महाकाव्यों में ताड़का का बलशालिनी राक्षसी के रूप

में चित्रण किया गया है ।

5.9.3 अहल्या :-

अहल्या महात्मा गौतम ऋषि की पत्नी, तपस्विनी तथा अद्वितीय सुन्दरी के रूप में प्रकट होती हैं । 'रामायण' में उसके शापग्रस्त होने की कथा विस्तार से दी गई है जिसके अनुसार एक दिन गौतमऋषि आश्रम पर नहीं थे तब गौतम ऋषि के वेश में इन्द्र उनके पास समागम की ईच्छा करते हैं । उस समय इन्द्र को छद्मवेश में पहचान लेने पर भी अहल्या दुष्कर्म करने के लिये तैयार हो जाती है । उस समय आश्रम से इन्द्र को निकलते हुए देख तथा उसके पाप कर्म को जान गौतम ऋषि इन्द्र को अंडकोष रहित तथा अहल्या को वर्षोंतक हवा पीकर समस्त प्राणियों से अदृश्य रहकर राख में पड़ी रहने का शाप देते हैं । 'मानस' में गौतम ऋषि के द्वारा अहल्या को शाप देने का उल्लेख है, परंतु शाप देने का कारण नहीं बताया गया । 'रामायण' में अहल्या के जन्म तथा सौन्दर्य का वाल्मीकि ने वर्णन किया है । जबकि 'मानस' में इसका अभाव है । 'रामायण' में अहल्या राम लक्ष्मण का आतिथ्य सत्कार करती है और ऋषि के शाप से मुक्त होकर गौतमऋषि से जा मिलती है । जबकि 'मानस' में शिला बनी हुई अहल्या को विश्वामित्र श्री राम से चरण स्पर्श करवाते हुए उनका उद्धार करवाते हैं । दोनों महाकाव्यों में अहल्या राम के द्वारा उद्धार होते हुए अपने पति से जा मिलती है ।

5.9.4 सुनयना :-

दोनों महाकाव्यों में सुनयना महाराज जनक की पत्नी तथा सीता की माता के रूप में प्रकट होती है । 'मानस' में सुनयना के चरित्र को अत्यंत सौम्य एवं विवेक शिला के रूप में उभारा गया है । जबकि 'रामायण' में वाल्मीकि ने सुनयना का कहीं भी स्वतंत्र वर्णन नही ंकिया है । 'मानस' के चित्रकूट प्रसंग में महाराज जनक के साथ पधारी हुई सुनयना में ममतामयी माता, व्यवहार कुशलता, भक्तहृदया तथा मर्यादा जैसे गुणों के दर्शन होते हैं, जिसका 'रामायण' में अभाव है । अतः अपने उक्त गुणों से सुनयना एक

आदर्श पात्र के रूप में प्रकट होती है ।

5.9.5 उर्मिला :-

'रामायण' में उर्मिला को जनक की छोटी पुत्री तथा सीता की बहन तथा 'मानस' में कुशध्वज की छोटी पुत्री [491] और सीता की बहन बताया गया है।[492] 'रामायण' में विवाह के उपरांत उर्मिला देवी देवताओं की पूजा अर्चना करती है। 'मानस' में अपनी बहु तथा पुत्रों के कल्याणार्थ कौशल्या आदि सासें देवी-देवताओं की पूजा करती हैं । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में उर्मिला का विस्तार से वर्णन नहीं मिलता । कवियों का मुख्य द्रष्टिकोण सीता राम होने से उर्मिला के पात्र को पूरा न्याय नहीं दे सके हैं । दोनों महाकाव्यों में चौदह वर्ष तक सर्व सुख का त्याग करने वाली उर्मिला आदर्श पात्रों के परिसर में अपना महत्व का स्थान बना लेती है।

5.9.6 माण्डवी :-

राजा जनक के छोटे भाई कुशध्वज की बड़ी पुत्री मांडवी अनिंद्य सुन्दरी तथा गुणशिला के रूप में प्रकट होती है । सीता आदि बहनों के साथ ही दशरथ पुत्र भरत से इनका विवाह होता है ।[493] अन्य बहनों की भांति मांडवी को भी भारी दहेज प्राप्त होता है । दोनों महाकाव्यों में मांडवी का संक्षिप्त और समान चित्रण ही मिलता है ।

5.9.7 श्रुतकीर्ति :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में महाराज जनक के छोटे भाई कुशध्वज की छोटी पुत्री श्रुतकीर्ति का विवाह अयोध्या नरेश महाराज दशरथ के छोटे पुत्र शत्रुध्न से होता है।[474] दोनों महाकाव्यों में इसको अनिंद्य सुन्दरी बताया गया है। अपनी अन्य बहनों की भांति श्रुतकीर्ति को भी भारी दहेज प्राप्त होता है 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में दोनों महाकवियों ने श्रुतकीर्ति का विस्तार से वर्णन न करके इसका उल्लेख मात्र कर दिया है ।

5.9.8 अनसुया :-

अनसुया कर्दम देवहूति की पुत्री तथा स्वायंभव और वैवस्वत मन्वंतर में ब्रह्माजी के मानस पुत्र अत्रि मुनि की भार्या थी । पौराणिक साहित्य में इन्हें पतिवृता कहा गया है।[495] तपोनिष्ठ ऋषि पत्नी 'रामायण' के अयोध्याकाण्ड में तथा 'रामचरित मानस' के अरण्यकाण्ड के प्रारंभ में प्रकट होती है । दोनों महाकाव्यों में अनसुया का तपस्विनी के रूप में चित्रण किया गया है । महर्षि वाल्मीकि ने उसकी तपस्या का वर्णन करते हुए लिखा है कि जब दस वर्षों तक वृष्टि नहीं हुई थी तब अनसुया ने कठोर नियमों में रहकर उग्र तपस्या करके फल-मूल उत्पन्न किया था तथा मन्दाकिनी की पवित्र धारा बहायी थी ।[496] दोनों महाकाव्यों में अनसुया सीता को दिव्य आभूषणों तथा अलंकारों को प्रदान करती हुई पतिव्रता धर्म का उपदेश देती है । 'रामायण' में अनसुया सीता को अंक में भरती है तथा उसके मस्तक को सूँधती है, जिसमें उसकी वात्सल्यमयी ममता का रूप दिखाई देता है । जबकि 'मानस' में राम-सीता को आराध्य के रूप में प्रकट करके तुलसीदास ने स्वामि भक्त की मर्यादा को बनाये रखा है । 'रामायण' में अनसुया की वृद्धावस्था का वर्णन है । जबकि 'मानस' में इसका अभााव है । इस प्रकार 'रामायण' और रामचरित मानस' में अनसुया को पतिव्रता तपस्वी तथा अलौकिक शक्ति से सम्पन्न नारी के रूप में चित्रित किया गया है ।

5.9.9 शबरी :-

पम्पा नामक पुष्करिणी के पश्चिम तटपर शबरी का रमणीय आश्रम था । मस्तक पर जय और शरीर पर चीर एवं काला मृगचर्म धारण करके नित्यदिन रामभक्ति में जीवन व्यतीत करती हुई शबरी गुरु की आज्ञा के अनुसार राम के आने का इंतजार करती है । जब राम और लक्ष्मण सीता की खोज करते हुए शबरी के आश्रम में आते हैं, तब वह उन दोनों भाईयो का बहुत आदर-सत्कार करती है और अपने गुरु पुण्यात्मा महर्षि मतंग ऋषि के पास दिव्य लोक चली जाती है ।[497] 'मानस' में तुलसीदास ने

शबरी की गुरु-भक्ति का विस्तार से वर्णन नहीं किया है फिर भी उसका गुरु प्रेम प्रकट हुए बिना नहीं रहता। राम और लक्ष्मण के आश्रम में आने पर उसको गुरु मतंग के वचनों की याद आती है और वह मन ही मन हर्षित हो जाती है ।[498] दोनो महाकाव्यों में शबरी का एक समान चित्रण हुआ है, फिर भी कहीं कहीं उनके चरित्रांकन में विभिन्नता भी दिखाई देती है । जैसे कि 'रामायण' की शबरी समाधि योगिनी तथा तपस्विनी के रूपमें प्रकट होती है । जबकि 'मानस' की शबरी में में रामभक्ति को अधिक उभारा गया है । 'मानस' में राम शबरी में भगवद् भक्ति की विहलता को देखते हुए उनको नवधा भक्ति का उपदेश देते हैं, जिसका 'रामायण' में अभाव है । अतः दोनों महाकाव्यों में राम और लक्ष्मण का आतिथ्य सत्कार करके दिव्यलोक की ओर प्रयाण करनेवाली शबरी रामभक्त, तपस्वीनी, योगिनी और गुरुभक्ता के रूप में प्रकट होती है।

5.9.10 स्वयंप्रभा :-

'रामायण' ओर 'रामचरित मानस' में दक्षिण दिशा में सीता अन्वेषण करते हुए वानरदल को स्वयंप्रभा से भेंट होती है । स्वयंप्रभा अपना परिचय देती हुई कहती है कि मैं मेरू सावर्णि की कन्या हूँ । मेरा नाम स्वयं प्रभा है ।[499] जबकि 'मानस' में उसने अपना न तो परिचय दिया है और न नाम बताया है । 'रामायण' और 'मानस' की स्वयंप्रभा तपोनिष्ठ के रूप में प्रकट होती है । 'रामायण' की स्वयंप्रभा वानरदल को आहार करवाके तथा सीता अन्वेषण के लिये यथायोग्य सहायता करके स्वयं अपनी गुफा में चली जाती है । जबकि 'मानस' की स्वयंप्रभा राम भक्त के रूप में प्रकट होती हुई बानर दल की सहायता करने के पश्चात् वह भक्तिवश श्री राम के पास चली जाती है।[500] दोनों महाकाव्यों में स्वयंप्रभा का शबरी की ही भांति तपस्विनी एवं रामभक्तिन के रूपमें चित्रण हुआ है ।

5.9.11 सुरसा :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न सुरसा

देवकार्य करते हुए सुन्दर काण्ड में हनुमानजी के बल और बुद्धिचातुर्य को परखने के लिये प्रकट होती है । 'रामायण' में देवताओं के कहने पर सुरसा भयंकर राक्षसी का रूप धारण करती है ।[501] जबकि 'मानस' में सुरसा ने ऐसा कोई भयानक राक्षसी रूप धारण नहीं किया है । दोनों महाकाव्यों में सुरसा हनुमानजी की परीक्षा लेकर कार्यसिद्धि के लिये उनको अग्रेसर करती है । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों महाकाव्यों में सुरसा का नागमाता के रूप में चित्रण करते हुए उसके दैविक रूप को अविकतः उभाारा गया है ।

5.9.12 सिंहिका :-

समुद्र में रहकर आकाश में उड़ते पक्षियों की छाया को पकड कर खाने वाली सिंहिका सुन्दरकाण्ड में राक्षसी के रूप में प्रकट होती है । समुद्र मार्ग से लंका जाते हुए हनुमानजी के वेग को अवरूद्ध करती हुई सिंहिका जब उसको खाने का प्रयत्न करती है, तब पूरी सावधानी से हनुमानजी उसके हृदय-स्थल को नष्ट करते हुए उसको मार देते हैं । दोनों महाकाव्यों में सिंहिका का राक्षसी के रूप में समान चित्रण हुआ है ।

5.9.13 लंका :-

'रामायण' में लंका को अधिष्ठात्री देवी [502] तथा 'मानस' में राक्षसी कहा गया है। [503] जिस समय हनुमानजी लंका में प्रवेश करते हैं, तब वह उसे पकड़ लेती है । हनुमानजी के द्वारा जब उसको मुक्का मारा गया तब वह व्याकुल होती हुई ब्रह्मा के वर को याद करती है और राक्षसों के लिये खराब समय आ जाने की सूचना देने लगती है। 'रामायण' की लंकिनी हनुमानजी से ऊँचे स्वर में बात करती हुई उसे थप्पड मार देती है । जबकि 'मानस' की लंकिनी बलशाली होने पर भी ऐसा नहीं करती । निष्कर्ष में 'रामायण' की लंकिनी सात्विक गुणों से सम्पन्न तथा 'मानस' की लंकिनी रामभक्त के रूप में प्रकट होती है ।

5.9.14 त्रिजटा :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में त्रिजटा का समान रूप से चित्रण हुआ है। राक्षस जाति की होने पर भी त्रिजटा में सहानुभूति तथा सत्यवादिता जैसे गुण भरे हुए है। त्रिजटा का सर्वप्रथम वर्णन सुन्दरकाण्ड में मिलता है । 'रामायण' [504] और 'रामचरित मानस'[505] दोनों महाकाव्यों में त्रिजटा सीता को दुःख देनेवाली राक्षसियों को अपना स्वप्न सुनाती हुई सीता को राक्षसियों के त्रास से छुडाती है । दोनों महाकाव्यों में त्रिजटा दुःखी सीता को धैर्य बँधाती है और माता तथा सखी भाव से उनको प्रेम करती है। सीता भी उसके प्रेम को देखकर उन्हें माता कहकर सम्बोधित करती है । 'रामायण' की त्रिजटा राम के विविध पराक्रमों से प्रभावित है अतः वह राम को विष्णु के समान पराक्रमी मानती है । जबकि 'मानस' की त्रिजटा रामभक्त के रूप मे प्रकट होती है । निष्कर्ष में 'रामायण' में त्रिजटा पतिव्रता स्त्रियों का सम्मान करनेवाली सत्यवादी राक्षसी के रूप में तथा 'मानस' में वह विवेक शिला राम भक्त के रूप में प्रकट होती है ।

निष्कर्ष में 'रामायण' और 'रामचरित मानस'के दोनो महाकवियों ने युगानुरुप कथावस्तु में परिवर्तन कर दिया है । उसी प्रकार चरित्रों के चित्रण में भी समयानुसार परिवर्तन करके हमारे सामने प्रस्तुत किया है । दोनों महाकाव्यों के सभी पात्र अपने-अपने स्थान पर रहते हुए अपनी ऊँचाईयो को छूते् हैं । महर्षि वाल्मीकि ने अधिकतः पात्रों का स्वतंत्र वर्णन करते हुए उनको चित्रित किया है । जबकि तुलसीदास ने कथा विस्तार के भय से कई पात्रों का उल्लेख मात्र करके छोड़ दिया है । निबंध के विस्तार को ध्यान में रखते हुए ऐसे चरित्रों को छोड़ दिया गया है, जो पात्र-दोनों महाकाव्य में से किसी एक हीं महाकाव्य में चित्रित हुए है । ऐसे अनेक पात्र हैं , जिसका 'रामायण' या 'मानस' में उल्लेख है या उल्लेख सुधा भी नहीं है । जैसे कुशनाभ, ब्रह्मदत्त, गाधि कौशिकी असमज, कपिलजी, अंशुमान, भगीरथ, विशाल, सुमति त्रिशंकु, अम्बरीष, वामदेव, सुयज्ञ, सिद्धार्थ, जाबाली, शतबलि सुपार्श्व, निशाकमुनि, किंकर, दधिमुख,

शार्दूल, मैन्द्र, द्विविद, क्षोणिताक्ष, यूपाक्ष, मेनका, रम्भा तथा सरमा आदि । दोनों महाकाव्यो में से किसी एक महाकाव्य में इन पात्रों का चित्रण नहीं होने से इस अध्याय में इन चरित्रों को छोड़ दिया है । इसके सिवा महर्षि वाल्मीकि ने रामायण महाकाव्य में उत्तरकाण्ड को देते हुए सीता पुनः वनवास की कथा को दिया है । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने लंका तक की ही कथा कहकर रामकथा को विराम दे दिया है । अतः 'रामायण' के उतरकाण्ड में चित्रित उन पात्रों का भी चित्रण यहाँ नहीं किया गया है ।

संदर्भ सूची

1. वा. रा. बा. का प्रथम सर्ग 2,3,4
2. वा. रा. बा. का प्रथम सर्ग 8 से 19 तक ।
3. वा. रा. अयो. का त्रिपच्चाश : सर्ग-7
4. वा. रा. अयो. का त्रिपच्चाश : सर्ग-15
5. वा. रा अयो. का त्रिपच्चाशः सर्ग -10
6. वा. रा. अरण्यकाण्ड एकषष्टितम : सर्ग 35, 36, 37
7. वा. रा. यु. काण्ड एकोनपच्चाशः सर्ग-22
8. वा. रा. यु. काण्ड एकोनपच्चाशः सर्ग-28, 29
9. हिन्दी साहित्य की भूमिका – पृ. 145 डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी
10. रामचरित मानस कि. का. 8/3
11. रामचरित मानस उत्तरकाण्ड 47/4
12. रामचरित मानस बा.का. 191/1
13. रामचरित मानस बा.का. 201
14. रामचरित मानस बा. का. 192
15. रामचरित मानस अरण्यकाण्ड 23/1
16. रामचरित मानस अरण्यकाण्ड 34/4 तथाा दोहा 41 अरण्यकाण्ड के अंत तक ।
17. रामचरित मानस उत्तरकाण्ड-16
18. तुलसीदास- डॉ. रामप्रीत उपाध्याय-पृ.217
19. रघुवंश – प्रथम सर्ग
20. वा. रा. अयो. काण्ड द्वाविंश सर्ग-18
21. वा. रा. अयो. काण्ड चत्वारिंश सर्ग – 36, 37, 38
22. वा. रा. अयो. काण्ड सप्ताधिक शततम : सर्ग-12
23. वा. रा. अयो. काण्ड द्विपचाक्ष सर्ग-8,7
24. वा. रा. अयो. काण्ड द्विपच्चास : सर्ग 21, 22, 23
25. वा. रा. यु. काण्ड एकोनपच्चास सर्ग-11

26 रामचरित मानस बालकाण्ड 204/4

27. रामचरित मानस - अयो. काण्ड 51/3

28. रामचरित मानस - अयो. काण्ड 40/4

29. रामचरित मानस - अयो. काण्ड 243/4

30. तुलसी के काव्यादर्श-सम्पादक डॉ. मालती दुबे, डॉ. रामकुमार गोपालसिंह तुलसी के राम-श्रीमती नीलू सेठ पृ.161

31. साकेत वाङमय का हिन्दी रामकाव्य पर प्रभाव पृ-71 डॉ. ज्ञानशंकर पाण्डेय

32. वा. रा. अयो. काण्ड सप्तनवतितम : सर्ग – 5-6

33. वा. रा. अयो. काण्ड सप्तनवनितमः सर्ग-18

34. वा. रा. युद्ध काण्ड एकोनपच्चास : सर्ग 5,6,7

35. रामचरित मानस - अयो. का. 9-4

36. रामचरित मानस - अयो. काण्ड 239/4

37. रामचरित मानस - अयो. काण्ड 231/1,2

38. वा. रा. बा. का सप्तसप्ततितम : सर्ग - 29

39. वा. रा. अखयकाण्ड एकषष्टितम्ः सर्ग-37

40. वा. रा. सुन्दरकाण्ड सप्तषष्टितम सर्ग -8

41. वा. रा. सुन्दरकाण्ड सप्तषष्टितम सर्ग -11

42. वा. रा. यु. का. पच्चदशाधिकशततम : सर्ग-21

43. वा. रा. यु. का. पच्चचत्वारिंश : सर्ग-14,15,16

44. रामचरित मानस अयो. काण्ड 114/2

45. रामचरित मानस अरण्य काण्ड 29/8

46. रामचरित मानस सुन्दर काण्ड 31/1

47. वा. रा. अयो. काण्ड- एक पचास सर्ग- 41, 42

48. वा.रा. किष्किन्धा काण्ड पंच्चम सर्ग-25

49. वा. रा. यु. काण्ड अष्टादशः सर्ग-3

50. रामचरित मानस अयो. काण्ड 87/2

51. रामचरित मानस किष्किन्धा काण्ड 6/2

52. रामचरित मानस सुन्दरकाण्ड 48/5

53. वा.रा. अयो.काण्ड एकोनविंश : सर्ग - 33
54. वा. रा. बा. काण्ड षट्सप्ततितम : सर्ग-6
55. रा. मानस अयो. काण्ड 40/4
56. रा. मानस. अयो. काण्ड 95/2,3
57. रा. मानस बा. का. 230/2
58. रा. मानस अयो. काण्ड 262/4
59. रा. मानस बा. काण्ड 280/2
60. वा. रा. अर. काण्ड प्रथम सर्ग-13, 14
61. वा. रा. अयो. काण्ड तृतीय सर्ग-28, 29, 30
62. रा. मानस अर. काण्ड 18/2,3
63. रा. मानस बा. काण्ड 228/1
64. कुमार सम्भव पू. 36 — कालिदास
65. वा. रा. यु. काण्ड एक विंश : सर्ग : 16
66. रा. मानस बा. का 283/1
67. रा. मानस अरण्यकाण्ड-9
68. वा.रा दशम : सर्ग-18
69. वा. रा. उ. काण्ड एकोनशततमः सर्ग 7,8
70. वा. रा. उ. काण्ड प्रक्षिप्तः सर्ग- 1,2
71. वा. रा. उ. काण्ड़ षड़धिकशततम : सर्ग -13
72. रा. मानस उ. काण्ड 21/1
73. रा. मानस उ. काण्ड 42/3
73[A] रामायण का विश्वव्यापी व्यक्ति लल्लनप्रसाद व्यास-पृ.44
74. वा. रा. अयो. काण्ड एकत्रिंशा सर्ग-5
75. रा. मानस अयो. काण्ड 74/1
76. वा.रा. अयो. काण्ड एकविंशः सर्ग -19
77. रा. मानस अयो. काण्ड 89/1
78. वा. राम. अयो. काण्ड सप्तनवतितम सर्ग-19

79. रा. मानस अयो. काण्ड -241
80. रा. मानस अयो. काण्ड 241/1
81. वा. रा. अयो. काण्डषण्णवतितम : सर्ग : 30
82. रा. मा. बा. काण्ड - 275/4
83. रा. मानस अयो. काण्ड 229/4
84. रा. मानस सु. काण्ड 50/2
85. वा. रा. अयो. काण्ड त्रयोविंश सर्ग : 17, 18
86. वा.रा. पंचषष्टितम : सर्ग — 13,14
87. रा. मानस अयो. काण्ड 228/4
88. रा. मानस- सुन्दरकाण्ड 50/1
89. रा. मानस सुन्दरकाण्ड 50/2
90. रा. मानस लंकाकाण्ड 74ख/7
91. वा.रा. पच्चत्वारिश : सर्ग — 27, 28
92. वा. रा. षष्ठ सर्ग -22
93. रा. मानस अयो. काण्ड 73/1
94. वा. रा. त्रयोविशः सर्ग- 38, 39
95. वा. रामा. त्रयोविशं सर्ग-13
96. रा.मानस सुन्दर काण्ड 50/2
97. वा. रा. बालकाण्ड त्रिंशः सर्ग-5
98. रा. मानस बालकाण्ड 272/3
99. अध्यात्म रामायण 1/4/17
100. रा. मानस अयो काण्ड 72/4
101 वा. रामा. अयो. काण्ड चत्वारिंशः सर्ग -5
102. वा. रा. बा. काण्ड अष्टादशः सर्ग-12
103. रा. मानस बा. काण्ड 196/4
104. वा. रा. अयो. काण्ड चतुः सप्ततितम : सर्ग-33
105. वा. रा. अयो. का एक्रोनाशीतितमः सर्ग -8

106. वा. रा. अयो. काण्ड षडधिकशततम : सर्ग 11,12,14

107. वा. रा. अयो. काण्ड षडधिकशततम : सर्ग – 12

108. वा. रा. अयो. काण्ड द्वादशाधिक शततम : सर्ग -21

109. राम मानस अयो. काण्ड- 161

110. रा. मानस अयो. काण्ड 230-4

111. रा. मानस अयो. काण्ड 331

112. रा. मानस अयो. काण्ड 240/1

113. रा. मानस अयो. काण्ड 240/3

114. संस्कृत वाङ्मय का हिन्दी रामकाव्य पर प्रभाव पृ. 192 डॉ. ज्ञानशंकर पाण्डेय

115. वा. रा. अयो. काण्ड अष्टाशीतितमः सर्ग-26

116. रा. मानस अयो. काण्ड 202/2,3,4

117. रा. मानस अयो. काण्ड 204

118. रा. मानस अयो. काण्ड 204/4

119. वा. रा. अयो. काण्ड द्वादशाधिक शततम : सर्ग -25

120. वा.रा. अयो.काण्ड एकोनाशीतितम : सर्ग -8

121. रा. मानस अयो. काण्ड 178/1,2

122. रा. मानस अयो. काण्ड 170/1

123. वा. रा. अयो. काण्ड द्रयशीतितम : सर्ग-20

124. रा. मानस अयो. काण्ड 182/1

125. वा. रा. अयो. काण्ड- 325

126. वा. रा. अयो. काण्ड पच्चाशीतितम : सर्ग-12

127. रा. मानस अयो. काण्ड 232/1

128. वा. रा. अयो. काण्ड, द्विसप्ततिम : सर्ग-43

129. रा. मानस अयो. 282/2

130. रा. मानस अयो. का 59/3

131. रा. मानस अयो. काण्ड 322/1,2,3

132. वा. रा. अयो. काण्ड त्रिसप्ततितमः सर्ग -18

133. रा. मानस अयो. काण्ड 161-1
134. वा. रा. अयो. काण्ड द्विसप्ततितमः सर्ग -18
135. रा. मानस अयो. काण्ड़ 163/1
136. अध्यात्म रामायण- अयो.काण्ड 2,7,89
137. वा. रा. बा. काण्ड सप्तम सर्ग : 1 से 7 तक
138. वा. रा. बा. काण्ड त्रयौदशः सर्ग – 19,20
139. रा. मानस. बा. काण्ड 187,4
140. रा. मानस. बा. काण्ड 188/2
141. वा. रा. बा. काण्ड त्रयोदशः सर्ग-4
142. रा. मानस अयो. काण्ड 3/1
143. वा. राा. बा. काण्ड षष्ट सर्ग 1,2,3,4,5
144. रा. मानस बा. का 187/4
145. आनन्द रामायण 1/1/88
146. ब्रह्मपुराण- अध्याय 123
147. वा. रा. अयो. काण्ड विशंः सर्ग 42
148. वा. रा. अयो. काण्ड दशमः सर्ग -23
149. वा.रा. अयो. काण्ड प्रथम सर्ग-5
150. वा. रा. अयो. काण्ड प्रथम सर्ग-6
151. वा. रा. अयो. काण्ड चतुस्त्रिष्शः सर्ग -26
152. रा. मानस बा. काण्ड 192/2
153. रा. मानस अयो. काण्ड 30/3
154. तुलसीदास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 100
155. वा. रा. उतर काण्ड षट्त्रिंश : सर्ग 45, 46
156. वा. रा. किष्किन्धा काण्ड तृतीय सर्ग -29
157. रा. मानस -सुन्दर काण्ड. 1/6
158. रा. मानस -सुन्दर काण्ड. 2
159. वा. रा. सुन्दकाण्ड प्रथम सर्ग – 45,68,69,70,71,72

160. रा. मानस -सुन्दर काण्ड. 1/4

161. रा. मानस -सुन्दर काण्ड. 29/3

162. महाभारत वनपर्व - रामोपाख्यान पर्व 283/59

163. वा. रा. षट्षष्टितम : सर्ग -37

164. रा. मानस किष्किन्धा काण्ड 29/3

165. रा. मानस किष्किन्धा काण्ड 2/2

166. रा.मानस. सुन्दरकाण्ड 18/3

167. वा.रा. युद्धकाण्ड षट्पश्चास सर्ग -30

168. तुलसीदास का कथाशिल्प डॉ.रांगेय राघव पृ. 285

169. वा. रा. उतरकाण्ड नवमसर्ग-43

170. वा. रा. उतरकाण्ड षाडशः सर्ग — 36, 37

171. रा. मानस बालकाण्ड़ 176/2

172. रा. मानस बालकाण्ड 179/1

173. रा. मानस बालकाण्ड 181/6,7

174. वा. रा. अष्टशः सर्ग -5

175. वा. रा. यु. का एकोनषष्तिम : सर्ग 49

176. वा. रा. यु. का. शताधिकशततमः 47

177. रा. मानस बा. का 171

178. रा. मानस लंकाकाण्ड़- 95/2

179. रा. मानस लंकाकाण्ड़-102

180. वा. रा. यु. का चत्वारिंश सर्ग -27

181. वा. रा. यु. का.त्रयंस्त्रिशः सर्ग-13

182. रा. मानस लंकाकाण्ड़-95/2

183. वा. रा. युद्धकाण्ड षटत्रिंश : सर्ग -11

184. रा. मानस सुन्दरकावड़ 36/1

185. रा. मानस लंकाकाण्ड़-37/1

186. वा. रा. उत्तरकाण्ड़ त्रयोदशः सर्ग 8,9,10

187. रा. मानस बालकाण्ड 183

188. वा. रा. उत्तरकाण्ड़ सप्तदशः सर्ग -34

189. वा. रा. उत्तरकाण्ड़ षड्विंशः सर्ग-40

190. वा. रा. उत्तरकाण्ड़ चतुर्विश : सर्ग -3

191. रा. मानस बालकाण्ड़ 182 ख

192. रा. मानस अरण्यकाण्ड़ 22/3

193. रा. मानस सुन्दरकाण्ड 8/2,3

194. वा. रा. उत्तरकाण्ड़ नवम : सर्ग -43

195. वा. रा. मानस अरण्यकाण्ड़ चत्वारिंश : सर्ग -7

196. रा. मानस अरण्यकाण्ड़ 25-1

197. वा. रा. अरण्यकाण्ड़ षटचत्वारिंश सर्ग -14

198. रा. मानस अरण्यकाण्ड़ 27/6

199. वा. रा. उत्तरकाण्ड़ षोडश : सर्ग -34

200. रा. मानस लंकाकाण्ड़ – 84

200[A] हिन्दी प्रबन्ध काव्य में रावण- डॉ. सुरेशचन्द्र निर्मल पृ. 288

201 तुलसीदास- रामचन्द्र शुक्ल – पृ.104

202. वा. रा. युद्धकाण्ड अष्टषष्टितम सर्ग-19

203. वा. रा. युद्धकाण्ड अष्टषष्टितम सर्ग- 21,22,23

204. वा. रा. युद्धकाण्ड द्रिनवातितम सर्ग-4

205 रा. मानस लंकाकाण्ड़- 71/2

206. रा. मानस लंकाकाण्ड़-76/2

207. पद्मपुराण (संक्षिप्त) जयदयाल गोयन्दका – पृ. 956

208. रामकथा के पात्र – डॉ. राजूरकर पृ- 161

209. संस्कृति के चार अध्याय- रामधारीसिंह दिनकर पृ- 69

210. वा. रा. उत्तरकाण्ड सप्तदशः सर्ग 39, 40

211 रा. मानस अयोध्याकाण्ड - 286

212. अदभूत रामायण अष्टम सर्ग पूरा

213. वा.रा. बालकाण्ड सप्तसप्त तितिम सर्गः 28

214. वा. रा. अरण्यकाण्ड षट्चत्वारिंशः सर्ग -33

215. वा. रा. अरण्यकाण्ड चतुस्त्रिशः सर्ग 15,16,17

216. वा. रा. अरण्यकाण्ड चतुस्त्रिशः सर्ग-18

217. वा. रा. सुन्दरकाण्ड विशः सर्ग – 13

218. रा. मानस बालकाण्ड 230/2

219. मानस के राम और सीता-द्वारका प्रसाद मिश्र – पृ.60

220. रा. मानस अरण्यकाण्ड -28ख/5

221. वा. रा. उत्तरकाण्ड़ अष्टचत्वारिंश सर्ग-3

222. रा. मानस अयोध्याकाण्ड- 246

223. रा. मानस अयोध्याकाण्ड-286

224. रा. मानस अयोध्याकाण्ड-116/4

225. रा. मानस अयोध्याकाण्ड-117

226. रा. मानस लंका काण्ड-108/1

227. वा. रा. सप्तविंश : सर्ग : 10

228. रा. मानस अयोध्याकाण्ड- 68/2

229. रा. मानस अयोध्याकाण्ड-286/4

230. वा. रा. अयोध्याकाण्ड सप्तविंश सर्ग -6

231. वा. रा. अरण्यकाण्ड पच्चत्वारिंश : सर्ग – 36, 37

232. रा. मानस अयोध्याकाण्ड- 63/4

233. रा. मानस अरण्यकाण्ड-5 ख

234. रा. मानस सुन्दरकाण्ड -9/4 तथा 11/1

235. हनुमन्नाटक - अंक-1

236. रामायण में नारी – डॉ. अर्चना विश्नोई पृ. 234

237. मानस के राम और सीता – द्वारका प्रसाद मिश्र पृ.69

238. वा. रा. सुन्दरकाण्ड सप्तत्रिंश : सर्ग – 62

239. रा. मानस बालकाण्ड - 233/4

240. पू.मोरारिबापु के कथामृत पर आधारित रामायण (संदेश-गुजराती) पृ. 576, 577

241. वा. रा. अयोध्याकाण्ड द्विपच्चाशः सर्ग – 82 से 85 तक

242. वा. रा. युद्धकाण्ड षोडशाधिकशततमः सर्ग – 27,28

243. वा. रा. अरण्यकाण्ड नवमः सर्ग – 24,25

244. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 102/2

245. वा. रा. सप्तचत्वारिश : सर्ग -38

246. वा. रा. बालकाण्ड सप्तसप्ततितम सर्ग -25

247. वा. रा. बालकाण्ड सप्तसप्ततितम सर्ग – 26,27,29

248. वा. रा. अरण्यकाण्ड चतुः षष्टितम सर्ग -67

249. रा. मानस अरण्यकाण्ड प्रारंभ की चोपाई -2

250. रा. मानस अरण्यकाण्ड 29ख/1

251. रा. मानस सुन्दरकाण्ड 31/1

252. रामचरित मानस तुलनात्मक अध्ययन- संपादक नगेन्द्र सहसंपादक रमानाथ त्रिपाठी – पृ. 46,47

253. There is not a Hindu woman in the length and breadth of India to whom the story of suffering of Sita is not known, and to whom her character is not a model to strive after and to imitate. R.C. Dutt, History of Civilization in ancient India, Vol. I.P. 143

254. विभिन्न युगों में सीता का चरित्र चित्रण डॉ. सुधा गुप्ता पृ.305

255. विभिन्न युगों में सीता का चरित्र चित्रण डॉ. सुधा गुप्ता पृ. 224

256. वा.रा.अयोध्या काण्ड अष्टम सर्ग – 18

257. रा. मानस अयोध्याकाण्ड-13/4

258. रा. मानस अयोध्याकाण्ड-14/4

259. वा. रा. अयोध्याकाण्ड दशम : सर्ग – 23

260. वा. रा. अयोध्याकाण्ड़ एकदशः सर्ग -5

261. वा. रा. अयोध्याकाण्ड़ नवम सर्ग – 24

262. रा. मानस अयोध्याकाण्ड - 25/3

263. रा. मानस अयोध्याकाण्ड - 25/2

264. वा. रा. अयोध्याकाण्ड सप्तक सर्ग-36

265. रा.मा.अयोध्याकाण्ड - 14/2

266. रा. मानस अयोध्याकाण्ड -18

267. रा. मानस अयोध्याकाण्ड -20/1

268. वा. रा. अयोध्यायकाण्ड द्वादशः सर्ग -46

269. रा. मानस अयोध्याकाण्ड -32/3

270. वा. रा. अयोध्याकाण्ड चर्तुदशः सर्ग 14,16

271. वा. रा. अयोध्याकाण्ड चतुः सप्ततितम : सर्ग-2

272. राम कथा में नारी – डॉ. अर्चना विश्नाई – पृ. 67

273. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 50/2

274. अध्यात्म रामायण- 2/2/44, 45

275. तुलसी साहित्य में नारी- डॉ. शारदा त्यागी पृ. 291

276. वा. रा. अयोध्याकाण्ड तृतीय सर्ग – 39

277. वा. रा. अयोध्यायकाण्ड षट्षष्टितम : सर्ग -12

278. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 54/ 2,3,4

279. वा. रा. अयोध्याकाण्ड विशः सर्ग -42

280. वा. रा. अयोध्याकाण्ड विंशः सर्ग -37

281. वा. रा. अयोध्याकाण्ड चत्वारिंश : सर्ग – 44, 45

282. रा. मानस बालकाण्ड 350 ख/1

283. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़ 56/3

284. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़ 244/3

285. वा. रा. अयोध्याकाण्ड चतुरधिकशततमः सर्ग -5,6

286. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 164/1

287. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 168/3

288. रामकाव्यों में नारी- डॉ. विद्या पृ-274

289. वा. रा. अयोध्याकाण्ड एकोनचत्वारिंशः सर्ग- 19से 25 तक ।

290. वा. रा. अयोध्याकाण्ड एकषष्टितम : सर्ग 4 से 6 तक ।

291. वा. रा. अयोध्याकाण्ड चतुरधिकशततम : सर्ग -25

292. रा. मानस अयोध्याकाण्ड-57/4 58/1,2,3 59/2,4

293. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़ 245/4

294. वा. रा.अयोध्याकाण्ड विंशः सर्ग – 19

295. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़- 7/3

296. वा. रा. अयोध्याकाण्ड चतुश्चत्वारिंशः सर्ग -25

297. वा. रा. अयोध्याकाण्ड विंशः सर्ग -38 से 42 तक ।

298. वा. रा. अयोध्याकाण्ड त्रिचत्वारिंशः सर्ग - 2,3

299. वा. रा. अयोध्याकाण्ड षट्षष्टितमः सर्ग- 3 से 7 तक ।

300. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 281/2

301. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 281/2

302. वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन – डॉ. विद्यामिश्र पृ.504

303. तुलसीदास - माता प्रसाद गुप्त – पृ. 288

304. वा.रा. किष्किन्धाकाण्ड षष्ठ सर्ग -6

305. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड सप्तमसर्ग -17

306. रा. मानस किष्किन्धाकाड़ 4/1

307. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड द्वितीय सर्ग -3

308. रा. मानस किष्किन्धाकाण्ड प्रारंभ की दो तीन चौपाइयाँ ।

309. रा. मानस किष्किन्धाकाण्ड 5/1

310. वा. रा. किष्किन्धाकाड़ चतुर्विंशः सर्ग -23

311. वा.रा. युद्धकाण्ड षण्णवतितमः सर्ग 9,10

312. तुलसीदास- आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ.106

313. रामायण रहस्य- अभिलाषदास पृ. 643

314. वा. रा. उत्तरकाण्ड नवम सर्ग – 39

315. रा. मानस सुन्दरकाण्ड-5

316. वा.रा. युद्धकाण्ड अष्टादशः सर्ग : 34

317. रा. मानस सुन्दरकाण्ड 41/2

318. रा. मानस सुन्दरकाण्ड 45/1

319. वाल्मीकि रामायण तथा रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. विधा मिश्र पृ.492

320. अध्यात्मक रामायण 6/ 2/23,26

321. वा. रा. युद्धकाण्ड नवम सर्ग -14

322. रा. मानस सुन्दरकाण्ड 40/1

323. रा. मानस सुन्दरकाण्ड 49ख/4

324. वा. रा. युद्धकाण्ड नवम सर्ग -19

325. वा. रा. युद्धकाण्ड एकोनविंशः सर्ग – 23

326. वा. रा. युद्धकाण्ड सप्ताशीतितमः सर्ग -12

327. रा. मानस लंकाकाण्ड 84/1

328. रा. मानस, सुन्दरकाण्ड 47/4

329. आनन्द रामायण 8,7,124

330. वा. रा. उ.का पच्चविंश सर्ग – 8-9

331. रा. मानस लंकाकाण्ड 75/1

332. वा. रा. युद्धकाण्ड अशीतितम सर्ग -35

333. रा. मानस लंकाकाण्ड 72/2

334. रा. मानस लंकाकाण्ड 72/4

335. वा. रा. युद्धकाण्ड़ त्रिसप्ततितम सर्ग-69

336. 'आनन्द रामायण' 1,11,250 तथा सर्ग-8

337. वा. रा. युद्धकाण्ड़ पच्चदशः सर्ग -3

338. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड त्रयस्त्रिशः सर्ग 4 से 9 तक ।

339. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड एकादशः सर्ग-4 से 6 तक ।

340. रा. मानस किष्किन्धाकाण्ड 6/6

341. वा. रा. उत्तरकाण्ड चतुस्त्रिशः सर्ग-37

342. रा. मानस लंकाकाण्ड-24

343. वा.रा. किष्किन्धाकाण्ड द्वाविशः सर्ग -3

344. वा.रा. किष्किन्धाकाण्ड़ अष्टादशः सर्ग-51,52

345. वा.रा. किष्किन्धाकाण्ड़ द्वाविंश सर्ग -9

346. रा. मानस किष्किन्धाकाण्ड़ 9/छंद 2

347. रा. मानस किष्किन्धाकाण्ड 9/3

348. वा.रा. किष्किन्धाकाण्ड़ सप्तदशः सर्ग-44

349. रामायण का आधार दर्शन अम्बाप्रसाद श्री वात्सव पृ. 169

350. तुलसीदास आचार्य रामचन्द्र शुक्ल पृ. 97

351. वा. रा. उत्तरकाण्ड सप्तपच्चास सर्ग 4 से 7 तक ।

352. महाभारत आदिपर्व 173/6

353. वा. रा. बालकाण्ड प्रयोदशः सर्ग – 5

354. रा. मानस बालकाण्ड 188/3

355. वा. रा. अयोध्याकाण्ड षट्सप्तनितम सर्ग पूरा

356. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 169/4

357. वा. रा. एकादशाधिकशततम : सर्ग-4

358. वा. रा. बालकाण्ड षट्पच्चास सर्ग -4

359. वा. रा. बालकाण्ड षट्पच्चास सर्ग -20

360. वा. रा. अयोध्याकाण्ड दशाधिक सर्ग पूरा ।

361. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 174/2

362. वा.रा. अयोध्याकाण्ड अष्टसप्ततितमः सर्ग -21

363. वा. रा. अयोध्याकाण्ड अष्टसप्ततितम सर्ग 1 से 4 तक

364. रा. मानस अयोध्यायकाण्ड 255/2

365. तुलसीसाहित्य में चरित्र सम्बन्धी अवधारणा डॉ. रेणु महेश्ववरी पृ. 151

366. वा.रा. किष्किन्धा काण्ड पच्चपच्चाशः सर्ग – 2,3,4,7

367. रा. मानस किष्किन्धाकाण्ड 25/2

368. रा. मानस लंकाकाण्ड 19/1

369. रा. मानस लंकाकाण्ड़ 33 ख/5

370. वा.रा. युद्धकाण्ड चतुश्वतवारिंश : सर्ग 30

371. वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन डॉ. विद्या मिश्र — पृ. 517
372. रा. मानस बालकाण्ड़ 16/1
373. श्रीमद भगवद् गीता 3/20 पृ-71 (सटीक गुजराती)
374. रा. मानस बालकाण्ड 333
375. रा. मानव अयोध्याकाण्ड 286/2
376. मानस चरितावली - रामकिंकर उपाध्याय पृ-264, 265
377. वाल्मीकि रामायण एवं रामचरित मानस का तुलात्मक अध्ययन- डॉ. विद्या मिश्र- पृ. 489
378. वा. रा. अयोध्याकाण्ड पच्चष्ठितम सर्ग : 22
379. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 155/2
380. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़- 73
381. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़ 74/3
382. मानस की महिलाएँ - श्री रामनन्द शर्मा पृ. 387
383. वा. रा. उतरकाण्ड द्वादश : सर्ग 3-4-5
384. रा. मानस बालकाण्ड 177/1
385. वा.रा. सुन्दरकाण्ड दशमः सर्ग 51 से 53
386. रा. मानस बालकाण्ड 177/1
387. वा. रा. युद्धकाण्ड एकादशाधिक शततम : सर्गः 28
388. वा. रा. युद्धकाण्ड एकादशाधिक शततम सर्ग — 39
389. वा. रा. युद्धकाण्ड एकादशाधिक शततम सर्ग- 11 से 14 तक ।
390. रामकथा के नारी पात्र- डॉ. आशाभारती पृ. 394
391. वा. रा. युद्धकाण्ड एकादशाधिकशततमः सर्ग : 31, 32, 33
392. वा.रा. किष्किन्धाकाण्ड एकोनविंशसर्ग : 18
393. वा. रा. किष्किन्धा काण्ड एकविंश सर्ग-16
394. रा. मानस किष्किन्धाकाण्ड 10/1
395. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड पच्चपच्चाशः सर्ग — 15, 16
396. मानस की महिलाएँ - श्री रामानन्द शमा पृ. 401

397. रामकिाा के पात्र – डॉ. राजूरकर पृ-409
398. रामकथा कामिल बुल्के – पृ. 322
399. अमरनाथ कथा - मोरारि बापू – 2007
400. वा. रा. अयोध्याकाण्ड सप्तम : सर्ग 24,25, 26
401. रा. मानस अयोध्याकाण्ड-17
402. राम कथा और उसके प्रमुख नारी पात्र – डॉ. श्रीमति आशाभारती पृ. 273
403. राम कथा और उसके प्रमुख नारी पात्र – डॉ. श्रीमति आशाभारती पृ. 287
404. वा. रा. अरण्यकाण्ड चतुस्त्रिंश : सर्ग – 21
405. राम कथा और उसके प्रमुख नारी पात्र – डॉ. श्रीमति आशाभारती पृ. 287
406. रा. मानस बालकाण्ड़ 125
407. रा. मानस बालकाण्ड़ 136/4
408. वा. रा. बालकाण्ड प्रथम सर्ग 18 1/2
409. रा. मानस अरण्य काण्ड 42 क
410. रा. मानस अयोध्यकाण्ड दोहा 125 के अन्त का छन्द
411. वा. रा. बालकाण्ड पच्चदशः सर्ग 14
412. रा. मानस बालकाण्ड़ 183 के बाद का छन्द ।
413. वा. रा. बालकाण्ड चतुर्थ सर्ग – 6,10
414. रा. मानस उत्तरकाण्ड 24/3,4
415. वा. रा. बालकाण्ड चतुर्थसर्ग 12,13
416. वा.रा. अयोध्याकाण्ड पच्चत्रिंश : सर्ग 16
417. रा. मानस अयोध्याकाण्ड -94
418. वा. रा. बालकाण्ड नवमसर्ग पूरा
419. रा. मानस बालकाण्ड़ 188/3
420. वा. रा. मानस बालकाण्ड़ षोडश : सर्ग – 11 से 14 तक ।
421. वा. रा. मानस बालकाण्ड़ षोड़श सर्ग -20
422. रा. मानस बालकाण्ड़ 188/3 तथा 189

423. वा.रा बालकाण्ड पंच्चंदशः सर्ग 28,29

424. रा. मानस. बालकाण्ड 186/1

425. वा. रा. बालकाण्ड पच्चास : सर्ग 11 तथा षट्पच्चाशः सर्ग् 23,24

426. वा. रा. बालकाण्ड सप्तविंश : सर्ग पूरा

427. रा. मानस बालकाण्ड़ 209

428. वा. रा. बालकाण्ड़ त्रिचत्वारिंश : सर्ग – 3

429. वा. रा. बालकाण्ड़ पच्चत्वारिंश : सर्ग – 26

430. वा. रा. उत्तरकाण्ड षोड्शः सर्ग 36,37,44

431. रा. मानस बालकाण्ड़ 55/4

432. रा. मानस बालकाण्ड़ दोहा 67 से 102 तक ।

433. वा. रा. बालकाण्ड़ सप्तत्रिंश सर्ग – 29

434. वा. रा. युद्धकाण्ड द्वायधिक शततम : सर्ग-7

435. रा. मानस लंकाकाण्ड 88/1

436. वाल्मीकि रामायण शाप और वरदान- श्रीपाद रघुनाथ भिंडे अनुवादक मुरलीधर जगताप पृ. 270

437. वा. रा. बालकाण्ड अष्टचत्वारिंश : सर्ग 27 से 32 तक ।

438. वा. रा. बालकाण्ड एकपच्चाश : सर्ग 7

439. रामकथा – कामिलबुल्के पृ- 248

440. वा.रा. बालकाण्ड षट्सप्ततितमः सर्ग 17 तथा रा. मानस बालकाण्ड 284/4

441. रामायण रहस्य अभिलाषदास- पृ. 116

442. वा. रा. अयोध्याकाण्ड एकपच्चायशः सर्ग -4

443. वा. रा. अयोध्याकाण्ड़ चतुःपच्चाशः सर्ग – 33

444. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 106/1

445. वा. रा. अयोध्याकाण्ड़ एकनवतितम सर्ग 1 से 83 तक तथा रा. मानस अयोध्याकाण्ड़ 214/1

446. वा. रा. अरण्यकाण्ड चतुर्थ सर्ग – 16

447. रा. मानस अरण्यकाण्ड 6ख/2

448. वा. रा. अरण्यकाण्ड पंच्चासः सर्ग-29

449. रा. मानस अरण्यकाण्ड 8/1

450. रा. मानस अरण्यकाण्ड 9/8

451. वा. रा. उत्तरकाण्ड सत्पचाशः सर्ग : 4,5

452. ऋग्वेद 7/33/13

453. वा. रा. अयोध्याकाण्ड़ द्वादशः सर्ग - 10

454. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़ 11/5

455. वा. रा. युद्धकाण्ड पच्चाधिक : शततम : सर्ग 3,4

456. धारावाहिक रामायण के अरण्यकाण्ड के अन्त में रामानन्द सागर की 'अरण्यकाण्ड काण्ड की टिप्पणी' से उदधृत ।

457. वा. रा. अरण्यकाण्ड सप्तषष्टितम सर्ग : 7,8,9,

458. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़ 28/5

459. वा. रा. अरण्यकाण्ड सप्तषष्टितम सर्ग : 24

460. हिन्दी रामकाव्य का स्वरुप और विकास- प्रेमचन्द्र महेश्वरी- पृ. 113

461. वा.रा. अरण्यकाण्ड़ एकोनिणिंशः सर्ग – 20

462. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़ 18/2

463. वा. रा. अरण्यकाण्ड़ एकत्रिंश :सर्ग – 26,27

464. वा. रा. बालकाण्ड़ त्रिंश : सग 16 से 18 तक

465. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़ 209/2

466. रा. मानस अरण्यकाण्ड दोहा 25 के बाद का छन्द

467. वा. रा. युद्धकाण्ड द्वाविंश सर्ग – 73

468. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़ 2/4

469. वाल्मीकि रामायण शाप और वरदान- श्रीपाद रघुनाथ भिंडे पृ. 319

470. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड षट्षष्टितम सर्ग – 33,34

471. वा.रा. षट्षष्टितम सर्ग पूरा तथा रा.मानस किष्किन्धाकाण्ड 29/3

472. रा. मानस लंकाकाण्ड़ – 73/4

473. वा.रा. युद्धकाण्ड सप्तपच्चाश : सर्ग – 15

474. श्री राम रसेन्द्र चन्द्रिका- एकादस मयूख – पृ. 406 – कवि नारणदानजी सुरु
475. तुलसीसाहित्य में चरित्र सम्बन्धी अवधारणा- डॉ. रेणु महेश्वरी पृ.157
476. वा.रा. युद्धकाण्ड़ त्रिषष्टितम सर्ग 7 से लेकर 15 तक तथा 20
477. वा.रा. युद्धकाण्ड षट्षष्टितम सर्ग 13 से 17 तक ।
478. रा. मानस लंकाकाण्ड़ 66/3
479. वाल्मीकि रामायण और रामचरित मानस का तुलनात्मक अध्ययन- डॉ. विद्यामिश्र पृ.529
480. वा. रा. युद्धकाण्ड़ विंशः सर्ग : 13
481. रा. मानस. सुन्दरकाण्ड- 51
482. वा. रा. उत्तरकाण्ड पच्चमः सर्ग : 5,6
483. वा. रा. युद्धकाण्ड़ पच्चविंश : सर्ग : 34
484. रा. मानस लंकाकाण्ड 48 क
485. वा. रा. युद्धकाण्ड पच्चाशः सर्ग :51
486. रा. मानस लंकाकाण्ड 73/5
487. वा. रा. बालकाण्ड षट्त्रिंश : सर्ग – 26
488. रा. मानस बालकाण्ड 73/1,2,3,4
489. वा.रा. बालकाण्ड पच्चविशंः सर्ग : 10 से 13 तक
490. वा. रा. बालकाण्ड षड़विंशः सर्ग - 24,25
491. वा.रा. बालकाण्ड एक सप्ततितम सर्ग 21,22
492. रा. मानस बालकाण्ड छन्द 2,3
493. वा. रा. बालकाण्ड द्विसप्ततितम : सग 4,5,6
494. वा. रा. बालकाण्ड़ द्विसप्ततितम : सर्ग 4,5,6
495. वाल्मीकि रामायण शाप और वरदान- श्रीपाद रघुनाथ भिंडे- पृ. 254
496. वा. रा. अयोध्याकाण्ड सप्तदशाधिक शततमः सर्ग 9,10,11
497. वा. रा. अरण्यकाण्ड चतुः सप्ततितमः सर्ग : 35
498. रा. मानस अरण्यकाण्ड 33/3
499. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड़ एकपश्चास सर्ग – 16
500. रा. मानस किष्किन्धाकाण्ड़ 24/4

501. वा. रा. सुन्दरकाण्ड प्रथम सर्ग 148, 149

502. वा.रा. सुन्दरकाण्ड तृतीयासर्ग -20

503. रा. मानस सुन्दरकाण्ड 3/1

504. वा. रा. सुन्दरकाण्ड़ सप्तविंशः सर्ग 9 से 41 तक ।

505. रा. मानस सुन्दरकाण्ड़ 10/ 2,3,4,

<u>**अध्याय – ६**</u>

श्रीमद् वाल्मीकीय 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के चरित्रों के माध्यम से ध्वनित संदेश

- प्रस्तावना
- आदर्श राजनीति
- पितृत्व
- आदर्श मातृत्व
- पुत्र
- आदर्श पति
- पातिव्रत्य धर्म
- पुत्रवधू
- पति परायण पत्नी
- भ्रातृत्व
- देवर भाभी
- आदर्श सचिव और सेवक
- मित्रता
- प्रेम भावना
- कर्ममय जीवन
- धैर्यता
- मर्यादावाद
- अपूर्व सहनशीलता
- छुआछुत पर गहरा आघात
- आसक्ति का त्याग
- शील की प्रधानता
- गुरू-शिष्य सम्बन्ध
- असत् वृत्ति का पराभव
- निष्कर्ष
- संदर्भ सूची

प्रस्तावना :

‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ हमारे देश के राष्ट्रीय महाकाव्य हैं । इन दोनों ग्रन्थों में वैयक्ति, पारिवारिक तथा सामाजिक आदर्शों को भव्य रूप में प्रकट किया गया है । इन दोनों महाकाव्यों में ऐसा जीवन संदेश दिया गया है कि उनको एक बार पढ़ने से मन नहीं भरता परंतु बार-बार उनका पारायण करने की प्रेरणा मिलती है और उन आदर्शों की कसौटी पर अपने वर्तमान को परखकर हम भविष्य का मार्ग निर्धारित करते हैं ।

‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ दोनों ही चरित्र प्रधान काव्य हैं । चरित्र काव्य की यह विशेषता रहती है कि उसमें कार्यकलाप गौण रहता है । परंतु उसमें छिपी भावना और आदर्श की मुख्यता रहती है । अतः इन दोनों ग्रन्थों का लक्ष्य एक ही प्रतीत होता है और वह है धर्म का आदर्श रूप प्रस्तुत करना । कवि की महानता उनके चरित्रों के निर्माण से आंकी जाती है । जबतक उनके चरित्रो का स्मरण बना रहेगा तब-तक उन पात्रों की महानता कायम रहेगी । इस दृष्टि से महर्षि वाल्मीकि तथा गोस्वामी तुलसीदास महान कवि हैं । दोनों महाकवियों ने ऐसे आदर्श चरित्र प्रस्तुत किये हैं जो आज भी संसार में अपने आदर्श को प्रस्तुत करते हैं । दोनों महाकाव्यों के दशरथ-पुत्र प्रेम तथा सत्य की खातिर अपनी सबसे प्रिय वस्तु की भी बलि चढ़ा देते हैं । पिता के वचनों को सार्थक करने के लिये राम राजसिंहासन को छोड़कर चौदए वर्ष के लिये वन चले जाते हैं । भरत और लक्ष्मण के द्वारा भ्रातृत्व के आदर्श को दोनों कवियों ने प्रस्तुत किया हैं, जो आज के बंधु विरोधी युग में एक नया मार्ग प्रशस्त करता है । कौशल्या में प्रेममयी माता की छबि का दर्शन होता है तो कैकेयी भी जगत के सामने एक आदर्श प्रस्तुत करती है कि यदि कोई अपराध हो जाये तो उसका सच्चे दिल से पश्चाताप कर लेने पर हम पावन हो सकते हैं । सीता के रूप में वाल्मीकि और तुलसीदास ने जो आदर्श नारी की कल्पना की है, उस नारीत्व की खोज में हम आज भी भटक रहे हैं । दोनों महाकवियों ने सुग्रीव, निषादराज आदि के द्वारा आदर्श मित्रता का भी संदेश

ध्वनित किया है । इसी प्रकार केवट, शबरी, किरात आदि के चित्रण भी बड़ी मार्मिकता से किया गया है, जो आज के आधुनिक युग में भी हमारे लिये कोई न कोई संदेश अवश्य देते रहते हैं । निष्कर्ष में 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के प्रमुख या गौण सभी पात्र अपने युगानुरूप कोई न कोई संदेश ध्वनित करते हैं । अतः अब हम इस अध्याय मे 'रामायण' और रामचरित मानस' के चरित्रो के माध्यम से ध्वनित संदेश को विस्तार से देखेंगे ।

6.1 आदर्श राजनीति :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में महाराज दशरथ तथा राम के शासनकाल को चित्रित करते हुए दोनों महाकवियों ने आदर्श राजनीति की व्याख्या की है । 'रामायण' के बालकाण्ड में महाराज दशरथ के शासन काल मे अयोध्या की सुख, संपति तथा उनके मंत्रीगण की विस्तृत चर्चा की गई है । राजा को चाहिए कि उनके शासन काल मे सामान्य से सामान्य जन को महत्व मिले और उसकी सुख समृद्धि का ध्यान रखे । महाराज दशरथ अश्वमेध यज्ञ में चारों वर्णों के लोगों को आमंत्रण देते हुए उनका भव्यातिभव्य स्वागत करते हैं ।[1] राजा सर्वशक्तिमान होने पर भी उनको स्वतंत्र निर्णय नहीं लेना चाहिए । अतः महाराज दशरथ 'रामायण' में राम का राज्याभिषेक करने से पहले ब्राह्मण, सेनापति, नगर और जनपद के प्रधान --प्रधान व्यक्तियों को बुलाकर अपनी इच्छा को प्रकट करते है । 'मानस' में भी महाराज दशरथ देश और प्रजा के हित में राम-राज्याभिषेक की अपनी ईच्छा गुरु तथा मंत्रियों के सामने रखते है।[2] 'रामायण' में आदर्श राजा के लक्षणों को देते हुए राम कहते हैं कि राजा को देवता, पितरों, भृत्यों, गुरुजनों, वृद्ध, वैद्यो और ब्राह्मणों का सम्मान करना चाहिए । सामान्य जनों के साथ राजा का धार्मिक व्यवहार होना चाहिए । लोगों के बीच रहते हुए उनके सुख दुःख को देखना राजा का कर्तव्य होता है तथा प्रजा के लिये निजी सुखों का त्याग कर देना चाहिए । 'मानस' में भी कहा गया है कि राजा को अपने धर्म का

पालन करना चाहिए । यदि यह साधु, सुजान और सुशील हो तो वह ईश्वर का अंश माना जाता है ।[3] राजा को नीति का पालन करना चाहिए, नीतिमान राजा का राज्य ही सुख समृद्धि से परिपूर्ण होता है जैसा कि राम का राज्य था ।[4]

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में आदर्श राजा की भाँति आदर्श मंत्रियों का संदेश भी निःसृत होता है । 'रामायण' में भरत को राजनीति का उपदेश देते हुए राम कहते हैं कि जो सुयोग्य मंत्रणा दे सके, मंत्रणा को गुप्त रख सकें तथा जिसका व्यवहार सद्‌भाव से भरा हुआ हो ऐसे मनुष्य को मंत्री पद पर नियुक्त करना चाहिए- क्योंकि अच्छी मंत्रणा करने वाला यदि मंत्रीगण होगा तभी राजा सफल हो सकता है।[5] 'रामचरित मानस' में भी मंत्रियों का योग्य, शान्त, धीमान, निर्भय तथा विश्वास पात्र होना बताया है । इसके विपरित मंत्रीगण हाँ मे हाँ मिलने वाले चापलूस और कायर डरपोक होंगे तो राज्य और राजा नष्ट हो सकते हैं । क्योंकि ऐसे मंत्री कुमंत्रणा देते हैं और उनका अंत विनाश होता है । निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यो में से आदर्श राज्य, राजा तथा उनके मंत्रीगण का सुंदर चित्र खिंचा गया है ।

6.2 पितृत्व :-

दोनों महाकाव्यों में पितृत्व की पराकाष्ठा दिखाई देती है । फिर चाहे वह महाराज दशरथ हो या वाली हो अथवा महाअभिमानी रावण हो । आधुनिक युग में जहाँ माता-पिता अपने पुत्रों को उदर पोषण का ही पाठ पढ़ाते हैं, वहाँ सभी पुत्रो को प्राणों से भी अधिक प्यार करने वाले महाराज दशरथ मुनि कार्य सम्मन्नता के हेतु राम और लक्ष्मण को साथ भेजने के लिये तैयार हो जाते हैं । कैकेयी के द्वारा भरत के राज्याभिषक के साथ राम वनगमन का वर माँगे जाने पर सत्य प्रतिज्ञ दशरथ मूर्छित हो जाते हैं । जिस प्रकार जल में अनेक जीव घर बनाकर रहते हैं, परन्तु उसके प्रति सच्चा स्नेह केवल मछली का ही होता है । वह उससे एक क्षण के लिये भी अलग हुई नहीं कि तड़प तड़प कर प्राण दे देती है । ठीक वैसे ही श्री दशरथ महाराज श्री रघुनाथजी के विरह मे विकलता पूर्वक प्राण त्याग करके अपने सत्य प्रेम को चरितार्थ

कर दते हैं । 'मानस' में लिखा है कि –

राम-राम कहि राम कहि राम राम कहि राम
तनु परिहरि रघुबर बिरहँ राउ गयउ सुरधाम ।[6]

पितृत्व की उत्कृष्ठ छबि जिस प्रकार महाराज दशरथ में देदिय्यमान है, उसी प्रकार बानरजाति के किष्किन्धा नरेश वाली में भी पुत्र प्रेम की पराकाष्ठा दिखाई देती है। श्री राम के सामने अपने उन्हीं भावों को प्रकट करते हुए वाली कहते हैं कि भगवन ! मुझे अपने लिये, तारा के लिये तथा बन्धु-बान्धवों के लिये भी इतना शोक नहीं होता जितना सुवर्ण का अंगद धारण करने वाले गुण सम्पन्न अंगद के लिये हो रहा है।[7] इसी प्रकार पितृभावना का दर्शन रावण के चरित्र में भी होता है । पुत्रों की तपस्या से प्रभावित तथा गर्विष्ठ होनेवाले रावण पुत्र शोक में इतने व्याकुल हो जाते हैं कि अपने प्राणों की भी चिंता किये बिना शत्रु सेना को तहस नहस कर देते हैं । निष्कर्ष में रामकथा के इन्हीं पात्रों ने पितृत्व का उच्च आदर्श हमारे सामने प्रकट किया है ।

6.3. आदर्श मातृत्व :-

राम आदि भाईयों की बाल लीला, कर्णवेध, उपवीत विवाहादि प्रसंगो के पश्चात् जब राम के वनगमन की लीला का अवसर आया तब माता कौशल्या का मातृत्व अपनी ऊँचाईयों को छूने लगता है । 'रामायण' में राम के साथ वन जाने के लिये कौशल्या छटपटाने लगती है, वह राम को कहती है कि जिस प्रकार बछिया के पीछे-पीछे धेनु जाती है वैसे मैं भी तुम्हारे पीछे पीछे चलूँगी ।[8] परंतु रामने इसको पतिधर्म से विपरित कहकर कौशल्या को समझा दिया । 'मानस' में भी वन जाते हुए राम को विदा करती हुई कौशल्या व्याकुल हो जाती है । धर्म और स्नेह दोनों ने उनकी बुद्धि को घिर लिया, न तो वह राम को रोक सकती है और न उनको, जाने की आज्ञा दे सकती है । परंतु अपने स्त्री धर्म को प्रधानता देती हुई कौशल्या राम को वन जाने की आज्ञा देती है । सारे जगत की माताओं को अपने सगे, सौतेले आदि पुत्रों के साथ कैसा प्रेम रखना चाहिए इसकी शिक्षा कौशल्या और सुमित्रा के चरित्रों से मिलती है । 'रामायण' में

भरत अपने को निदोर्ष दिखाने के लिये अनेक शपथें खाता है । परंतु 'मानस' में कौशल्या भरत को देखकर उसे मिलने के लिए दौडती है, पर चक्कर आ जाने से मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पहती है ।[9] भरत को अपने गोदी में बिठाकर उनको धैर्य बँधाती हुई कौशल्या में भरत के प्रति भी अपने सगे पुत्र सा प्रेम दिखाई देता है । सुमित्रा के चरित्र में भी अपने सगे पुत्र से अधिक सौत पुत्रों पर स्नेह दिखाई देता है । वन जाते हुए लक्ष्मण को उपदेश देती हुई - सुमित्रा कहती है कि है तात ! श्री जानकीजी ही तुम्हारी माता है और सब प्रकार के स्नेह रखनेवाले श्रीरामजी ही तुम्हारे पिता है । जहाँ श्री रामजी का निवास हो, वहीं तुम्हारे लिये अयोध्या है ।[10] अतः दोनों महाकाव्यों में कौशल्या आदि के चरित्रों में अपने पुत्र तथा सौतेले पुत्रों में कोई भी विभाजन रेखा खिंचे बिना निर्मल प्रम की सरिता बहाते हुये उच्च मातृत्व के दर्शन होते हैं ।

6.4 पुत्र :-

शास्त्रों में पुत्र को माता-पिता का तारक कहा गया है । पुत्र के लिये माता और पिता भगवद्-स्वरूप है, अतः दोनों महाकवियों ने माता पिता को महत्वपूर्ण पीठिका पर आसीन रखा है । माता-पिता की महत्ता को दिखाते हुए पद्मपुराण में कहा गया है कि 'माता सर्वतीर्थ मयी है और पिता सम्पूर्ण देवताओं का स्वरूप है, इसलिए सब प्रकार से यत्नपूर्वक माता पिता का पूजन करना चाहिए ।[11] तुलसीदास समकालीन पुत्रों में माता-पिता के प्रति का आदरभाव केवल अपने विवाह तक ही दिखाई देता था । विवाह के पश्चात् ससुराल वाले प्यारे हो जाते हैं और परिवार के व्यक्ति शत्रुवत प्रतीत होने लगते हैं । बराबर वहीं स्थिति आज भी बनी हुई है । अतः माता-पिता तथा पुत्रों के बीच मे जो खाई गहरी होती जा रही है, उसी खाई को आज हम राम आदि के पुत्रवत् आदर्शों के द्वारा भर सकते हैं । वनगमन के प्रसंग में माता-पिता की आज्ञा और उनकी भक्ति को राम अपने जीवन का लक्ष्य मानते है-

हितेन गुरुणा पित्रा कृतज्ञोन नृपेण च ।

नियुज्यमानो विस्त्रब्धः किं न कुर्यामहं प्रियम ।[12]

अर्थात् राजा मेरे हितैषी, गुरु, पिता और कृतज्ञ है । इनकी आज्ञा होने पर मैं इनका कौन-सा ऐसा प्रिय कार्य है, जिसे निशंक होकर न कर सकूँ ? 'मानस' में भी अपनी इसी बात को प्रकट करते हुए राम कहते हैं कि –

धन्य जन्यु जगतीतल तासू । पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासु ।
चारि पदारथ कर तल ताकें । प्रिय पितु मात, प्रान राम जाकें ।।[13]

अर्थात् इस पृथ्वी तल पर उसका जन्म धन्य है जिसका चरित्र सुनकर पिता को परम आनन्द हो, जिसको माता-पिता प्राणों के समान प्रिय है, चारों पदार्थ उसकी मुट्ठी में रहते हैं । चौदह वर्ष का वनवास देने वाली कैकेयी के प्रति भी राम के मन में काई दुःख नहीं है । कैकेयी की वन की बात का राम सहज ही स्वीकार करते हुए कहते हैं कि मैं केवल तुम्हारे कहने से ही इस राज्य को, प्राणों को, सीता को तथा सारी सम्पति को प्रसन्नता पूर्वक स्वयं ही छोड़ सकता हुँ। 'रामचरित मानस' में भी कैकेयी के द्वारा वचनों को माँगे जाने की बात सुनकर राम मुस्कराकर कहते हैं कि–

सुनु जननी सोइ सुतु बडभागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ।
तनय मातु पितु तोष निहारा । दुर्लभ जननि सकल संसारा ।।[14]

अर्थात् हे माता ! सुनो वही पुत्र बड़भागी है, जो पिता-माता के वचनों का अनुरागी है । माता-पिता को संतुष्ठ करनेवाला पुत्र हैं जननी ! सारे संसार में दुर्लभ है। पिता की आज्ञा का स्वीकार कर वन जाने वाले राम के चरित्र को तुलसीदास ने विविध उपमाओं को देकर संजोया है । जैसे-जैसे राम पिता की आज्ञा का पालन करते गये वैसे वैसे राम का चरित्र उज्जवल तथा व्यापक होता जाता है । जैसे कैकेयी के कहने पर सुमन्त राम को बुलाने के लिये उनके महल मे जाते हैं तब तुलसीदास ने राम के लिये 'दिनकर कुल टीका' [15] उपमा का प्रयोग किया । राम सुमन्त के साथ कैकेयी के भवन में चले तब उनके लिये दूसरी उपमा 'रघुकुल दीप हि'[16] तथा राम का कैकेयी भवन में प्रवेश हुआ तब राम के लिये तीसरी उपमा 'रघुबंस मनि'[17] और अंत में रामने वन में

जाना स्वीकारकर लिया तो तुलसीदास ने 'भानुकुल भानु'[18] की चौथी उपमा दी । अर्थात् दिनकर कुल टिका, रघुकुल दिपहि, रघुबंस मनि तथा भानुकुल भानु क्रमशः एक से बढ़कर एक देदिप्यमान है, अतः माता-पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करने वाले पुत्र की महानता इन्हीं उपमाओं की भांति क्रमशः बढ़ती जाती है । श्रीराम की भांति भरत लक्ष्मण तथा शुत्रध्न भी माता-पिता की आज्ञा के अधीन होते हुए आदर्श पुत्र के रूप में प्रकट होते हैं । निष्कर्ष मे वर्तमान काल में स्वच्छन्द विचरने वाले नयी पीढीं के युवकों जो मा-बाप को वृद्धाश्रम में भेज देते हैं या उनको दुःखी करने में कोई कसर नहीं छोड़ते उनके लिए राम एक आदर्श चरित्र के रूप में प्रकट होते हुए माता-पिता को भगवद् रूप में देखने का उपदेश देते हैं । माता-पिता के सुख के लिये वन में जाना तो ठीक है यदि प्राणों को भी न्यौछावर करना पडे तो कर देना चाहिए क्योंकि यही पुत्र का धर्म है ।

6.5 आदर्श पति :-

राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुध्न जिस प्रकार आदर्श पुत्र है, वैसे आदर्श पति भी है । पिता महाराज दशरथ को साढ़े तीन सौ पत्नियाँ होने का 'रामायण' मे वर्णन है।[19] परंतु राम पूरे जीवन पर्यंत एक ही पत्नीव्रता रहकर अपने युग में एक नये आदर्श की स्थापना करते हैं । पति-पत्नी समाज की वह नींव है, जिस पर पूरा समाज रूपी महल खड़ा रहता है, परंतु वर्तमान समय में पति-पत्नी के इस पवित्र रिश्ते पर मानों कोई काली छाया ने कब्जा कर लिया है । पति-पत्नी के इस पवित्र रिश्ते में अविश्वास, अभिमान, असंतोष, कुटिलता आदि भावों ने घर कर लिया है । परिणामतः उनका संसार निखरने के बजाय बिखरता है । अतः पति-पत्नी के पवित्र रिश्ते को कायम करने के लिये राम कथा के अनेक पात्र हमारे सामने सुखी दाम्पत्य जीवन का सुन्दर आदर्श उपस्थित करते हैं । सीताहरण के पश्चात् रोते बिलखते तथा व्याकुल राम की दशा का दोनों महाकवियों ने विस्तृत वर्णन करके उनको श्रेष्ठ पति के रूप में सिद्ध कर दिया है। 'रामायण'के उत्तरकाण्ड में सीता की अग्नि परीक्षा, के बाद वाल्मीकि ने पुनः वनवास के

प्रसंग को देते हुए राम के आदर्श पति के रूप को थोड़ा सा निर्बल कर दिया है । जबकि 'मानस' में तुलसीदास ने सीता पुनः वनवास के प्रसंग को छोड़ दिया है और राम को रावण विजय उपरांत अग्नि देव से सीता को मांगते हुए दिखलाकर उनके आदर्श पति रूप को पूर्ण से खिला दिया है । अतः राम का यहीं आदर्श पति का रूप आज के छिछुरे दाम्पत्य जीवन में नयी चेतना का संचार कर सकता है ।

6.6 पातिव्रत्य धर्म :-

यदि परिवार एक रथ है तो पति-पत्नी उसके पहिये । जिस प्रकार दोनों पहियों में किसी एक के नष्ट एवं विकृत होने पर रथ की गति असम्भव है, उसी प्रकार पति-पत्नी दोनों के बिना परिवार का रथ नहीं चलता । जिस प्रकार दोनों महाकाव्यों में राम ने पति के आदर्श रूप की स्थापना की है । इसी प्रकार सीता, कौशल्या सुमित्रा, मन्दोदरी आदि ने नारियों के लिए पातिव्रत्य धर्म के श्रेष्ठ आदर्श को प्रस्थापित किया है। महामुनि अत्रि की पत्नी अनसूयाजी ने सीता को नारी धर्म की शिक्षा देते हुए पति सेवा को नारी के लिये मोक्ष साधन कहा है, साथ ही यह भी कहा है कि पति का अपमान करनेवाली नारी जन्म-जन्मातंर तक कष्ट भोगती हुई, नरक गामिनी होती है । [20] पति चाहे कैसा भी क्यों न हो, पतिव्रता, स्त्रियो के लिये वह देवता के समान होना चाहिए । इसी बात को प्रकट करने हुए अनसुया 'रामायण' में सीता को कहती है कि –

दुःशीलः कामवृत्तो वा धनैर्वा परिवर्जितः ।
स्त्रीणामार्यस्वभावनां परमं देवतं पति : ।।[20A]

अर्थात् पति बूरे स्वभाव का , मनमाना बर्ताव करनेवाला अथवा धनहीन क्यों न हो वह उत्तम स्वभाववाली नारियों के लिये श्रेष्ठ देवता के समान है । रामवनगमन के समय वन में आने के लिये तैयार हुई कौशल्या को पातिव्रत्य धर्म का उपदेश देते हुए राम कहते है कि "शुश्रूषा क्रियतां तावत् स हि धर्मः सनातन ।। [21] अर्थात् पति की सेवा ही स्त्री के लिये सनातन धर्म है, कहकर उनको समझा देते हैं । 'रामचरित मानस' में भी कौशल्या पुत्र प्रेम के आगे पति धर्म को श्रेष्ठ मानती हुई राम को वन जाने की आज्ञा दे

देती है –

बपुरि समुझि तिय धरमु सयानी । रामु भरतु दोड सुत सम जानी ।
तात जाऊँ बलि कीन्हेहु नीका । पिता आयसु सब धरमक टीका ।।[22]

अर्थात् बुद्धिमति कौशल्याजी स्त्री धर्म (पातिव्रत धर्म) को समझकर और राम तथा भरत दोनों पुत्रों को समान जानकर कहती है कि तुमने अच्छा किया । पिता की आज्ञा का पालन करना ही सब धर्मों का शिरोमणि धर्म है । दोनों महाकाव्यों में सीता को पातिप्रत्य धर्म की शिरोमणि कहा गया है । अपने इसी धर्म की ताकत पर उन पर छाये संकट के भयानक बादलों को वह विर्दिण कर देती है । वनमें राम के साथ जाने की विनंति करती हुई सीता यहाँ तक कह देती है कि यदि आप मुझे त्याग कर वन चले जायेंगे तो मैं आज ही विष पी लूँगी, कयोंकि आप के बिना मेरा जीवित रहना सम्भव नहीं है । सीता के दृढ पातिव्रत्य के कारण ही राम उसे वन में साथ चलने की आज्ञा दे देते हैं । लंका में भी सीता रावण के प्रलोभनों और प्रणय निवेदनों को ठुकराकर राम की ही शक्ति का गुणगान करती है । 'रामायण' में रावण जिस समय राम को माया से निर्मित कटा हुआ सिर सीता के समक्ष प्रस्तुत करता है, उस समय सीता उससे कहती है कि 'रावण मुझे भी श्री राम के शव के ऊपर रखकर मेरा वध कर डालो, इस प्रकार पति को पत्नी से मिला दो । इस प्रकार पति की मृत्यु के समाचार सुनकर सीता पतिव्रता स्त्री के समान अपना देह त्यागने के लिए तैयार हो जाती है। उनके इसी पातिव्रत्य के कारण ही हनुमानजी अशोकवाटिका में उन्हें देखकर समझ जाते हैं कि यही ंसीता है । 'रामायण' में लोकापवाद से बचने के लिए जब राम ने सीता की अग्नि परीक्षा माँगी तब सीता अग्नि परीक्षा देते हुए अग्नि में प्रवेश कर जाती है । उस समय खुद अग्नि देव सीता की पतिव्रता का प्रमाण देते हुए कहते हैं कि –

अबवीत तु तदा रामे साक्षी लोकस्य पावकः
एषा ते राम वैदेही पापमस्या न विद्यते ।[23]

अर्थात् उस समय लोक साक्षी अग्नि ने श्री राम से कहा –'श्री राम !यह आपकी

धर्म पत्नी विदेह राजकुमारी सीता है। इसमें कोई पाप या दोष नहीं है । उतरकाण्ड़ में श्री सीता अपने पातिव्रत्य की परीक्षा देती हुई कहती है कि यदि मैं श्री राम के सिवा दूसरे किसी पुरुष का मन से चिन्तन भी नहीं करती यदि यह सत्य है तो भगवती मुझे अपनी गोद मे स्थान दे [23A] और पृथ्वी देवी के गोद में बैठकर सीता रसातल में समा जाती है । 'रामचरितमानस' में सीता के पतिव्रत्य धर्म को लेकर अनसुया कहती है कि तुम्हारा नाम ही लेकर स्त्रियाँ पतिव्रता धर्म का पालन करेगी । 'मानस' में सीता अपने पतिव्रत्य धर्म पर दृढ है । रावण उसे शाम, दाम, भेद और भय आदि दिखाता है । रावण उसको लालच भी देता है कि यदि तुम मेरी पत्नी बन जाओ तो तुम्हें लंका की पटरानी बना दूँगा। [24] परंतु रावण के उस वैभवादि को सीता तिनके के समान मानती हुई अपने पातिव्रत्य धर्म पर दृढ़ रहती है। इस प्रकार दोनों महाकाव्यों में सुमित्रा, मन्दोदरी तारा आदि स्त्रियो का पतिव्रता के रूप में चित्रण हुआ है । वर्तमान कालीन समय में जहाँ पति-पत्नी के बीच अनादर की भावना फैली हुई है वहाँ सीता जैसे चरित्र अपने पातिव्रत्य धर्म को दिखाते हुए 'पति ही परमेश्वर' की शिक्षा देते हैं ।

6.7 पुत्रवधू :-

आधुनिक युग में पुत्रवधू और सास-श्वसुर का जहाँ विकृत चित्रण हो रहा है, वहाँ 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में सीता, उर्मिला आदि दशरथ परिवार की पुत्रवधूएँ अपना उच्चतम आदर्श स्थापित करती हैं । विवाह के पश्चात् सीता अपने सासोंओं को आदर देती है, इसी प्रकार सासें भी सीता को विशेष प्रेम करती है । सीता के शील तथा सद्भाव भरे व्यवहार से महाराज दशरथ भी उससे विशेष स्नेह करते हैं । 'रामायण' में महाराज दशरथ वन जाती हुई अपनी पुत्रवधू सीता को पहनने योग्य बहुमुल्य वस्त्र तथा आभुषण देते हुए अपने विशेष स्नेह को प्रकट करते है ।[25] अपने विनम्रता भरे व्यवहार से सीता ने अपनी सास के दिल को भी जित लिया है । मन्दाकिनी के तट पर कौशल्या को जब सीता मिलती है उस समय कौशल्या अपनी पुत्रवधू-सीता को पुत्रीवत् प्यार करती हुई गले लगाती है ।[26] वन में दर दर भटकती दुःखी अपनी पुत्रवधू सीता को

देखकर वे विलाप करने लगती है।[27] रामचरित मानस’ में तुलसीदास ने सीता के पुत्रवधू रूप को अधिकतः उभारा है । महाराज दशरथ विवाह के पश्चात् सीता को जब घर ले आते हैं तब सीता का ध्यान रखने के लिए कौशल्या भी सर्वगुण-सम्पन्न अपनी प्यारी पुत्रवधू को वन भेजना नहीं चाहती । चित्रकूट मे महारानी सुनयना सीता को अपने साथ डेरे पर ले जाती है । उस समय अधिक देरी हो जाने से सीता मन ही मन संकुचा रही है कि मुझे सासोंओं की सेवा छोड़कर इस प्रकार माँ की शिबिर में नहीं रहना चाहिए । सुनयना ने जब सीता के इस भाव को समझ लिया तो तुरंत उसको वहॉ से विदा कर दिया।[28]

अतः अपनी सासों की सेवा के लिये अपने माता-पिता के प्रेम का भी सादर अस्वीकार करके सीता आदर्श बहु के रूप में प्रकट होती है । निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों में सीता के चरित्र में आदर्श पुत्रवधू का दर्शन होता है, जो आधुनिक युगीन पढ़ी-लिखी छीछुरे स्वभाव वाली औरतों के लिए एक सुंदर आदर्श को प्रकट करती है।

6.8 पतिपरायण पत्नी :-

‘रामायण’ ओर ‘रामचरित मानस’ दोनों महाकाव्यों में कौशल्या, सुमित्रा, सीता, अनसुया, मन्दोदरी तथा तारा आदि नारी चरित्रों के द्वारा पतिपरायणता का उत्कृष्ट आदर्श स्थापित हुआ है । कौशल्या अपने शील ओर व्यवहार से अपने पति का दिल जीत लेती है । वह अपने पति दशरथ की दासी सखी, पत्नी बनकर उनकी नित्य सेवा करती रहती है । राम के वनगमन से दुःखी होकर कौशल्या महाराज दशरथ को कटुशब्दों में उपालम्भ देती हैं और उन्हें फटकारती भी है । परंतु अपनी भूल को स्वीकारते हुए महाराज जब उनकी दो हाथ जोड़कर क्षमा माँगते है, तब कौशल्या अपने पातिव्रत्य धर्म को याद करके शांत हो जाती है ।[29] जबकि ‘मानस’ में तुलसीदास ने कौशल्या को महाराज दशरथ से कहीं भी असंतुष्ठ नहीं दिखाया । राम वनगमन से दुःखी महाराज को सान्तवना देती हुई कौशल्या उनको सम्भाल लेती है । पतिव्रता धर्म का उसे पूरा ज्ञान है इसीलिए वे वन जाती हुई सीता को पतिव्रता धर्म का उपदेश देती

है । कौशल्या की भांति सीता में भी श्रेष्ठ पतिव्रत धर्म का दर्शन होता है । सीता सदैव अपने पति के चरणों में रहना चाहती है । वन जाने की तैयारी करते हुए राम से सीता कहती है कि –

न पिता नात्मजोवात्मा न माता न सखी जन : ।

इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा ।।[30]

अर्थात नारियों के लिये इसलोक और परलोक में एक मात्र पति ही सदा आश्रय देनेवाला है । पिता, पुत्र, माता सखियॉं तथा अपना यह शरीर भी उसका सच्चा सहायक नहीं है । 'मानस' में अत्रि पत्नी अनसुया ने सीता को पतिव्रता धर्म का उपदेश देने के पश्चात् यहाँ तक कह दिया कि –

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करिहिं ।

तोहि प्रानप्रिय राम कहिउॅ कथा संसार हित ।।[31]

अर्थात् हे सीता । सुनो तुम्हारा तो नाम ही ले-लेकर स्त्रियॉं पाति-व्रत धर्म का पालन करेंगी । तुम्हें तो श्री राम जी प्राणों के समाने प्रिय है, यह पातिव्रत धर्म की कथा तो मैंने संसार के हित के लिये कहीं है । वन के कहरों को बताते हुए राम सीता को वन आने के लिए रोकते हैं, उम समय पतिव्रता स्त्री होने से अपना निर्णय बताती हुई वह राम से कहती है कि यदि आप इस प्रकार दुःख में पड़ी हुई मुझ सेविका को अपने साथ वन में ले जाना नहीं चाहते है तो मैं मृत्यु के लिये विष खा लूँगी, आग में कुद पडूँगी अथवा जल में डूब जाऊँगी ।[32] 'मानस' में भी सीता अपने पति श्रीराम के साथ वन में जाकर एक सेविका की भांति उनकी सर्वप्रकार से सेवा करना चाहती है । वह कहती भी है कि मैं आपको मार्ग में चलने से होनेवाली सारी थकावट को दूर कर दूँगी, आपके पैर धोकर पेडों की छाया में बैठकर मन में प्रसन्न होकर हवा करुँगी । समतल भूमि पर घास और पेडों के पत्ते बिछाकर यह दासी रात भर आपके चरण दबायेगी ।[33] सीता को अपने पति श्री राम की शक्ति पर पूरा भरोसा है, जिसको प्रकट करती हुई वह कहती हैं कि-

को प्रभु संग मोहि चितवन हारा । सिंधबधुहि जिमि ससक सिआरा ।।[34]

महाभयानक रावण जैसे राक्षस से डरे बिना तथा उनके वैभव पर मोहित हुए बिना अनजान प्रदेश की अशोक वाटिका में राक्षसियों से धिरी सीता अपने पातिव्रत्य धर्म के द्वारा आये उन सभी संकटों को मिटा देती है । उसके इसी पतिव्रता धर्म की प्रशंसा राक्षसी त्रिजटा भी करती हुइ कहती है कि तुम्हारा शील स्वभाव तुम्हारे निर्मल चरित्र के कारण बड़ा सुख दायक जान पड़ता है । मन्दोदरी भी सीता के पतिव्रत धर्म के पालन से उस पर प्रभावित है । 'रामायण' में तो सीता अग्नि में प्रवेश करके अपने पतिव्रता धर्म की परीक्षा देती है । दोनों महाकवियों ने सीता की ही भाँति अनसुया के पतिव्रत धर्म को सरिता के उदगमस्थान की भाँति चित्रित किया हे । इसी प्रकार सुमित्रा मन्दोदरी तथा तारा आदि नारियो को भी पतिव्रता धर्म पालिता के रूप में चित्रित करके दोनो महाकवियों ने नारियों के आदर्श पति परायणा पत्नी के रूप को प्रकट किया है ।

6.9 भ्रातृत्व :-

भ्रातृत्व की पुष्टि भाईयों के परस्पर प्रेम, त्याग ओर विश्वास से होती है । भातृद्रोह पारिवारिक एवं कौटुम्बिक विनाश का कारण है । जिस परिवार में भोग के लिये भाई-भाई में संघर्ष है, स्वार्थ पूर्ति के लिए जहाँ तक एक भाई दूसरे का धातक बन सकता है, जहाँ प्रत्येक अपने उचित अनुचित अधिकारों के प्रति सतत जागरुक किन्तु कर्तव्यो के प्रति नितान्त उदासीन है वह परिवार निश्चय ही सरिता के कगार पर स्थित वृक्ष की भांति आसन्न पतन की प्रतीक्षा कर रहा है ।[35] आधुनिक युग में जमीन और रुपयों के लिये एक भाई दूसरे भाई का बिना झिझक गला काट देता है। पत्नी के आते ही भाईयों के बीच सम्पति का बँटवारा शुरु हो जाता है । मकानों में दीवारों को बनाकर विभाजक रेखा खिंच ली जाती है । बाल्यावस्था के प्रेम भरे मीठे संबंधों में वैमनस्य की भावना बढ़ती जाती हे । भाई भाई के बीच की ऐसी विषम परिस्थिति में 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में राम, लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुध्न जेसे चरित्रों के द्वारा हमारे सामने भ्रातृत्व का एक सुंदर आदर्श प्रस्तुत किया है । दोनों महाकवियो ने भरत और लक्ष्मण

के चरित्र में भ्रातृत्व का चरमोत्कर्ष दिखाया है। भरत महान त्यागी और तपस्वी के रूप में चित्रित किये गये हैं । वे बड़े भाई के प्रेम पर एक बड़े साम्राज्य को ठुकरा देते हैं और यदि उसे स्वीकार भी करते हैं तो मात्र एक सेवक के रूप में । राज्य को वे राम की सम्पति मानते हुए चौदह वर्ष तक सभी प्रयत्नों के द्वारा उनको सुरक्षित रखते है । ननिहाल से लौटे हुए भरत को कैकेयी का षड्यंत्र जब समझ में आया तब वह अपनी माता कैकेयी को पापिनी, कुलधातिनी क्रूरहृदया, पतिधातिनी, दुराचारिणी कहते हुए उनका त्याग कर देते हैं।[36] माता कौशल्या के सम्मुख अनेक शपथें खाकर भरत अपने निर्दोष भ्रातृप्रेम को दिखाते हैं । [37] राम यदि वल्कल वस्त्र पहने, जटा बाँधे तथा कंदमूल का आहार करके वनवास की अवधी पूरी कर रहे हैं, तो भरत भी राम की चरण पादुकाओं को आसनारूढ़ करके रामकी ही भांति वेष बनाकर नन्दिग्राम में निवास करते हैं । भरत की ही भांति लक्ष्मण के चरित्र में भी भ्रातृत्व का ऊँचा आदर्श दिखाई देता है। इनका चरित्र राम के ही समान व्यापक है । वे छाया की भांति राम के साथ रहते हैं। वे उद्धत, निर्भय, साहसी, स्पष्टवक्ता, दृढ़, कर्मठ और राम भक्त है । 'रामायण' में भरत के राज्याभिषेक तथा राम को चौदह वर्ष के वनवास के समाचार सुनकर लक्ष्मण भड़क उठते हैं । वे पूरी अयोध्या और महाराज दशरथ के सामने विद्रोह करने के लिये तैयार हो उठते हैं ।[38] परंतु राम के समझाने पर वे चुप हो जाते हैं और राम के साथ वन जाने के लिये तैयार हो जाते है । राम की छाया बनकर सदैव उनके सुख के लिये अपने सुखों का त्याग करने वाले लक्ष्मण में भ्रातृत्व का श्रेष्ठ आदर्श दिखाई देता है । राम के हृदय में भी अपने भाईयों के प्रति गहरा प्रेम है । कोप भवन में कैकेयी के द्वारा भरत के राज्याभिषेक का वचन माँगे जाने पर राम मन ही मन हर्षित होते हैं और सोचते हैं कि आज विधि सर्वप्रकार से मेरे अनुकुल हो गयी –

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू । बिधि सब बिधिमोहि सम्मुख आजू ।[39]

चित्रकूट में सेना-समेत भरत को आते देख लक्ष्मण क्रोधित हो जाते हैं और उनको मारने के लिये तत्पर हो उठते हैं । उस समय लक्ष्मण को धैर्य देते हुए राम भरत की भ्रातृ भक्ति पर अपना विश्वास व्यक्त करते हैं, इतना ही नहीं अपना भाई ही

अपना एक मात्र सुख है दिखाते हुए राम कहते हैं कि –

यद बिना भरतं त्वां च शत्रुध्नं वापि मानद ।
भवेन्मय सुखं किंचिद भस्म तत् कुरुता शिखी ।[40]

अर्थात् मानद ! भरत को, तुमको और शत्रुध्न को छोड़कर यदि मुझे कोई सुख मिलता हो तो उसे अग्नि देव जलाकर भस्म कर डाले । निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यो में भ्रातृत्व के लिये जिस आदर्श की स्थापना की गई है, उसी आदर्श के अनुकूल जीवन यापन किया जाये तो सम्भवतः आज भाई-भाई के बीच में पड़ी वैमनस्य की खाई को भर पायेंगे और एक सुंदर तथा श्रेष्ठ भ्रातृत्व से भरे परिवारों को देख पायेंगे ।

6.10 देवर भाभी :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' के चरित्रों के माध्यम से दोनों महाकवियों ने देवर-भाभी के पवित्र रिश्ते को प्रकट किया है । देवर के लिए भाई-भाभी पिता और माता के समान है । 'मानस' में सुमित्रा लक्ष्मण को भी यही उपदेश देती है –

तात तुम्हारि मातु वैदेही । पिता रामु सब भांति सनेही ।।[41]

अर्थात् है तात ! जानकीजी तुम्हारी माता है और सब प्रकार से स्नेह करनेवाले श्री रामचन्द्रजी तुम्हारे पिता है । स्वर्ण मृग का छद्म-वेश धारण करके आये हुए मारीच को मारने गये राम संकट में है जानकर सीता उनकी सहायता के लिये लक्ष्मण को वहाँ जाने का आदेश देती है । परंतु श्रीराम की शक्ति पर पूर्ण विश्वास रखनेवाले लक्ष्मण इस प्रकार सीता को निर्जन वन में अकेली छोड़ना उचित नहीं मानते । लक्ष्मण के द्वारा इस प्रकार अवज्ञा करने पर सीता उसे कठोर शब्दों से फटकारती है । परंतु लक्ष्मण ने भाभी की डाँट इस प्रकार सह ली जिस प्रकार माँ की डाँट एक बेटा चूपचाप सह लेता है । 'रामायण' में भी जब राम सीता के आभूषणों को पहचानने के लिये लक्ष्मण से कहते हैं उस समय देवर भाभी के रिश्ते की पवित्रता की ऊँचाईयो को छुते हुए लक्ष्मण कहते हैं कि –

नाहं जानामि केयूरं नाहं जानामि कुण्डले ।

नूपुरे त्वभि जानामि नित्यं पादाभिवन्तदनात् ।। [42]

अर्थात् मैं इन बाजूबंदो को तो नहीं जानता और न इन कुण्डलों को ही समझ पाता हूँ कि किसके हैं, परंतु प्रतिदिन भाभी के चरणो में प्रणाम करने के कारण मैं इन दोनों नूपूरो को अवश्य पहचानता हूँ । सीता भी अपनी रक्षा के लिये शक्ति में लक्ष्मण को राम के समान मानती है परंतु दुलार देने में लक्ष्मण को पुत्र ही मानती है। अतः दोनों महाकाव्यो में देवर-भाभी के पवित्र रिश्ते का चित्रण हुआ है ।

6.11 आदर्श सचिव और सेवक :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में हनुंमानजी के चरित्र से आदर्श सचिव ओर आदर्श सेवकाई का बोध होता है । सचिव कैसा और उसका धर्म क्या होना चाहिए इसका उत्तम उदाहरण हमें हनुमानजी के चरित्र में से मिलता है । महाबलि वाली के कारण सुग्रीव को त्रिलोक में कहीं भी स्थान नहीं मिलता था । ऐसे निराश्रित व्यक्ति की सहायता करके हनुमानजी ने वाली से बैर मोल लिया जो सामान्य बात नहीं है । इतना ही नहीं हनुमानजी ने श्री राम से सुग्रीव की मित्रता करवाके उसको निर्भय बना दिया । राम की सहायता से सुग्रीव ने अपना खोया हुआ किष्किन्धा पुनः प्राप्त करवा के मंत्री की आदर्श नीति को कार्यरूप में परिणत कर दिया ।

सेवक में जो जो गुण होने चाहिए सब हनुमानजी मे दिखाई देते हैं । स्वामी के कार्यो के लिए हनुमानजी में सब कुछ करने की तत्परता दोनों महाकाव्यो में दिखाई देती है । सीता अन्वेषण के लिये गये सभी वानर समुद्र के तट पर निराश होकर बैठे थे कि हनुमानजी समुद्र को लाँघने के लिये तैयार हो जाते हैं और अनेक विध्नों पर विजय प्राप्त करके अपने कार्य मे सफल हो जाते हैं । इसी प्रकार 'रामायण' में दो-दो बार और 'मानस' में एक बार लक्ष्मण के मूर्छित हो जाने के समय हनुमानजी बिना सोचे हिमालय पर्वत पर से औषधियों के शिखर को ले आते हैं। आदर्श सेवक को यह चाहिए कि अपने स्वामि के कार्य के लिए अपने मान अपमान की चिंता नहीं करनी चाहिए । अतः सुन्दरकाण्ड में जब मेघनाद हनुमानजी को पकड़कर रावण के पास ले जाते हैं तब

रावण उन्हें अनेक दुर्वाद कहकर हँसता है । परंतु हनुमानजी बड़ी धैर्यता के साथ अपने मान-अपमान को देखे बिना उसे सुन लेते हैं । अपने सम्मान के लिये स्वामी का कार्य बिगाडना उचित नहीं है । सेवक को चाहिए कि अपने स्वामि के कार्य करने में अपने क्रोध को दबा दे क्योंकि क्रोध से भरकर कोई भी पुरुष पाप कर सकता है । क्रोध से वशीभूत होकर वह अपने गुरुजनों की भी हत्या कर सकता है । क्रोधी मानव साधु पुरुषों पर भी कटुवचनों द्वारा आक्षेप करने लगता है । 'रामायण' में क्रोधावेश में लंका को जलाने के बाद मारुति को अफ़सोस होता है कि लंका के जलने से माता सीता को भी हानि पहुँगी होंगी । वे मन ही मन अफसोस करते है कि मैंने स्वामि का बना-बनाया काम चौपट कर दिया –

ईषत्कार्यमिंद कार्ये कृतमासीन्न संशयः ।
तस्य क्रोधाभिभूतेन मया मूलक्षयः कृतः ।।[43]

अर्थात् इसमें संदेह नहीं कि यह लंका दहन एक छोटा-सा कार्यशेष रह गया था, जिसे मैंने पूर्ण किया; परंतु क्रोध से पागल होने के कारण मैंने श्री रामचन्द्रजी के कार्य की तो जड़ ही काट डाली । अतः हनुमानजी सीताजी को देखने के लिये पुनः अशोक वाटिका में जाते हैं । हनुमानजी ने जिस प्रकार राम और लक्ष्मण पर आये प्राण संकट को मिटा दिया वैसे ही भरत को भी उन्होंने नया जीवन दिया । चौदहवर्ष की अवधि समाप्त होने के पश्चात् यदि राम का दर्शन नहीं हुआ तो जीना असम्भव है कहनेवाले भरत को हनुमानजी ही सबसे पहले यह समाचार देते हैं कि राम सकुशल अयोध्या लौट रहे हैं । निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यो में हनुमानजी के चरित्र में सेवक और सचिव का ऊँचा आदर्श दिखाई देता है ।

6.12 मित्रता :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में दोनों महाकवियों ने मनुष्य के सामाजिक जीवन को दृष्टि में रखते हुए मित्रता के प्रशस्त पथ को दिखाया है। दोनों महाकाव्यो में दिया गया मैत्री का सिद्धांत दुनिया के किसी भी कोने में, किसी भी व्यक्ति के लिये,

किसी भी काल में आदर्श माने जायेंगे । आधुनिक युग में विश्वबंधुत्व की जो कल्पना हो रही है उसके मूल में इन दोनों महाकवियो द्वारा दिया गया मैत्री का यह सिद्धांत है । दोनों महाकाव्यों में राम और सुग्रीव तथा राम और विभिषण की मित्रता राम कथा का एक महत्वपूर्ण बिन्दु है । इसी मित्रता के जरिए दोनों महाकवियों ने मित्रता के ऊँचे आदर्श को स्थापित किया है । किष्किन्धा काण्ड के प्रारंभ में राम और सुग्रीव अर्थात् नर और वानर की अतूट मित्रता को दिया है । मित्र को चाहिए कि दोनों का सुख दुःख एक हो । राम भी इसी बात को प्रकट करते हुए सुग्रीव से कहते हैं कि "उपकारफलं मित्रं विदितं में महाकपे" ।[44] अर्थात् मुझे मालुम है कि मित्र उपकार रूपी फल देनेवाला होता है । यह कहते हुए राम पत्नी का हरण करने वाले महाबलि वालीवध की प्रतिज्ञा करते हैं । सुग्रीव भी अपनी मित्रता को निभाते हुए कहते हैं कि हे श्री राम भार्या सीता पाताल में हो या आकाश में, मैं उन्हें ढूँढ लाकर आपकी सेवामें समर्पित कर दूँगा ।[45] 'रामचरित मानस' में मित्रता के ऊँचे आदर्श को स्थापित करते हुए तुलसीदास ने लिखा है कि मित्र का धर्म है कि वह मित्र को बूरे मार्ग से रोककर अच्छे मार्ग पर चलावें । उसके गुण प्रकट करें और अवगुणों को छिपावें । देने लेने में कोई शंका नहीं करनी चाहिए । अपने बल के अनुसार सदा हित ही करते रहना चाहिए तथा विपति के समय सदा सौगुना स्नेह करना चाहिए । जिसका मन साँप की चाल समान टेढ़ा है, ऐसे कुमित्र को त्याग देना चाहिए ।[46] जो लोक मित्र के दुःख से दुःखी नहीं हाते, उन्हें देखने से ही बड़ा पाप लगता है, अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान और मित्र के धूल के समान दुःख को सुमेरु पर्वत के समान मानना चाहिए –

जे न मित्र दुःख होहि दुःखारी । तिन्हहि बिलोकत पातक भारी ।
निज दुःख गिरि सम रज करि जाना । मित्रक दुःख रज मेरु समाना ।।[47]

रावण जैसे महाभयानक राक्षस के भाई विभिषण को रामशरण देकर तथा मित्र बनाकर मित्रता का एक नया आदर्श स्थापित करते हैं । विभिषण भी अपना सर्वस्व समर्पित करते हुए अपना शेष जीवन राम भक्ति में व्यतीत करते हैं ।

6.13 प्रेमभावना :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों महाकाव्यों में निषाद राज गुह, केवट, सुतीक्ष्ण, शबरी आदि चरित्र प्रेम भावना की ऊँचाईयों को छूते हुए दिखाई देते हैं । वनयात्रा के समय शृँगवेरपुर पहुँचने पर और श्री गंगाजी के घाट की नाव खेनेवाले घटवार केवट तथा श्री राम का प्रेम प्रसंग अदभूत है । श्री राम, लक्ष्मण, सीता तथा मंत्री सुमन्त समेत शृंगवैरपुर आये हैं, यह समाचार सुन निषादराज गुह हर्षित होते हुए शीध्र ही थाल में फल मूलादि की भेंट सजवाकर उनका स्वागत करने के लिए दौड पड़ते है । अपना सर्वस्व समर्पित करते हुए निषादराम गुह श्री राम को कहते हैं कि यह तुच्छ मन श्रीचरणों का दर्शनलाभ करके भाग्यशाली हो गया। अब कुशल ही कुशल है। हे नाथ ! हे देव ! मेरी सम्पूर्ण सम्पति, सम्पूर्ण राज्य और घरबार आप ही का है । मैं तो अपने परिवार समेत आपका तुच्छ से तुच्छ नीच सेवक हूँ । कृपा करके सेवक के पुर में पधारे । परंतु श्री राम के द्वारा यह कहने पर कि चौदह वर्ष वन में ही रहने की पिता की आज्ञा है तो सुनकर वह दुःखी हो जाता है । सीता-राम को पृथ्वी के उपर पड़े हुए कुश की साथरी पर सोते देखकर निषादराज को अवध के महलों की याद आ जाती है और नेत्रों में से जल बहने लगता है ।[48]

गंगा पार करने से पहले चरण धोने के बाद ही गंगा पार कराऊंगा की शर्त रखने वाले केवट में भी प्रेम की गहनता का दर्शन होता है । श्री राम के चरणकमलों को जिस समय वह अत्यंत अनुराग में उमड़कर पखारने लगता है, उस समय सम्पूर्ण देवगण पुष्पों की वर्षा करने लगते हैं और उसके भाग्य की ईष्या करने लगते हैं कि ऐसा पुण्यशाली कोई भी नहीं होगा ।[49]

'रामचरित मानस' के अरण्यकाण्ड में सुतीक्ष्ण मुनि के प्रसंग में प्रेमाभक्ति का चरमोत्कर्ष दिखाई देता है । श्री राम के आगमन का समाचार सुन सुतीक्ष्ण आनन्द मग्न होकर मन ही मन कहने लगते हैं कि भवबन्ध से छुडाने वाले प्रभु के मुखार- विन्द को देखकर आज मेरे नेत्र सफल हो जायेंगे । राम के आगमन के समाचार मात्र से मुनि प्रेम

में पूर्णरूप से निमग्न हो जाते हैं । उन्हें दिशा-विदिशा और रास्ता कुछ भी नहीं सुझ रहा है । मैं कौन हूँ और कहाँ जा रहा हूँ यह भी नहीं जानते । वे कभी पीछे मुड़कर फिर आगे चलते हैं और कभी प्रभु के गुण गा-गाकर नाचने लगते हैं –

होई हैं सुफल आजु मम लोचन । देखि बदन पंकज भव मोचन ।
निभर्र प्रेम मगन ग्यानी । कहि न जाइ सो दसा भवानी ।।
दिसि अरु बिदिसि पंथ नहिं सूझा । को मैं चलेऊँ कहा नहिं बूझा ।
कब हुँक फिरि पाछें युनि जाई । कब हुँक नृत्य करइ गुन गाई ।।[50]

'रामायण' में सीतक्ष्ण की प्रेमाभक्ति की विहवलता का अभाव है। सुतीक्ष्ण की भांति शबरी भी मन, वचन और शरीर से श्री भगवान के शुद्ध प्रेम में सरोबार थी । गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य कर लम्बे काल से अपने आँगन को सजाती हुई शबरी राम की प्रतीक्षा कर रही है । राम के दर्शन हो जाने पर धन्यता का अनुभव करती हुई स्वर्ग की ओर प्रस्थान करती है -

कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख ह्दयँ पद पंकज धरे ।
तजि जोग पावक देह हरि पदलीन भई जहँ नहिं फिरे ।।[50A]

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि में दोनों महाकाव्यों में भक्तों की उँची प्रेम दशा का वर्णन किया गया है । भक्ति में दिखावा, आडम्बर, अभिमान आदि को छोड़कर भक्त सच्चे दिल से ईश्वर से प्रेम करें तो अवश्य ही ईश्वर की प्राप्ति हो सकती है । आवश्यकता है सुतीक्ष्ण या शबरी की भाँति प्रेमदशा की विह्वलता को प्राप्त करने की ।

6.14 कर्ममय जीवन :-

'रामायण' और 'रामचरित मानस' के द्वारा हमें कर्ममय जीवन जीने का भी उपदेश प्राप्त होता है । कर्मठता जीवन उन्नयन के लिये अनिवार्य है । श्री राम तथा लक्ष्मण का सम्पूर्ण जीवन कर्ममय है । कैकेयी के द्वारा माँगे गये वचनों के अनुसार राम शीध्र ही वनमगन कर जाते हैं । चौदह वर्ष तक वन में निवास करके श्री राम राक्षसों का संहार करते हुए अनेक ऋषि-मुनियों का उद्धार करते हैं । रावण जैसे महापराक्रमी

राक्षस के द्वारा सीता का हरण होने के बाद वे हाथ पर हाथ धरकर बैठे नहीं रहे, परंतु रावण जैसे अत्याचारी राक्षस का संहार करने का प्रयत्न शुरु कर देते हैं । सुग्रीव से मित्रता होने के पश्चात् राम वाली का वध करके वानरों तथा भालुओं की सेना बनाते हैं और उसी सेना की सहायता से रावण पर विजय प्राप्त कर लेते हैं। सीता के उद्धार के लिये राम ने वे सारे यत्न किये जो मनुष्य के लिए साध्य होता है । 'रामायण' में इन्हीं पुरुषार्थों का सन्तोष व्यक्त करते हुए राम कहते हैं कि–

एषासि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा रणाजिरे ।
पौरुषाद यदनुष्ठेयं मयैतदुपपादितम् ।।[50B]

अर्थात् भद्रे ! समरांगण में शत्रुको पराजित करके मैंने तुम्हें उसके चंगुल से छुडा लिया । पुरुषार्थ् के द्वारा जो कुछ किया जा सकता था, वह सब मैंने किया । अथवा

या त्वं विरहिता नीता चल चितेन रक्षसा ।
दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः ।[50c]

अर्थात् जब तुम आश्रम में अकेली थी, उस समय वह चंचल चितवाला राक्षस तुम्हारा हरण कर गया । यह दोष मेरे ऊपर दैववश प्राप्त हुआ था, जिसका मैंने मानव साध्य पुरुषार्थ के द्वारा मार्जन कर दिया । राम की ही भाँति लक्ष्मण का जीवन भी पूर्णतः कर्ममय है । राम की छाया के रूप में रहे हुए लक्ष्मण अपने भाई-भाभी के साथ एक भी विचार किये बिना वनगमन के लिए निकल पड़ते हैं । राम और सीता की एक सेवक की भांति सेवा सुश्रुषा करते हुए लक्ष्मण उनके सुखों को ही अपने जीवन का उद्देश्य बना लेते हैं । भाग्य पर भरोसा करके बैठे रहने से कोई लाभ नहीं होगा, अतः व्यक्ति को पुरुषार्थ करना चाहिए और पुरुषार्थ के बल पर ही हम अपने भाग्य को बदल सकते हैं । इस विचारधारा में विश्वास रखनेवाले लक्ष्मण महाराज दशरथ के द्वारा दिये गये वनवास का विरोध करते हैं और श्री राम को बलपूर्वक राज्य पर अधिकार कर लेने कि लिये प्रेरित करते हैं ।[51] 'रामचरित मानस' में भी लक्ष्मण की कर्मनिष्ठा चहुं ओर से खिल उठी है । सेना समेत लंका पहुँचने के लिये समुद्र को पार करने के लिये राम

विभिषण के सुझाव का अनुसरण करते हुए जब उपवास करके समुद्र से ही मार्ग देने की प्रार्थना की तब लक्ष्मण की पुरुषार्थवादिता भड़क उठती है । समुद्र से मार्ग की प्रार्थना करने के सुझाव का विरोध करते हुए लक्ष्मण कहते हैं कि –

नाथ दैव कर कवन भरोसा । सविअ सिंधु करिअ मन रोसा ।
कादर मन कहुँ एक अधारा । दैव दैव आलसी पुकारा ।। [52]

अर्थात् है नाथ ! दैव का कौन भरोसा ! मन में क्रोध कीजिए और समुद्र को सुखा डालिये । यह दैव तो कायर के मन का एक आधार है । आलसी लोग ही दैव-दैव पुकारा करते हैं । राम रावण के युद्ध में राक्षसों के द्वारा मायावी युद्ध तथा अनेकानेक ब्रह्मास्त्र जैसे शस्त्रों का प्रयोग करने पर भी राम और लक्ष्मण प्रत्युत्तर में कोई भी देवी शक्ति का प्रयोग नहीं करते और अपने ही बल बूते रावण जैसे अत्याचारी दानवों का सर्वनाश कर देते हैं । राम और लक्ष्मण की भाँति हनुमानजी ने भी कर्ममय जीवन का उँचा आदर्श हमारे सामने प्रकट किया है । 'रामायण' में मेघनाद के बाण से राम समेत पूरी सेना मूर्छित हो जाती है, उस समय जाम्बवानजी की आज्ञा के अनुसार मारुति तुरंत हिमालय से औषधियों से भरे शिखर को ले आते हैं ।[53] इसी प्रकार लक्ष्मण के मूर्छित होने पर हनुमान सूर्योदय हो उससे पहले संजीवनी ले आकर लक्ष्मण के प्राणों को बचा लेते हैं । हनुमानजी के इसी कार्य की भूरि भूरि प्रशंसा करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है कि –

विस्मितास्तु बभुवुस्ते सर्वे वान पुगंवा :
दृष्टा तु हनुमत्कर्म सुरैरपि सुदुष्करम।।[54]

अर्थात् हनुमानजी का वह कर्म देवताओं के लिये भी अत्यंत दुष्कर था । उसे देखकर समस्त वानर युथपति बड़े विस्मित हुए । 'रामचरित मानस' के सुन्दरकाण्ड में आकाशमार्ग से लंका जाते हुए हनुमानजी को मैनाक पर्वत विश्राम के लिये प्रार्थना करता है परंतु हनुमानजी यह कहकर टाल देते हैं कि-

राम काजु कीन्हें बिनु मोहि कहाँ विश्राम ।[55]

अर्थात् श्री रामचन्द्रजी का काम किये बिना मुझे विश्राम कहाँ ? निष्कर्ष में 'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों महाकाव्यों के अनेक चरित्रों के माध्यम से दोनों महाकवियों ने कर्ममय जीवन जीने का सुन्दर सन्देश हमें दिया है ।

6.15 धैर्यता :-

धैर्य वाल्मीकि और तुलसीदास की दृष्टि में मानव का सबसे बड़ा गुण है । उनकी यह मान्यता आज भी मूल्यवान है । आधुनिक काल का मनुष्य अनेक समस्याओं से घिरा हुआ है । उसे प्रत्येक कार्य मे अनेक परेशानियों, विघ्नों तथा बाधाओं का सामना करना पड़ता है । ऐसी परिस्थिति में यदि हममें धैर्य का अभाव हुआ तो कभी भी अपने विकास पथ पर अग्रसर नहीं हो सकेंगे । क्योंकि व्यक्ति की सच्ची परीक्षा विपत्ति काल मे धैर्यता या सयंम को बनाये रखने में है । इसी ओर इशारा करते हुए दोनों महाकवियो ने 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के जरिए धैर्यता का सुंदर संदेश दिया है। आधुनिकयुगीन समाज में धैर्यता का जहाँ बिल्कुल अभाव दिखाई देता है वहाँ राम को धैर्यता की ज्वंलत मूर्ति के रूप में प्रकट किया हैं। अयोध्या काण्ड में कैकेयी के द्वारा राम को चौदह वर्ष का वनवास तथा भरत को अयोध्या का राज्य जैसे दो वचन माँगने पर महाराज दशरथ तथा पूरे अयोध्यावासी व्याकुल हो जाते हैं । उस समय राम पूरी धैर्यता को धारण करते हुए अपने माता-पिता तथा अन्यों को अनेक प्रकार से समझाते हुए धैर्य बँधाते है । राम यदि धैर्यपूर्वक अपनी सारी योजनाएँ नहीं बनाते तो कदाचित ही वे रावण को पराजित कर पाते और सीता का उद्धार कर पाते । परंतु धैर्यता की प्रतिमूर्ति श्री राम अपने जीवन के संकटकाल में सयंमितता को दिखाकर विपत्ति से धिरे बादलों को बिखर देते हैं । समुद्र को सूखा देने की जिसमें क्षमता है, ऐसे राम समुद्र को मार्ग देने की प्रार्थना करते हैं । अपने स्थान पर बैठे-बैठे एक ही बाण के द्वारा रावण-वध कर सकने में समर्थ राम वन में दर दर भटकते हुए पूरी धैर्यता से अनेक राक्षसों तथा रावण का संहार कर देते हैं ।

लक्ष्मण भी सर्व दुःखों को सहते हुए राम के साथ चौदह वर्ष के वनवास को

हँसते हुए व्यतीत कर देते हैं । चित्रकूट में भरत के प्रेम को देखकर सभी नर-नारी, मूनिजन यहाँ तक कि देवता भी दिग्मूढ़ हो गये, उस समय राम की आज्ञा को शिरोधार्य करके भरत अयोध्या के शासन की जिम्मेदारी अपने सिर पर ले लेते हैं, और बड़ी धैर्यता से अपने दुःखों को दबाकर राम विहिन अयोध्या को सम्भाल लेते हैं। इसी प्रकार कौशल्या और सुमित्रा भी राम, लक्ष्मण तथा सीता के वनवास को बड़ी धैर्यता से सह लेते हैं । इसी प्रकार दोनों महाकाव्यो के अनेक पात्रो में धैर्यता का ऊँचा गुण दिखाई देता है । निष्कर्ष में राम के सर्वगुणों में उनका सर्वश्रेष्ठ गुण उनकी धैर्यता का है, जिससे वे नर से नारायण बन गये ।

6.16 मर्यादावाद :-

समाज ने संस्कृति के लिये कुछ ऐसी मान्यताएँ स्थापित की है, जिनके अनुकूल आचरण उचित माना जाता है और उनके विपरित व्यवहार को अधर्म या अनीति माना जाता है । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों महाकाव्यों में मर्यादावाद अपनी ऊँचाईयों को छुता हुआ दिखाई देता है । दोनों महाकवियों ने आदर्श मर्यादाओं की स्थापना के लिये श्री राम का मर्यादा पुरुषोतम के रूप में चित्रण किया है । सामाजिक मर्यादा का आदर्श स्थापित करते हुए वाल्मीकि ने अयोध्या का तथा तुलसीदासने राम-राज्य का विस्तृत चित्रण किया है । आयोध्या के प्रजाजनों का चित्रण करते हुए वाल्मीकि ने लिखा है कि –

तस्मिन् पुरवरे दृष्टा धर्मात्मानो बहुश्रुता : ।
नरास्तुष्टाधनै : स्वैः स्वैरलुब्धाः सत्यवादिन ।। [56]

अर्थात् उस उत्तम नगर में निवास करने वाले सभी मनुष्य प्रसन्न धर्मात्मो, बहुश्रुत, निर्लोभ, सत्यवादी तथा अपने-अपने धन से संतुष्ट रहने वाले थे । तुलसीदास ने भी सामाजिक मर्यादा का आदर्श स्थापित करने के लिए राम राज्य का वर्णन किया है - जिसमें "सब नर करहि परस्पर प्रीति चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।"[50] अर्थात् रामराज्य में सब मनुष्य परस्पर प्रेम करते हैं और वेदों में वर्णित मर्यादा (नीति) में तत्पर

रहकर अपने-अपने धर्म का पालन करते हैं । इस प्रकार "नहि दरिद्र कोउ दुःखी न दीना । नहीं कोउ अबुध न लच्छन हीना ।"[58] अर्थात् न कोई दरिद्र है, न दुःखी है और न दीन है । न कोई मुख है और न शुभ लक्षणों से हीन है । इसके अतिरिक्त तुलसीदास ने वर्णाश्रम धर्म की प्रतिष्ठा करके लोकमर्यादा की भी सुरक्षा की है –

बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग ।
चलहिं सदा पावहिं सुखहि नहिं भय सोक न रोग ।।[59]

अर्थात् सब लोग अपने अपने वर्ण और आश्रम के अनुकुल धर्म में तत्पर रहते हुए सदा वेद मार्ग पर चलते हैं और सुख पाते हैं, उन्हें न किसी बात का भय है, न शोक है और न कोई रोग ही सताता है । महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने व्यक्तिगत मर्यादा का स्वरूप प्रकट करते हुए पात्रों का चित्रण किया है । अपने धर्म के पालन में अनेक कष्ट आने पर भी वे पात्र अपनी मर्यादा के मार्ग से दूर नहीं हटते । 'रामायण' में वाल्मीकि कई प्रसंगों के शृंगार वर्णन में मर्यादा की सीमा को लांध देते हैं । जबकि तुलसीदास ने ऐसे अनेक प्रसंगों में परिवर्तन कर दिया है अथवा उस प्रसंग को छोड दिया हैं । जैसे इन्द्र पुत्र जयन्त 'रामायण' में सीता के उरोज में चोंच मारता है । जबकि 'मानस' में वह चरण में चोंच मारता हैं । इस प्रकार मरते समय मारीच के द्वारा हा लक्ष्मण पूकारे जाने पर सीता उनको रामकी सहायता के लिए जाने का आग्रह करती है, परंतु लक्ष्मण के न मानने पर सीता उनको कटु वचन कहती है और अंत में विवश होकर लक्ष्मण को जाना पड़ता है । 'मानस' में तुलसीदास ने सीता के कटुवचनों का उल्लेख न करके मर्यादा की रक्षा की है । राम का अपने पिता, माता, भाई, गुरु, पत्नी, सखा आदि के प्रति का व्यवहार व्यक्तिगत मर्यादा का आदर्श है । 'मानस' में चित्रकुट का प्रसंग मर्यादावाद का चरमोत्कर्ष है । पारिवारिक जितने भी रिश्ते बनते हैं वे सभी यहाँ प्रस्तुत हैं और उनके पारस्परिक व्यवहारों में मर्यादा का अद्‌भूत दर्शन होता है । अपनी मर्यादा को ध्यान में रखती हुई सीता अधिक समय तक माँ की शिबिर में बैठना उचित नहीं समझती । वे न तो उठकर निकल सकती है और न कह पाती है । अतः

सुनयना जब उनके मन की बात को समझ लेती है तो तुरंत उन्हें बिदा कर देती है । आज के आधुनिक युग में ऐसी मर्यादाएँ जहाँ लुप्त सी हो गयी है, वहाँ तुलसीदास का मर्यादावाद बिखरते हुए इस समाज के लिये एक आदर्श मर्यादा की स्थापना करते हैं।

6.17 अपूर्व सहनशीलता :-

आधुनिक बौद्धिक युग में व्यक्ति अपने सर्वांगी विकास की भागदौड़ में दिमागी बोज के नीचे दब गया है । उसमें सत्य-असत्य सूनने का न तो धैर्य है और न सहने की क्षमता है । संसार के त्रिविध तापों को सहने की सक्षमता न होने से अंत में वह हारकर संसार से पलायन करता हुआ अपने आपको मिटा देता है । ऐसी स्थिति में 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में राम की अपूर्व सहनशीलता आधुनिक युगीन समाज के लिए एक बोध पाठ हो सकती है । अपने राज्याभिषेक की तैयारी जहाँ पूर्ण हो चूकी थी, मन में हर्ष समा नहीं रहा था उस समय कैकेयी महाराज दशरथ से दो वचनों को माँगती है। उन वचनों को सत्य करने के लिए राम आनन्द के साथ वन जाने के लिए तत्पर हो जाते हैं। अयोध्या के राजमुकुट को उतार कर वल्कल वस्त्र धारण करते हुए राम माता कैकेयी तथा पिता महाराज दशरथ का विरोध किये बिना वन चल देते हैं । पत्नी का हरण करनेवाले रावण का एक ही बाण से वध कर देने की क्षमता रखनेवाले श्री राम युद्ध से पहले लंका में रावण के पास दूत के रूप में अंगद को भेजते हैं और कहते हैं कि यदि वह सीता को सम्मान के साथ वापिस लौटा दे तो युद्ध टल सकता है । इस प्रकार रावण जैसे दुरात्मा के पापों को क्षमा कर देने की तैयारी दिखाने वाले श्री राम में अपूर्व सहनशीलता का दर्शन होता है । राम की ही भाँति अपने सर्वस्व दुःखों का त्याग करके राम के साथ वन में दर-दर भटकने वाले लक्ष्मण में भी अपूर्व सहनशीलता का दर्शन होता है । महाराज जनक की पुत्री सीता जिन्होंने वन के कष्टों को कभी सुना भी नहीं; आज राम के साथ वन में अनेक कष्टों को भुगत रही है । पति और पिता दोनों शक्तिशाली होने पर भी आने वाली विपत्ति को हँसते हुए सहने वाली सीता में अदभूत सहनशीलता का दर्शन होता है । माता के द्वारा माँगे गये वचनों से पिता की छाया

गँवाने वाले तथा अपने बंधु श्रीराम के विरह में चौदह वर्ष तक झुरते हुए एक दिन युग समान ऐसे चौदह वर्ष तक नन्दिग्राम में निवास करनेवाले भरतमें भी उसी सहन शीलता का दर्शन होता है । इस प्रकार दोनों महाकाव्यों के दशरथ परिवार मे अपूर्व सहनशीलता का दर्शन होता है ।

6.18 छुआछुत पर गहरा आधात :-

समाज के सुचारु संचालन को किसी न किसी प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता होती है अन्यथा समाज को विश्रृंखलित होने में देर नहीं लगती । प्राचीन ऋषि-मूनियों ने इसी उद्देश्य से समाज-संचालन के लिये वर्णाव्यवस्था और व्यक्ति विकास के लिये आश्रम व्यवस्था का विधान बनाया था । वर्णव्यवस्था मूलतः व्यक्तिकी लोकोपकारक क्षमता के तारतम्य पर आद्यत थी न कि किसी वर्ग के जन्मजात विशेषाधिकार पर । वाल्मीकि ने 'रामायण' में इनका सुन्दर चित्र खिंचा है। परंतु कुछ कालक्रम के पश्चात् वर्ण-निर्धारण जन्म के आधार पर शुरु होने लगा और निम्नवर्ग के प्रति अन्याय शुरु हो गया । तुलसीदास के समय में तो यह व्यवस्था पूर्णतः भंग हो गयी थी जिससे समाज का ह्रास हो चुका था । गोस्वामीजी इस व्यवस्था की आवश्यकता को भली भांति जानते थे, अतः उन्होंने 'मानस' में वर्णव्यस्था के संस्थापन का पुनः प्रयास किया । दोनों महाकवियों ने निम्न वर्ग के केवट, शबरी, वनजीवी, कोल, किरात आदि का चित्रण बड़ी मार्मिकता के साथ किया है । गंगापार करते समय केवट की प्रेमाभक्ति में राम भी डूब जाते हैं । जब केवट ने नाव की उतराई राम-लक्ष्मण और सीता के आग्रह करने पर भी नहीं ली तब श्रीराम उसे निर्मल भक्ति का वरदान देकर उन्हें विदा करते हैं –

बिदा किन्ह करुनातयन भगति बिमल बरु देइ ।[60]

'मानस' के चित्रकूट प्रसंग में निषादराज (केवट) अपना नाम लेकर वशिष्ट को दूर से ही दण्ड़वत प्रणाम करता है । परंतु ऋषि वशिष्ठजी केवट को राम सखा जानकर उसको जबर्दस्ती हृदय से लगा लेते हैं मानों जमीन पर लौटते हुए प्रेम को समेट लिया

हो –

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू कीन्ह दूरि ते दंड प्रनाम् ।
राम सखा रिषि बरबस भेंटा । जनु महि लुठत सनेह समेटा ।।[61]

'रामायण' में भी शबरी के लिए राम 'तपोधने' शब्द का प्रयोग करते हुए उनको पूरा सम्मान देते हैं । इतना ही नहीं पूरे हर्ष के साथ शबरी के आतिथ्य को स्वीकार करते हैं ।[62] 'मानस' में भी निम्न जाति की शबरी के मीठे और स्वादिष्ट कन्द मूल और फल खाकर उसके आतिथ्य का स्वीकार करते हैं । अपने आश्रम में अतिथि बनकर पधारे राम को प्रेम में गद्‌गद होकर शबरी कहती हैं कि –

केहि बिधि अस्तुति करौं तुम्हारी । अधम जाति मैं जडमति भारी।[63]

उस समय उनकी प्रेम भावना से प्रभावित होते हुए राम कहते हैं कि –

जाति पाँति कुल धर्म बड़ाई । धन बल परिजन गुन चतुराई ।
भगति हीन नर सोहइ कैसा । बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ।[64]

अर्थात् जाति, पाँति, कुल, धर्म, बड़ाई, धन, बल, कुटुम्ब गुण और चतुरता इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है जैसे जलहीन बादल । कहते हुए श्री राम शबरी को नवधा भक्ति का उपद्देश देते हैं और शबरी उसी प्रभु के कृपा प्रसाद को लेकर दुर्लभ हरिपद को प्राप्त करती है । निष्कर्ष में आज समाज में सवर्ण असवर्ण के बीच में जो वैषम्य की खाई है उसे राम कथा के माध्यम से दूर किया जा सकता है । दोनों महाकवियों ने राम और केवट मिलन के प्रसंगों की विस्तृत व्याख्या करते हुए बताया कि वास्तव में आज जिसे असवर्ण कहा जाता है उसके मानसिक विकास की उसी तरह आवश्यकता है जैसा कि श्री राम ने किया था। मौलिकता या आर्थिक सहयोग से वह फल नहीं मिल सकता जो कि मानसिक परिवर्तन से मिल सकता हैं ।

6.19 आसक्ति का त्याग :-

आसक्ति से कामना उत्पन्न होती है । उसकी संतुष्टि के लिए व्यक्ति निरंतर प्रयत्नशील रहता है । जब उसकी पूर्ति नहीं हो पाती तो उसमें क्रोध प्रकट होता है। परिणामतः उसमें कर्तव्य-अकर्तव्य के सम्बन्ध में भ्रम उत्पन्न होता हैं और उसकी बुद्धि नष्ट हो जाती है । यह सत्य है कि जिसकी बुद्धि नष्ट हो गयी हो ऐसे मनुष्य का पतन होने में देर नहीं लगती । 'रामायण' और 'मानस' में काम, क्रोध, लोभ, मद और मोह पर विजय प्राप्त करने की खूब चर्चा की है । दोनों महाकवियों ने अनेक चरित्रों के द्वारा यह चर्चा की है कि मानसिक दुर्बलताओं वाला कोई भी व्यक्ति विजय प्राप्त नहीं कर सकता । अपनी उन्नति के लिए काम पर विजय पाना अति आवश्यक है । दोनों महाकवियों ने महादेव की कथा के द्वारा इसी बात की पुष्टि की है । देवकार्य के लिये कामदेव ने जब अपना प्रभाव फैलाया उस समय क्षणभर के लिये वेदो की सारी मर्यादाएँ मिट जाती है । जगत में स्त्री पुरुष संज्ञावाले जितने भी चर अचर प्राणी थे, वे सब अपनी अपनी मर्यादा छोड़कर काम वश हो जाते हैं । [65] शिवकी समाधि तोड़ने के लिए जब वह पाँचों पुष्पों के बाण से शिव पर प्रहार करता है तो शिव उसको तीसरा नेत्र खोलकर जला देते हैं ।[66] इसी प्रकार महाराज दशरथ भी ज्ञानी होने पर भी काम के अधिन हो जाते हैं और अपने पुत्र श्री राम को वनवास दे देते हैं । श्री राम भी पिता के कामासक्त होने का दुःख लक्ष्मण के सम्मुख व्यक्त करते हुए कहते हैं कि –

अर्थ धर्मो परित्यज्य यः काममनुवर्तते ।
एवमापद्यते क्षिपं राजा दशरथो यथा ।। [67]

अर्थात् सच है, जो अर्थ और धर्म का परित्याग करके केवल काम का अनुसरण करता है, वह उसी प्रकार शीध्र ही आपत्ति में पड़ जाता है, जैसे इस समय महाराज दशरथ पड़े हैं । रावण भी कामासक्त होकर अपनी मृत्यु को निमंत्रण दे देता है और अपनी काम पूर्ति के लिए अपने पुत्र-रिश्तेदार तथा पूरी राक्षस जाति का सर्वनाश कर देता है । 'मानस' में कामभावना पर विजय प्राप्त करनेवाले नारदजी को अभिमान हो

जाता है परंतु अंत में काम और दंभ में आकर वे भगवान विष्णु से उनका रूप माँगते हैं। अंत में जब वे पानी में अपने चेहरे को देखते हैं तो क्रोधित हो जाते हैं । उस समय उनका उपहास करनेवाले जय विजय पर अपना क्रोध बरसाते हैं । अरण्यकाण्ड में विषाद में डूबे नारद को श्री राम इसी बात का उपदेश देते हुए कहते हैं कि –

काम क्रोध लोभादि मद प्रबल मौह कै धारि ।
तिन्ह महँ अति दारुन दुःखद मायारुपी नारि ।। [68]

अर्थात् काम, क्रोध, लोभ और मद मोह (अज्ञान) की प्रबल सेना है । इनमें माया रुपिणी स्त्री तो अत्यन्त दारुण दुःख देनेवाली है । निष्कर्ष में दोनों महाकाव्यों के अनेक चरित्रों के द्वारा यहीं संदेश प्राप्त होता है कि आसक्ति दुःख का मूल है । अतः उस पर विजय प्राप्त करने में ही अपने आप की महानता हो सकती है ।

6.20 शील की प्रधानता :-

शील का अर्थ है शुद्ध आचरण । अतः जिस व्यक्ति का आचरण शुद्ध होता है, वह स्वभावतः हमारी, श्रध्धा का पात्र बन जाता है । श्री राम में शील की अत्यंत अधिकता है । राम दोनों महाकाव्यों में प्रधान पात्र होने के कारण जितनी भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में उनका जीवन दिखाया गया है अन्य किसी पात्र का नहीं । अलग-अलग मनोविकारों को उभारनेवाले जितने प्रसंग राम के चरित्र मे आये हैं उतने अन्य चरित्र में नहीं आये । वाल्मीकि और तुलसीदास ने श्री राम के शील स्वभाव का हृदयकारी चित्रण किया है । राम में शील की प्रधानता का ही एक ऐसा गुण है जिसके माध्यम से वह बिगड़ी हुई बात को बना लेते हैं । राम अपने गुरुजनों के प्रति तो अत्यन्त विनम्र है ही परंतु अपने से छोटों के प्रति भी सहज उदार है । अपने विरोधियें के प्रति सद्भाव में उनके शील की पराकाष्ठा दिखायी देती है । सागर से मार्ग लेने के लिए राम तीन दिन तक उनके सामने बैठकर उपवास करते है। कैकेयी के द्वारा चौदह वर्ष का वनवास दिये जाने के बाद भी चित्रकूट में राम सबसे पहले उनको मिलते हैं । इतना ही नहीं रावण विजयोपरांत महाराज दशरथ श्री राम को आशीर्वचन देने के लिए जब लंका के युद्ध

मैदान में प्रकट होते हें । उस समय श्री राम माता कैकेयी और भरत के लिए प्रसन्न होने की उनसे प्रार्थना करते है । दशरथ ने कैकेयी को जो पुत्र सहित त्याग करने का घोर शाप दिया था उसको भी वापिस ले लेने के लिए राम पिताश्री को विनंती करते हैं –

सुपुत्रां त्वां त्यजामीति दुदुक्ताकैकेयी त्वया ।
स शापः कैकेयी घोरः सपुत्रां न स्पृशंत् प्रभो ।।[69]

अर्थात् प्रभो ! आपने कैकेयी से कहा था कि मैं पुत्र सहित तेरा त्याग करता हूँ । आपका वह घोर शाप पुत्र सहित कैकेयी का स्पर्श न करें । रावण के दूत के रूप में शुक का वानर के हाथों पकडे जाने पर भी राम उनको मृत्यु दण्ड न देते हुए छोड़ देते हैं ।[70] राम की ही भाँति भरत का शील भी उत्कृष्ट है । माता के द्वारा राम के पास से अयोध्या के राज्य को छिनकर भरत को दे देना तथा राम को चौदह वर्ष का वनवास देना जैसे दो वचनों को माँगे जाने पर दशरथ परिवार पर विपति के बादल छा जाते हैं। ऐसी विकट परिस्थति मे भरत प्रकट होकर अपने उत्तम शील की कसौटी देते हैं । इसी प्रकार विभिषण को भी शरण देकर श्री राम अपने विरोधियों के प्रति सद्भाव से भरा व्यवहार करते हैं । हनुमानजी की सेवा भावना से तो राम बहुत ही कृतकृत्य हो जाते हैं। निष्कर्ष में श्री राम के चरित्र में उदात्त शील का चित्रण करके दोनों महाकवियों ने यही संदेश दिया है कि शुद्ध आचरण युक्त जीवन जीने से हम श्रध्धा के पात्र बन सकते हैं ।

6.21 गुरु शिष्य संबंध :-

आधुनिक युग में गुरु शिष्य के पवित्र संबंधों में एक प्रकार से पूर्ण विराम हो गया है । वर्तमान काल में शिक्षण एक व्यापार, शिक्षक व्यापारी और छात्र एक ग्राहक के रूप में उपस्थित होता है वहाँ ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ में गुरु का शिष्य के प्रति और शिष्य का गुरु के प्रति उत्कृष्ट प्रेम का सुंदर आदर्श प्रकट किया गया है । महाराज दशरथ के दोनों पुत्रों राम और लक्ष्मण को अपने साथ ले जाते हुए विश्वामित्र उनको अस्त्रों-शस्त्रों का पूर्णतः ज्ञान प्रदान करते हैं । पौराणिक कथाएँ तथा अनेक

प्रकार की विद्या प्रदान करते हुए विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को सर्वप्रकार के ज्ञान से भर देते हैं । विश्वामित्र सहित श्री राम और लक्ष्मण सरयू के गंगासंगम के समीप पुण्य आश्रम में रात को ठहरते हैं । सुबह होने पर महर्षि विश्वामित्र ने जिस प्रकार राम को जगाया उसमें उनके पिता तुल्य भाव के दर्शन होते हैं –

कौशल्या सुप्रजा राम पूर्वा संध्या प्रवर्तते ।
उतिष्ठ नर शादूर्ल कर्तव्यं दैवमाह्यिकम ।।[71]

अर्थात् नरश्रेष्ठ राम । तुम्हारे जैसे पुत्र को पाकर महारानी कौशल्या सुपुत्र जननी कही जाती है । यह देखो प्रातः काल की संध्या का समय हो रहा है, उठो और प्रतिदिन किये जाने वाले देव सम्बन्धी कर्मों को पूर्ण करो । जिस प्रकार विश्वामित्र आदर्श गुरु के रूप मेें प्रकट होते हैं, उसी प्रकार राम और लक्ष्मण भी आदर्श शिष्य के रूप में प्रकट होते हें । अपनी छोटी आयु में विश्वामित्र के साथ चल देने वाले राम और लक्ष्मण गुरु की आज्ञा को अपने प्राणो की भी चिंता किये बिना पूरी करते हैं । अयोध्या से आश्रम की ओर जाते हुए विश्वामित्र की आज्ञा से राम ताड़का का वध कर देते हैं । विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा करते हुए दोनों भाई मारीच, सुबाहु आदि राक्षसों के साथ युद्ध करते हुए उनको पराजित कर देते हैं ।[72] गुरु की आज्ञा से ही राम अहल्या का भी उद्धार करते हैं ।[73] 'मानस' के धनुषभंग प्रसंग में भी राम को जब तक गुरु की आज्ञा नहीं मिलती तब तक वे अपने स्थान पर ही बैठे रहते हैं–

विश्वामित्र समय सुभ जानी । बोले अति स्नेहमय बानी ।
उठहु राम भंजहु भव चापा भेटहु तात जनक परिताया ।।[74]

अर्थात् विश्वामित्रजी शुभ समय जानकर अत्यन्त प्रेमभरी वाणी से बोलते है राम! उठो शिवजी का धनुष तोड़ो और हे तात जनक का संताप मिटाओ । अतः 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में गुरु शिष्य के जिस पवित्र प्रेमसंबंधों का वर्णन हुआ है वह वर्तमानकालीन गुरु-शिष्यों के लिए एक ऊँचा आदर्श हो सकता है ।

6.22 असत् वृति का पराभव :-

सत्य की विजय और असत्य का पराजय सनातन सत्य है । दोनों महाकाव्यों में से यही संदेश प्राप्त होता है । रावण, कुंभकर्ण, मारीच, वाली जैसे अत्याचारी और परपीड़क व्यक्तियों का राम के हाथों संहार होते दिखलाकर दोनों महाकवियों ने अधर्म पर धर्म की विजय दिखलायी है । तपस्या से अनेक वरों को प्राप्त कर अपनी शक्ति से मदांध बना हुआ रावण ऋषि मूनि, देव, गन्धर्व मानव आदि के लिए साक्षात् यमराज बना हुआ था । अपनी शक्तियों के सहारे तीनों लोक पर अपना आधिपत्य स्थापित करने हेतु संसार में हाहाकार मचा रहा था । इतना ही नहीं रावण वेदवती, सीता जैसी पवित्र स्त्रियों पर अपनी कामुक वृति से दुःर्व्यवहार भी करता है । यज्ञादि कियाओं में विध्न डालते हुए वह ऋषियों का संहार कर देता है । उनकी असत् वृतियों से तीनों लोक सदैव कंपित सा रहता था । उस समय सनातन धर्म की रक्षा करते हुए श्री राम ने उस महा पापी रावण का संहार करके असत्य पर सत्य की विजय के वाक्य को चरितार्थ कर दिया। अपने भाई की पत्नी को अपनी पत्नी बनाकर राज भुगतते हुए वाली का भी श्री राम अपने एक ही बाण से वध कर देते हैं। अधर्मियों को दण्ड़ देने का अपना उद्देश्य स्पष्ट करते हुए राम वाली को कहते हैं कि –

नहि लोक विरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः ।
दण्डादन्यत्र पश्चामि निग्रहं हरियूथप।। [75]

अर्थात् वानरराज । जो लोकाचार से भ्रष्ट होकर लोकविरुद्ध आचरण करते हैं उसे रोकने या राह पर लाने के लिये मैं दण्ड के सिवा और कोई उपाय नहीं देखता। निष्कर्ष में अधर्म पर धर्म की विजय दिखलाते हुए दोनों महाकवियों ने सत्य की विजय दिखलायी है ।

निष्कर्ष में आधुनिक काल तक वाल्मीकि के नैतिक आदर्शो की बहुत दूर तक रक्षा की गई है । नैतिक आदर्शो के चित्रण द्वारा लोक संग्रह का भाव और भगवद् भक्ति रामकथा परम्परा के इन दोनों तत्त्वों का अपूर्व समन्वय तुलसीदास ने अपने 'रामचरित

मानस' में प्रस्तुत किया है । 'रामायण' के प्रारंभ में ही उनका उद्देश्य स्पष्ट हो जाता है। नारद इश्वाकु कुल में उत्पन्न राम के सद्‌गुणों का वर्णन करते हैं। कौंचपक्षाी की वेदना से व्यथित होकर वाल्मीकि के मुख से शाप के रूप में छन्द फूट पड़ता है तब ब्रह्माजी ने रामचरित गान का उनको उपदेश दिया । इस प्रकार 'रामायण' की मूल प्रेरणा करुणा की भावना और राम के विराट व्यक्तित्व के प्रति श्रद्धा को माना जा सकता है । वाल्मीकि ने अपनी सम्पूर्ण शक्ति द्वारा राम के चरित्र को महामानत्व के रूप में स्थापित किया है । वे अत्यधिक सुंदर, संयमी और धीर-वीर है । वे धर्म के रक्षक और अधर्म रूप रावण के विनाशक है । महामानव राम में ब्रह्मत्व का समावेश करके तुलसीदास ने रामकथाओं का मुख्य उद्देश्य उनकी ब्रह्मसिद्धि बना दिया है । युगों से अनेक कवियों का यही प्रयत्न रहा है कि रामकथा के इन्हीं चरित्रों के द्वारा पारिवारिक, सामाजिक एवं राष्ट्रीय आदर्श की स्थापना की जाये। इसी उद्देश्य की पूर्ति में कोई कवि या लेखक अधिक और कोई कवि या लेखक कम सफल हुए है ।

सूचि

1. वा. रा. बालकाण्ड त्रयौदशः सर्ग : 19,20
2. रा. मानस बालकाण्ड 188/13
3. रा. मानस बालकाण्ड 27/4
4. रा. मानस बालकाण्ड 21/3
5. वा. रा. अयोध्याकाण्ड शततम सर्ग पूरा ।
6. रा. मानस अयोध्याकाण्ड - 155
7. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड अष्टादशः सर्ग -50
8. वा. रा. अयोध्याकाण्ड चर्तुविश : सर्ग -9
9. वा. रा. अयोध्याकाण्ड 163/1
10. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 73/1/2
11. पद्यपुराण (केवल हिन्द) जय दयाल
12. वा. रा. अयोध्याकाण्ड एकोनविशः सर्ग -5
13. वा. रा. अयोध्याकाण्ड एकोनविंश : सर्ग 7
14. रा. मानस अयोध्याकाण्ड -40/4
15. रा. मानस अयोध्याकाण्ड -38/3
16. रा. मानस अयोध्याकाण्ड -38/4
17. रा. मानस अयोध्याकाण्ड - 39
18. रा. मानस अयोध्याकाण्ड -40/3
19. वा. रा. अयोध्याकाण्ड एकोनचत्वारिंशः सर्ग : 36, 37
20. राम चरित मानस अरण्य काण्ड 4/8

20[A] वा. रा. सप्तदशाधिकशततम : सर्ग : 24

21. वा. रा. अयोध्याकाण्ड़ चतुर्विश : सर्ग -13
22. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 54/4
23. वा. रा. लंकाकाण्ड अष्टादशाधिकशतम : सर्ग -5

23[A] वा. रा. उत्तरकाण्ड सप्तनवतितम : सर्ग – 14

24. रा. मानस सुन्दरकाण्ड 8/2,3
25. वा. रा. अयोध्याकाण्ड एकोनचत्वारिंश : सर्ग-15
26 वा. रा. अयोध्याकाण्ड चतुरधिकशततमः सर्ग – 23
27. वा. रा. अयोध्याकाण्ड चतुरधिकतमतम : सग 24,25,26
28. रा. मानस अध्योध्याकाण्ड 286/4
29. वा. रा. अयोध्याकाण्ड द्विषष्टिम सर्ग : 11,12
30. वा. रा. अयोध्याकाण्ड सप्तविंश सग -6
31. रा. मानस अरण्यकाण्ड 5/ख
32. वा. रा. अयोध्याकाण्ड एकोनत्रिशं : सर्ग -31
33. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 66/1,2,3,
34. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 66/4
35. तुलसीकाव्य का सांस्कृति अध्ययनः डॉ. जितेन्द्रनाथ पाण्डेय पृ.91
36. वा. रा. अयोध्याकाण्ड चतुः सप्ततितम : सर्ग-7
37. वा. रा. अयोध्याकाण्ड पच्चसप्ततितम सर्ग : पूरा तथा रा. मानस अयोध्याकाण्ड 166/3 से लेकर 167/4
38. वा. रा. अयोध्याकाण्ड एकविंश सर्ग 10, 19
39. रा. मानस अयोध्याकाण्ड -41/1
40. वा. रा. अयोध्याकाण्ड सप्ततितम : सर्ग-8
41. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 73/1
42. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड षष्ठ सर्ग – 22
43. वा. रा. सुन्दरकाण्ड पच्चपच्चाशः सर्ग - 10
44. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड पंचम सर्ग – 25
45. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड षष्ठ सर्ग – 6
46. रा. मानस किष्किन्धाकाण्ड 6/2,3,4
47. रा. मानस किष्किन्धाकाण्ड 6/1
48. रा. मानस अयोध्याकाण्ड़ -89/2
49. रा. मानस अयोध्याकाण्ड -100/4

50. रा. मानस अरण्यकाण्ड -9/5,6

50 A रा.मा. अरण्यकाण्ड दोहा 35 के बाद का छन्द

50 B वा.रा. युद्ध काण्ड पच्चदशाधिक शततम सर्ग - 2

50 C वा.रा. युद्ध काण्ड पच्चदशाधिक शततम सर्ग – 5

51. रा. मानस अरण्यकाण्ड – 9/5,6

52. रा. मानस सुन्दरकाण्ड 50/2

53. वा. रा. युद्धकाण्ड चतुः सप्ततितम : सर्ग 72,73,74

54. वा.रा. युद्धकाण्ड एकाधिकशततम : सर्ग : 43

55. रा. मानस सुन्दरकाण्ड -1

56. वा. रा. बालकाण्ड षष्ठ : सर्ग – 6

57. रा. मानस उत्तरकाण्ड 20/1

58. रा. मानस उत्तरकाण्ड 20/3

59. रा. मानस उत्तरकाण्ड 20

60. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 102

61. रा. मानस अयोध्याकाण्ड 242/3

62. वा. रा. अरण्यकाण्ड चतुः सप्ततितम सर्ग पूरा ।

63. रा. मानस अरण्यकाण्ड 34/1

64. रा. मानस अरण्यकाण्ड 34/3

65. रा. मानस बालकाण्ड 84

66. रा. मानस बालकाण्ड 86/3

67. वा.रा. अयोध्याकाण्ड त्रिपच्चाशः सर्ग – 13

68. रा. मानस अरण्यकाण्ड-43

69. वा.रा. युद्ध काण्ड एकोनविंशत्यधिक शततम सर्ग – 26

70. वा.रा. युद्ध काण्ड पच्चविंशः सर्ग - 21

71. वा. रा. बालकाण्ड त्रयोविंशः सर्ग-2

72. रा. मानस बालकाण्ड 209/2,3

73. रा. मानस बालकाण्ड 210

74. रा. मानस बालकाण्ड 253/2

75. वा. रा. किष्किन्धाकाण्ड अष्टादर्शःसर्ग – 21

उपसंहार

मानवता के मूर्धन्य पूजारी महर्षि वाल्मीकि तथा भक्त शिरोमणि महाकवि गोस्वामी तुलसीदास अपने सम्बन्ध में प्रायः मूक ही रहे हैं । इसी कारण उनके जीवन के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है । इन दोनों महाकवियों ने ये तनिक भी चिंतां नहीं कि मैं अमुक बड़ा कार्य करु जो मुझे सम्मान के शिखर पर आरूढ़ कराएँ । इन दोनों कवियों का लक्ष्य महत्तम था । वे इसके अभिलाषी थे कि उनके कार्य से विश्व का परम कल्याण हो, वे कौन है ? उनका पत्ता क्या है ? इन्हीं बातों को वो गुप्त ही रखते थे। यदि संसार छानबीन करके जानना चाहे तो जान ले पर वे खुद बताना नहीं चाहते थे । अतः ऐसे महाकवियों के जीवन चरित्र को जानने के लिए उनकी रचनाएँ, समकालीन एवं परवर्ती रचनाओं तथा जनश्रुतियों में जो झलक कहीं मिलती है, उसी के आधार पर जीवन की रूपरेखा निश्चित करनी पड़ती है । इसके आधार पर इतना निष्कर्ष दे सकते हैं कि दोनों महाकवियों का जन्म ब्राह्मण कुल में हुआ था। महर्षि वाल्मीकि राम के समकालीन रहे हैं और अपने युग के राजा राम का चरित्र 'रामायण' महाकाव्य मे चित्रित किया है। तुलसीदास ने 'रामायण' को आधार बनाकर 'रामचरित मानस' की रचना करते हुए श्री राम का भक्तिपूर्वक यशोगान किया है। तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' के सिवा ओर भी कई ग्रन्थों की रचना की है । इन ग्रन्थों में से केवल 12 ग्रन्थ ही तुलसीदास के प्रामाणिक ठहरते है। वाल्मीकि सप्तर्षि के उपदेश के परिणाम स्वरूप महर्षि वाल्मीकि बने इसी प्रकार तुलसी पत्नी के उपदेश भरे वावय से महाकवि तुलसीदास बने । अतः दोनो महाकवियों ने श्री राम के जीवन चरित्र को चित्रित करते हुए 'रामायण' और 'रामचरित मानस' जैसे दो अनमोल ग्रन्थ संसार को दिये ।

महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में अपनी युगीन परिस्थितियों का चित्रण किया है । जिसमें राज्य राजा, युद्ध, सेना, वर्णव्यवस्था, आश्रमव्यवस्था, कुटुम्बव्यवस्था, शिक्षा, आभुषण, खान पान, उत्सव, आर्थिक धार्मिक आदि

परिस्थितियों को चित्रित किया है । राज्य की सीमाओं की दृष्टि से शांत वाल्मीकि युग सुखी और समृद्ध था । जबकि तुलसीदास का युग इससे विपरीत अशांत एवं दीन था । रामायण कालीन राज्य पूर्णतः प्रजासत्ताक था, जन-समूह और मंत्रियों का निर्णय अंतिम माना जाता था । तुलसीदास के युग में राजा इच्छानुसार व्यवहार करता था । प्रजा का विश्वास प्राप्त करना वह आवश्यक नहीं समझता था । वाल्मीकि के युग में समाज में चार वर्ण थे और चारों वर्ण के लोग अपने अपने कार्यो से खुश थे । पूरा समाज वर्णव्यवस्था पर आधारीत था । तुलसीदास के युग में वर्णाश्रम व्यवस्था छिन्न भिन्न हो गई थी । कर्म से होने वाला जातिगत निर्धारत इस युग में जन्म पर होने लगा था । रामायण काल में ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यांस चार आश्रमों की व्यवस्था थी । इन्हीं के द्वारा सुंदर समाज व्यवस्था बनाने का प्रयत्न किया जाता था । परिणाम स्वरूप वाल्मीकि युग में आदर्श समाज व्यवस्था का दर्शन होता है । तुलसीदास के युग में आश्रम व्यवस्था लगभग पूर्णतः नष्ट हो गयी थी । वर्ण विभाग और आश्रमधर्म सब मीट गये थे । रामायणकाल में शिक्षा प्राप्त करने का सबको अधिकार था तथा गुरु और शिष्य के बीच में आदरणीय संबंध था । जबकि तुलसीदास के युग में इससे विपरीत स्वार्थ वश शिष्य गुरुकी हत्या भी कर देता था । रामायणकालीन अर्थनीति में वर्णाश्रमों के आधार पर ही व्यवसाय निश्चित होने से स्पर्धाओं का अभाव था और और सभी को काम मिलता था । तुलसीदास के युग में व्यवसाय वर्णव्यवस्था पर न रहकर इच्छानुसार हो गया था । परिणामतः स्पर्धाएँ बढ़ने लगी थी और बार-बार अकाल पड़ने से यह युग आर्थिक दृष्टि से मानो तूट चूका था। रामायणकालीन धार्मिक परिस्थिति देखे तो उस युग में सनातन हिन्दु धर्म अपनी पराकाष्टा पर था । धर्म से विपरित किसी का भी व्यवहार नहीं रहता था । जबकि तुलसीदास के युग में वहीं वैदिक हिन्दु धर्म का ह्रास हो गया था । समाज अनेक धर्म, सम्प्रदाय तथा उपसम्प्रदाय में बँट चूका था । संक्षेप में रामायण कालीन राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं आर्थिक परिस्थिति को लेकर किसी को भी असंतोष नहीं था । सब कोई सुखी, सम्पन्न तथा चारित्र्यवान थे । जबकि इससे विपरीत तुलसीदास के युग में राजा से लेकर प्रजातक सब कोई अपनी-अपनी मर्यादाएँ

खो चूके थे । समाज व्यवस्था टूट सी गई थी । सभी सामाजिक रिश्तों में दरार सी हो गई थी । अतः दोनों महाकवियों ने अपने अपने युग की आवश्यकता के अनुसार रामकथा के झरिए नया-नया आदर्श प्रस्तुत किया है ।

महर्षिवाल्मीकि कृत 'रामायण' तथा संतकवि तुलसीदास कृत' रामचरित मानस' की सृष्टि भारतीय ललित साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण उपलब्धि है । इन दोनों महाग्रन्थों में वैयवितक पारिवारिक एवं सामाजिक आदर्शों को अत्यंत भव्यातिभव्य रूप में प्रकट किया गया है । दोनों महाकाव्यों में राम एक ऐसे सांस्कृतिक प्रतीक के रूप में प्रकट होते है जिनके जीवन चरित्र के माध्यम से प्रत्येक युग अपनी समस्याओं का समाधान खोज सकता है । दोनों महाग्रन्थ सात-सात काण्डों में विभक्त है । महर्षिवाल्मीकि ने बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक में श्री राम के पूर्ण जीवन चरित्र को दिया है । जबकि तुलसीदास ने राम की रावण पर विजय तथा अयोध्या के नरेश के रूप में राम का राज्याभिषेक तक की कथा को देते हुए सीता पुनः वनवास की कथा को छोड़ दिया है। अपने युगानुरूप कथा को ढालने के लिए तुलसीदास ने वाल्मीकीय रामायण के कथानक में आवश्यक परिवर्तन भी कर दिये हैं । दोनो महाकाव्यों में प्राचीन एवं मध्ययुगीन दुरी तो है पर देशगत दुरी नहीं है । 'रामायण' और 'मानस' का कथानक चरित काव्य है और जिनका लक्ष्य एक ही प्रतीत होता है, वह है धर्म की संस्थापना एवं धर्म का आदर्श रूप प्रस्तुत करना । 'रामचरित मानस' में तुलसीदास ने 'रामायण' में अर्न्तनिहित रागिनी नहीं बदली, राम नहीं बदले केवल रामकथा के वेश और परिवेश को बदल दिया है । परिणाम स्वरूप वाल्मीकि के सशक्त महामानव श्री राम अनंतशील सौन्दर्यमय होकर प्रकट हुए है ।

आदि कवि महर्षिवाल्मीकि ने अपने महाकाव्य 'रामायण' में एक आदर्श समाज की परिकल्पना की है । पृथ्वी पर स्वर्ग का निर्माण करने के लिए मनुष्य को मानसिक दुर्बलताओं पर विजय प्राप्त करके अपने शारीरिक शक्तियों के विकासक्रम को कायम रखना चाहिए । 'रामायण' में जीवन की मानसिक तथा शारीरिक शक्तियों के

विकासक्रम को जितनी सफलता तथा सुन्दरता से चित्रित किया गया है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है । तुलसीदास ने भी अपने समय की राजनैतिक, सामाजिक परिस्थितियों से प्रभावित होकर ‘रामचरित मानस’ में रामराज्य तथा आदर्श सामाजिक परिस्थिति का सुंदर चित्रण किया है । पारिवारिक मर्यादाएँ जहाँ लुप्त दिखाई देती थी वहाँ तुलसीदास ने दशरथ परिवार का चित्रण करके श्रेष्ठ पारिवारिक आदर्श स्थापित किया है । साहित्यकार वास्तव में समाज की व्यवस्था, वातावरण धर्म, कर्म, रीति, नीति तथा सामाजिक शिष्टाचार या लोकव्यवहार से ही अपने साहित्य का उपकरण चुनता है और उनको अपने आदर्श तथा अपनी प्रणाली से प्रस्तुत करते हैं । संस्कृत एवं हिन्दी के कवियों की अपनी अपनी काव्य रचना की प्रणाली रही है । इनमें भी महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने अपने युगानुरूप प्रणाली के साथ ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ में रामकथा को गाया है ।

चरित्र-चित्रण प्रबन्ध रचना का अनिवार्य तत्व होता है और इसके द्वारा ही काव्य में प्राणतत्व का संचार होता है । संस्कृत साहित्य में स्वयशोवृद्धि के लिए ख्याति प्राप्त कुलीन स्थैर्यवृति- पुरुषों के चारित्रिक गुणगान करने की प्रवृति रही है। इनके पात्र असामान्य विशिष्टता से ओतप्रोत दृष्टिगत होते हैं । संस्कृत कवियों द्वारा पात्रों में किसी नियतादर्श को ही प्रतिष्ठित किया जाता हुआ देखा जाता है, फिर भी व्यक्तिगत चरित्र वाले चरित्र भी देखे जाते है, राम की गम्भीरता लक्ष्मण का क्रोध, देवताओं की स्वार्थवृति दुराचारों का दुराचार आदि बिना चर्चा के पाठक वृन्द को दृष्टिगत होता है । हिन्दी के आधुनिक रामकाव्योमें प्रायः सभी प्रकार के पात्रों को स्थान दिया गया हैं। आधुनिक हिन्दी रामकाव्य में सुर असुर तथा उससे सम्भवित पात्रों को मानवी स्वरूप दे दिया है। पात्रों के चरित्र चित्रण में लोक प्रसिद्धता एवं उसके वैयक्तिक स्वरूप को मानस पटल पर रखकर अपने विवेक रूपी तूलिका से चारित्रित समार्जन कर सहृदयों के समक्ष उनके आदर्श चरित्र को प्रकट करने का समस्त कवियों ने प्रयास किया है । हिन्दी के आधुनिक रामकाव्यों में वर्तमानकालीन आदर्शो को कवियों ने जोड़ दिया है ।

वर्तमानकालीन लोकतंत्र, साम्यवाद एवं समाजवाद की अनेक संकल्पनाएँ पात्रों में समाहित की गई है । निष्कर्ष में अपने युग की आवश्यकतानुसार रामकथा तथा उनके चरित्रों के चित्रण में थोड़ा बहुत परिवर्तन करते हुए महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने समाज को 'रामायण' और 'रामचरित मानस' जैसे दो महाकाव्यों की भेंट दी है ।

'रामायण' और 'रामचरित मानस' में चरित्रों का चित्रण दोनों महाकवियों ने विकासोन्मुख युग की आवश्यकता के अनुरूप किया है । महर्षि वाल्मीकि ने श्रीराम का मर्यादा पुरुषोतम के रूप में चित्रण किया है । जबकि गोस्वामी तुलसीदास में 'रामायण' महाकाव्य से प्रभावित होते हुए राम के चरित्र में नर से लेकर नारायण तक का सर्वांगी दर्शन करवाया है । 'रामायण' के राम महर्षि वाल्मीकि के समकालीन होने से उनका एक श्रेष्ठ राजा के रूपमें चित्रण हुआ है । वाल्मीकि ने राम के चरित्र में मानवीय दुर्बलताओं को प्रकट करते हुए उनको पुर्ण पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित किया है । तुलसीदास ने भी राम के चरित्र में मानवीय संवेदनाओं को भरा है । 'मानस' के राम सुख में हर्षित तथा दुःख में विचलित होते है परंतु वह उनकी लीला मात्र है । अतः लोककल्याण में आस्था रखने वाले तुलसीदास ने ब्रह्म के पालक रूप का विशेष स्वीकार किया है ।

महर्षि वाल्मीकि ने सुमित्रापुत्र लक्ष्मण का आदर्श भ्रातृसेवक के रूप में चित्रण किया है । जबकि तुलसीदास ने लक्ष्मण का आदर्श भ्रातृसेवक के साथ साथ शेषावतार के रूप में भी चित्रण किया है । दोनों महाकवियों ने लक्ष्मण का राम के पुरोगामी के रूप में चित्रण करते हुए उनके असामान्य, अलौकिक और अपूर्व चरित्र को 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में प्रकट किया है ।

लक्ष्मण की ही भांति भ्रातृ सेवक भरत भक्ति और भ्रातृप्रेम की एक आदर्श मूर्ति के रूप में प्रकट होते हैं । भरत का उदात्त चरित्र, निष्ठा, स्वार्थ त्याग, कुलोचित गौरव तथा भ्रातृप्रेम आदि उनके चरित्र के ऐसे मौलिक गुण है जो वाल्मीकि 'रामायण' से लेकर 'रामचरित मानस' तक लगभग समान रूप से उत्कीर्ण किये गये है। 'रामायण'

में भरत के चरित्र का महत्व इसीलिए है कि भ्रातृत्व के कारण उन्होंने राज्य का अस्वीकार कर दिया । 'मानस' में भरत का चरित्र इसी केन्द्रबिन्दु से आलोकित होता है । तुलसीदास ने भरत का विभिन्न पात्रों से स्तवन कराते समय उनके गुणों को और अधिक प्रकाशित कर दिया है ।

सत्य प्रतिज्ञ तथा पुत्र प्रेमी महाराज दशरथ के चरित्र को दोनों महाकवियों ने थोड़े बहुत परिवर्तन के साथ चित्रित किया है । दोनों महाकाव्यों में महाराज दशरथ राम को वनवास देकर सत्य की तथा अपने प्राणों को देकर पुत्र स्नेह की रक्षा करते हुए दिखाई देते हैं । महाराज दशरथ का चरित्र सत्यव्रती, दयाुल, कृतज्ञ तथा प्रतिज्ञा पालक जैसे गुणों से में महान बन गया है ।

'रामायण' और 'रामचरित मानस' दोनों महाकाव्यों में महर्षिवाल्मीकि एवं तुलसीदास की अप्रतिम कला एवं कवित्व शक्ति की पराकाष्टा हनुमानजी के चरित्र में दिखाई देती है । दोनों महाकाव्य में हनुमानजी की कर्तव्य परायणता, सेवा भावना, तथा बुद्धि चातुर्थ अद्वितीय है । दोनों महाकवियों ने आवश्यकताओं के अनुसार हनुमानजी के चरित्र में परिवर्तन करते हुए उनके चरित्र को ओर अधिक उजागर करने का प्रयत्न किया है ।

'रामायण' और 'रामचरित मानस' के रावण में प्रत्यक्ष कुछ अधिक अन्तर है परंतु मूल्तः वह उतना नहीं है । महर्षि वाल्मीकि ने रावण की प्रशंसा राम के मुख से अनेकबार करवाई है अतः इससे रावण का तो गौरव बढ़ा दिया पर साथ में राम का भी गौरव बढ़ गया है । तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में रावण की निन्दा, तिरस्कार और लांछना खुलकर की है । अतः 'रामचरित मानस' के राम रावण के तेज को पचाकर अपने तेज की वृद्धि करते हैं । 'रामायण' में कई स्थलों पर रावण की भयंकर रूपाकृति का उल्लेख मिलता है जो उनका मायारूप कहा गया है । 'रामायण' में रावण एक ओर अत्याचारी परपीड़क तथा स्वच्छंदी के रूप में प्रकट होता है तो दूसरी ओर उनके शील, सौन्दर्य, पांडित्य, शक्ति तथा बुद्धि महिमा का स्तवन भी है । 'रामचरित

मानस' में तुलसीदास ने रावण को हिरण्याक्ष, जलंधर, राजा प्रतापभानु और जय विजय पुर्नजन्म प्राप्त व्यक्तित्व माना है । अतः दोनों महाकवियों ने रावण का युगानुरूप चित्रण करते हुए प्रतिनायक के रूप में उनको चित्रित किया है ।

'रामायण में अयोनिजा सीता का महर्षि वाल्मीकि ने पुत्रीवत् चित्रण किया है। इसीलिए उनके प्रत्येक भावों को बड़ी आसानी से महर्षि ने प्रकट किया है । 'मानस' में तुलसीदास ने सीता को जगत जननी जगदम्बा के रूप में चित्रित करते हुए उनको मर्यादानुरागिणी, संतोषशीला तथा विनम्रता आदि गुणों से सम्पन्न बताया है।

वाल्मीकीय रामायण में कौशल्या का राजमाता के रूप में चित्रण हुआ है । महर्षि वाल्मीकि ने कौशल्या को मानवी भूमि पर प्रतिष्ठित करने का प्रयत्न किया है। जबकि तुलसीदास ने 'रामचरित मानस' में कौशल्या का चित्रण अलौकिक एवं आदर्श धरातल पर लिया है ।

'रामायण' में कैकेयी का यर्थाथ रूप में चित्रण हुआ है । 'रामचरित मानस' में तुलसीदास ने कैकेयी के दुर्गुणों की मूल प्रेरणा सरस्वति को मानकर उन्हें निर्दोष दिखाने का प्रयत्न किया है । तुलसीदास ने कैकेयी का उदार हृदया तथा उनका ग्लानिमय रूप प्रस्तुत किया है ।

दोनों महाकवियों ने गौण पुरुष पात्रों में भी अपनी आवश्यकतानुसार परिवर्तन करते हुए उनका चरित्र- चित्रण किया है । सुग्रीव और वाली के वीरता भरे प्रसंगों को महर्षिवाल्मीकि ने 'रामायण' में विस्तार से दिया है । यहाँ सुग्रीव के चरित्र में भीरुता के साथ-साथ वीरता का गुण दिखाई देता है । वाल्मीकि ने वाली को भी एक नायक की भांति चित्रित किया है । जबकि 'रामचरित मानस' में इनका अभाव है । दोनों महाकवियों ने शत्रुघ्न को भरत के अनुगामी के रूप में चित्रित किया है । वाल्मीकि ने इनकी वीरता को दिखाता हुआ लवणासुर वध का प्रसंग दिया है । जबकि मानसकार ने लवणासुर के प्रसंग को छोड़ दिया है । दोनो महाकाव्यों में वशिष्ठ को इश्वाकु कुल के पुरोहित, कुलगुरु तथा एक समाधानकारी विचारक के रूप में प्रकट किया है ।

‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ में अपने पुत्र, भाई, परिवार, देश आदि को छोड़कर राम की सहायता करनेवाले विभिषण का चरित्र स्पष्ट रूप से प्रकट न होकर विवादास्पद चरित्र के रूप में प्रकट होता हुआ दिखाई देता है । मेघनाद और अंगद दोनों राजकुमार अपने पराक्रमों को दिखाते हुए दोनों महाकाव्यों में अपना महत्व का स्थान रखते है । एक रावणमय और दूसरा राममय होकर अपना सर्वस्व समर्पित कर देने वाले दोनों महाभट्ट योद्धा मेघनाद और अंगद का चरित्र उच्च कोटि का बन गया है। ‘रामायण’ में महाराज जनक के स्नेही पारिवारिक पक्ष को इतना नहीं उभरा गया जितना ‘मानस’ में उभारा गया है । ‘मानस’ में महाराज जनक का चरित्र भक्त हृदय को पावन एवं रसमय कर देता है।

गौण पुरुषपात्रों की भांति गौण स्त्री पात्रों में भी दोनों महाकवियों ने आंशिक परिवर्तन करते हुए उनका चरित्र चित्रण किया है । ‘रामायण’ में सुमित्रा का वीर क्षत्राणी, विवेकशीला के रूपमें चित्रण हुआ है तो तुलसीदास ने उन्हीं गुणों में संवेदनशीलता तथा व्यवहार कुशलता जैसे गुणों को भरकर सुमित्रा के पात्र को आदर्श पात्र बना दिया है । दोनों महाकाव्यों में मन्दोदरी का राक्षसजाति की आदर्श स्त्री तथा अनुपम सुन्दरी के रूप में चित्रण हुआ है । दोनों महाकवियों ने तारा का भी पतिव्रता स्त्री के रूप में चित्रण किया है । रामकथा के वस्तु विकास की महत्वपूर्ण कड़ी मंथरा का ‘रामायण’ में विस्तृत वर्णन है । जबकि ‘मानस’ में इसका संक्षिप्त वर्णन ही है । दोनों महाकाव्यों में मंथरा का स्वामिभक्ता के रूप में चित्रण हुआ है ।

‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ में कई ऐसे अतिगौण पात्र भी है जो प्रकट होकर कथा विकास में अपना योगदान देते हैं और लुप्त हो जाते हैं । इन सभी पुरुष और स्त्री पात्रों का दोनों महाकवियों ने आवश्यकतानुसार चित्रण किया है।

चरित्र प्रधान महाकाव्यों की यह विशेष्ता रही है कि उसमें कार्यकलाप गौण रहते है परंतु उनमें छीपी भावना और आदर्श की मुख्यता रहती है । इसी प्रकार से ‘रामायण’ और ‘रामचरित मानस’ चरित प्रधान काव्य है । जिनका लक्ष्य एक ही

प्रतीत होता है और वह है धर्म का आदर्श रूप प्रस्तुत करना । कवि या लेखक की महानता उनके चरित्रों के निर्माण से आंकी जाती है । महर्षि वाल्मीकि और तुलसीदास ने ऐसे आदर्श चरित्र प्रस्तुत किये हैं जो आज भी संसार में अपने आदर्शो को प्रस्तुत करते हैं । दोनों महाकाव्यों में महाराज दशरथ सत्य की खातिर अपनी सबसे प्रिय वस्तु की बलि चढ़ा देते हैं । राम भी अयोध्या के सिंहासन को छोड़कर पिता की आज्ञा का पालन करते हुए चौदहवर्ष के लिए वन चले जाते हैं । भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्न के द्वारा भ्रातृत्व का सुनहरा संदेश इन कवियों ने हमें दिया है । कौशल्या तथा सुमित्रा के चरित्र के द्वारा मा के ममत्व का सुंदर संदेश प्राप्त होता है। कैकेयी भी समाज के सामने एक आदर्श उपस्थित करती हैं कि यदि कोई अपराध हो जाये तो सच्चे दिल से पश्चाताप किये जाने पर पुनः पावन हो सकते हैं। सीता के रूप में दोनों महाकवियों ने पतिव्रता नारी का आदर्श प्रस्तुत किया है । सुग्रीव निषादराज, विभिषण आदि पात्रों के जीवन चरित्र से हमें आदर्श मित्रता का उपदेश प्राप्त होता है । अतः 'रामायण' और 'रामचरित मानस' के प्रमुख या गौण अथवा अतिगौण सभी पात्र अपने युगानुरूप कोई न कोई संदेश ध्वनित करते हैं ।

निष्कर्ष में महर्षि वाल्मीकि राम और सीता को विष्णु और लक्ष्मी का अवतार तो मानते हैं, परंतु साथ ही उनको इतिहास पुरुष और नारी भी मानते हैं । इसीलिए वे राम के मर्यादापुरुषोत्तम रूप को शील, सौन्दर्य और शक्ति का प्रतिरूप बनाकर चित्रित करते हैं । 'रामायण' के पात्र चाहे वे पुरुष हो या स्त्री सबके सब अपनी पूर्णतः यर्थाथता के साथ प्रकट होते हैं । जबकि तुलसीदास के पात्र आदर्शता की कसौटी पर कसकर चित्रित हुए है । 'रामायण' और 'रामचरित मानस' में चित्रित पात्र न केवल तत्कालीन समाज का सच्चा प्रतिनिधित्व करते हैं परंतु सहस्त्राब्दियों तक विश्व मानवता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करते रहे हैं और करते रहेंगे।

आधारभूत ग्रन्थ

क्रम	*ग्रन्थ*	*लेखक*	*प्रकाशक*	*प्रकाशन वर्ष*
1.	श्रीमद वाल्मीकीय रामायण	वाल्मीकि	गीता प्रेस गोरखपुर	सं.2050 बारहवाँ संस्करण
2.	श्री रामचरित मानस	तुलसीदास	गीता प्रेस गोरखपुर	सं.2058 चौसठवाँ संस्करण

सहायक ग्रन्थ

1.	श्री वाल्मीकि रामायण दर्शन	पांडुरंग शास्त्री	सद्विचार ट्रस्ट मुंबई	1992 चौदहवीं आवृति
2.	हिन्दी रामकाव्य स्वरूप और विकास बदलते युग बोध के परिप्रेक्ष्य में	प्रेमचन्द्र महेश्वरी	वाणी प्रकाशन नई दिल्ली	1996 द्वितीय संस्करण
3.	रामायण रहस्य	अभिलाषदास	कबीर पारख संस्थान कानपुर	द्वितीय संस्करण
4.	साकेत समीक्षा	ऋचा मिश्रा	विकास प्रकाशन कानपुर	2005 ई. प्रथम संस्करण
5.	तुलसीदास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	दिव्य डिस्ट्रीब्यूटर्स गोविन्दनगर कानपुर	2004
6.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	प्रकाशन संस्थान नयी दिल्ली	2002 प्रथम संस्करण
7.	तुलसी के काव्यादर्श	मालती दूबे, डॉ. रामगोपाल सिंह	पार्श्व प्रकाशन अहमदाबाद	
8.	कवितावली	तुलसीदास	रामनारायणलाल	सं.2013
9.	वाल्मीकी रामायणे सुन्दरकाण्डम्	गौतम वी. पटेल पी.ए.भट्ट रंजनबहेन दवे, विनोदभाई पंड्या आदि	सी. जमनादास की कंपनी अहमदाबाद	

10.	वाल्मीकि तथा तुलसीदास के नारी पात्र	डॉ. संतोष मोटवानी	ज्ञान प्रकाशन कानपुर	2005 प्रथम संस्करण
11.	तुलसीदास और उनका युग	डॉ. राजपति दीक्षित	ज्ञाल मण्डल लिमिटेड वाराणसी-5	सं.2032
12.	तुलसी साहित्य और साधना	इन्द्रपालसिंह 'इन्द्र'	विनोद पुस्तक मंदिर आगरा	ई.1974
13.	पार्वती मंगल	गोस्वामी तुलसीदास	गीता प्रेस, गोरखपुर	संवत 2063 चौतीसवा संस्करण
14.	जानकी मंगल	गोस्वामी तुलसीदास	गीता प्रेस, गोरखपुर	संवत 2061 सताईसवाँ संस्करण
15.	हनुमान बाहुक	तुलसीदास	गीता प्रेस, गोरखपुर	संवत 2061 चौसठवाँ संस्करण
16.	मनुस्मृति	श्री कुल्लुक भट्ट प्रणीत 'मन्वर्थ मुक्तावली' टीका सहित 'मणिप्रभा' हिन्दी व्याख्योपेता- हरगोंविद शास्त्री	चौखम्भा संस्कृत संस्थान वाराणसी	षष्ट संस्करण
17.	राम कथा के पात्र	डॉ. राजूकर	ग्रन्थम, रामबाग कानपुर	1982 ई प्रथम संस्करण
18.	संस्कृति के चार अध्याय	रामधारी सिंह दिनकर	लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद	2003 नवीन संस्करण
19.	अदभूत रामायण	महर्षि वाल्मीकी अनुवादक : रामकुमार रोय	प्राच्य प्रकाशन वाराणसी	1982
20.	राम रसेन्द्र चन्द्रिका	कवि नारणदानजी सुरुकृत	देवीपुत्र प्रकाशन चारणीया राजकोट	सं. 2054
21.	तुलसीकृत रामकाव्य में लोकतत्व	डॉ. मृदुला गुप्ता	भावना प्रकाशन दिल्ली	1995 प्रथम संस्करण

22.	रामायण में नारी	डॉ. अर्चना विश्नाई	परिमल पब्लिकेशन्स दिल्ली	2002 प्रथम संस्करण
23.	पू. मोरारिबापू के कथामृत पर आधारित रामायण (गुजराती)	-	जलाराम ज्योत प्रकाशन, राजकोट	1982 प्रथम संस्करण
24.	रामकथा	कामिल बुल्के	हिन्दी परिषद-प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित	2002 ई. छठा संस्करण
25.	पद्म पुराण	सं.जयदयाल गोयन्दका	गीता प्रेस, गोरखपुर	सं. 2063 सत्रहवाँ संस्करण
26.	हनुमन्नाटक	हृदय राम	श्री वेंकेटेश्वर प्रेस मुंबई	
27.	रामचरित मानस तुलनात्मक अध्ययन	सं. नगेन्द्र सहायक सहा.सं. रामनाथ त्रिपाठी	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली	
28.	तुलसीदास का कथा शिल्प	डॉ. रागेय राघव	मध्यप्रदेश साहित्य प्रकाशन विलासपुर	सन् 1959
29.	ब्रह्म पुराण	सं.मनसुखराय मोर	वि. कलकता	सं. 2010 प्रथम संस्करण
30.	आनन्द रामायण	टीकाकार पण्डित रामतेज त्रिपाठी	पण्डित पुस्तकालय वाराणसी	सन् 1972
31.	अध्यात्म रामायण	अनुवादकः मुनिलाल	गीता प्रेस गोरखपुर	सं.2063 तैतीसवा संस्करण
32.	राम काव्यों में नारी	डॉ. विद्या	सत्साहित्य संस्थान दिल्ली	1958 ई प्रथम संस्करण
33.	तुलसीकाव्य मीमांसा	डॉ. उदयभानुसिंह	राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली	1966 ई
34.	तुलसीदास	डॉ. माता प्रसाद गुप्त	लोकभारतीय प्रकाशन 15 ए महात्मागांधीमार्ग इलाहाबाद-1	2002 छठा संस्करण

35	मूल गोसाई चरित	बेनीमाधवदास कृत	गीता प्रेस, गोरखपुर	सं. 1919
36.	प्राचीन भारत का इतिहास	विद्याधर महाजन	एस.चन्द एन्ड कम्पनी रामनगर, नई दिल्ली	तृतीय संस्करण
37.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	डॉ. माधव सोनटके	विकास प्रकाशन साकेतनगर-कानपुर-	1992 14 प्रथम संस्करण
38.	मानस रहस्य	जयरामदास दिन	गीता प्रकय, गोरखपुर	सं.2054 उन्नीसवां संस्करण
39.	श्रीमद् भगवद् गीता (गुजराती)	-	गीता प्रेस, गोरखपुर	सं. 2061 पचीसवाँ संस्करण
40.	हिन्दी प्रबंध काव्य में रावण	डॉ. सुरेशचन्द्र निर्मल	भावना प्रकाशन 125/2 रेल्वे क्वाटर्स मातासुन्दर पेलेस नई दिल्ली	1975 प्रथम संस्करण
41.	मानस के राम और सीता	द्वारका प्रसाद मिश्र भोपाल	राधाकृष्ण प्रकाशन 2, अन्सारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-6	अगस्त 2002 प्रथम संस्करण
42.	तुलसी साहित्य में नारी	डॉ. शारदात्यागी	ईशान प्रकाशन	अगस्त
43.	रामायण का विश्वव्यापी व्यक्तित्व	लल्लन प्रसाद व्यास	बी. आर पब्लिशिंग-कोर्पोरेशन दिल्ली	
44.	उतर रामचरित और आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्य परम्परा	डॉ.कृष्णगोपाल मिश्र	रचना प्रकाशन जयपुर	2000 संस्करण
45.	राम कथा और उसके नारी पात्र प्रस्तुतिकरण एवं मनोविज्ञान	डॉ. आशाभारती	इतिहास शोध संस्थान, महरौली नई, दिल्ली	1986 प्रथम संस्करण
46.	विभिन्न युगों में सीता का चरित्र चित्रण	डॉ. सुधा गुप्ता	प्रज्ञा प्रकाशन नई दिल्ली	जनवरी 1978 प्रथम संस्करण

47.	जानकी हरण	महाकवि कुमारदास अनुवादक, व्रजमोहन व्यास संपादकःश्री कृष्णदास	मित्र प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, इलाहाबाद-3	
48.	मानस की महिलाएँ	श्री रामानन्द शर्मा	कन्या कुमारी मद्रास	प्रकाशन 1962 प्रथम संस्कार
49.	श्री रामचरित मानस ब्रह्मअन्तर्कथाकोष	डॉ. बिन्दू दूबे	कला प्रकाशन	2000 प्रथम संस्करण
50.	तुलसी साहित्य में चरित्र सम्बन्धी अवधारणा	डॉ. रेणु माहेश्वरी	सत्यम पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली	2005 प्रथम संस्करण
52.	मुक्तावली-4	रामकिंकर उपाध्याय	आर्ट एन्ड कल्चर कलकता	सं. 2032
53.	रामायण का आचार दर्शन	अम्बा प्रसाद श्रीवास्तव	भारतीय ज्ञानपीठ नयी दिल्ली	2000 दूसरा संस्करण
54.	हिन्दी के आधुनिक राम काव्य का अनुशीलन	डॉ. परमलाल गुप्त	रचना प्रकाशन इलाहाबाद	1973 प्रथम संस्करण
55.	रामायण एक नया दृष्टिकोण	प.ह. गुप्ता	विश्व विजय प्राईवेट लिमिटेड नई दिल्ली	2004 छठा संस्करण
56.	तुलसी काव्य का सांस्कृतिक अध्ययन	डॉ. जिनेन्द्र नाथ पाण्डेय	अलका प्रकाशन कानपुर-11	अगस्त 1995
57.	भारतीय काव्य शास्त्र	डॉ. विजयपालसिंह	जयभारतीय प्रकाशन इलाहाबाद	1998 ई. प्रथम संस्करण
58.	साहित्य विवेचन	शेमचन्द्र 'सुमन' योगेन्द्रकुमार मल्लिक	आत्माराम एन्ड सन्स दिल्ली	1990 ई.

59.	वाल्मीकि रामायण शाप और वरदान	अनुवादक-मुरलीधर जगताप, पुणे	रामचन्द्र एण्ड के पूणे	1993 प्रथम संस्करण
60.	वाल्मीकि रामायण एवं रामचरितमानस का तुलनात्मक अध्ययन	डॉ. विद्या मिश्र सं.दिनदयाल गुप्त	विश्वविद्यालय हिन्दी प्रकाशन लखनऊ, विश्वविद्यालय	-
61.	The status of woman in the epics	Jayal	Motilal Banarasidas Jawahar, Delhi-7	1966
62.	History of civilization in ancient India	R.C.Dutt	Vishal Publishers, 2/53/2, Fountain, Delhi-6	
63.	Srimad Ramayan	D.S.Sharma	Sri Ramkrishna Math, Publication Department, II, Chennai-4	1946
64.	Valmiki Ramayan Darshan	Shastri Shri Pandurang V. Athvale	Shrimad Bhagavad Gita Pathsala, Madhavbaug, Mumbai	

65.	भट्टि और उनका रावणवध महाकाव्य – डॉ. कैलाशनाथ पाठक परिमल पठिलकेशन्स दिल्ली- प्रथम संस्करण – 1994
66.	भारती काव्य शास्त्र - योगेन्द्र प्रतापसिंह लोकभारती प्रकाशन - इलाहाबाद, तृतीय संस्करण- 2004
67.	भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य सिद्धांत – डॉ. अलका द्विवेदी साहित्य रत्नालय- कानपुर प्रथम संस्करण – 2005
68.	भारतीय काव्य शास्त्र- डॉ. विजयपालसिंह जय भारतीय प्रकाशन- नई दिल्ली प्रथम संस्करण 1998
69.	काव्य शास्त्र – डॉ. भगीरथ मिश्र विश्विद्यालय प्रकाशन- वाराणसी- पय्यदश संस्करण-2004 ई.
70.	कालिदास और जयशंकर प्रसाद की महाकाव्य सृष्टि - महेश विद्यालंकार भारतीय विद्या प्रकाशन- दिल्ली – प्रथम संस्करण – 1994

71.	संस्कृत कथा साहित्य का अध्ययन - श्यामाभटनागर पब्लिकेशन स्कीम – जयपुर राजस्थान प्रथम संस्करण 2000
72.	संस्कृत साहित्य में मौलिकता एवं अनुहरण – डॉ. उमेशप्रसाद रस्तोगी चौखम्बा विद्याभवन - वाराणसी-1, प्रथम संस्करण संवत 2022

शब्दकोश तथा पत्रिकाएँ

1	धर्मलोक (गुजरात समाचार, गुजराती दैनिक)	बचुभाई बी. वडगामा	-	20/09/2005
2	संस्कृत-गुजराती कॉलेज कोश	महर्षि वेद विज्ञान अकादमी	41, श्यामल, अहमदाबाद-15	-
3	अमरनाथ कथा	पू.मोरारिबापू	सीताराम सेवा ट्रस्ट महुवा	2007
4	आदर्श हिन्दी शब्दकोश	पं.रामचन्द्र पाठक	भार्गव बुक डॅपो, वाराणसी	1977